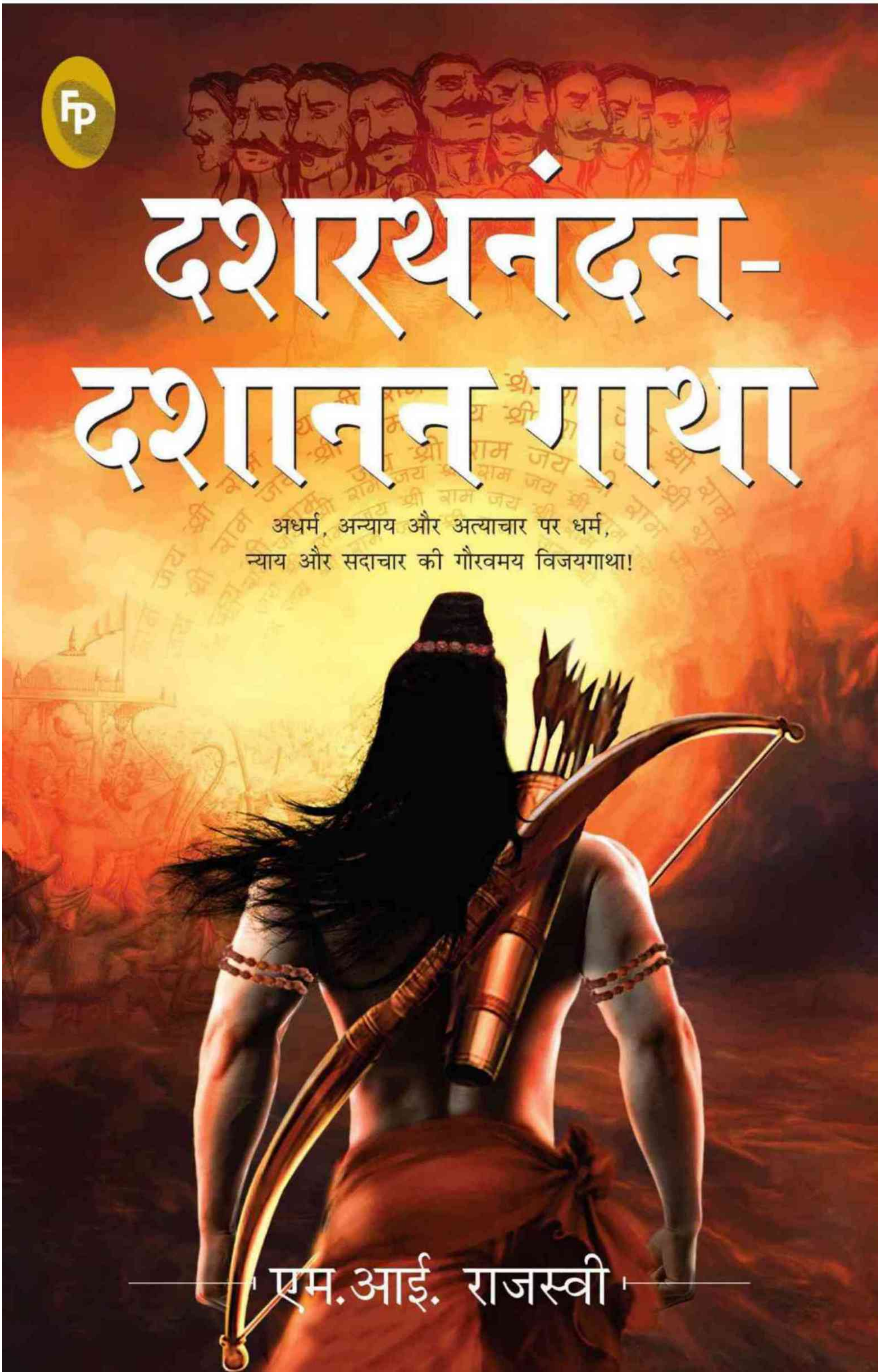
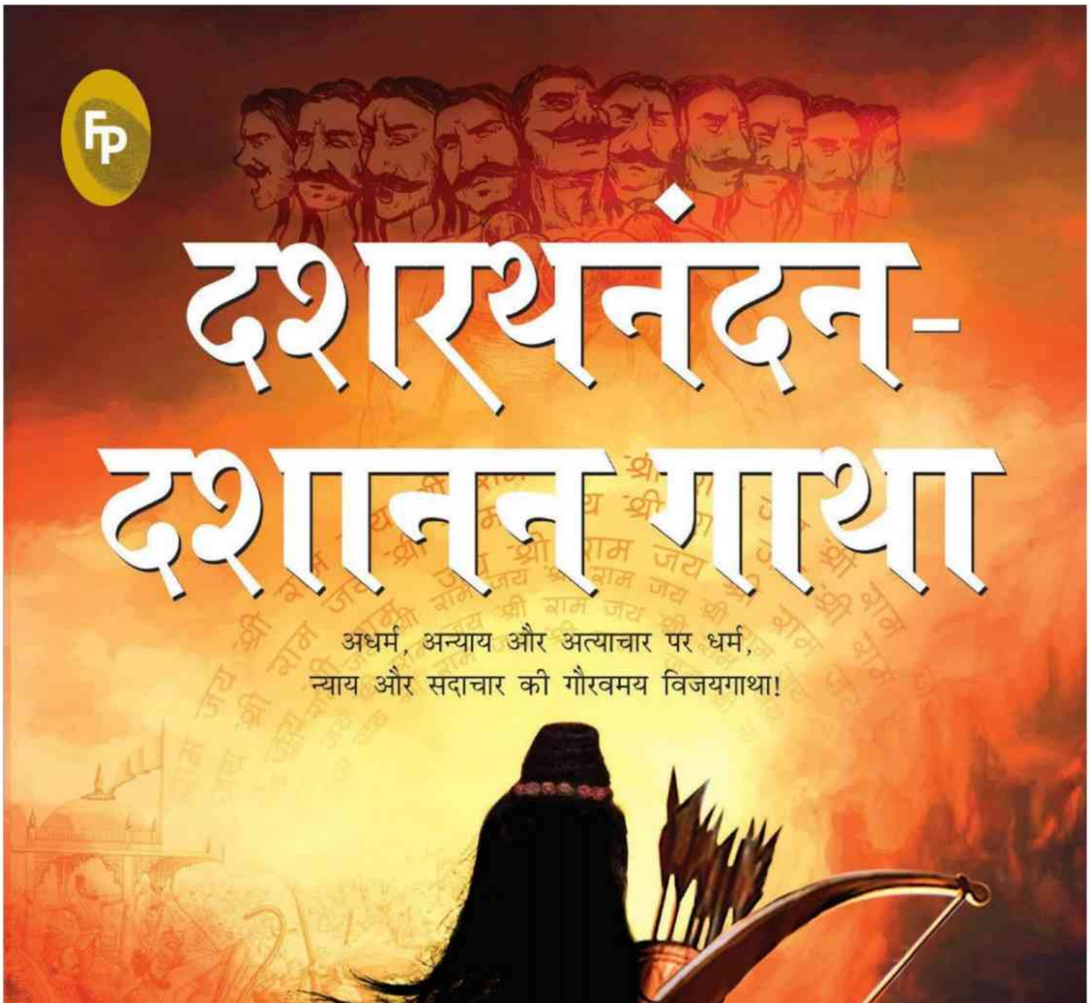

दशरथनंदन-
दशानन गाथा
अधर्म, अन्याय और अत्याचार पर धर्म,
न्याय और सदाचार की गौरवमय विजयगाथा!
एम.आई. राजस्वी


दशरथनंदन-
दशानन गाथा
अधर्म, अन्याय और अत्याचार पर धर्म,
न्याय और सदाचार की गौरवमय विजयगाथा!
एम.आई. राजस्वी

“ दशानन के मस्तिष्क में विचार बड़ी तेजी से बन और बिगड़ रहे थे। खर-दूषण बल और पराक्रम में उससे तनिक भी कम न थे, अपितु बुद्धिहीनता के कारण उनकी क्रूरता और भी अधिक हो जाती थी। उन दोनों को सहज ही सेना सहित मार गिराने वाले दशरथनंदन को साधारण मनुष्य मानने की भूल दशानन नहीं कर सकता था। नीतिवान विभीषण ने परशुराम का उदाहरण देकर संकेत दे दिया था कि दशरथनंदन श्रीराम के रूप में नारायण ने ही पृथ्वी पर अवतार लिया है। दशानन यह अवसर कैसे हाथ से जाने दे! कुल का उद्धार करने का इससे अच्छा अवसर और कौन-सा होगा? अब तो हठ करके भी बैर किया जाना श्रेष्ठ है। यदि दशरथनंदन साधारण मानव ही है तो उसे पराजित करने से कीर्ति में वृद्धि होगी और यदि नारायण ही नर रूप में काल रूपी धनुष उठाकर धरा पर अवतरित हुए हैं तो विश्रवा के संतप्त, श्रापित कुल का उद्धार हो जाना निश्चित है! ”

दशरथनंदन-दशानन
गाथा

दशरथनंदन की लोक-मर्यादा, सीता की पवित्रता और हनुमान की
वीरता के साथ दशानन की दुष्टता, विद्वता एवं विज्ञानता की महागाथा!

लेखक

एम.आई. राजस्वी

(उ.प्र. हिंदी संस्थान से सम्मानित)

FINGERPRINT!

नल–नील ने एक पत्थर पर श्रद्धापूर्वक 'राम' लिखा और फिर राम से विनय की कि वे पहले पत्थर को अपने हाथ से जल में प्रवाहित करें। राम ने उठकर उस पत्थर को समुद्र में डाला तो वह डूब गया। यह देखकर सब सन्न रह गए।

"प्रिय नल–नील! यह दुर्लभ गुण मुझमें नहीं है। यह तो तुम्हें ही करना होगा।" राम ने हंसकर कहा–"देखो, हमने समुद्र में पत्थर डाला तो डूब गया।"

"हे लीलाधर, हे करुणामय!" विभीषण लीलाधर की लीला समझकर भक्तिभाव से बोले–"आपको बारंबार प्रणाम है। प्रभु, जिसे आपने छोड़ दिया, वह भला कैसे न डूबेगा? संसार में भवसागर से पार होने के लिए आपका आलंब चाहिए ही। आपने जिसे त्याग दिया, वह तो उभर ही नहीं सकता, उसे डूबना ही है।"

समर्पित

सत्य, सदाचार और न्याय को आधार मानने, समस्त सृष्टि को एक परम प्रभु की कृति स्वीकारने और संपूर्ण विश्व को वसुधैव कुटुंबकम् कहने वाले प्रत्येक जन को समर्पित!

"हे प्रभो!" हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा–"इसमें कोई भी संदेह नहीं कि दशानन का पराक्रम अपरिमित है। आज मुझे स्वयं अपने उस प्रहार पर लज्जा आई, जो मैंने दशानन पर किया और उसके प्राण नहीं निकले। पर्वतों को भी खंड–खंड कर देने वाला वह प्रहार दशानन को केवल क्षणिक मूर्च्छा ही दे सका, यह देखकर मेरा बल मुझे धिक्कार उठा।"

"पवनपुत्र!" राम ने गंभीर स्वर में कहा–"दशानन के पराक्रम पर किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए। तीनों लोकों और स्वयं इंद्र और कुबेर को भी संतुष्ट करने वाले दशानन का पराक्रम अपने अहंकार के कारण जगतविरुद्ध हो गया है। चौदह विद्याओं के ज्ञाता विद्वान दशानन ने अपने अहंकार की संतुष्टि के लिए संसार की शांति भंग कर दी है।"

दो शब्द

राक्षसकुल की मुक्ति की गाथा

दशरथनदंन के रूप में श्रीहरि के अवतरण का मुख्य उद्देश्य अपने भक्तों को संतुष्ट करना और राक्षसी प्रवृत्तियों का संहार करना था और उन्होंने यह उद्देश्य संपूर्णतया संपन्न किया। दशरथनंदन के रूप में उनके अवतरण को स्पष्ट करते हुए महर्षि वशिष्ठ महाराजा दशरथ से कहते हैं–

"हे धन्यभागी महाराज दशरथ! तुम्हारे चारों पुत्र सभी वेदों के तत्त्व रूप हैं। ये ऋषियों का धन, भक्तों का सर्वस्व और शिव के प्राण हैं, जिन्होंने तुम्हारे प्रेम-बंधन में बाललीला करने में सुख माना है। राम ही साक्षात् श्रीहरि का रूप हैं। पूर्व जन्म में तुम ऋषि कश्यप व महारानी कौशल्या जगत्माता अदिति थीं। एक जन्म में तुम ही मनु और महारानी शतरूपा थीं, ऐसे ही कई जन्मों की घोर तपस्या से प्रसन्न करके तुमने श्रीहरि से उनके समान पुत्र पाने की कामना की थी। अब उनके जैसा तो दूसरा कौन है? अत: करुणानिधान ने स्वयं ही पुत्र बनकर आपकी कामना पूर्ण की है।"

दशरथनंदन के न्याय, धर्म और पराक्रम की परख वानरराज बालि के साथ उनके संवाद से भली-भांति हो जाती है। जब दशरथनंदन बालि को अपने तीक्ष्ण बाण से मर्माहत करते हैं तो बालि के साथ उनका संवाद उल्लेखनीय है–

"...हे दशरथनंदन! मुझे एक अवसर तो दिया होता। मैं दशानन को लंका से घसीटकर तुम्हारे समक्ष डाल देता।"

"बालि, जो अधर्म के मार्ग पर चलते हों, उनकी मित्रता भी अनिष्टकारी होती है। तूने कब धर्म व नीति का पालन किया? क्या भाई की पत्नी को बलात् अपनी अंकशायिनी बना लेना धर्म है? क्या भाई के अधिकारों का हनन करना नीति है? हे अभिमानी बालि, तुझे मैंने नहीं मारा, तुझे 'मैं' ने मारा है। बल का अहंकार ही तेरे पतन का कारण है। जिसने कभी न्याय और नीति का पालन न किया हो, उसे कभी इनका उदाहरण न देना चाहिए। तुमने वही फल पाया है, जैसे बीज रोपे थे। रावण जैसे दुष्ट को दंडित करने के लिए मैं किसी दूसरे दुष्ट का आश्रय लेकर अपने कुल

को कलंकित क्यों करता? अपने पराक्रम को शंकित क्यों करता? रावण मेरे लिए भुनगे से अधिक नहीं है। मैं यहां से बाण छोड़ूं तो रावण लंका से उसमें बंधा चला आए, इसमें तनिक संदेह न मानना, परंतु यह लौकिक मर्यादाओं की स्थापना के लिए सज्जित रणांगण है, जहां दैवीय प्रभावों का आश्रय रघुकुल के राजकुमार नहीं ले सकते। हम जो हैं, वही रहकर संसार को दिखा देंगे कि दुष्ट कितना भी शक्तिशाली हो, परंतु विजय सदैव सत्य की होती है।"

दूसरी ओर दशानन राक्षसी प्रवृत्तियों का द्योतक माना जाता रहा है, जबकि वास्तव में वह एक महान तपस्वी, विद्वान अन्वेषक और प्रकांड पंडित था। उसकी विद्वता और पांडित्य का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण होगा कि समुद्र पर सेतु-निर्माण के बाद पुण्य तीर्थ रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना हेतु दशरथनंदन श्रीराम ने परम विद्वान लंकाधीश दशानन को ही मुख्य अग्निहोत्र के रूप में आमंत्रित किया था।

दशरथनंदन से शत्रुता करने में भी दशानन की परम विद्वता ही प्रकट होती है। त्रैलोक्य विजेता दशानन यह जान गया था कि सृष्टि में उसे मुक्ति प्रदान करने वाले केवल श्रीहरि हैं। यदि वे दशरथनंदन के रूप में अवतरित हुए हैं तो निश्चय ही उसे और उसके संपूर्ण राक्षसकुल को मुक्ति मिल जाएगी और यदि ऐसा नहीं है तो दशरथनंदन पर विजय पाकर उसकी कीर्ति में शतगुणा वृद्धि होगी।

दशरथनंदन और दशानन हजारों वर्षों से विभिन्न देश, धर्म और जातियों के अध्ययन का विषय रहे हैं। मैंने अपनी सोच-समझ और गहन चिंतन-मनन के पश्चात् इस पुस्तक **'दशरथनंदन-दशानन गाथा'** की रचना की। मुझे आशा ही नहीं, वरन् पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक दशरथनंदन श्रीराम की मर्यादा को स्थापित करने और दशानन के चरित्र के साथ न्याय करते हुए और अनेक अस्पष्ट तथ्यों को स्पष्ट करते हुए पाठकों की प्रेरणा का स्रोत बनेगी।

–एम.आई. राजस्वी
m.i.rajasve@gmail.com

1

देवगुरु की दशरथ से प्रार्थना

"हे रघुकुल शिरोमणि!" देवगुरु बृहस्पति ने कहा–"इक्ष्वाकु वंश की कीर्ति सदैव ही सूर्य की भांति आलोकित रही है। धर्म और मानवता की रक्षा व दुष्टों का संहार करने वाले रघुवंशी सदैव प्रतापी और यशस्वी रहे हैं। विधि का विधान विचित्र है और वह जिसे यश-लाभ देना चाहती है, उसे नियुक्त करती है। संबरासुर से देवताओं की पराजय का कारण उसका अतुलनीय पराक्रम नहीं है, अपितु नियति द्वारा इस यश को सम्राट दशरथ को प्रदान करना लिखा है। अतः हे नृपश्रेष्ठ, हम देवों के सहायक बनिए और धर्म की पुनर्स्थापना हेतु अपना प्रचंड धनुष उठाइए। हम आपसे सहायता की प्रार्थना करते हैं और आपके नेतृत्व में असुरदमन यज्ञ संपन्न करना चाहते हैं।"

अयोध्या नरेश महाराजा दशरथ अपनी विशेष सैन्य टुकड़ी के साथ कैकेय राज्य से स्वयंवर जीतकर अयोध्या लौट रहे थे। उनके साथ रथ में उनकी नवविवाहिता रानी कैकेयी भी थीं, जो अपूर्व सुंदरी क्षत्रिय कन्या थीं।

कुछ दिन पहले ही तो राजकुमारी कैकेयी के पिता महाराजा अश्वपति ने अपनी राजधानी मंगलापुरी में कैकेयी के भव्य स्वयंवर का आयोजन किया था, जिसमें दूर-दूर के राज्यों से अनेक राजाओं और राजकुमारों ने

भाग लिया था। इनमें महाराजा दशरथ भी थे जिन्हें कैकेयी ने प्रथम दृष्टि में ही अपना वर चुन लिया था और स्वयंवर के समय उन्हीं के गले में वरमाला डालकर अन्य उपस्थित राजाओं को कुपित कर दिया था। इसी क्रोध में कई राजाओं ने एकजुट होकर महाराजा दशरथ पर मार्ग में तब आक्रमण कर दिया था, जब वे रानी कैकेयी सहित कैकेय से लौट रहे थे।

महाराजा दशरथ अपूर्व योद्धा थे। उनके पराक्रम को सहने की सामर्थ्य स्वयं इंद्र में भी नहीं थी। शत्रुओं का सांख्यबल अधिक था, परंतु महाराजा दशरथ का रण-कौशल उस संयुक्त सेना को भयभीत कर रहा था। अपने स्वामी के पराक्रम पर मुग्ध-मुदित रानी कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न थी, जैसे संसार की अमूल्य निधि पा गई हो।

अचानक शत्रु के एक बाण से दशरथ का सारथी मारा गया और अश्व बेकाबू होने लगे। इस विकट परिस्थिति में जब युद्ध निर्णायक मोड़ पर था और शत्रुओं का मनोबल गिर रहा था, सारथी का मारा जाना बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण था, परंतु क्षत्रिय कन्या कैकेयी ने क्षण-भर में स्थिति को संभाल लिया। वह सारथी बन गई और बड़ी कुशलता से अश्वों का संचालन करने लगी। यह देखकर राजा दशरथ का पराक्रम जैसे द्विगुणित हो गया और दोपहर होने तक शत्रु सेना रणभूमि से भागने लगी।

राजा दरशरथ ने इस विजय का श्रेय अपनी नवविवाहिता रानी कैकेयी को दिया और हर्ष में भरकर अनुरागपूर्वक उसे एक वरदान मांगने को कहा।

"आर्य! मेरा सर्वस्व, मेरा वरदान तो आप ही हैं, इस अतिरिक्त वरदान का क्या होगा?" कैकेयी ने मृदुल-मधुर स्वर में कहा।

"प्रिये! हम रघुवंशी हैं। परिहास या स्वप्न में भी हम किसी को कोई वस्तु देने का विचार करते हैं तो तब तक हम विचलित होते रहते हैं, जब तक वह वस्तु जिसे दी जाए, वह स्वीकार नहीं कर लेता। यह हमारे कुल की रीति है।"

"आर्य! यदि ऐसा है तो मैं आपका आदेश स्वीकार करती हूं। मेरा एक वरदान आप पर ऋण रूप में रहा, जो मैं आवश्यकता पड़ने और समय आने पर मांग लूंगी।"

"अवश्य प्रिये! हम तुम्हारे अदम्य साहस और अद्‌भुत रथ-संचालन पर चकित हैं।"

"इसमें चकित होने जैसा क्या है आर्य! हम कैकेयी-कन्याओं को धनुर्वेद की विधिवत् शिक्षा दी जाती है। हम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई हैं, जहां युद्ध प्रिय विषय होता है। हम युद्धकला के सभी भेद जानती हैं।"

"धन्य है वह राज्य! शत्रु उसकी ओर कभी कुदृष्टि नहीं डाल सकता।"

प्रेम और पराक्रम संबंधी वार्तालाप चलता रहा और कुछ ही दिनों बाद वे दंडकारण्य की सीमा में पहुंच गए।

"अहा! हम महान मुनियों की तपोस्थली दंडकारण्य में प्रवेश कर चुके हैं। यहीं पर देवताओं को प्रिय वैजयंतनगर भी है जिसकी शोभा अमरावती नगरी जैसी है। देवगण जब भी पृथ्वी पर भ्रमण हेतु आते हैं तो वहां अवश्य पधारते हैं। सभी देवों की विशेष कृपा और स्वयं देवराज इंद्र द्वारा रक्षित वह अनुपम नगर कुछ ही कोस की दूरी पर है। हम चाहते हैं कि उस भव्य नगर के दर्शन कर लिए जाएं।"

"जैसी आपकी इच्छा आर्यपुत्र!" कैकेयी ने उत्सुक होते हुए प्रसन्नता से कहा।

दंडकारण्य दक्षिण दिशा में स्थित ऐसा सुरम्य वनखंड था, जहां बड़े-बड़े तपस्वी तपस्या करते थे। हजारों गुरुकुल, आश्रम और देवालय उस वन की अद्‌भुत धार्मिकता का प्रतीक थे। स्थान-स्थान पर यज्ञ, हवन-पूजन आदि में रत मुनि-योगी भगवन्नाम का जप करते रहते थे। समिधा की सुगंध से वातावरण महकता था। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। अमराइयों में चिड़ियों का गुंजन होता था। शुक (तोते) मंत्रोच्चारण करते थे।

राजा दशरथ ने अपने बचपन में ही गुरु वशिष्ठ के श्रीमुख से दंडकारण्य की ऐसी ही भव्य चर्चा सुनी थी और आज सौभाग्य से उस देवभूमि के दर्शन करने का अवसर मिला था।

अभी रथ कुछ ही मील चला होगा कि एक दिशा में 'त्राहिमाम् त्राहिमाम्' का आर्तनाद सुनाई दिया, इसके साथ ही कुछ भयंकर असुरी अट्टहास भी। दृश्य स्पष्ट हुआ। बहुत से ऋषि-मुनि, बाल-वृद्ध, वनदासियां त्राहिमाम् कहते हुए गिरते-पड़ते इधर-उधर भाग रहे थे और उनके पीछे कुछ भयंकर आकृति वाले राक्षस अट्टहास लगाते हुए दौड़े आ रहे थे।

राजा दशरथ ने क्षण-भर में निर्णय लिया। उन्होंने अपना धनुष उठाकर असुरदल को ललकारा और एक तीक्ष्ण बाण के द्वारा एक असुर का संहार कर दिया। अपने सखा को मरता देख शेष राक्षस क्रोध में भरकर आगे आए, परंतु उन्हें अपने अस्त्र संभालने का भी अवसर नहीं मिला। राजा दशरथ के प्रबल प्रहारों ने उन्हें धराशायी कर दिया। असुरों को काल के गाल में समाते देख पीड़ित वनवासी ठहर गए थे और कृतज्ञता करबद्ध होकर राजा दशरथ के रथ के समीप आ गए।

"हे वनवासियो!" दशरथ ने आश्चर्य से पूछा—"जो वन-खंड संसार में धर्म और शांति के लिए विख्यात है, जहां महान ऋषियों ने अपने तप के प्रभाव से

उसे पूर्णतया निर्भय कर दिया, जहां देवगण प्रवास करते हैं और जो स्वयं देवराज इंद्र द्वारा सुरक्षित है, वहां इतना भय क्यों, अशांति क्यों?"

"हे प्राणरक्षक क्षत्रिय!" एक वृद्ध मुनि ने अपनी पीड़ा को शब्द दिए–"दंडकारण्य के विषय में जो प्रसिद्ध था, सत्य ही था, परंतु अब यह तपोभूमि पूरी तरह असुरक्षित और अशांत है। अब यहां असुरों का शासन है। न अब यहां यज्ञ होते हैं और न मंत्रों का उच्चारण। असुरों के दल आकर हम असहाय वनवासियों को पीड़ित करते हैं और हमारी कोई सहायता नहीं करता।"

राजा दशरथ के मुख पर आश्चर्य और अविश्वास के भाव फैल गए, तभी वातावरण में मधुर वीणा का स्वर और 'नारायण-नारायण' का शाश्वत् नाद सुनाई पड़ा, जो लोकविदित देवर्षि नारद के आगमन का संकेत था। सभी श्रद्धानवत् हो गए।

"नारायण-नारायण! नियति के खेल निराले हैं। श्रीहरि की प्रेरणा से वह उसे भी वहीं ले जाती है, जहां उसकी आवश्यकता होती है।" देवर्षि बोले।

"देवर्षि को प्रणाम!" राजा-रानी ने श्रद्धापूर्वक नमन किया।

"नवयुगल चिरंजीव रहें!"

"भगवन्, गुरु वशिष्ठ के श्रीमुख से हमने दंडकारण्य की भव्यता और रमणीकता के विषय में सुना था कि यह स्वर्ग से भी बढ़कर मनोहारी है। आज सौभाग्य से इस मार्ग से आना हुआ तो यह दृश्य देखकर हृदय कंपित हो गया।" दशरथ ने कहा।

"नृपश्रेष्ठ!" देवर्षि गंभीर स्वर में बोले–"ये देवासुर संग्राम के कारण उत्पन्न हुई स्थितियां हैं। असुर सम्राट संबरासुर बड़ा ही पराक्रमी, निर्दयी और अपराजेय असुर है। उसने स्वयं देवराज को भी युद्ध में परास्त करके उन्हें छिपने को विवश कर दिया। इंद्रदेव जब पीड़ित देवों के साथ वैजयंत नगर में छिपने आए तो यह शांत तपोस्थली असुर सम्राट की कुदृष्टि में आ गई। देवता तो यहां से भाग गए, परंतु इस तपोभूमि को असुरों की दया पर छोड़ गए। वैजयंत नगर असुरराज के अधीन है और समस्त वनवासी असुरों द्वारा पीड़ित हो रहे हैं।"

राजा दशरथ के नेत्रों में क्षत्रियोचित रोष उत्पन्न हो गया। इस प्रकार का अन्याय और हिंसा उनकी सहनशक्ति से बाहर थी। उनकी भुजाएं फड़क उठीं।

"हे अजनंदन, संबरासुर अत्यंत बलशाली और मायावी असुर है। उसने घोर तपस्या से अनेक दिव्यास्त्र और विद्याएं प्राप्त कर ली हैं। यह तिमिरध्वज नाम का साधारण असुर मांत्रिक ऋषि संबर से अनेक वरदान पाकर संबरासुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। उसे अपने बल और माया का बड़ा अभिमान है। उस पर भी

इंद्रादि देवों को परास्त करके उसमें वृद्धि हुई है। वह समझता है कि युद्ध में उसके पराक्रम को पराजित करने वाला योद्धा तीनों लोकों में नहीं है। उसके अत्याचारों से सभी पीड़ित हैं।"

"पूज्य देवर्षि!" राजा दशरथ ने विनीत परंतु दृढ़ स्वर में कहा–"विजय के समस्त साधन योद्धा की अपनी भुजाओं में होते हैं और श्रेष्ठ रघुकुल में प्रभु की दया, गुरु की विद्या और दिव्यात्माओं के आशीर्वाद से एक नहीं अनेक योद्धा ऐसे हैं, जो एक साथ अनेक संबरासुरों को पराजित कर सकने की सामर्थ्य रखते हैं। देवासुर संग्राम समान शक्तियों और स्वार्थों का संग्राम है, इसलिए बिना अधिकृत हुए मनुष्य किसी भी पक्ष में सहायक नहीं होना चाहिए, परंतु यह जो अन्याय और हिंसा का दारुण दृश्य हमने देखा है, यह हमारी भूमि पर असहनीय है और हम अवश्य ही इसका प्रतिकार करेंगे। दुष्टों के पराक्रम को संतुष्ट करने का ऐसा अवसर हम रघुवंशी कभी नहीं छोड़ते। हम उस अधम संबरासुर के अत्याचार से इस पवित्र क्षेत्र और यहां के पीड़ित लोगों को अवश्य निर्भय करेंगे।"

राजा दशरथ ने ऐसा दृढ़ निश्चय किया ही था कि आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और देवगुरु बृहस्पति के साथ इंद्रादि देवता प्रकट हो गए। सभी श्रीहीन थे और उनके मुखों पर पराजय की ग्लानि व भय के चिह्न थे।

राजा दशरथ ने हर्षपूर्वक सभी की स्तुति की और आशीर्वाद प्राप्त किया।

"हे रघुकुल शिरोमणि!" देवगुरु बृहस्पति ने कहा–"इक्ष्वाकु वंश की कीर्ति सदैव ही सूर्य की भांति आलोकित रही है। धर्म और मानवता की रक्षा व दुष्टों का संहार करने वाले रघुवंशी सदैव प्रतापी और यशस्वी रहे हैं। विधि का विध ान विचित्र है और वह जिसे यश-लाभ देना चाहती है, उसे नियुक्त करती है। संबरासुर से देवताओं की पराजय का कारण उसका अतुलनीय पराक्रम नहीं है, अपितु नियति द्वारा इस यश को सम्राट दशरथ को प्रदान करना लिखा है। अत: हे नृपश्रेष्ठ, हम देवों के सहायक बनिए और धर्म की पुनर्स्थापना हेतु अपना प्रचंड धनुष उठाइए। हम आपसे सहायता की प्रार्थना करते हैं और आपके नेतृत्व में असुरदमन यज्ञ संपन्न करना चाहते हैं।"

"हे परम पूज्य देवगुरु व सभी आदरणीय देवो!" राजा दशरथ ने विनम्र स्वर में कहा–"यह मेरा परम सौभाग्य है कि आपने मुझे इस योग्य समझा। मैं अकिंचन किस योग्य हूं। मेरा समस्त बल और वैभव आप सभी के आशीर्वाद से है। आपका आदेश स्वीकार करते हुए मैं दुष्ट-दमन हेतु सहर्ष प्रस्तुत हूं।"

"राजन्!" देवराज ने चिंता व्यक्त की–"ये असुर बड़े ही मायावी और कपटी हैं। युद्ध में सदैव दृढ़ साधनों से उतरना चाहिए और किसी भी प्रकार के बल या

उत्साह को क्षीण करने वाले या शत्रु के लिए सरल लक्ष्य को साथ में नहीं होना चाहिए। अत: हमारा परामर्श है कि रानी कैकेयी को सुरक्षित स्थान पर भेज दें।"

"देवराज, क्षमा करें! वीर पुरुष सभी परिस्थितियों में अपने मान, धन और स्त्री की रक्षा करने में समर्थ होते हैं और सम्राट दशरथ के पराक्रम पर संदेह का दोष अपने सिर न लें। राजरानी कैकेयी के विषय में आप अनभिज्ञ हैं।" पवनदेव ने कहा।

"नारायण-नारायण! देवराज सदैव शंकित ही रहते हैं। हमारे प्रस्थान का समय हो चला है। नियति के खेल निराले, वृत्रासुर का वध करने वाले देवराज आज तेजहीन हैं।"

देवराज तिलमिला गए, परंतु नारदजी अपने अवसर पर कब चूकते थे।

उसी समय एक ओर से ऐसा तूफान-सा उठा, जैसे राहू ने सूर्य को ग्रस लिया हो। घनघोर अंधकार के साथ भीषण चक्रवात चलने लगा था।

"यह संबरासुर की माया है। उसे सब ज्ञात हो गया है और अब वह क्रोध में भरा सबको पीड़ित करता हुआ सेना सहित आ रहा है।" देवगुरु ने कहा।

"आप निश्चिंत रहें देवगणो!" राजा दशरथ ने अपने धनुष-बाण संभाल लिये और एक दिव्यास्त्र चलाकर क्षण-भर में असुरी माया नष्ट कर दी। चक्रवात शांत हो गया और अंधकार मिट गया।

अब असुरों का ऐसा भीषण कोलाहल सुनाई पड़ रहा था कि कान सुन्न हो जाते थे। फिर भयानक आकृति वाले अनेकानेक असुरों का असुर-समुद्र दिखाई देने लगा।

2

दशानन की प्रतिज्ञा

"कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा पिताश्री!" दशानन अहंकार से पूर्ण प्रतिज्ञा करते हुए बोला–"मैं अकेला अपने भुजबल से इस लक्ष्य को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता हूं। मैं दस सिरों का मस्तिष्क और बीस भुजाओं का बल तो प्रतिक्षण अपने पास रखता ही हूं। आप देखेंगे कि समस्त लोक मेरे पराक्रम से किस प्रकार थर-थर कांपेंगे। देवता मेरे बंदी बनकर बंदीगृहों की शोभा बढ़ाएंगे। कुबेर को इस संसार में तो क्या तीनों लोकों में छुपने का स्थान न मिलेगा। आप उस लंका की आनंदशाला में सदैव के लिए सभी आनंदों का भोग करेंगे।"

त्रिकूट पर्वत के शिखर पर तीनों बलवान तपस्वी घोर तप कर रहे थे। वे तीनों ही अपने डील-डौल से अत्यंत विशाल थे। उनमें से वह जो अनेक वर्षों से एक पैर पर खड़ा तपस्या कर रहा था, उसका नाम रावण था। उसके दस शीश (आनन) थे। इसी कारण उसे दशानन भी कहा जाता था। दूसरा जो घोर गर्जन के साथ ब्रह्ममंत्र का उच्चारण कर रहा था, वह कुंभकर्ण था और जो तीसरा शांत स्वभाव से भक्तिपूर्ण तपलीन था, वह विभीषण था।

परमपिता ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षि पुलस्त्य के ज्येष्ठ पुत्र का नाम कुबेर था, जो बड़ा ही धर्मात्मा था। पितामह ब्रह्मा का उस पर अत्यधिक

स्नेह था, अतः कुबेर पिता से अधिक पितामह की सेवा करते थे। इससे पितामह ने उन्हें धन का स्वामी बना दिया। महर्षि पुलस्त्य ने इसे अपनी उपेक्षा मानकर क्रोध में अपने योगबल के द्वारा अपने आधे शरीर से दूसरी देह धारण की, जो विश्रवा नाम से विख्यात हुए। कुबेर की सेवा और धर्मनिष्ठा से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उसे यक्षों का स्वामी बना दिया। उन्होंने त्रिकूट पर्वत के अंचल में निर्मित, चहुं ओर जल से घिरी स्वर्णनगरी लंका को उनकी राजधानी बनाया। इसके साथ ही उन्हें वायुमार्ग से आवागमन के लिए पुष्पक विमान भी दिया। क्रोध से उत्पन्न विश्रवा उसका यह वैभव देखकर सदा कुपित रहते थे।

कुबेर अपने पिता को प्रसन्न करने के सभी उपाय करते थे। उन्होंने लंका की तीन परम सुंदरी राक्षस-कन्याओं को विश्रवा की सेवा में भेज दिया। पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी नाम की ये कन्याएं अपने सभी प्रयत्नों से ऋषि की सेवा करती थीं। इन्हीं से उन्हें चार अत्यंत बलशाली पुत्र प्राप्त हुए। पुष्पोत्कटा से दो पुत्र रावण और कुंभकर्ण, मालिनी से पुत्र विभीषण और राका से एक पुत्र खर व पुत्री शूर्पणखा उत्पन्न हुए। इन पांच संतानों में विभीषण शांत, धार्मिक और उदार हृदय थे, जबकि शेष सभी में राक्षसी प्रवृत्तियां थीं। विश्रवा ने इन चारों को ही कुबेर के विरुद्ध भड़काया और उसके वैभव को छीन लेने की प्रेरणा दी।

ऐसा कर पाना इतना सरल नहीं था। कुबेर के रक्षक स्वयं शिव थे, अतः बिना किसी बल का अर्जन किए यह कार्य संपन्न नहीं हो सकता था और बल तप के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था। इसी कारण रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने घोर तप किया और खर अपनी बहन शूर्पणखा को लेकर दंडकारण्य में अपना प्रभाव जमाने लगा।

रावण आदि तीनों भाइयों ने कठोर तपस्या की थी। रावण ने तो इससे भी अद्‌भुत कर्म किया था। उसने अपना मस्तक काटकर ही अग्नि को अर्पण कर दिया। इससे प्रजापति ब्रह्मा प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हुए।

"विश्रवानंदन! मैं तुम्हारे तप से अत्यंत प्रसन्न हूं।" ब्रह्माजी ने रावण से कहा–"तुम अपना इच्छित वर मांगकर इस घोर तप से निवृत्त हो जाओ। अमरत्व के अतिरिक्त तुम्हें जो भी प्रिय लगे, वह मांग सकते हो। तुमने जिस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपना शीश तक अर्पण करने में कोई संकोच नहीं किया, वह अवश्य ही महान होगा।"

"पितामह! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिए कि यक्ष, गंधर्व, देवता, असुर, पिशाच आदि कोई भी मुझे युद्ध में पराजित न कर सकें।" रावण का कटा हुआ शीश बोला–"तथा मेरा शीश पुनः मेरे शरीर पर यथास्थित हो।"

"एवमस्तु, तुमने जिनका नाम लिया, उनके लिए तुम अपराजेय रहोगे। केवल मनुष्य से ही तुम्हें भय हो सकता है। तुम्हारा शीश सदैव तुम्हारे शरीर से जुड़ा रहेगा और कट जाने पर पुन: उत्पन्न हो जाएगा।"

रावण को इच्छित वरदान मिल गया था। मनुष्यों से उसे कदापि कोई भय न था। वे तो उसका आहार थे। कोई उसके समीप नहीं फटक सकता था।

ब्रह्माजी कुंभकर्ण के पास पहुंचे जिसका विशाल उदर देखकर वे सोच में पड़ गए। वह अकेला ही इतना भोजन करता था कि हजारों प्राणियों के प्राण एक बार में ही हरण कर लेता था। वह राक्षस यदि प्रतिदिन भोजन करेगा तो सृष्टि का गणित ही बिगड़ जाएगा। अत: ब्रह्मा की प्रेरणा से सरस्वती ने उसकी बुद्धि मोहग्रस्त कर दी।

"पुत्र कुंभकर्ण! तुम्हारे तप से मैं प्रसन्न हुआ। तुम भी अपने अग्रज की भांति इच्छित वर मांग लो।" ब्रह्माजी बोले।

"मुझे तो केवल सोने की इच्छा है। मेरे लिए तो छह मास के निद्राकाल और एक दिन के जागने में ही परम सुख होगा। अत: मुझे यही वरदान चाहिए।"

"एवमस्तु! ऐसा ही होगा।" ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और कुंभकर्ण वहीं सो गया। रावण को बड़ा क्रोध आया। मूर्ख ने यह क्या मांग लिया। कहा था कि सोने की लंका मांगना और मांग ली सोने वाली बृहदकालीन निद्रा! पर अब क्या हो सकता था। मंदबुद्धि तो वह था ही, क्योंकि भोजन और नींद में उसकी सदा आसक्ति थी। ऐसे मूर्ख से और क्या आशा की जाती!

ब्रह्माजी फिर विभीषण के पास पहुंचे।

"पुत्र, तुम मेरे सबसे प्रिय हो! तुमने राक्षसकुल में जन्म लेकर भी कभी अधर्म में मन नहीं लगाया और श्रीहरि के चरणों में तुम्हारी प्रीति बढ़ती रही। तुम्हारे तप और श्रद्धा ने मुझे मुग्ध कर लिया है, अत: तुम भी अपना इच्छित वर मांग लो।"

"प्रभो! मेरा अनुराग सदैव प्रभु के चरणों में दृढ़ रहे और कठिनतम समय में भी मेरे मन में कोई कुविचार न आए। इसके साथ ही बिना सीखे ही मेरे हृदय में ब्रह्मास्त्र के प्रयोग की विधि स्फुरित हो जाए।" विभीषण ने विनीत स्वर में कहा।

"एवमस्तु, तुम इस कुल के उद्धार का निमित्त बनोगे। मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूं, क्योंकि जैसी प्रीति तुमने श्रीहरि से लगाई है, वह लोक-कल्याणकारी है।"

तीनों को वरदान देकर ब्रह्माजी तो अंतर्ध्यान हो गए और रावण कुपित दृष्टि से विभीषण को देखने लगा, क्योंकि उसने भी घोर तप का कोई लाभकारी वरदान न मांगा था।

"अनुज, यह मूर्ख तो भूख और नींद का दास होकर बुद्धि से परिचय ही न रखता था, इसलिए जीवित और सामर्थ्य होते हुए भी यह कुल का भला क्या करेगा!" रावण क्रोध से बोला–"पर तुम तो बुद्धिमान भी थे। तुम्हें तो हमारे पिता के लक्ष्य का स्मरण रखते हुए शक्ति का वर मांगना चाहिए था, परंतु तुमने भक्ति का वरदान मांगा। अब यह लक्ष्य केवल मेरी भुजाओं पर निर्भर हो गया है, परंतु मुझे कोई चिंता नहीं है। मैंने वरदान ही ऐसा मांगा है कि मुझे कोई भी पराजित न कर सकेगा।"

"भ्राताश्री, जय-पराजय क्षणिक सुख-दुख हैं। इनसे मेरा क्या प्रयोजन! मैंने तो उस शाश्वत सुख का आश्रय लिया है जिसमें कभी क्षीणता न होगी।"

रावण ने उसे तिरस्कृत दृष्टि से देखा और वहां से चल पड़ा। कुंभकर्ण की सुरक्षा के लिए उसने वहां कुछ राक्षसों को छोड़ दिया।

"जब तक इसकी निद्रा खुलेगी, तब तक मैं इस पृथ्वी को अपने अधीन कर लूंगा। लंकानगरी मेरी राजधानी होगी, तब इसे वहां महल में ले जाकर सुला दिया जाएगा।"

रावण ने अपने पिता की इच्छा को ही अपना लक्ष्य बना लिया था कि उसे संसार में सबसे शक्तिशाली बनना है और इस कार्य में जो भी बाधक हो सकते थे, उन सभी का पराभव करना था। वे चाहे यक्ष हों, गंधर्व हों या देवता हों! शक्ति के मद ने उसे इतना चूर कर दिया था कि वह क्षण-भर का भी विलंब न करना चाहता था। वह सीधा अपने पिता विश्रवा के पास पहुंचा और उनके चरण स्पर्श किए।

"पिताश्री! आपके इस महाबली पुत्र ने पितामह को संतुष्ट करके उनसे ऐसा वर प्राप्त कर लिया है कि कोई मुझे युद्ध में परास्त न कर सकेगा। जिन यक्ष और देवों ने आपका तिरस्कार किया, अब मैं उन सभी को अपने बल से पीड़ित करके त्रास दूंगा। आप मुझे वह प्रथम आदेश दीजिए, जो आपको तत्काल प्रसन्न कर सके।"

"आज मैं बहुत प्रसन्न हूं पुत्र दशानन! मैं पुलस्त्य का अर्द्धांश न यक्षों का पिता बना, न ही मुझे मुनि माना गया, न ब्राह्मणश्रेष्ठ और न कोई राजपद मुझे मिल, अतः अब राक्षस वंश का ही कल्याण करना मेरे लिए श्रेष्ठ है। मुझे उस कुबेर ने अप्रसन्न किया और मेरे सम्मान को क्षति पहुंचाई है, अतः तुम अपने महाबली अनुजों के साथ जाकर उस दुष्ट को लंका से भगाकर उसका समस्त वैभव हरण कर लो।"

"पूज्य पिताश्री! मुझे खेद है कि मेरे अनुज अपने-अपने मोह के कारण आपके लक्ष्य से अलग हो गए हैं। उन्होंने मेरे समान ही कठोर तपस्या की और ब्रह्माजी

उन पर बहुत प्रसन्न भी थे, परंतु दोनों की बुद्धि मोहग्रस्त हो गई। अनुज कुंभकर्ण ने अधिक काल की निद्रा और वर्ष-भर दो दिन के लिए जागने का वरदान लिया। विभीषण ने कायरता का प्रदर्शन करते हुए उस विष्णु की ही भक्ति मांग ली, जो सदा से हम राक्षसों का शत्रु और द्वेषी रहा है।" दशानन रावण ने बताया।

"इसमें देवताओं का ही कोई छल होगा। देवता जानते हैं कि आने वाला समय विश्रवा के पुत्रों का होगा, अत: वे छल से हमारी शक्ति बाधित कर रहे हैं। विभीषण की प्रवृत्ति तो आरंभ से ही ऐसी थी, परंतु कुंभकर्ण से मुझे ऐसी मूर्खता की आशा नहीं थी।" मुनि विश्रवा चिंतित हो गए–"विभीषण का लक्ष्य से विलग होना न लाभ करता है और न हानि, परंतु कुंभकर्ण के न होने से प्रभाव पड़ सकता है।"

"कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा पिताश्री!" दशानन अहंकार से पूर्ण प्रतिज्ञा करते हुए बोला–"मैं अकेला अपने भुजबल से इस लक्ष्य को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता हूं। मैं दस सिरों का मस्तिष्क और बीस भुजाओं का बल तो प्रतिक्षण अपने पास रखता ही हूं। आप देखेंगे कि समस्त लोक मेरे पराक्रम से किस प्रकार थर-थर कांपेंगे। देवता मेरे बंदी बनकर बंदीगृहों की शोभा बढ़ाएंगे। कुबेर को इस संसार में तो क्या तीनों लोकों में छुपने का स्थान न मिलेगा। आप उस लंका की आनंदशाला में सदैव के लिए सभी आनंदों का भोग करेंगे।"

"पुत्र दशानन! भोगों में मुझे सुख की प्रतीति नहीं होती। मेरा सुख तुम्हारे यश में है। तुम्हारा यश सर्वत्र फैल जाए तो यह मेरे लिए गौरव की बात होगी।"

"आप निश्चिंत रहें। मेरी स्तुति इंद्रादि देवता भी करेंगे।"

"तभी मुझे सुख प्राप्त होगा पुत्र! मेरी उत्पत्ति अर्थहीन थी। मेरे मूल स्वरूप पुलस्त्य ने स्वयं को निर्दोष रखने के उद्देश्य से मुझे उत्पन्न किया। स्वयं में स्थित पुत्र के प्रति द्वेषभावों के विकार स्वयं से विलग करके मेरी देह में भर दिए। अपने योगबल के प्रभाव से वे स्वयं तो विकारमुक्त हो गए और मैं निर्दोष होकर भी विकारग्रस्त हो गया। मेरे पास किसी संचित तप का अंशांश भी न था। मुझे पुलस्त्य का अर्द्धांश होने के कारण नामित मुनि माना गया–नामित ब्राह्मण समझा गया। इससे विलग मेरी कोई पहचान न बन सकी। स्वहितकारी विवेक के द्वारा मैंने स्वयं को विकारों से बचाने के प्रयास भी किए, परंतु छल से मुझे राक्षस-कन्याओं के प्रति आसक्त कराया गया जिसका परिणाम तुम और तुम्हारे अनुज हैं। मेरा संबंध स्वत: जब राक्षसों से जुड़ गया तो मेरा स्वाभाविक स्नेह भी उनसे ही जुड़ना था।"

"मैं आपकी पीड़ा समझता हूं पिताश्री!" दशानन ने पिता की पीड़ा दूर करने का प्रयास करते हुए कहा–"आपने समय के अनुसार सभी धर्म और कर्तव्यों

का पालन किया है। मुनि रूप में आप श्रेष्ठ थे। ब्राह्मण रूप में आपने सभी वेद-शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन किया है। पिता रूप में अपनी संतान को शिक्षित किया। आपकी ही कृपा से मैं समस्त वेदों का ज्ञाता हूं-सभी चौंसठ विधाएं मुझे आती हैं-राजनीति में मेरे समान केवल गुरु शुक्राचार्य ही हैं। आप पूर्ण सम्मान के अधिकारी थे, जो यक्षों, देवों, ब्राह्मणों ने आपको नहीं दिया, परंतु अब वह सम्मान आपका यह पुत्र आपको दिलाएगा।"

दशानन ने अपने पिता को संतुष्ट कर दिया। उसने छोटी-सी राक्षस सेना को लेकर लंकापति कुबेर को जा ललकारा। असंख्य यक्ष और राक्षस योद्धाओं से सुरक्षित कुबेर को पहले तो यह दशानन की धृष्टता ही लगी, परंतु जब युद्ध हुआ तो उसने शीघ्र ही जान लिया कि दशानन ने ऐसा पराक्रम अर्जित कर लिया था जिससे वह किसी के भी द्वारा पराजित नहीं होगा।

दशानन के बल और पराक्रम ने वहां त्राहि-त्राहि मचा दी। यक्ष पीड़ित होकर भागने लगे।

कुबेर ने देखा कि यदि ऐसे ही रावण विध्वंस करता रहा तो यक्षों का नाश हो जाएगा। उसने यह भी देखा कि जो उसके अपने राक्षस योद्धा थे, वे भी स्वाभाविक रूप से रावण के पक्ष में ही युद्ध करने लगे थे, अतः अब किसी और अनिष्ट से पूर्व ही लंका को त्याग देने में ही भलाई है। कुबेर प्राण बचाकर अपने पुष्पक विमान की ओर भागा, परंतु उस विमान पर तो रावण आरूढ़ होकर अट्टहास कर रहा था।

"आओ ज्येष्ठ भ्राता! यदि कुछ सामर्थ्य हो तो आकर अपना बल आजमा लो, अन्यथा प्राण बचाकर यहां से चले जाओ। इतनी दया मैं अवश्य करूंगा कि तुम्हारे प्राण-हरण नहीं करूंगा, क्योंकि कैसे भी हो, तुम मेरे भाई हो।" दशानन ने अट्टहास करते हुए कहा।

कुबेर ने समय को अनुकूल न जानकर उस अभिमानी के समक्ष कुछ भी कहना उचित न समझा और मौन रहकर वहां से निकल गया।

स्वर्णनगरी लंका अब पुष्पक विमान सहित दशानन के अधीन थी।

3

दशानन को वेदवती का शाप

"दुष्ट रावण! तूने एक सती कन्या का अपमान किया है। तू मुझे प्राप्त कर सके, यह तो कभी संभव ही नहीं, परंतु मेरा शाप है कि मैं तेरी मृत्यु का कारण बनूंगी।" वेदवती ने अत्यंत क्रोध में भरकर कहा और योगाग्नि का आह्वान किया। तुरंत ही योगाग्नि प्रकट हुई और वेदवती ने स्वयं को उसमें समर्पित कर दिया, जिससे क्षण-भर में उसकी कंचन काया भस्म होकर राख बन गई। दशानन यह दृश्य देखकर सन्न रह गया। उसे उस कन्या के ऐसे तप-प्रभाव का भान नहीं था, जो केवल मंत्र के प्रभाव से इच्छामृत्यु प्राप्त कर सकने में समर्थ थी। वह विचलित हो उठा। निरर्थक ही उसका प्रयास निष्फल हुआ और श्राप भी मिल गया। दशानन ने सोचा, जैसी वह सती कन्या थी, उसका श्राप भी वैसा ही प्रभावी होगा। कुछ उपाय करना होगा जिससे वह पुनः जन्म ही न ले सके।

मिथिला राज्य का वैभव भी कभी अयोध्या के ही समान था, जहां के राजा जनक थे। उन्हें संसार में राजर्षि और विदेह उपाधियों से जाना जाता था। महान राजा निमि के वंशज जनक इसलिए कहे जाते थे, क्योंकि ये योनिज नहीं थे अर्थात् ये माता के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए थे। इस परंपरा में इक्कीस जनक हो चुके हैं। इनके विदेह और जनक होने की कथा बड़ी रोचक है।

प्रतापी राजा निमि ने एक बार प्रजा-कल्याण के लिए एक विशेष कल्याण-यज्ञ संपन्न कराने का निश्चय किया और गुरु वशिष्ठ से इस यज्ञ को संपन्न कराने की विनती की।

"राजन्, इस समय हम किसी और पुण्य यज्ञ में व्यस्त हैं, अत: उसके पूरा होते ही हम आपका यज्ञ संपन्न करा देंगे।" गुरु वशिष्ठ ने कहा–"इसमें अधिक समय प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। वहां कार्य संपन्न होने में कुछ ही दिवस शेष हैं, तब तक तुम यज्ञ की आवश्यक सामग्री आदि की व्यवस्था कर लो।"

राजा निमि ने स्वीकार कर लिया और गुरु वशिष्ठ चले गए। राजा ने अपने श्रेष्ठ ब्राह्मणों से इस विषय में विचार किया।

"राजन्!" राजपुरोहित ने कहा–"नीति कहती है कि शुभ कार्य को शीघ्र संपन्न कर देना चाहिए और अशुभ कार्य को जितना टाला जा सके, टालते रहना चाहिए। शुभ कार्य जब हृदय में आए तो समझना चाहिए कि उसके लिए वही शुभ समय है। गुरु वशिष्ठ हमारे आदरणीय हैं और उन्हें भी यह बात भली-भांति ज्ञात है, अत: मेरे विचार से हमें किसी अन्य विद्वान ब्राह्मण द्वारा यज्ञ संपन्न करा लेना चाहिए। इस समय सभी ग्रह, नक्षत्र, पक्ष आदि शुभ हैं।"

"राजपुरोहितजी, इससे गुरु वशिष्ठ क्रोधित हो गए तो क्या होगा?"

"विद्वान और शीलमना कभी अकारण क्रोध नहीं करते महाराज! शुभ कार्यों के महत्त्व को जानने वाले महर्षि से ऐसी आशा नहीं की जा सकती।"

राजा निमि को अपने विद्वानों से ऐसा परामर्श मिला तो उन्होंने अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यज्ञ के लिए निमंत्रित करके यज्ञ आरंभ कर दिया। सब कुछ विधि-विधान से संपन्न हो रहा था। देवगण भी अपने-अपने स्थान पर विराजे थे कि गुरु वशिष्ठ वहां पधार गए और अपनी अनुपस्थिति में यज्ञ होते देखकर क्रोधित हो उठे।

"अहंकारी निमि, तुमने मेरा अपमान किया है। मेरे पांडित्य की उपेक्षा की है। मुझे याज्ञिक नियुक्त कर अन्य से यज्ञ संपन्न कराने का घोर अपराध किया है। अत: मेरा तुझे श्राप है कि तत्काल तुम्हारी मृत्यु हो जाए।" वशिष्ठ क्रोध से बोले।

यज्ञ-सभा में हाहाकार मच गया। श्राप के प्रभाव से राजा निमि तो उसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हुए और वशिष्ठ विजयी भाव से सबको देखते रहे।

"हे महर्षि, यह आपने उचित नहीं किया! आप जैसे धर्मज्ञ, मर्मज्ञ, नीति-कुशल ब्राह्मण को यह क्रोध शोभा नहीं देता है कि आपने एक सर्वहितकारी कार्य में ऐसा कठिन व्यवधान उत्पन्न कर दिया।" एक विद्वान ने कहा।

"जो राजा वचन देकर उससे पीछे हट जाए, गुरु का निरादर करे, वह इसी

प्रकार दंड का अधिकारी होता है। विद्वजनो! हमारे स्थान पर स्वयं को विचारकर देखिए कि उपेक्षा से उत्पन्न पीड़ा कैसी होती है। ब्राह्मण को अपने सम्मान की रक्षा का अधिकार है।"

वशिष्ठ तो वहां से प्रस्थान कर गए, परंतु यज्ञस्थल पर घोर दुविधा का वातावरण बन गया।

"हे देवताओ!" ब्राह्मणों ने विनती की–"गुरु के क्रोध के कारण राजा की मृत्यु होने से यज्ञ अपूर्ण रह गया है, जो अत्यंत अशुभ है। अत: अब आप ही इस कठिन घड़ी में कोई उपाय करके इस कार्य को संपन्न करें।"

सभी देवताओं ने विचार-विमर्श किया और एकमत होकर राजा की मृत देह को मथकर उससे दूसरी देह बनाई और उसमें प्राण डाल दिए और यज्ञ संपन्न कराया। मथने के कारण 'मिथिल', स्वयं से उत्पन्न होने के कारण 'जनक' और देह में रहकर भी देह का भाव न मानने के कारण ये महापुरुष 'विदेह' कहलाए।

जनक की परंपरा में कुशध्वज नाम के एक जनक हुए, जिनकी विदुषी कन्या वेदवती थी। वेदवती ने जन्म के कुछ समय पश्चात् ही वेदवाणी का शुद्ध उच्चारण आरंभ कर दिया था। इसी कारण उसका नाम वेदवती रख दिया गया। वेदवती सभी वेदों में अत्यंत निष्णात् और तेजस्वी कन्या थी जिसने शीघ्र ही राजभवन छोड़कर आश्रम में रहना स्वीकार किया। वेदवती से वेदों का मर्म जानने के लिए प्रतिदिन विद्वानों का आना-जाना लगा रहता था। वह जितनी विदुषी थी, उससे कहीं अधिक रूपवान थी। साक्षात् रति का प्रतिरूप थी।

वेदवती का अधिकांश समय श्रीहरि की भक्ति में ही व्यतीत होता था। उसने भगवान विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने की कठोर तपस्या के साथ व्रत धारण किया था। यह प्रेरणा उसे पार्वती से मिली थी जिन्होंने कठोर तप से अंतत: महादेव का पति रूप में वरण कर लिया था। उसके भक्तिपूर्ण कठोर तप से प्रसन्न होकर श्रीहरि ने उसे वरदान दिया था कि अगले जन्म में मनुज अवतार लेकर वे वेदवती का पत्नी रूप में पाणिग्रहण करेंगे। वेदवती बड़ी प्रसन्न हुई। इसी कालखंड में लंकापति का आतंक फैल रहा था। सभी देवता, यक्ष, गंधर्व आदि उससे त्रस्त थे। वह उत्कट बलवान जिधर भी सेना लेकर जाता, उधर ही विध्वंस मचा देता था। वह अहंकार भरी गर्वोक्ति के साथ कहता था कि काल, अग्नि और वायु जब कुपित होकर विनाश करते हैं तो अपने पीछे विनाश के चिह्न तो छोड़ जाते हैं, पर दशानन वह भी नहीं छोड़ता। ऐसा प्रलयंकारी, संसार को दुख देने वाला आततायी दशानन एक दिन वेदवती के आश्रम की ओर आ निकला और उसका सौंदर्य देखकर उस पर मुग्ध हो गया।

"हे वनदेवी! साक्षात् रति ने स्त्री रूप धारण करके इस वनभूमि को अपने अपूर्व सौंदर्य से आभायुक्त कर दिया है। तुम जैसी मनोहारी लावण्यमय छवि का परिचय जानकर मुझ देवजित् दशानन को अत्यंत प्रसन्नता होगी।" दशानन ने मुग्ध भाव से कहा।

"बलवान और नीतिवान पुरुष किसी अपरिचित कन्या से ऐसा आचरण नहीं करते हैं। जिनका कोई प्रयोजन न हो, ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।" वेदवती ने वृक्ष की ओट में खड़े होकर कहा–"एकांत में परपुरुष से बात करने का दोष मुझे न लगे, इसलिए हे पथिक, अपने गंतव्य की ओर प्रस्थान करो।"

"देवी! सौंदर्य का बल से प्रगाढ़ संबंध होता है। यह रूप इस प्रकार आश्रम-जीवन में व्यर्थ गंवाने हेतु नहीं होता। मैं तुम पर मोहित हूं, अत: मेरा प्रणय-निवेदन स्वीकार करो और मेरे साथ चलकर लंका की पटरानी का यशस्वी पद प्राप्त करो।"

"अपने कुवचनों पर अंकुश रखो पथिक! हो सकता है कि संसार में तुम्हारा भय व्याप्त हो, परंतु एक सती स्त्री के श्राप से भयभीत होना सीख लो।"

"श्राप! हा...हा...हा...! सुंदरी, लंकापति दशानन किसी श्राप से भयभीत नहीं होता। तुम निश्चय ही अपने रूप और तप के अहंकार में मेरा दुर्लभ निवेदन अस्वीकार कर रही हो। समर्थ पुरुष के लिए सब सुलभ है, अत: यदि यहां तुम्हारा कोई रक्षक हो तो उसे पुकार लो। महाबली रावण तुम्हें बलात् अपनी राजधानी ले जाने का निश्चय कर चुका है।"

"सावधान लंकेश! मेरे रक्षक स्वयं श्रीहरि हैं। यहां का कण-कण, तृण-तृण मेरा रक्षक है। अपना भला चाहते हो तो यहां से चले जाओ।"

रावण ऐसे कहां मानने वाला था! अपने बल, भय और पराक्रम के अहंकार में वह नीचता की कोई भी सीमा पार कर सकता था, अत: उसने झपटकर वेदवती के केश पकड़ लिये और उसे घसीटकर अपने विमान की ओर ले जाने लगा।

"दुष्ट रावण! तूने एक सती कन्या का अपमान किया है। तू मुझे प्राप्त कर सके, यह तो कभी संभव ही नहीं, परंतु मेरा शाप है कि मैं तेरी मृत्यु का कारण बनूंगी।" वेदवती ने अत्यंत क्रोध में भरकर कहा और योगाग्नि का आह्वान किया। तुरंत ही योगाग्नि प्रकट हुई और वेदवती ने स्वयं को उसमें समर्पित कर दिया, जिससे क्षण-भर में उसकी कंचन काया भस्म होकर राख बन गई।

दशानन यह दृश्य देखकर सन्न रह गया। दशानन को उस कन्या के ऐसे तप-प्रभाव का भान नहीं था, जो केवल मंत्र के प्रभाव से इच्छामृत्यु प्राप्त कर सकने में समर्थ थी। वह विचलित हो उठा। निरर्थक ही उसका प्रयास निष्फल

हुआ और श्राप भी मिल गया। दशानन ने सोचा, जैसी वह सती कन्या थी, उसका श्राप भी वैसा ही प्रभावी होगा। कुछ उपाय करना होगा जिससे वह पुनः जन्म ही न ले सके। वह भी मांत्रिक था, अतः एक मायावी कलश बनाकर उसने वेदवती के अवशेषों को उसमें भरा और उसकी आत्मा को बलात् मंत्रशक्ति से उसमें बंद कर दिया। उसने वह कलश वहीं एक उचित स्थान पर भूमि में दबा दिया। वह संतुष्ट हो गया और अपनी सफलता-असफलता पर विचार करते हुए वहां से प्रस्थान कर गया।

मिथिला की अगली पीढ़ी में सीरध्वज नाम के राजर्षि जनक हुए, जो अपने पूर्वजों की भांति ही प्रजा-वत्सल, भक्ति-भाव से परिपूर्ण, इंद्रियजित् और गुणों की खान थे। इनकी मित्रता अयोध्या नरेश दशरथ से थी और कैकेयी स्वयंवर में दोनों साथ गए थे। राजर्षि जनक को भी निःसंतान होने की पीड़ा थी और वे इसे दैव-प्रदत्त अभाव मानकर सदा शांत बने रहते थे।

एक बार धर्मपरायण राजर्षि जनक के राज्य में बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई जिससे कृषक वर्ग के साथ अन्य सभी प्रजाजनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। राजर्षि ने चिंतित होकर विद्वानों, ज्योतिषियों से परामर्श किया। सभी ने ग्रह, नक्षत्र, भूमि, मेघ आदि की गणना करने के पश्चात् विमर्श करके निर्णय दिया।

"भूमि की आकुलता किसी विशेष बाधा के कारण बढ़ती जा रही है। राज्य की किसी एक तपोस्थली पर ऐसी कोई मांत्रिक बाधा है जिससे वर्षा नहीं हो पा रही है।" राजपुरोहित ने बताया।

"राजपुरोहित सत्य कह रहे हैं महाराज!" ज्योतिषी ने कहा—"आपके पूर्वजों के इतिहास को देखें तो ज्ञात होता है कि यह विपत्ति प्रथम बार आई है।"

"श्रेष्ठजनो! बाधा या समस्या जो भी हो, उसका उपाय हमें बताने की कृपा करें।"

"महाराज! यदि आप और महारानी मिलकर किसी विशिष्ट और पवित्र भूमि पर हल चलाएं तो संभवतः वह बाधा दूर हो सकती है। हमारे राज्य में विदुषी वेदवती के आश्रम से अधिक पुण्य तपोस्थली कहां होगी, जहां लंकापति रावण को भी पराजित होना पड़ा!"

पुरोहित एवं ज्योतिषयों के परामर्श पर श्रीहरि की वंदना करते हुए राजर्षि जनक अपनी रानी सहित उस तपोभूमि में पहुंचे और वहां जाकर पुरोहितों द्वारा चिह्नित भूमि पर हल चलाना आरंभ किया। भोर से दोपहर हो गई थी और राजा-रानी ने निश्चित परिमाण का अधिकांश भाग जोत लिया था। अकस्मात् हल का फल भूमि में किसी कठोर वस्तु से टकराया और बैल थम गए।

पुरोहित के संकेत पर उस स्थान को खोदा गया तो वहां एक दिव्य कलश दिखाई दिया जिसे सभी ने कौतूहल से देखा। जब वह कलश भूमि से बाहर निकाला गया, तभी आकाश में मेघ छाने लगे।

"महाराज! निश्चय ही यही वह भूमि की बाधा थी जिसके प्रभाव से ऋतुएं प्रभावित हो रही थीं।" ज्योतिषी ने हर्ष से कहा–"मेघों का आगमन हो गया है। यह प्रकृति की प्रसन्नता का लक्षण है। अब आप इस कलश का ढक्कन हटाइए।"

राजा जनक ने ऐसा ही किया तो भयंकर मेघ-गर्जना हुई और कलश में से एक दिव्य पुंज निकलने के साथ ही शिशु की किलकारी गूंजी।

रानी ने तत्काल उत्सुकता से कलश में दोनों हाथ डालकर उस शिशु को बाहर निकाल लिया, जो एक दिव्य कन्या थी।

"हे परमपिता! तेरी महिमा का कोई पार नहीं। कब किसे किस विधि सुख से ओत-प्रोत कर दे, कौन जान सकता है। आज हमारी वर्षों की तपस्या का कैसा सुंदर फल मिला है। महाराज! देखिए, विधाता ने हमें मातृत्व सुख देने के लिए इस दिव्य कन्या को इस प्रकार हमें सौंपा है।" रानी के हर्ष का पारावार न था। वह कन्या को हृदय से लगाकर दुलारने लगीं, तभी मेघों ने भी जलबिंदुओं का प्रवाह आरंभ कर दिया।

"जब विधाता अनुकूल होता है तो वह सब इच्छाएं भी पूरी हो जाती हैं, जो हृदय में छुपी होती हैं।" राजर्षि जनक ने आनंदविभोर होकर कहा–"यह कन्या हमारे हृदय को शीतल करेगी, जैसे इन मेघों ने आकुल भूमि को शीलतता प्रदान की है।"

मिथिला नगरी में यह अवसर महोत्सव के रूप में मनाया गया।

4

दशरथ के दो वरदान

"प्रिये! आज एक बार फिर तुमने मुझ पर ऐसा उपकार किया, जो अचंभित कर देने वाला है। तुम धन्य हो! तुम्हारी माताश्री महारानी शुभलक्षणा को मेरा शत-शत नमन, जिनके गर्भ से तुम्हारे जैसी क्षत्राणी ने जन्म लिया। आज पुनः मेरा हृदय तुम्हें एक और वर देने को उत्सुक है, जो चाहो मांग लो।"
"आर्यपुत्र, आप वरदानों का भंडार हैं।" रानी विहंसकर बोली–"द्रवित हुए कि वरदान दे देते हैं। आपका एक पूर्व का और दूसरा यह–दोनों वरदान मेरे पास सुरक्षित हैं और समय आने पर मैं इन्हें मांग लूंगी। आपकी इस विजय पर मैं गौरवान्वित हूं।"

भीषण संग्राम चल रहा था। दंडकारण्य की पावन भूमि असुरों के शवों से अटी पड़ी थी। रघुवंशी सेना संख्या में भले ही कम थी, परंतु उनका युद्ध-कौशल और पराक्रम संभाले न संभलता था। राजा दशरथ साक्षात् काल स्वरूप होकर रणभूमि में असुरों का संहार कर रहे थे।

संबरासुर की कोई भी मायावी शक्ति महाराजा दशरथ के समक्ष क्षण-भर से अधिक नहीं ठहर रही थी। उसने अपने सभी मायावी और दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर लिया था, परंतु दशरथ को विचलित न कर सका था। राजा दशरथ के अतुलनीय पराक्रम ने तेजहीन देवताओं में भी उत्साह भर दिया था और अब इंद्रादि देवता भी असुरों का संहार कर रहे थे।

संबरासुर को आज ज्ञात हो गया था कि पृथ्वी वीरों से रिक्त नहीं है। उसने अपने युद्धजीवन में कभी ऐसा रणकुशल योद्धा न देखा था जिसका एक भी बाण असफल हुआ हो! राजा दशरथ का प्रत्येक बाण यमपाश बना था और प्रत्येक बाण ने अपने लक्ष्य को बेंधकर किसी-न-किसी असुर के प्राण हर लिये थे। संबरासुर का न पराक्रम और न कोई कपट-युक्ति किसी काम आ रही थी। निरंतर कम होती असुरसेना उसे विचलित कर रही थी। देवासुर संग्राम में देवता भले ही नियम से लड़ते थे, पर असुर नियमों को नहीं मानते थे। पराजय के चिह्न देखकर संबरासुर और क्रोध में भर गया।

अचानक उसे आशा की किरण चमकी, जब उसने देखा कि राजा के रथ के पहिये को रोकने वाला लौहशूल टूटकर गिर गया है और अब किसी भी क्षण तेज गति से विचरने वाला रथ डगमगा जाएगा। शत्रु का संतुलन बिगड़ जाएगा और इसी अवसर पर वह उस पर भीषण प्राणघातक वार कर देगा। संबरासुर इस विचार से अभी प्रसन्न ही हो रहा था कि उसने एक महान आश्चर्य देखा! राजा के रथ में बैठी परम सुंदर स्त्री ने विद्युत गति से अपनी उंगली डगमगाते पहिये के लौहशूल छिद्र में डाल दी और रथ संभल गया।

संबरासुर को अपनी आंखों पर विश्वास न हो रहा था कि राजा को भान तक न हुआ था कि उसका रथ अभी-अभी कितनी विकट परिस्थिति में फंस गया था। रथ उसी वेग से चल रहा था और राजा उसी मनोयोग से असुरों का संहार कर रहे थे।

"यह कैसा महान आश्चर्य है गुरुवर! एक स्त्री में इतना अपार धैर्य और साहस!" संबरासुर ने अपने गुरु ऋषि संबर से मानसिक संपर्क स्थापित करके प्रश्न किया—"क्या उसे पीड़ा नहीं हो रही? मुख पर तो पीड़ा का चिह्न तक नहीं। क्या हाड-मांस की उंगली सुरक्षित होगी! यदि हां, तो यह कैसे संभव है?"

"तुम इसे साधारण स्त्री समझने का भ्रम मत करो असुरराज! यह वीर क्षत्राणी है। एक बार परिहास में इसने एक सोते हुए तपस्वी के खुले मुख में उंगली डाल दी थी तो ऋषि ने इसे श्राप दिया था कि उसे एक महान कलंक लगेगा, जो सृष्टिपर्यंत उसके नाम से जुड़ा रहेगा, फिर अनुनय-विनय करने पर दयालु ऋषि ने यह वरदान भी दिया कि कभी लौह के संपर्क में आने पर उसकी उंगली लौह हो जाएगी। आज वही वरदान काम आ रहा है, अतः आश्चर्य मत करो।" ऋषि संबर का उत्तर मिला।

"गुरुदेव! यह राजा तो बड़ा उत्कट योद्धा है। इसने तो मेरी सभी शक्तियों को काट दिया है। क्या कोई ऐसी मांत्रिक युक्ति है जिससे इसे परास्त किया जा सके?"

"यह विचार ही मरीचिका है असुरराज! जो गुरु वशिष्ठ का शिष्य, इक्ष्वाकु

वंश का कीर्तिपुंज और धनुर्वेद का ज्ञाता है, उस राजा दशरथ को स्वयं इंद्र भी युद्ध में परास्त नहीं कर सकता। यदि तुम्हारा बलाभिमान संतुष्ट हो गया हो तो अब अपने प्राण बचाने का उपाय करो और शेष सेना की रक्षा करो, अन्यथा यह तुम्हारा अंतिम युद्ध सिद्ध होगा। यह राजा शब्दबेधी विद्या जानता है और उसकी काट तुम या मैं नहीं जानते, अतः अपने प्राणों की रक्षा करो। जीवित रहोगे तो पुनः बल प्राप्त करके देवताओं पर विजय प्राप्त कर सकोगे।"

संबरासुर को परामर्श पसंद तो नहीं आया, परंतु कोई और उपाय भी न था। उसने रणभूमि में दृष्टि घुमाई तो अब उसकी सेना में वह उत्साह नहीं दिखाई दिया, जो प्रायः देखा जाता था। राजा के पराक्रम ने सबको पस्त कर दिया था। उस पर देवताओं का प्रचंड प्रकोप भी जारी था। पराजय तो निश्चित हो गई थी, इसलिए सैन्यबल का विनाश कराने से क्या लाभ! संबरासुर ने मन-ही-मन राजा दशरथ के पराक्रम की प्रशंसा की और माया का विस्तार करके अपनी शेष सेना सहित युद्धभूमि से अदृश्य होकर भाग गया।

देवताओं ने विजयनाद करते हुए राजा दशरथ के ऊपर पुष्पवर्षा की। राजा ने विजयी भाव से अपनी प्रिया की ओर देखा तो चौंक पड़े। रानी कैकेयी की उंगली बुरी तरह कुचल गई थी और रक्तरंजित थी। क्षण-भर में राजा सब समझ गए और उनकी आंखें कृतज्ञता से भर उठीं।

"प्रिये! आज एक बार फिर तुमने मुझ पर ऐसा उपकार किया, जो अचंभित कर देने वाला है। तुम धन्य हो! तुम्हारी माताश्री महारानी शुभलक्षणा को मेरा शत-शत नमन, जिनके गर्भ से तुम्हारे जैसी क्षत्राणी ने जन्म लिया। आज पुनः मेरा हृदय तुम्हें एक और वर देने को उत्सुक है, जो चाहो मांग लो।"

"आर्यपुत्र, आप वरदानों का भंडार हैं।" रानी हंसकर बोलीं–"द्रवित हुए कि वरदान दे देते हैं। आपका एक पूर्व का और दूसरा यह–दोनों वरदान मेरे पास सुरक्षित हैं और समय आने पर मैं इन्हें मांग लूंगी। आपकी इस विजय पर मैं गौरवान्वित हूं।"

"यह विजय भी तुम्हारी ही विजय है प्राणप्रिये! इसका श्रेय तुम्हें ही जाता है।"

"निश्चय ही!" देवगुरु बृहस्पति ने निकट आते हुए कहा–"अद्‌भुत धैर्य की स्वामिनी महारानी कैकेयी को देवसमाज का नमन है। देवताओं का वर्चस्व सुरक्षित करने में आप दोनों का महान योगदान है, जो सदैव स्मरण किया जाएगा।"

राजा दशरथ ने सभी देवों को सम्मान सहित शीश झुकाया।

"नृपश्रेष्ठ!" देवराज इंद्र ने लज्जित स्वर में कहा–"मुझे अपने वचनों पर खेद है। यह मेरी भूल थी कि मैं आपकी शक्ति को आपकी कमजोरी समझ बैठा। आदरणीय वीर रानी मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें।"

सभी देवताओं ने विजयोत्सव मनाते हुए राजा-रानी को ढेरों आशीर्वाद दिए और राजा दशरथ को कई दिव्यास्त्रों का उपहार दिया। दंडकारण्य के वासी इस उत्सव में आनंद के अतिरेक में डूब गए थे।

चहुं ओर शांति स्थापित हो गई थी। अब किसी प्रकार का भय न रहा था। दंडकारण्य पुन: अपने वैभव को प्राप्त करने वाला था। सभी ने रघुकुल-शिरोमणि राजा दशरथ की जय-जयकार की। ऋषि-मुनियों ने ढेरों आशीर्वाद दिए और उनकी अपार कुलकीर्ति का बखान किया।

देवासुर संग्राम विजय के अपार यश के लिए राजा दशरथ ने इंद्रादि देवों के विनय-अनुरोध पर कुछ दिनों तक वैजयंत नगर और पवित्र वनभूमि पर विहार किया और फिर रानी कैकेयी सहित अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

अयोध्या में उनके आगमन का समाचार पहुंच गया था, अत: पुरवासी बड़े आनंद से उनके स्वागत की तैयारियां कर रहे थे। नई रानी के भव्य स्वागत में घर-घर में मंगलाचरण हो रहे थे। अयोध्यापुरी को भव्य रूप से सजाया गया था। राजमहल की शोभा इंद्र की अमरावती के समान थी। महारानी कौशल्या और रानी सुमित्रा के हर्ष का पारावार न था। दोनों के पैर भूमि पर न पड़ रहे थे। वे दास-दासियों को आदेश-निर्देश देते थक न रही थीं। राजमहल मृदुल-मधुर स्वर लहरियों से गुंजायमान था।

जब राजा दशरथ अयोध्या की सीमा में पहुंचे तो सर्वप्रथम जन्मभूमि को नमन करके उसके रज-कण मस्तक पर धारण किए। वहां उनके स्वागत के लिए मंत्री सुमंत सहित सभी सभासद उपस्थित थे। सभी ने पुष्पमालाओं के द्वारा अपने यशस्वी महाराज का अभिनंदन किया और रानी को आदर सहित प्रणाम किया।

इसके बाद सभी नगर की ओर चल पड़े। राजपथ के दोनों ओर भांति-भांति के वस्त्रों में सजे नगरवासी अपने राजा की जय-जयकार कर रहे थे और नई रानी के अनुपम सौंदर्य को देखकर हर्षित हो रहे थे। कोई उसकी तुलना श्री लक्ष्मी से करता तो कोई रति से! किसी को वे साक्षात् शिव-पार्वती युगल की भांति लग रहे थे।

राजभवन के प्रवेश द्वार पर महारानी कौशल्या व सुमित्रा अनेक स्त्रियों के साथ मंगलाचरण कर रही थीं। नववधु का विधि-विधान से स्वागत किया गया और दोनों रानियां कैकेयी को आदरसहित उत्साह में भरकर रनिवास में ले गईं। नववधु के साथ कई दासियां भी थीं जिनमें एक वृद्धा दासी मंथरा भी थी, जो अपनी पुत्री समान राजकुमारी के इस भव्य स्वागत पर बहुत प्रसन्न थी।

मंथरा रानी कैकेयी की धायमाता थी। कैकेयी की माता शुभलक्षणा का देहांत कैकेयी के बचपन में ही हो गया था, तब मंथरा ने ही उसे पाला-पोसा।

कैकेयी मंथरा को अपनी माता के समान सम्मान देती थी, अतः राजभवन में भी उसे सम्मान मिला।

समयचक्र अपनी गति से घूमता रहा। अयोध्या में सब प्रकार से आनंदवर्षा हो रही थी। राजा दशरथ की कीर्ति तीनों लोकों में फैल गई थी। भूमि साक्षात् अन्नपूर्णा हो गई थी। बिना बीज बोए अन्न का भंडार होता था, समय पर वर्षा होती थी। दान, यज्ञ, तप, धर्म आदि का निष्ठापूर्वक निर्वहन करते हुए राजा दशरथ पृथ्वी पर इंद्र के समान पूजित थे। सर्वानंदों के साथ अयोध्या में चहुं ओर खुशहाली थी, बस कभी-कभी एक अभाव सभी को विचलित कर देता था कि अभी तक तीनों रानियों में से किसी ने भी पुत्र को जन्म नहीं दिया था। इसे दैव की इच्छा जानकर निराशा तो नहीं होती थी अर्थात् आशा थी कि अवश्य ही अयोध्या का राजभवन राजकुमारों के क्रीड़ांगण में बदलेगा।

एक दिन राजा दशरथ अपने राजदरबार में बैठे थे। गुरु वशिष्ठ व अन्य सभी सभासद भी विराजमान थे कि सुदूर सीमावर्ती नगर से एक संदेशवाहक आया जिसने सभा को आदरसहित प्रणाम किया।

"महाराज! मैं उत्तरी सीमा पर बसे एक छोटे-से नगर में बसने वाली आपकी प्रजा का सेवक हूं। सब प्रकार से आनंद में जीवन व्यतीत करने वाली और अपने-अपने सभी धर्मों का पालन करने वाली आपकी प्रजा पर इस समय एक संकट आ पड़ा है। राज्य की सीमा से सटे वनक्षेत्र में एक नरभक्षी सिंह आ घुसा है जिसने वहां भय व्याप्त कर दिया है।" संदेशवाहक ने बताया—"सुरक्षा बलों ने सभी संभव प्रयास किए। कई वीर सुरक्षाकर्मी अपने कर्तव्य की बलिवेदी पर अपना जीवन भी अर्पण कर चुके हैं, परंतु वह सिंह समाप्त नहीं हुआ, अतः प्रजा ने अपने महाराज से पुकार की है कि किसी प्रकार उन्हें इस भयानक विपत्ति से मुक्ति दिलाएं।"

"हम उस क्षेत्र की प्रजा के साहस व धैर्य की सराहना करते हैं और वीरगति पाने वाले वीर सैनिकों को नमन करते हैं जिन्होंने अपने कर्तव्य पर जीवन अर्पण कर दिया। हमें अपनी प्रजा की पीड़ा सुनकर अत्यधिक कष्ट पहुंचा है।" राजा दशरथ ने कहा—"हम शीघ्र ही उस दुष्ट सिंह का वध करके अपनी प्राणप्रिय प्रजा का दुख व भय दूर करेंगे। हम स्वयं उस वनकेसरी को राज्य में हिंसा व भय फैलाने के लिए प्राणदंड देंगे।"

"महाराज! हमारे ऐसे अनेक वीर योद्धा हैं, जो सिंह का शिकार करने में प्रवीण हैं, फिर आप क्यों कष्ट उठाते हैं। आप आदेश-भर कीजिए।" सेनापति ने कहा।

"वीरवर सेनापति! एक राजा को स्वयं आगे बढ़कर प्रजा के विश्वास को दृढ़ करना चाहिए और हमने भी बहुत समय से सिंह का आखेट नहीं किया। हम केवल सिंहासन पर बैठे रहकर कीर्ति प्राप्त नहीं करना चाहते। हमारे आखेट की सभी तैयारियां करो।" राजा दशरथ ने आदेश दिया।

गुरु वशिष्ठ ने भी राजा के इस निर्णय का समर्थन किया कि एक राजा को ऐसी विकट परिस्थिति में स्वयं आगे बढ़कर अपना यश कमाना ही उचित है। शीघ्र ही नगर-भर में विकट नरभक्षी सिंह के लिए राजा की आखेट-योजना की चर्चा होने लगी। सभी को अपने प्रिय राजा के बल व पराक्रम पर विश्वास था और पूर्ण आशा थी कि महाराज सिंह का वध अवश्य करेंगे।

5

दशानन और बालि का मल्लयुद्ध

दोनों ही योद्धा एक-दूसरे से कम नहीं थे। उनके बल प्रयोग से वृक्ष, शिलाएं ध्वस्त हो रही थीं, परंतु देर तक यह दांव-पेंच भरा मल्लयुद्ध चलता रहा। अब दशानन स्वयं को शिथिल होता अनुभव कर रहा था। बालि का बल और उत्साह बढ़ता ही जा रहा था। अंततः दशानन पस्त होकर भूमि पर गिर गया। बालि ने उसे गेंद की भांति उठाया और अपनी बगल में दबाकर ऐसे चल पड़ा, जैसे कुछ हुआ ही न था।

दशानन बड़ा पीड़ित था। उसके सभी प्रयास निष्फल सिद्ध हो रहे थे और वह बगल से निकल पाने में असमर्थ था। उसके प्राण जैसे निकले जा रहे थे। उसे लगा कि ब्रह्माजी से वरदान लेने में उससे त्रुटि हो गई थी और उसने भी वानरों का नाम न लेकर भूल कर दी थी। ऐसा उत्कट बलवान वानर होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी, जो उसे बगल में दबाए घूम रहा था।

दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र में किष्किंधा पर्वत था, उसी शृंखला में ऋष्यमूक पर्वत भी था। इन दोनों पर्वतों के बीच एक गहरी खाई थी, जो उन्हें अलग करती थी, परंतु दोनों को जोड़ने वाला एक सेतु भी था और इससे वह प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुंदर लगता था। इन दोनों पर्वत शिखरों पर प्रकृति की असीम अनुकंपा थी जिससे वहां मनोहारी हरियाली रहती थी।

अनेक प्रकार के फलवाले वृक्ष, झरने एवं जल के स्रोत थे। ऐसे खाद्य से भरपूर और सुरक्षित पर्वत शिखर पर वानर समुदाय रहता था। असंख्य बलशाली वानरों और रीछों से वे पर्वत हर क्षण कोलाहल से भरे रहते थे।

वानरों का राजा महाबली बालि था, जो अत्यंत बलवान था। उसने घोर तपस्या करके वरदान प्राप्त किया था कि वह जब शत्रु के सम्मुख जाएगा तो शत्रु का आधा बल स्वतः उसमें आ मिलेगा।

बालि का भाई सुग्रीव था। उनका बड़ा और भरा-पूरा परिवार था। सभी प्रकार के सुख-साधन थे। बालि बड़ी कुशलता से राज्य का संचालन करता था। सुग्रीव उसे बड़ा प्रिय था, जो उसके सभी आदेशों का पालन करता था। वानर जाति स्वभाव से ही चंचल होती है और इधर-से-उधर गुलाटियां मारने में ही उन्हें आनंद आता है। समीप के ऋष्यमूक पर्वत पर कुछ आश्रम थे जिनमें ऋषि-मुनि भगवद् भजन और तपस्या में जीवन व्यतीत करते थे। कई बार स्वभाव से चपल वानर उनके भजन-ध्यान में विघ्न डालते थे। जब यह व्यवधान अधिक होने लगता तो ऋषि-मुनियों ने राजा बालि से शिकायत कर दी। बालि ने यद्यपि सभी वानरों को निर्देश दिया कि ऐसी धृष्टता न करें, परंतु यदा-कदा ऐसे कांड होते रहते थे और ऋषि-मुनि क्रोध से भर जाते थे।

इसी प्रकार जीवन व्यतीत हो रहा था कि एक दिन दुंदुभि नाम का एक राक्षस उधर आ निकला और अपनी भूख मिटाने के लिए कुछ वानरों को अपना आहार बना लिया। राजा बालि को जब यह पता चला तो वह क्रोध से भर उठा और उसने दुंदुभि को खोज निकाला। दोनों में भीषण युद्ध होने लगा।

"आज तू मेरे हाथों से जीवित नहीं बचेगा दुष्ट राक्षस!" बालि दांत किटकिटाकर उसे अपनी भुजाओं में भरकर बोला—"तूने मेरे राज्य में आकर हिंसा करने का साहस भी कैसे किया! क्या तू नहीं जानता कि यहां बालि का शासन है जिसके बल के समक्ष तेरे जैसे राक्षस चींटी-मात्र हैं।"

"वानरराज! हमें तो लंकापति रावण ने आदेश दिया है कि हम सभी दिशाओं में जाकर अपना भय स्थापित करें। तुम कितने भी बलवान हो, परंतु हमारे सम्राट के समक्ष कुछ भी नहीं हो। मुझे मारने से क्या होगा? वानरों का स्वादिष्ट भोजन करने हेतु यहां मेरे जैसे कितने ही राक्षस आएंगे।" दुंदुभि बोला।

"बालि किसी को भी जीवित न छोड़ेगा और उस अहंकारी रावण से भी मैं एक दिन युद्ध करके उसकी शक्ति का मापन अवश्य करूंगा।"

ऐसा कहकर क्रोध में भरे बालि ने दुंदुभि को अपनी शक्तिशाली भुजाओं में कसकर पीस दिया और उसकी हड्डियां कड़कड़ाकर टूट गईं और प्राण निकल

गए। बालि ने उसे गेंद की तरह घुमाकर फेंक दिया। दुंदुभि की विशालकाय मृत देह ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित एक आश्रम पर जा गिरी जिससे उसकी सभी कुटियां ध्वस्त हो गईं और कुछ मुनिगण घायल भी हो गए। इससे मुनियों को भारी क्रोध आया। पर्वत के अंचल में बालि गरज रहा था, अतः मुनि जान गए कि यह कृत्य उसी ने किया है।

"वानरराज बालि! तुमने अपने बल के अहंकार में मुनिगणों को पीड़ित किया है। पूर्व में भी हम तुम्हें सचेत कर चुके थे, परंतु शक्ति का मद तुम्हें सोचने नहीं देता। आज का तुम्हारा दुष्कृत्य क्षमा योग्य नहीं है। अतः हमारा श्राप है कि अब तुम ऋष्यमूक पर्वत पर पग भी रखोगे तो तुम्हारी तत्काल मृत्यु हो जाएगी।"

बालि को बड़ा दुख हुआ। उससे क्रोध और भूल में अपराध हो गया था। उसे दुंदुभि का शव दिशा-ज्ञान के अनुसार कहीं दूर फेंकना चाहिए था, परंतु होनी को यही स्वीकार था, अतः वह विषाद से भरा हुआ अपनी राजधानी लौट आया। उसे अपने भाई और अन्य सेवकों से यह वृत्तांत कहा और सबको चेतावनी भी दे दी कि अब कोई मुनिगणों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देगा।

समय व्यतीत होता गया। दशानन का अत्याचार और भय सभी दिशाओं में बढ़ रहा था। चारों ओर राक्षसों का आतंक फैल रहा था। यज्ञ ध्वस्त हो रहे थे और मुनिगण प्राण बचाते-बचाते इधर-से-उधर भागे फिर रहे थे। बालि को ये सभी समाचार मिलते थे, परंतु वह अकारण तब तक दशानन से नहीं उलझना चाहता था, जब तक वह स्वयं उसके किसी कार्य को बाधित न करे। उसे राज्य विस्तार की आकांक्षा न थी, अतः आक्रमण का प्रश्न ही नहीं था। यद्यपि दशानन के बल को तौलने की उसकी बड़ी इच्छा थी। सौभाग्य से शीघ्र ही उसकी यह कामना पूरी भी हो गई।

एक दिन मलयांचल में बालि भ्रमण कर रहा था। वहां एक सुंदर सरोवर और अति सुंदर उद्यान था जिसे देखकर वह मुग्ध हो गया। वह सरोवर के शीतल और स्वच्छ जल में स्नान करने का लोभ संवरण न कर सका। यही वह समय था, जब लंकापति दशानन अपने पुष्पक विमान से वहां से गुजर रहा था। उसे प्यास लगी थी, अतः सरोवर देखकर उसने विमान को वहीं उतार लिया, परंतु सरोवर में एक वानर को स्नान करते देखकर उसकी भृकुटि तन गई।

"अरे, ओ दुष्ट वानर! तूने इस स्वच्छ सरोवर का जल दूषित कर दिया। क्या तुझे ज्ञात नहीं कि ऐसे सरोवर पथिकों हेतु होते हैं। तेरी इस धृष्टता का दंड तुझे मैं अवश्य दूंगा।" दशानन क्रोध में भरकर बोला।

"इतना क्रोध न करो लंकेश कि भय के मारे जल में ही मैं मूत्र विसर्जन कर दूं।" बालि ने उपहास से कहा–"देखो, मैं थर-थर कांप रहा हूं। अब मृत्यु मेरे समक्ष खड़ी है। आह, क्या कोई मुझे इस स्वघोषित बलशाली से बचाएगा?"

दशानन क्रोध और अपमान की अग्नि से जल उठा। उस वानर के स्वर में भय का अभिनय-मात्र था और वह लंकापति का उपहास कर रहा था।

"वानर! तूने संभवत: मेरी कीर्ति नहीं सुनी। मेरे बल और पराक्रम के विषय में उन यक्ष, किन्नर और देवताओं से जाकर पूछ, जो मेरे भुजबल से भयभीत होकर कंदराओं में जा छुपे हैं। कितने ही बंदीगृह में पड़े मेरी दया के आकांक्षी हैं।"

"मैं उन्हें कहां कंदराओं में खोजता फिरूंगा लंकेश! मैं तो स्वयं ही बल की तुला हूं। तुम्हारे पराक्रम और बल को तोलने के लिए मेरा अपना बल ही बहुत है। तनिक प्रतीक्षा करो, मेरा स्नान पूर्ण हुआ जाता है।" बालि ने कहा।

रावण ने दांत किटकिटाकर अपनी विशाल भुजाएं उसकी ओर बढ़ाईं तो बालि विद्युत गति से कूदकर उसकी पकड़ से दूर आक्रमण की मुद्रा में खड़ा हो गया। उसी क्षण रावण को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके बल में क्षीणता आ रही थी और प्रतिद्वंद्वी का बल बढ़ रहा था, परंतु इसका विचार करने का समय न था। प्रतिद्वंद्वी आक्रामक मुद्रा में था।

"मूर्ख वानर! तू मंदबुद्धि जाति का है, अत: अपना भला-बुरा विचार नहीं सकता। अरे, मैं दशानन रावण हूं–लंकापति रावण, जिसने खेल-खेल में ही शिव सहित कैलाश को अपनी भुजाओं में भरकर भूमि से ऊपर उठा दिया था। मेरे इस अद्‌भुत कृत्य से मेरे इष्ट भगवान रुद्र ने मुझे प्रशंसित किया है।"

"यह आत्मश्लाघा का समय नहीं है अहंकारी रावण! इससे तुम मुझे भय देने का प्रयास भी न करो। अपने बल का प्रदर्शन करो, जो मेरी पुरानी इच्छा है।"

रावण उसकी ओर झपटा। जैसे दो विशालकाय पर्वत आपस में टकरा गए हों। भीषण गर्जना से वातावरण कांप उठा। पशु-पक्षी भय से इधर-उधर छुप गए। इस युद्ध को देखने के लिए देवगण आकाश में आ गए। इस मल्लयुद्ध का निर्णय भविष्य के बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने वाला था।

यह मल्लयुद्ध भीषणतम प्रतियोगिता थी। दोनों ही योद्धा एक-दूसरे से कम नहीं थे। उनके बल प्रयोग से वृक्ष, शिलाएं ध्वस्त हो रही थीं, परंतु देर तक यह दांव-पेंच भरा मल्लयुद्ध चलता रहा। अब दशानन स्वयं को शिथिल होता अनुभव कर रहा था। बालि का बल और उत्साह बढ़ता ही जा रहा था। अंतत: दशानन पस्त होकर भूमि पर गिर गया। बालि ने उसे गेंद की भांति उठाया और अपनी बगल में दबाकर ऐसे चल पड़ा, जैसे कुछ हुआ ही न था।

दशानन बड़ा पीड़ित था। उसके सभी प्रयास निष्फल सिद्ध हो रहे थे और वह बगल से निकल पाने में असमर्थ था। उसके प्राण जैसे निकले जा रहे थे। उसे लगा कि ब्रह्माजी से वरदान लेने में उससे त्रुटि हो गई थी और उसने भी वानरों का नाम न लेकर भूल कर दी थी। ऐसा उत्कट बलवान वानर होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी, जो उसे बगल में दबाए घूम रहा था।

देवगणों ने बालि के बल का गुणगान किया और पुष्पवर्षा करके उसे प्रशंसित किया।

बालि प्रसन्नता से उछल-कूद रहा था।

"देवगणो! आज तुम सबका भय समाप्त किए देता हूं।" बालि ने गरजकर कहा–"इस अहंकारी ने बल के अभिमान में सबको बड़ा पीड़ित किया है। इसके अनुचरों ने सभी दिशाओं को भय से भर दिया है। आज इसका अहंकार और प्राण दोनों इससे दूर किए देता हूं। सर्वत्र सुख-शांति स्थापित करने का मेरा उद्देश्य सफल हो।"

"महाबली वानरराज बालि!" वायुदेव ने हर्ष भरे स्वर में कहा–"अहंकार का पतन होना आवश्यक होता है। आज आपने रावण का घमंड खंड-खंड कर दिया। यदि इसमें लज्जा का अंश भी होगा तो यह अब अपने पापाचरण पर अंकुश लगाएगा। आप इसकी हत्या करके ब्रह्महत्या का अपराध न करें।"

बालि को यह बात उचित ही लगी। ब्रह्महत्या का कलंक बड़ा होता है, अत: उसने बड़े भीषण वेग से अपनी बांह उठाकर दशानन को भूमि पर पटक दिया। दशानन अचेत हो गया। देवगण उसकी दशा पर उपहास करने लगे। बालि ने सरोवर से जल लाकर उसके मुख पर छिड़का, तब उसकी मूर्च्छा टूटी। वह उठ बैठा और लज्जित होकर सिर झुकाए अपने विमान की ओर बढ़ा।

"अब तो अपने पराक्रम से संतुष्ट हो गए हो पराक्रमी!" बालि ने कहा–"जब इष्ट की कृपा होती है तो कैलाश भी पुष्प के समान भारहीन हो जाता है और तुम्हारे जैसे अभिमानी इसे अपने बल का प्रताप समझते हैं। जब तक ऊंट पहाड़ के समीप नहीं आता, तब तक उसे स्वयं से ऊंचा कोई नहीं लगता। आज ब्राह्मण होने के कारण तुम्हारे प्राण बच गए, यद्यपि तुम कर्म से ब्राह्मण नहीं हो। अत: अब तुम अपने ब्राह्मणत्व को सार्थक करो और अपने बल का दुरुपयोग करना छोड़ दो।"

लज्जा और अपमान से दशानन की वाणी मौन हो गई थी। देवताओं की उपहास भरी हंसी जैसे उसे जला रही थी। आज उसे स्वयं पर क्रोध आ रहा था कि उसने वरदान लेने में मूर्खता कर दी थी और यह अभिमान के कारण हुआ था। उसे क्या पता था कि उसे वानर से भी लड़ना होगा। उस महाबली वानर का

परिचय उसे प्राप्त हो गया था कि वह किष्किंधा का वानरराज बालि था। अब उसे भान हुआ कि जब वह बालि के सामने आया था तो उसे मिले वरदान के कारण वास्तव में ही उसका बल क्षीण हो रहा था। उसे तभी उसका परिचय समझ जाना चाहिए था, तब कूटनीति के द्वारा उससे मित्रता करनी चाहिए थी, परंतु अब क्या हो सकता था! जो अपमान होना था, हो गया था।

दशानन को पराजय का दुख नहीं था, दुख था तो केवल इसका कि घटना के साक्षी देवगण बन गए थे और अब तीनों लोकों में यह घटना चर्चा का विषय बन जाने वाली थी। दशानन अपमान की पीड़ा लिये वहां से चला गया।

बालि ने देवगणों का धन्यवाद किया, जो समय रहते उसे ब्रह्महत्या का दोषी बनने से बचा लिया, अन्यथा क्रोध में वह इस महापाप को कर ही डालता। तीनों लोकों में सर्वत्र यह बात चर्चा का विषय बन गई।

6

दशरथ का करुण विलाप

"आह! मैं कितना पातकी हूं, जो ऐसे मातृ-पितृ भक्त बालक की हत्या से कलंकित हुआ। हे यम! तुम मेरी बात सुनो। इस अभागे के प्राण छोड़कर इसके बदले मेरे प्राण हर लो। मुझे मेरे अक्षम्य अपराध का इससे कम दंड नहीं चाहिए। हे अधर्मियों का नाश करने वाली आदिशक्ति! मैंने अधर्म किया है, अतः तत्काल मुझे समाप्त कर दें। हे न्याय के देवता! तुम इसी समय मुझे भस्म कर दो। मेरा समस्त यश और पुण्य क्षीण हो गया है, अतः अब मेरा जीवन व्यर्थ है।" दशरथ करुण विलाप करने लगा।

राजा दशरथ उत्तरी वनक्षेत्र में अपने विशेष आखेट दल के साथ आ गए थे। इससे पूर्व भी वे अनेक बार आखेट पर गए थे और सफलतापूर्वक आखेट किए थे, अतः यहां भी सफलता में संदेह न था। बस उस नरभक्षी सिंह का दिखाई दे जाना आवश्यक था। आखेट दल के विशेषज्ञों ने उसकी खोज प्रारंभ कर दी थी और विभिन्न दिशाओं में, कंदरीओं आदि में देख रहे थे। स्वयं राजा दशरथ भी अपने अश्व पर सवार होकर शस्त्र धारण करके उस निर्भीक पशुशत्रु की खोज में थे जिसने अपने अतुल पशुबल से लोगों को पीड़ित कर रखा था।

सरयूतट की रेत पर उन्हें अनेक पशुओं के पदचिह्न दिखाई दिए थे, परंतु यह निश्चय न हो सका था कि उनमें उस नरभक्षी के भी पदचिह्न हैं।

इतना अवश्य था कि तट के उस स्थान पर जीव-जंतु पानी पीने आते थे, क्योंकि वह उथला स्थान होने के कारण पानी का वेग कम और स्थिरप्राय था, इसलिए शिविर स्थापन भी उसी स्थान पर सुरक्षित रूप से लगाया गया था। दिन-भर की खोज के पश्चात् सभी लौट शिविर लौट आए थे, परंतु वह सिंह या उसके चिह्न भी न मिले थे।

"अवश्य वह निशाचर सिंह रात्रि को अपने अभियान पर निकलता होगा।" राजा दशरथ ने शंका प्रकट की—"प्राय: सिंह दिन के समय सुरक्षित स्थान पर सोते हैं और रात्रि के तीसरे प्रहर में शिकार की खोज में निकलते हैं, अत: हमें अत्यंत सावधानी से रहना होगा। वह घात लगाकर आक्रमण कर सकता है। सभी को पूरी तरह सचेत और सजग रहना होगा।"

सभी ने उस आदेश-निर्देश का पालन किया। रात्रि भी हो गई और उसका अंतिम प्रहर भी व्यतीत हो गया, परंतु सिंह-गर्जना सुनाई न दी। राजा दशरथ सारी रात अपने कान और चित्त सिंह की दहाड़ सुनने को लगाए रहे, परंतु इच्छित स्वर न सुनाई दिया। वे यह भी जानते थे कि नरभक्षी सिंह, साधारण सिंह की भांति प्रदर्शन न करके घात लगाकर शिकार करते हैं और अपनी उपस्थिति को छुपाने में कुशल होते हैं।

रात्रि का अंतिम प्रहर भी व्यतीत हो रहा था और वातावरण में सूर्य की लालिमा छाने लगी थी और चिड़ियों का कलरव होने लगा था। अब नित्यकर्मों से निवृत्त होने का समय था। अभी राजा विचार कर ही रहे थे कि सहसा भयाक्रांत पक्षियों का कोलाहल हुआ और इसी के साथ राजा के कानों में एक ऐसी ध्वनि आई, जैसे किसी पशु ने जलपान किया हो। शब्दबेधी लक्ष्य में निपुण सम्राट ने तत्काल ही बाण का संधान किया और उस दिशा में छोड़ दिया, जिधर से जलनाद का स्वर उभरा था। बाण अचूक था, लक्ष्यबेधन में संदेह नहीं था। अब तो उसके द्वारा बिंधे जीव का चीत्कार ही निर्णय करेगा कि वह सिंह था या कोई और!

लक्ष्य बिंध गया था और चीत्कार का स्वर भी उभरा, जिसने राजा दशरथ के संपूर्ण तन-मन को प्रकंपित कर दिया। यह तो मानव स्वर था। संभवत: सिंह की अपेक्षा में भूल और जल्दबाजी में लिये गए उस निर्णय ने अनर्थ ही कर डाला था। दशरथ प्राणपण से उस ओर दौड़ पड़े। अपने इष्ट का स्मरण करते जाते थे कि वह बाण जिस भी निर्दोष को लगा हो, प्राणघातक स्थान पर न लगा हो पर यह केवल स्वयं को आश्वस्त करने का असफल प्रयास था, क्योंकि उस दिव्यबाण से प्राण ही जाने का विधान था।

दशरथ दौड़ते-दौड़ते ठिठक गए। नदी तट पर पीड़ा से छटपटाती मानव

आकृति उन्हें दिखाई पड़ गई थी। वे व्याकुल भाव से उसके समीप पहुंचे, तभी सूर्य की रश्मियों ने धरा का स्पर्श किया। बाण से आहत वह मुनिकुमार अपने दांतों को भींचकर पीड़ा को पीने का प्रयास कर रहा था। बाण उसके हृदयस्थल को बेध गया था जिससे रक्त बह रहा था।

"हे मुनिकुमार!" दशरथ पश्चाताप भरे स्वर में बोले–"आप कौन हैं और इस गोधूलि बेला में नदी तट पर आने का क्या प्रयोजन! मैंने तो जो जलनाद सुना, वह किसी हिंसक पशु द्वारा पानी पीने का समझकर बाण चलाया था। एक हिंसक नरभक्षी सिंह का वध करना ही मेरा उद्देश्य था। मुझसे अनजाने में बड़ा अपराध हो गया।"

"हे धनुर्धर!" घायल मुनिकुमार अपनी पीड़ा दबाने का असफल प्रयास करते हुए बोला–"तुम्हारे अचूक लक्ष्यबेध की प्रशंसा करने योग्य...मेरे...मेरे पास शब्द नहीं हैं। तुम्हारे इस श्रेष्ठ संधान ने एक नहीं, तीन प्राणियों को जीवन से मुक्ति दिला दी है। क्या मैं उन महान धनुर्धर का परिचय जान सकता हूं?"

"मुनिकुमार! तुम्हारे अपराधी का नाम दशरथ है। अयोध्या नरेश दशरथ, जो आज भिक्षुक की भांति अपने अक्षम्य अपराध का क्षमायाचक है। मुझसे बड़ी भूल हुई है। जीवनपर्यंत यह अपराध मुझे सालता रहेगा। तुम क्षमा भी कर दो, तब भी यह आत्मग्लानि बनकर मुझे दग्ध करता रहेगा।"

"महाराज! सामर्थ्यवान को वैसे भी कोई दोष नहीं लगता और आपसे तो भ्रमवश यह अपराध हुआ है। मुझे अपनी मृत्यु का कोई संताप नहीं है। जीवन है तो मृत्यु भी निश्चित है। यह अनहोनी नहीं है। विधाता ने इसी विधि, इसी समय, इसी स्थान पर मेरी मृत्यु लिखी होगी जिसमें आप निमित्त-मात्र बने। यह बाण मुझे अत्यधिक पीड़ा दे रहा है, परंतु मेरी मानसिक पीड़ा उससे भी अधिक कष्टकारी है।"

राजा दशरथ क्या बोलते? उनके मुख से शब्द न निकला, कंठ सूख गया था–"महाराज! मेरा नाम श्रवण है। मैं अपने नेत्रहीन माता-पिता को कांवड में बिठाकर तीर्थ कराने निकला था। यहां आकर उन्हें प्यास लगी थी तो मैं जल लेने आया था। मैं जानता हूं कि ब्रह्ममुहूर्त से पूर्व नदी के जल का स्पर्श पशु-प्रवृत्ति है और मनुष्य को इसका दोष लगता है, परंतु अपने प्यासे माता-पिता की सेवा में मुझे समस्त नरक भी स्वीकार हैं।"

"आह! मैं कितना पातकी हूं, जो ऐसे मातृ-पितृ भक्त बालक की हत्या से कलंकित हुआ। हे यम! तुम मेरी बात सुनो। इस अभागे के प्राण छोड़कर इसके बदले मेरे प्राण हर लो। मुझे मेरे अक्षम्य अपराध का इससे कम दंड नहीं चाहिए।

हे अधर्मियों का नाश करने वाली आदिशक्ति! मैंने अधर्म किया है, अतः तत्काल मुझे समाप्त कर दें। हे न्याय के देवता! तुम इसी समय मुझे भस्म कर दो। मेरा समस्त यश और पुण्य क्षीण हो गया है, अतः अब मेरा जीवन व्यर्थ है।" दशरथ करुण विलाप करने लगा।

"म...महा...महाराज! इस प्रकार शोक करने से क्या होगा?" श्रवण पीड़ित स्वर में बोला–"यहां जो हुआ, विधि की इच्छा से हुआ, परंतु मेरी यहां मृत्यु हो जाने पर मेरे माता-पिता प्यास से आकुल होकर अपने प्राण त्याग देंगे। हे महाबाहो! इधर यह बाण मुझे पीड़ा दे रहा है और प्यासे माता-पिता का स्मरण भी। अतः आपसे विनती है कि मुझे इस पीड़ा से मुक्ति देकर मेरे माता-पिता को पानी पिलाएं और कृपा करके उनके शेष जीवन को शोकरहित व्यतीत करने की व्यवस्था करें।"

राजा दशरथ ने स्वयं को कोसते और रोते हुए कठोर हृदय धारण करके श्रवण का बाण निकाला तो रक्त की धारा फूट पड़ी और क्षण-भर छटपटाकर वह निर्जीव हो गया। राजा विलाप कर उठे, परंतु अभी इससे भी कठिन कार्य उनके लिए शेष था, जो मरता हुआ श्रवण उन्हें सौंप गया था। उसके प्यासे नेत्रहीन माता-पिता को जल पिलाना।

कैसे वे उन वृद्ध दंपती के सामने जाएं जिनके बुढ़ापे का एकमात्र सहारा उनके बाण से परलोक सिधार गया? वे नेत्रहीन ही तो थे, अनुभवहीन तो न होंगे! अपने पुत्र का स्वर और पदचाप तो पहचानते होंगे। एक अपरिचित द्वारा जल लाने पर वे अपने पुत्र के विषय में प्रश्न तो अवश्य करेंगे। क्या उत्तर है उनके पास? अपराधग्रस्त राजा बड़ी दुविधा में पड़े रोए जा रहे थे, अंततः उन्होंने कमंडल उठाया और उसमें जल भरकर चल पड़े। उनका एक-एक पग सौ-सौ मन का हो रहा था।

कुछ दूर चलने पर ही कांवड में बैठे नेत्रहीन दंपती दिख गए थे तो पग उठाना भारी हो गया। निःशब्द, पदचाप भी निःशब्द! पर जानते थे कि नेत्रहीनों को आंखों से देखने की अपेक्षा मन की आंखों से जल्दी आभास हो जाता है।

"श्रवण! पुत्र तू आ गया! बहुत समय लगाया। अवश्य ही जलस्रोत कहीं दूर होगा। ला पानी दे! न, पहले अपनी माता को पिला।" वृद्ध नेत्रहीन पिता ने कहा–"और तू मौन क्यों है? इतनी देर भी नहीं हुई कि हम रुष्ट हो जाएं और तुझसे हम कैसे रुष्ट हो सकते हैं? तू तो हमारे जीवन का आधार है। हम बड़े भाग्यवान् हैं, जो परमात्मा ने ऐसा आज्ञाकारी पुत्र हमें दिया।"

राजा दशरथ के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी, परंतु वे खुलकर रो भी नहीं सकते थे। जलपात्र वृद्धा के हाथों पर रखा।

"ला पुत्र, बहुत प्यास लग रही है। कंठ ही सूख गया, परंतु तू कुछ बोलता

क्यों नहीं है? ऐसे तो तू कभी मौन नहीं रहा। तुझे मेरी सौगंध पुत्र! अपना वह सुंदर स्वर तो सुना जिसे सुनकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठता है।" वृद्ध माता ने कहा।

राजा दशरथ कुछ नहीं बोले। चाहते थे कि पहले दोनों पानी पी लें! भेद तो खुलकर रहना था, परंतु प्यासे वृद्ध उसे जानकर अधिक विकल होंगे।

"अच्छा नहीं बोलता तो यह रख अपना जल! मैं भी तब तक एक बूंद जल ग्रहण नहीं करूंगी, जब तक तेरी मोहिनी वाणी न सुन लूंगी।"

"और मैं भी।" वृद्ध पिता ने भी जैसे प्रण किया–"यह तेरी बालहठ हमें कष्ट दे रही है और तुझे परिहास सूझ रहा है। जा, हमें तेरा जल नहीं चाहिए।"

राजा दशरथ के धैर्य का बांध टूट गया और वे बच्चे की भांति फफक पड़े।

"अरे! यह तो हमारा श्रवण नहीं है। कौन हो भाई तुम और तुम रो क्यों रहे हो? हमारा श्रवण कहां है? वह तो पानी लेने गया था, कहां रह गया? कहीं... कहीं कोई अनहोनी...हाय श्रवण! मेरे पुत्र कहां हो तुम! अरे बताओ भई, कौन हो तुम?" वृद्ध ने कहा।

राजा ने रोते हुए अपना परिचय दिया और वृद्ध के पैर पकड़कर सारा वृत्तांत कह सुनाया। वृद्ध दंपती जैसे काष्ठ प्रतिमा बन गए, फिर उनका करुण विलाप आरंभ हो गया जिसे सुनकर पशु-पक्षी तक द्रवित हो उठे।

"हे महात्मन्! मुझसे अनजाने में यह भारी अपराध हो गया है। मैं आपका दोषी हूं। यह मेरी तलवार लीजिए और मैं इस पर अपना शीश रख देता हूं।" राजा रोते हुए कहते जा रहे थे–"आप मुझ अधम का वध करके अपने पुत्र का प्रतिशोध लें।"

"अरे राजा! राजा तो सबका रक्षक होता है, तू भक्षक बन गया।" वृद्धा विलाप करते हुए कहने लगी–"हम पर विधाता ने पहले ही कम अत्याचार नहीं किया कि हमारी नेत्रज्योति छीन ली और तूने तो हमारा सर्वस्व ही छीन लिया। जिसके आश्रय हमारा जीवन चल रहा था, वह सहारा भी तेरे आखेट के मनोरंजन की भेंट चढ़ गया। अब हम निरीह अंधों का कौन सहारा होगा! अरे शिकारी, तुझे तनिक भी दया न आई।"

"माता! मुझसे घोर अपराध हुआ। होनी ने मेरे मस्तक पर यह कलंक लगाया है। आप या तो मुझ अधम का वध कर दें या मुझे प्रायश्चित् का अवसर देकर मेरे साथ चलें। मैं स्वयं आपकी सेवा करूंगा। श्रवण को तो मैं नहीं लौटा सकता, परंतु कभी उसकी कमी का आभास न होने दूंगा। आज से मुझे अपना पुत्र व सेवक समझिए।"

"कोई किसी का धन हरण करे तो उसका शोक कुछ समय रहता है और धन पुनः अर्जित किया जा सकता है, परंतु इकलौते पुत्र का वियोग नहीं सहा जा

सकता। हम वृद्ध व अंधे संसार के सुखों के हेतु जीवित न थे, हम अपने पुत्र के स्नेह में जीवित थे। अब इस जीवन का क्या अर्थ रह गया। हमारा प्राण गया, देह का क्या? आज विधाता ने दारुण दुख दिया है। यह असहनीय है। हे राजा! आज हम अंधे बूढ़े माता-पिता की हत्या का कलंक भी तुम्हें ही लगेगा। हे विद्यावती, अपने प्राण त्याग दे। मैं भी ऐसा ही करता हूं।"

"नाथ! प्राण तो हमारे कब के निकल गए, अब तो पीड़ा शेष है। इससे मुक्त होते हैं, परंतु इस प्रकार नहीं। जिस पुत्र को नौ माह गर्भ में रखा, उसके हत्यारे को कुछ तो दंड देना ही होगा। हे राजा, आज जिस पुत्र वियोग में हम अंधे प्राण त्याग रहे हैं, वैसे ही एक दिन तुझे भी पुत्र वियोग की अपार पीड़ा सहकर देह त्यागनी होगी। यह हमारा श्राप है।"

"हां राजा!" वृद्ध भी कठोर स्वर में बोला-"तेरी पीड़ा हमसे भी भयानक होगी। तेरी मृत्यु के समक्ष तेरा कोई पुत्र तेरे समीप नहीं होगा और तू विधिपूर्वक मुखाग्नि भी न पा सकेगा। हमें तो अपना पुत्र अभी क्षण में स्वर्ग में मिल जाएगा।"

राजा दशरथ ने हाथ जोड़कर अश्रु बहाते हुए उस श्राप को शिरोधार्य किया। वृद्धों ने अपने पुण्य प्रभाव से प्राण त्याग दिए और उनके निर्जीव शरीर पड़े रह गए। राजा ने उन वृद्ध दंपती के चरण स्पर्श किए।

7

दशानन का मंदोदरी से विवाह

विभीषण के परामर्श के अनुसार, अनेक प्रकार के मूल्यवान उपहार, मोती-माणिक्य आदि लेकर मयासुर अपनी परम सुंदर पुत्री मंदोदरी व सभी बंधु-बांधवों के साथ लंका जा पहुंचा और लंकापति दशानन की सब प्रकार से स्तुति की।

"हे परम प्रतापी राक्षस सम्राट! आप मेरी पुत्री को अपनी महारानी के रूप में स्वीकार करें और मेरे योग्य जो भी सेवा हो, आदेश करें।" मयासुर ने प्रार्थना करते हुए कहा।

रावण का अभिमान मयासुर की प्रार्थना से संतुष्ट हो गया और उसने प्रसन्नता से अपने अनुज विभीषण को देखा। इस प्रकार दशानन का विवाह मंदोदरी के साथ संपन्न हुआ।

दशानन ने लंका पर अपना अधिकार जमा लिया था और कुबेर को प्राणदान देकर भागने का अवसर दिया था और शेष बचे यक्षों को बुरी तरह प्रताड़ित करके बंदीगृह में डाल दिया था। उसने राक्षसों को एकत्र किया और उन्हें अपना नेतृत्व स्वीकार करने की कठोर आज्ञा दी जिसे सभी ने स्वीकार किया। अब उसके पास असंख्य सैन्य बल था। भांति-भांति के क्रूर और मायावी राक्षस उसकी सेना में थे। उसका स्वयं का बल ही इतना भीषण था कि उसके संभावित त्रास से ही देवता भयभीत होने लगे थे, उस पर यह विशाल क्रूर सेना थी।

"मेरे श्रेष्ठ योद्धाओ! यह संसार भय के समक्ष नतमस्तक होता है।" दशानन ने अहंकार भरी वाणी से कहा–"देव, दानव, मानव, यक्ष, किन्नर सभी भय के अधीन होते हैं। जो जिसका भय मानता है, उसी को पूजने लगता है। छली देवताओं ने ऐसा ही भयजाल रचकर अपनी पूजा कराई है। इंद्रादि देवता अपनी सामर्थ्य का भय दिखाकर पूजित हैं, अत: तीनों लोकों को अपने अधीन करने का यह भयमंत्र हमें प्राप्त हो गया है। इस भय का हमें विस्तार करना है और राक्षस जाति का यश व प्रभुत्व तीनों लोकों में फैलाना है। हमारे बल को क्षीण और देवताओं के बल की वृद्धि करने वाले धर्मादि कार्यों को हमें संपन्न नहीं होने देना है। यज्ञों का विध्वंस करो, मंत्रवेत्ताओं और देवस्तुति करने वालों की जिह्वाएं काट लो, प्रतिरोध करने वालों का समूल नाश कर दो। यह सब कार्य शीघ्र और सुनियोजित ढंग से करो और एक ही बार में लंकापति दशानन का भय स्थापित करो। मुख्य योद्धा सेना लेकर विभिन्न दिशाओं में जाकर इस अभियान को संपन्न करो।"

क्रूर प्रवृत्ति के राक्षसों के लिए यह आदेश मनभावन था। हिंसा और भय फैलाने में उनकी मानसिक क्रूर वृत्ति संतुष्ट होती थी, अत: सबने इस स्वेच्छाचारी अवसर पर हर्ष का प्रदर्शन करके लंकापति दशानन की जय-जयकार की।

एकाएक इसी समय वहां विभीषण आ गए, जो कुबेर के सेनापति थे, परंतु युद्धप्रिय नहीं थे। रावण ने उन्हें देखते ही भृकुटि तान ली थीं। उसे उपदेश नहीं सुहाते थे।

"ज्येष्ठ भ्राता को मेरा प्रणाम।" विभीषण भ्रात-धर्म का पालन करते हुए बोले–"लंका-विजय पर मेरा अभिनंदन स्वीकार करें। आपका पराक्रम अतुलनीय है और यदि इसका सदुपयोग किया जाए तो इससे आपकी कीर्ति में अपार वृद्धि होगी।"

"अनुज, हम अब लंकापति हैं, अत: अपने शब्दों के चयन में सावधानी रखो।" रावण ने कठोर स्वर में कहा–"अपने उपदेशों को अपने पास रखो। बल का सदुपयोग बलवान जानते हैं, निर्बल उससे भयभीत होते हैं। सामर्थ्य का फल प्रभुत्व होता है। यदि कोई सामर्थ्य को ललकारे, उसका विरोध करे तो उसे त्रास देना ही उचित होता है।"

"भ्राताश्री! जल का प्रभुत्व जल पर, मानव का मानव पर, यक्षों का यक्षों पर और राक्षसों का राक्षस पर नीतियुक्त है, परंतु विजातियों पर प्रभुत्व करने की महत्त्वाकांक्षा हिंसा को आश्रय देती है। यदि सिंह वन का राजा है तो उसे अपना प्रभुत्व उसी क्षेत्र में रखकर अपने आश्रितों का कल्याण करना चाहिए।"

"फिर प्रपितामह के द्वारा हमें मिले वरदान का क्या अर्थ रह जाता है अनुज! फिर क्यों हमने हजारों वर्ष तपस्या का घोर कष्ट सहा!"

"भ्राताश्री! भय और प्रभुत्व केवल हिंसा में नहीं होता, स्नेह में भी होता है, अपितु हिंसा से भी अधिक होता है। स्नेह को खोने का भय ही उस पर प्रभुत्व करता है। सामर्थ्य द्वारा स्नेह दिया जाए तो यह प्रभुत्व अधिक स्थायी होता है।"

"अपने उपदेशों को अपने पास रखो अनुज! तुम बल की परिभाषा ही नहीं जानते। शत्रु को स्नेह से नहीं, बल और भय से अधीन किया जाता है, तभी उसे अपने पराभव का ज्ञान रहता है। स्नेह तो उसे भयहीन कर देता है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण तुम हो। तुम हमारे स्नेह के कारण ही तो हमसे व्यर्थ के उपदेश किए जा रहे हो। यदि तुम्हें हमारा भय होता तो तुम इतने उपदेशक न होते।"

विभीषण समझ गए कि विधि ने जो रच दिया है, वह होकर रहता है, अत: व्यर्थ में उस अहंकारी को समझाना उचित न था। वर और बल पाकर वह उस मदमस्त गज की भांति हो गया है, जो मादक द्रव्य पीकर वन का विध्वंस करने को आतुर रहता है, अत: अब उसे समय और ईश्वर ही सद्‌बुद्धि देंगे।

"अनुज! यदि तुम्हें अपनी भक्ति और ज्ञान के उपदेशों से हमारा मनोबल क्षीण करना है तो इस लंका नगरी में तुम्हारा निवास नहीं होगा और हम तुम्हें इंद्र की अमरावती या विष्णु लोक जीतकर दे देंगे। वहां तुम चैन से अपनी भक्ति और भजन करते रहना। यदि हमारे अभिमान में अपने उपदेशों की बक-बक न करो तो लंका के जिस भी भव्य महल में तुम्हें रहना है, निश्‍चिंत रहो और अपने प्रभु का गुणगान करते रहो।"

विभीषण ने मन में विचार किया कि यदि वे भी लंका से चले गए तो वह नगरी धर्मशून्य हो जाएगी। जहां धर्म का अंश ही नहीं होता, उस स्थान पर कभी प्रभु की कृपा नहीं होती और जैसा रावण का अहंकार था, उसे प्रभु की कृपा ही नष्ट करेगी।

"मैं आपके चरणों में रहकर अपने भ्रातृ-धर्म का पालन करने की आज्ञा चाहता हूं।"

"प्रसन्नतापूर्वक रहो अनुज! मुझे कोई आपत्ति नहीं। बस देवर्षि नारद की भांति व्यवहार मत करना, जैसे उन्होंने प्रजापति दक्ष के पुत्रों को सृष्टि-धर्म से विरक्त कर दिया और प्रजापति से श्राप प्राप्त किया कि ढाई घड़ी से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहर सकते। हम श्राप नहीं देंगे, दंड देंगे।" रावण ने चेतावनी दी।

"नारायण-नारायण!" देवर्षि नारद तत्काल प्रकट हो गए–"हमारी चर्चा किस विषय में हो रही है बाहुबली दशानन?"

दोनों भाइयों ने देवर्षि को आदर सहित प्रणाम किया।

"यशस्वी भव! ललाट पर तो स्पष्ट यही लिखा है, अत: यही आशीष हमने दे दिया।"

"देवर्षि, आप तो त्रिकलदर्शी हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान सब जानते हैं। यद्यपि आप विश्वासयोग्य नहीं हैं, क्योंकि आप कब किसके पक्ष में हैं, यह स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं जान पाते।" दशानन ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"फिर भी आप आदरणीय तो हैं ही।"

"नारायण-नारायण! हमारे मन में आदर-अनादर का भाव ही नहीं है। हम तो अपना बहुमूल्य परामर्श देने के लिए बिना आमंत्रण-निमंत्रण के कहीं भी पहुंच जाते हैं।"

"आप हमें क्या परामर्श देने आए हैं देवर्षि!" रावण की भृकुटि तन गई।

"हम तुम्हारी इस विजय पर बधाई देने आए हैं लंकापति! लंका जैसा दुर्लभ और अभेद्य किला तीनों लोकों में दूसरा नहीं है। राक्षसों के शिल्पी मयासुर ने इसका अद्‌भुत निर्माण किया है। अरे स्मरण आया, आपको संभवत: निमंत्रण मिला या नहीं, परंतु शीघ्र ही मयासुर की परम सुंदरी पुत्री मंदोदरी का स्वयंवर होने वाला है। नारायण-नारायण, कैसी शक्तिशाली कुंडली है उस अनिंद्य सुंदरी की! हमने स्वयं देखी है, जो भी उसका वरण करेगा, उसका कुल, बल और यश आकाश के सितारों के समान चमकदार होगा।"

रावण ने मुस्कराकर देवर्षि की ओर देखा।

"आपका यह परामर्श हमें बड़ा सुंदर लगा देवर्षि। सामर्थ्यवान को आमंत्रण, निमंत्रण की आवश्यकता भी क्या है?"

"नारायण-नारायण! तुम बात का आशय शीघ्र ही समझ जाते हो दशानन! अब हमारे जाने का समय हो गया है, अत: अपना बहुमूल्य परामर्श देना चाहेंगे। लंकेश, आपस की फूट सदैव दुखदायी होती है। कितना भी बल क्यों न हो, यदि भाइयों में कलह है तो वह विनाश का कारण बनती है, इसलिए नीति कहती है कि यदि भाई विचार-विरुद्ध भी हो तो भी उसे त्यागना नहीं चाहिए।" नारदजी ने गंभीर मुद्रा धारण करते हुए कहा—"और प्रिय विभीषण! तुम तो सब नीतियां जानने वाले हो, अत: जब तक स्वयं श्रीहरि ही हृदय से न लगा लें, तब तक अपने भ्राताओं से विलग न होना चाहिए अर्थात् भ्रातृ-त्याग का फल साधारण मिले तो स्वीकार न करना चाहिए।"

विभीषण उनका आशय समझ गए, अत: सहज ही सहमति व्यक्त कर दी। नारदजी तो 'नारायण-नारायण' करके वहां से अंतर्ध्यान हो गए।

रावण ने विजेता भाव से उन्हें देखा—"अनुज! देवर्षि का अभिप्राय तो समझ ही गए होंगे कि भाई से बढ़कर विष्णुपद भी नहीं होता, अत: अपने कुल और जाति के उत्थान का चिंतन करो।"

विभीषण ने कुछ नहीं कहा और केवल सहमति में सिर हिला दिया।

"अब हमें मयनगरी पर आक्रमण करना होगा। तीनों लोकों में हमारे पराक्रम की चर्चा हो रही है और हमारे प्रिय मयासुर ने इस अवसर पर हमारी उपेक्षा कर दी है। हमें अपना क्रोध और बल दोनों ही दिखाने होंगे। क्या यह भी तुम्हारी दृष्टि में नीति-विरुद्ध है अनुज!" रावण ने प्रश्न किया।

"देवर्षि की महिमा का क्या पता चलता है भ्राताश्री! संभव है, वे हम राक्षसों में ही इन उपायों से भेद डालकर देवों की सहायता कर रहे हों। यदि मयासुर अपनी पुत्री का स्वयंवर कर रहे हैं तो हमें निमंत्रण न मिलना हमारा अपमान है और नीति यहां बल-प्रयोग करने का समर्थन करती है, परंतु यदि हिंसक बल के स्थान पर एक बार विचार और चेतावनी का प्रयोग करने से मयासुर हमारा मान करें तो राक्षसों की एकता भी सुदृढ़ होगी और हमारा यश भी बढ़ेगा।"

"अनुज, यद्यपि सामर्थ्य में विकल्प नहीं होना चाहिए, परंतु तुम हमारे अनुज हो, अतः एक अवसर हम तुम्हें भी देना चाहेंगे। यह कार्य तुम ही करो।"

विभीषण ने इस आदेश को स्वीकार किया और लंकापति दशानन का प्रतिनिधि बनकर अपने योग्य सेनापतियों के साथ मयासुर की राजधानी में पहुंच गए। वहां स्वयंवर की तैयारियां चल रही थीं। देवर्षि ने सत्य ही कहा था, यह देखकर एक बार तो विभीषण को भी क्रोध आया, परंतु उन्होंने स्वयं को संयत किया। युद्ध ही करना था तो ज्येष्ठ का विचार ही न काटना था। अभी वे मयासुर को अपने आगमन की सूचना पहुंचाने का विचार कर ही रहे थे कि स्वयं मयासुर वहां दौड़ता हुआ आया और विभीषण का आदर सहित स्वागत किया।

"हे परम भक्त विभीषण! आपका स्वागत है। मैंने अभी-अभी लंका-विजय का समाचार सुना था तो मन बड़ा हर्षित हुआ। अंततः हम राक्षसों के उत्थान का समय आ गया। बहुत समय से हम उपेक्षित थे, अब लंकापति हमारे यश को बढ़ाएंगे।" मयासुर ने हर्ष और विनय से कहा।

"आदरणीय मयासुर! उनका यश अन्य जातियों में तो तब बढ़ेगा, जब अपनी ही जाति उनके यश को स्वीकार करे। आपने तो उनकी उपेक्षा ही कर दी। अपनी पुत्री के स्वयंवर में उन्हें निमंत्रण देना भी आवश्यक न समझा।"

"राक्षसश्रेष्ठ, ऐसी भूल मैं कैसे कर सकता हूं। मैंने तो गुरु को प्रथम निमंत्रण देने के पश्चात् लंकापति को ही अपने विशेष दूत के हाथों निमंत्रण भेजा था तो मार्ग में उसे किसी ने समाप्त कर दिया। मुझे यह सूचना आज मिली तो मुझे इसमें देवों का कोई छल नजर आया, अतः मैं अभी स्वयं लंका पधार रहा था।"

"संभवत: ऐसा ही हो! परंतु लंकापति अब ऐसे किसी कारण को स्वीकार न करेंगे। आप उनके बल और स्वभाव को नहीं जानते, अत: राक्षस जाति के हित के लिए आप मेरे एक परामर्श को मानिए। आप लंकापति को अपनी पुत्री सौंपकर उनके क्रोध को शांत करें और हमारे संबंधों को सुदृढ़ करें, अन्यथा उनके क्रोध से जो विनाश होगा, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।"

"हे परम भक्त! आप सभी नीतियों के जानने वाले हैं, सभी गुणों की खान हैं, अत: आपके परामर्श को मैं स्वीकार करता हूं। जिसमें जाति का हित हो, वैसा करना श्रेष्ठ होता है। लंकापति दशानन जैसे पराक्रमी जामाता को पाने से मेरा गौरव बढ़ेगा।"

विभीषण ने मन-ही-मन चैन की सांस ली। उन्होंने जैसा सोचा था, वैसा ही हो गया था। रावण की हिंसा व क्रोध से अपनी ही जाति का विध्वंस हो सकता था।

विभीषण के परामर्श के अनुसार, अनेक प्रकार के मूल्यवान उपहार, मोती-माणिक्य आदि लेकर मयासुर अपनी परम सुंदर पुत्री मंदोदरी व सभी बंधु-बांधवों के साथ लंका जा पहुंचा और लंकापति दशानन की सब प्रकार से स्तुति की।

"हे परम प्रतापी राक्षस सम्राट! आप मेरी पुत्री को अपनी महारानी के रूप में स्वीकार करें और मेरे योग्य जो भी सेवा हो, आदेश करें।" मयासुर ने प्रार्थना करते हुए कहा।

रावण का अभिमान मयासुर की प्रार्थना से संतुष्ट हो गया और उसने प्रसन्नता से अपने अनुज विभीषण को देखा। इस प्रकार दशानन का विवाह मंदोदरी के साथ संपन्न हुआ।

8

पूर्व जन्म के पुण्यों का फल

"हे धन्यभागी महाराज दशरथ! तुम्हारे चारों पुत्र सभी वेदों के तत्त्व रूप हैं। ये ऋषियों का धन, भक्तों का सर्वस्व और शिव के प्राण हैं, जिन्होंने तुम्हारे प्रेम-बंधन में बाललीला करने में सुख माना है। राम ही साक्षात् श्रीहरि का रूप हैं। पूर्व जन्म में तुम ऋषि कश्यप व महारानी कौशल्या जगत्माता अदिति थीं। एक जन्म में तुम दोनों ही मनु और महारानी शतरूपा थे, ऐसे ही कई जन्मों की घोर तपस्या से प्रसन्न करके तुमने श्रीहरि से उनके समान पुत्र पाने की कामना की थी। अब उनके जैसा तो दूसरा कौन है? अत: करुणानिधान ने स्वयं ही पुत्र बनकर आपकी कामना पूर्ण की है।"

राजा दशरथ के नेत्रों में वात्सल्य के साथ श्रद्धा भी उमड़ आई। उनके पूर्व जन्मों के पुण्य का फल इस जन्म में मिला था। साक्षात् नारायण बालरूप में उनके आंगन में बाल-क्रीड़ा करने आए थे।

बहुत समय व्यतीत हो गया था। राजा दशरथ उस अपराधबोध को अपने हृदय में लिये राजधर्म का पालन करते रहे। श्रवण के माता-पिता का श्राप एक प्रकार से उन्हें वरदान भी लगता था जिससे पुत्र-प्राप्ति की आशा बलवती होती थी। वह श्राप तभी तो पूर्णता प्राप्त करेगा, जब उन्हें पुत्र प्राप्त होगा। अब उनके पुत्र न होने की बात उन्हें भी खलने लगी थी।

विधाता ने तीन रानियों के होते हुए भी जाने क्यों उन्हें पुत्र के अभाव से पीड़ित किया। अब यह चिंता रानियों को भी सताने लगी थी। लोक-व्यवहार में स्त्री को संतान न होना निंदित माना जाता है, उसे बंध्या कहा जाता है। यह तो रानीपद था, अन्यथा कोई साधारण स्त्री तो समाज के तानों से पीड़ित हो रही होती। राजा दशरथ इन सभी स्थितियों को समझते थे। वंश का उत्तराधिकारी न होना अनिष्ट माना जाता था और ऐसे व्यक्ति को लोक में 'निरवंसिया' कहकर उसका मुंह देखना भी अशुभ समझा जाता था। अभी तक भाग्य के नाम पर बात टलती रही थी, परंतु कब तक? कुछ ही वर्षों के पश्चात् अधेड़ अवस्था आ जानी थी। अत: अपनी चिंता से गुरु वशिष्ठ को अवगत कराया।

"गुरुदेव!" राजा दशरथ ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा—"यह मेरा दुर्भाग्य है कि अभी तक मुझे पुत्र-रत्न की प्राप्ति नहीं हुई। संभवत: यह मेरे पिछले किसी जन्म के अपराधों का परिणाम है। मुझे इस कलंक के साथ इस संसार से जाना होगा कि मैं अपने वंश को आगे न बढ़ा सका। अभी तक लोक-समाज में यह विषय चर्चा में नहीं आया और यह संभवत: राजा की निंदा के भय के कारण है, अन्यथा...।"

"राजन्!" गुरु वशिष्ठ गंभीर स्वर में बोले—"इस विषय में हमने भी बहुत सोचा है। नि:संदेह आपके सभी अनुमान स्वाभाविक हैं, परंतु हमने आपकी भाग्यरेखा पढ़ी है, आपकी कुंडली देखी है, उसमें आपको पुत्र-सुख की प्राप्ति है। संभवत: कुछ ग्रह, गोचर की बाधाएं हैं जिनका उपाय किया जाना चाहिए। अब वह समय आ गया है, जब हमें इस दिशा में गंभीरता से सोचना होगा।"

"गुरुवर! आप इस कुल के इष्ट हैं और सदा ही हम पर आपकी कृपा रही है। आपने हमारे बिना मांगे भी हमें सब दिया है। आपके ही पुण्य प्रताप से अवधपुरी का यश सातों द्वीपों में फैला हुआ है। हे आदरणीय गुरुदेव! अपना हितैषी जानकर मैं करबद्ध याचना करता हूं कि मुझे इस द्वंद्व से उबारिए, जो अब मेरी निद्रा में बाधक हो रहा है।"

"राजन्! विकल न होइए! समस्याएं जीवन का अभिन्न अंग होती हैं, परंतु धीर पुरुष अपने धैर्य, विवेक और गुरुकृपा से इनका अभीष्ट उपाय कर लेते हैं। हमारा आपको परामर्श है कि आप पुत्रेष्टि यज्ञ संपन्न कराएं। इस यज्ञ के द्वारा वे सभी ज्ञात-अज्ञात बाधाएं स्वत: समाप्त हो जाती हैं, जो संतान-प्राप्ति में सामने आती हैं।"

"गुरुदेव, आप जैसा भी आदेश करेंगे, वह मुझे शिरोधार्य होगा।"

"राजन्! पुत्रेष्टि यज्ञ किसी साधारण ब्राह्मण के द्वारा संपन्न कराना संभव नहीं।

यहां तक कि इसके लिए विधि द्वारा स्वयं हम भी पात्रता नहीं रखते। इसे संसार में कुछ मनीषियों द्वारा संपन्न कराया जाता है, जिनमें महामुनि परम विद्वान ऋषि शृंगी भी हैं। आप अपनी कुलवृद्धि के लिए उन्हीं महामुनि की कृपा का आश्रय लें। ऋषि शृंगी प्राय: सांसारिकता से मुक्त हैं, अत: उन्हें अपने हित के लिए मनाना सरल नहीं है, परंतु हमारा वे सम्मान करते हैं और हमारी बात वे नहीं टालेंगे। आप हमें उनके पास जाने की आज्ञा दें।"

"गुरुदेव! यह राजा का नहीं, आपके शिष्य दशरथ का कार्य है, अत: इसमें मुझे आज्ञा नहीं, विनती करनी चाहिए। हे कृपासिंधु, अपने इस शिष्य का दुख निवारण करने हेतु आप स्वयं ऋषि शृंगी को हमारे यहां पधारने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।"

गुरु वशिष्ठ प्रसन्नता से भर उठे और कुलीन राजा के हित साधन के लिए नैमिषारण्य की ओर प्रस्थान किया। इधर राजा ने यह समाचार अपनी रानियों से कहा तो वे भी प्रसन्नता से भर गईं। राजभवन में नन्हें राजकुमारों की बाल-क्रीड़ाओं का दृश्य विचारकर ही वे मन-ही-मन मुदित हो रही थीं।

कुछ दिनों के पश्चात् गुरु वशिष्ठ अपने साथ तपोनिष्ठ शृंगी ऋषि को साथ लेकर अयोध्या लौट आए। शृंगी ऋषि बड़े तेजस्वी मुनि थे। राजा दशरथ और सभी रानियों ने उन्हें सादर नमन किया। मुनिवर ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनके ललाटों को देखा और संतुष्ट हुए। उनके नेत्रों में एक विशिष्ट चमक आ गई थी जिसका आशय केवल गुरु वशिष्ठ ही समझ सकते थे।

"मुनिवर!" राजा दशरथ विनीत स्वर में बोले–"आपने मुझ अकिंचन की याचना स्वीकार करके बड़ा उपकार किया है। संसार में पुत्रहीनता से बढ़कर कोई श्राप नहीं है। दैव ने राजपद तो दिया, परंतु यह दोष असहनीय है।"

"राजन्! इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है। समय से पूर्व कोई कार्य नहीं होता और जब समय आता है तो कार्य के सभी साधन उसी स्थान पर एकत्र हो जाते हैं, जहां कार्य संपन्न होना होता है। पृथ्वी का भार हरण हेतु देवताओं ने इसी कालखंड का चुनाव किया था और आपको आपके पूर्वजन्मों के तप के कारण इस महायज्ञ का प्रणेता चुना है। अयोध्या और रघुकुल की कीर्ति, जो आपके महान पूर्वजों ने स्थापित की है, उसे आपके वंशज ऐसा विस्तार देंगे कि सृष्टिपर्यंत यह यश-पताका फहरती रहेगी।" शृंगी ऋषि ने कर्णप्रिय मधुर स्वर में कहा।

सभी के हृदय हर्ष से उल्लासित हो गए। शृंगी ऋषि ने समस्त विधि-विधान से शुभ पुत्र-कामेष्टि यज्ञ आरंभ किया। मुनिवर ने पूर्ण निष्ठा और भक्ति से मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियां देकर यज्ञ को सफल करने वाले अग्निदेव की

स्तुति की तो प्रसन्न होकर अग्निदेव प्रकट हुए। उनके दर्शन से सभी हर्षित हो गए। अग्निदेव के हाथों में एक दिव्य पात्र था जिसे उन्होंने श्रृंगी ऋषि को सौंप दिया।

मुनि ने कृतज्ञता से उसे संभाला और अग्निदेव को प्रणाम किया।

अग्निदेव अपने नेत्रों से स्नेह बरसाते हुए अंतर्ध्यान हो गए।

"हे रघुवंशी नरेश!" श्रृंगी ऋषि वह दिव्य पात्र दशरथ को देते हुए बोले–"परमपिता की प्रेरणा, आपकी शुभेच्छा और अग्निदेव की कृपा के संयोग से तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो गया। यह दिव्य खीर उन सभी ज्ञात-अज्ञात बाधाओं को दूर करने में सक्षम है। अब तुम इस दिव्य प्रसाद को, जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग करके बांट दो। रानियां शुद्ध हृदय से प्रभु का स्मरण करते हुए इसे ग्रहण करें और अपनी कामना अभीष्ट करें।"

राजा दशरथ प्रसन्न मन से उस दिव्य प्रसाद को लेकर रानियों के पास आए। नियम विचार से उन्होंने महारानी कौशल्या को प्रसाद का आधा भाग दिया और शेष आधे भाग के दो भाग करके कैकेयी और सुमित्रा को दिया। उन्होंने प्रसन्न मन से दिव्य प्रसाद को ग्रहण किया। राजा और रानियों के समागम से समय पर तीनों रानियों ने गर्भधारण किया। जब यह समाचार राजा ने सुना तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। सभी नगरवासियों को भी यह शुभ समाचार मिलने पर राज्य-भर में हर्ष फैल गया। घर-घर मंगलगान गाए जाने लगे। ब्राह्मणों, याचकों को दान दिए जाने लगे। यज्ञ, हवन होने लगे। इस प्रकार समय आगे बढ़ता रहा और सभी योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि अनुकूल हो गए। अब कभी भी वह शुभ समाचार सुनने को मिल जाने वाला था जिसकी सब व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

चैत्र का पवित्र महीना व शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि थी। न अधिक सर्दी और न अधिक गरमी! दोपहर का समय था। शीतल समीर बह रहा था। गगनमंडल बड़ी दिव्यता से प्रकाशित था, मानो देवगण विचरण करने लगे हों। महारानी कौशल्या सहित रानियों को प्रसव वेदना होने लगी थी। दासियां इधर-उधर भागी फिर रही थीं। कुशल धाएं उपस्थित थीं और राजवैद्य भी आ चुके थे।

सर्वप्रथम महारानी कौशल्या ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया और यह शुभ समाचार सारे नगर में फैल गया। नर-नारी हर्षित होकर समूह-के-समूह मंगलगान करते हुए राजभवन की ओर दौड़ चले। राजा दशरथ जैसे आनंद सागर में डूब गए। तत्काल गुरु वशिष्ठ को बुलावा भेजा गया, जो श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ पधारे। अब राजभवन में शिशु का प्रथम क्रंदन गूंज रहा था।

राजा सहित गुरुदेव और सभी ब्राह्मण नवजात शिशु को देखने पहुंचे। जब वशिष्ठजी ने शिशु को देखा तो आनंद से भरकर उसे प्रणाम किया, क्योंकि वे

जानते थे कि साक्षात् श्रीहरि ने दुष्ट-दलन हेतु मनुज रूप में अवतार लिया है। उस अनुपम शिशु की रूप-राशि सम्मोहित कर देने वाली थी।

राजा दशरथ ने अपने सुंदर पुत्र का मुख देखकर जैसे अमृत का रसपान किया। हर्षोल्लास से उन्होंने ब्राह्मणों को गौ, स्वर्ण व मणि आदि का यथेष्ट दान दिया। सारे नगर में जन्मोत्सव मनाने का आदेश दिया और राजद्वार पर ढोल-नगाड़े, नृत्य, वंदना से प्रजा अपना उत्साह दिखा रही थी। चहुं ओर प्रसन्नता का वातावरण था।

यह प्रसन्नता उस समय चौगुनी हो गई, जब रानी सुमित्रा ने एक सुंदर पुत्र को और कैकेयी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। यह अयोध्या के लिए परमानंद का अवसर था, जैसे बहुत समय तक भूखे रहकर तृप्ति से भोजन किया हो।

चारों शिशु अत्यंत रूपवान थे। कुछ ही दिन पश्चात् उनका नामकरण संस्कार का महोत्सव मनाया गया और गुरु वशिष्ठ ने विधि-विधान से सभी जातकर्म संस्कार संपन्न करके राजकुमारों के नाम रखे। कौशल्या के पुत्र का नाम राम, सुमित्रा के पुत्र का नाम लक्ष्मण और कैकेयी के दोनों पुत्रों के नाम भरत व शत्रुघ्न रखे।

"हे धन्यभागी महाराज दशरथ! तुम्हारे चारों पुत्र सभी वेदों के तत्त्व रूप हैं। ये ऋषियों का धन, भक्तों का सर्वस्व और शिव के प्राण हैं, जिन्होंने तुम्हारे प्रेम-बंधन में बाललीला करने में सुख माना है। राम ही साक्षात् श्रीहरि का रूप हैं। पूर्व जन्म में तुम ऋषि कश्यप व महारानी कौशल्या जगत्माता अदिति थीं। एक जन्म में तुम दोनों ही मनु और महारानी शतरूपा थे, ऐसे ही कई जन्मों की घोर तपस्या से प्रसन्न करके तुमने श्रीहरि से उनके समान पुत्र पाने की कामना की थी। अब उनके जैसा तो दूसरा कौन है? अत: करुणानिधान ने स्वयं ही पुत्र बनकर आपकी कामना पूर्ण की है।"

राजा दशरथ के नेत्रों में वात्सल्य के साथ श्रद्धा भी उमड़ आई। उनके पूर्व जन्मों के पुण्य का फल इस जन्म में मिला था। साक्षात् नारायण बालरूप में उनके आंगन में बाल-क्रीड़ा करने आए थे।

"हे राजन्! सदैव ही श्रीहरि के सान्निध्य में रहने वाले शेषजी ने इस बाल रूप में भी अपने स्वामी का साथ नहीं छोड़ा और लक्ष्मण के रूप में अवतरित हुए हैं। इनके अनुज भरत व शत्रुघ्न सदैव प्रभु की सेवा में तत्पर रहने वाले इनके सेवक हैं। अत: तुम्हारे घर में परमानंद की वर्षा करने वाले दिव्य मेघों ने जन्म लिया है।"

समस्त राजपरिवार उन दिव्य बालकों के अपार स्नेह में डूब गया। चारों की मोहक छवि नेत्रों को आनंद देने वाली थी। जब वे घुटनों के बल चलने लगे तो उनकी बाल-सुलभ क्रीड़ाएं भी आरंभ हो गई थीं। राजा जब चारों पुत्रों को

हंसते-खिलखिलाते देखते, इधर-से-उधर दौड़ते देखते तो हर्ष से भर जाते। स्नेह तो उन्हें चारों पर था ही, परंतु राम जैसे उनके प्राण बन गए थे। माताओं के दुलारे ललना अपनी बाल-क्रीड़ाओं से उन्हें आनंद दे रहे थे। कैकेयी तो जैसे बालकों के साथ स्वयं भी बालक बन जाती थीं। वे उन्हें पीठ पर बिठाकर घूमतीं तो एक साथ चारों बच्चे उसकी पीठ पर चढ़ जाते थे। स्वभाव से राम शीतल थे और प्राय: अपने भाइयों को आनंद का अधिक अवसर देते थे। लक्ष्मण और शत्रुघ्न चपल चंचल थे, जबकि भरत राम की भांति शीतल स्वभाव के थे।

चारों भाइयों में परस्पर बड़ा ही प्रेम था। ज्यों-ज्यों उनकी आयु बढ़ रही थी, परस्पर प्रेम भी बढ़ रहा था। राम का भाइयों पर अत्यधिक स्नेह था तो भाइयों की भी उनमें बड़ी श्रद्धा थी। अब अयोध्या संपूर्ण हो गई थी। लेश-मात्र भी कोई अभाव न था। समस्त प्रजा सुखी थी। सब अपने-अपने धर्म में रत रहकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे। समय अपनी गति से व्यतीत हो रहा था और अवध के चारों राजकुमार गुरुकुल में वशिष्ठ के पास विद्याध्ययन करने लगे थे।

9

बालि और सुग्रीव की शत्रुता

"विश्वासघाती! तो यह तेरी योजना थी। उस विचित्र अंधेरी गुफा का द्वार तूने पत्थर से बंद किया, जिसके कारण मुझे बाहर निकलने का मार्ग खोजने में इतने दिन लग गए। तूने यहां मुझे मृत बताकर सिंहासन हड़प लिया।" बालि गरजकर सुग्रीव से बोला।
"भ्राताश्री!" सुग्रीव भय से कांप उठा–"मैं...मैं ऐसा अपराध कैसे कर सकता हूं? मैंने तो रात्रि-भर वहां आपकी प्रतीक्षा की थी। जब गुफा से रक्त की धारा बाहर आई और आप नहीं आए तो मैं भयभीत हो गया। मैंने समझा कि आप राक्षस के हाथों मारे गए। अतः उस राक्षस को बाहर आने से रोकने के लिए मैंने वह चट्टान गुफा के द्वार पर रख दी।"

मयासुर का पुत्र मायावी अपने राक्षस दल के साथ रावण के आदेश पर पूर्व दिशा में संतजनों को कष्ट देने के अभियान पर निकला था। अभी तक उसने कितने ही यज्ञ ध्वस्त किए, कितने ही मुनियों की जिह्वा काट ली, कितने उसका आहार बन गए थे, परंतु आज एक समाचार ने उसका मनोबल क्षीण कर दिया था। उसने सुना कि उसके बहनोई और राक्षसराज दशानन को वानरराज बालि ने पराजित करके उसका बहुत अपमान किया था। उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला दहक उठी और वह अपने दल सहित किष्किंधा की ओर चल पड़ा। वह केवल नाम से

ही मायावी न था, अपितु उसके कर्म भी मायावी थे। उसने बालि के विषय में सुन लिया था कि उसे सीधे युद्ध में जीतना तो दूर, प्राण बचाना भी कठिन था, अतः वह छल से अपने प्रतिशोध को पूरा करने की योजना बना चुका था।

"मेरे राक्षस योद्धाओ! शत्रु के बल को जानकर ही नीति बनानी चाहिए।" मयासुर अपने दल से कहा–"बालि को वरदान प्राप्त है, अतः उससे सम्मुख युद्ध में हमें भारी हानि उठानी पड़ेगी। हमें छल से काम लेना होगा। मैं रात्रि होने पर बालि को युद्ध के लिए ललकारूंगा और वह चुनौती स्वीकार करके मेरे पीछे आएगा। मैं उसे यहां से बहुत दूर ले जाऊंगा और तुम सब चुन-चुनकर किष्किंधा के एक-एक वानर को समाप्त कर देना। उनका रक्षक बालि ही है।"

सभी को यह युक्ति अच्छी लगी। रात्रि होने पर मायावी किष्किंधा के महल पर जाकर बालि को मल्लयुद्ध के लिए ललकारने लगा। वह भांति-भांति के दुर्वचन और गालियों से वाक्युद्ध कर रहा था। जब बालि ने उसका प्रलाप सुना तो क्रोध में भरकर बाहर चला, तब नीति-निपुण सग्रीव उसके साथ चल पड़ा।

"अनुज! तुम कहां जा रहे हो? यह दुष्ट जो भी है, मैं उसे क्षण-भर में इसके प्रलाप से मुक्ति दिलाकर लौटता हूं।" बालि ने सुग्रीव से कहा।

"महाराज! यह निश्चय ही कोई राक्षस है और ये बड़े छली होते हैं। किसे ज्ञात नहीं कि आपको ललकारना मृत्यु को निमंत्रण देना है, फिर भी वह ऐसा कर रहा है तो अवश्य इसमें उसकी कोई चाल होगी। अतः आपका अकेले जाना मुझे उचित नहीं लगता। यहां तो युवराज अंगद आदि सभी हैं। मैं आपकी सेवा में चल रहा हूं।"

बालि ने विचारकर सहमति दे दी। दोनों भाई बाहर आए तो अपने बल का बखान करता राक्षस वहां से भाग चला।

"भागता कहां है दुष्ट!" बालि ने दांत किटकिटाए–"अभी तक तो तेरा बाहुबल रोके-न-रोका जा रहा था। ठहर, तुझे अभी यमलोक पहुंचाता हूं।"

"महाराज! पीठ दिखाकर भागते हुए से क्या लड़ना?" सुग्रीव बोला।

"अनुज! अब इसे दंड देकर ही लौटेंगे। यह अधिक दूर नहीं भाग सकेगा।"

सुग्रीव को आदेश मानना पड़ा और वे उस राक्षस के पीछे दौड़ते रहे। राक्षस एक कंदरा में घुस गया तो दोनों रुक गए।

"महाराज! अब हमें लौटना चाहिए। इसमें मुझे कोई राक्षसी छल लगता है, जो यह हमें यहां ले आया। कहीं पीछे कुछ अनर्थ न हो जाए।"

"अनुज! वहां अंगदादि हैं और हमें भी यहां क्या समय लगेगा? शत्रु चुंगल में फंस ही गया है। इस कंदरा से भागकर वह कहां जाएगा। तुम बस क्षण-भर यहीं

ठहरो। मैं उसे समाप्त करके अभी लौटता हूं, फिर चलकर राजधानी को देखेंगे।" बालि सांत्वना देते हुए बोला।

"महाराज! मेरा हृदय शंकित हो रहा है।"

"अनुज! मुझे भय मानने वालों से चिढ़ होती है। तुम तनिक यहां ठहरो। यदि तुम्हें शंका है तो बस एक प्रहर मेरी प्रतीक्षा करो और अधिक विलंब हो तो मुझे मृत समझकर लौट जाना।"

बालि निर्भय होकर गुफा में घुस गया। नाना प्रकार की शंकाओं से ग्रस्त सुग्रीव कंदरा के बाहर विचलित होते हुए खड़ा था। जाने गुफा के भीतर की संरचना और शत्रु-नीति क्या थी, महाराज को यह सब जाने बिना उसमें प्रवेश नहीं करना चाहिए था। शत्रु एक था या अनेक थे। निश्चय ही यह रावण या उसके अनुचरों द्वारा बिछाया हुआ जाल ही था। एक प्रहर व्यतीत हो गया, बालि बाहर नहीं आया। रात्रि भी बीत गई, पर बालि न लौटा।

प्रातःकाल होने पर कंदरा से रक्त की धारा वह निकली जिससे वानर-रक्त की गंध आ रही थी। सुग्रीव भयभीत हो उठा। जो आशंका उसे थी, वह सत्य हो गई लगती थी। वह राक्षस जो भी था, अत्यंत बलशाली और क्रूर था जिसने बालि जैसे महाबली को भी मार डाला था। सुग्रीव ने उस कंदरा के द्वार पर विशाल चट्टान रख दी जिससे वह दैत्य बाहर न आने पाए और किष्किंधा का और अहित न कर सके। शोक-संतप्त सुग्रीव किष्किंधा लौटा तो वहां भी भीषण युद्ध के चिह्न थे। वह राक्षसी आक्रमण योजनाबद्ध थी। यद्यपि उसने युवराज अंगद को विजेता भाव से महल के द्वार पर देखा अर्थात् उस आक्रमण में वानरों की अधिक हानि न हुई थी।

"तातश्री! आपके और पिताश्री के जाने के पश्चात् यहां राक्षसों ने आक्रमण कर दिया था। हम सभी ने उनका वीरतापूर्वक सामना किया और उन्हें मार भगाया। जानते हैं कि हमारी इस विजय का श्रेय किसे जाता है? केसरीनंदन महाबली हनुमान को, जो संयोगवश हमारी सहायता के लिए यहां पहुंच गए थे।" अंगद ने बताया।

पवनपुत्र महाबली हनुमान ने सामने आकर सुग्रीव को नमन किया।

"हे महाबली! तुमने समय पर आकर हमारी सहायता की। हम आपके सदैव ही ऋणी रहेंगे।" सुग्रीव ने कृतज्ञ स्वर में कहा।

"वानरश्रेष्ठ! मुझे तो माताश्री ने आदेश दिया था कि मैं शीघ्र किष्किंधा जाकर अपने हितैषियों की कुशल-क्षेम लेकर आऊं। आकस्मिक आदेश था, परंतु मैं तुरंत यहां चला आया। यहां का दृश्य देखा तो माताश्री की दिव्य दृष्टि का प्रभाव समझ गया कि उन्होंने किस योजना से ऐसा आदेश दिया था।"

"महारानी की हम पर सदैव कृपादृष्टि रही है। उनका मुझ पर सदा स्नेह रहा है। वे त्रिकालद्रष्टा हैं, अत: हम पर आने वाले संकट को जानकर ही उन्होंने ऐसा किया।"

"महाराज बालि कहां है मित्र सुग्रीव? तुम्हारा अकेले लौटना संदेहपूर्ण है।"

सुग्रीव ने दुखी स्वर में सारा वृत्तांत कह सुनाया। सब दुखी हो गए, तब हनुमानजी ने उन्हें सांत्वना दी।

"मृत्यु शाश्वत् सत्य है। इसे स्वीकार करो। जीव की यही गति है। नियति जो चाहती है, वही होता है। अत: इस दुख को सहने की शक्ति धारण करो और भविष्य के विषय में सोचो। राजा विहीन सिंहासन शोभा नहीं देता, अत: सभी वरिष्ठ मिलकर इसका निवारण करो।" हनुमान ने गंभीरता से कहा।

"युवराज अंगद का राज्याभिषेक कर दिया जाए।" सुग्रीव ने तत्काल कहा।

"तातश्री! आप मेरे पिता ही हैं और पिता के होते हुए पुत्र कभी सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।" अंगद ने कहा–"अभी मेरी आयु से लड़कपन भी नहीं गया और आप मुझे ऐसा दायित्व सौंपना चाहते हैं। मैं विनयसहित इसे अस्वीकार करता हूं।"

"युवराज ठीक कह रहे हैं।" वृद्ध जामवंत ने कहा–"अभी इनकी आयु इस योग्य नहीं है कि राज्य-संचालन का कठिन दायित्व संभाल सकें–वह भी इस स्थिति में जब राक्षसों से हमारी शत्रुता हो गई है। महाराज सुग्रीव को यह दायित्व संभालना ही होगा। इसी में वानर-वंश का कल्याण है।"

सबकी सहमति से सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दिया गया। कुछ दिन वहां रुककर हनुमान भी लौटकर चले गए जिससे माता को वहां का वृत्तांत कह सुनाएं। उन्होंने नगर की रक्षा के अतिरिक्त उपाय भी बता दिए थे और किसी परिस्थिति विशेष में द्रुतगामी दूत द्वारा स्वयं को समाचार देने का परामर्श दिया। हनुमान को गए कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि एक दिन विजयोन्माद से झूमता बालि वहां आ गया और सिंहासन पर बैठे सुग्रीव को देखकर क्रोध में भर उठा।

"विश्वासघाती! तो यह तेरी योजना थी। उस विचित्र अंधेरी गुफा का द्वार तूने पत्थर से बंद किया, जिसके कारण मुझे बाहर निकलने का मार्ग खोजने में इतने दिन लग गए। तूने यहां मुझे मृत बताकर सिंहासन हड़प लिया।" बालि गरजकर सुग्रीव से बोला।

"भ्राताश्री!" सुग्रीव भय से कांप उठा–"मैं...मैं ऐसा अपराध कैसे कर सकता हूं? मैंने तो रात्रि-भर वहां आपकी प्रतीक्षा की थी। जब गुफा से रक्त की धारा बाहर आई और आप नहीं आए तो मैं भयभीत हो गया। मैंने समझा कि आप

राक्षस के हाथों मारे गए। अत: उस राक्षस को बाहर आने से रोकने के लिए मैंने वह चट्टान गुफा के द्वार पर रख दी।"

"तेरी कुटिलता आज भी तेरे शब्दों से झलक रही है। जो मुझे महाराज कहते न अघाता था, वह मुझे भ्राताश्री कह रहा है। अब तेरे जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं है। तुझे राजसुख का रक्त मुंह लग गया है और ऐसे विश्वासघाती को जीवित रखने की भूल मैं कदापि नहीं कर सकता।" बालि ने उसे पैर पकड़कर भूमि पर दे मारा।

सुग्रीव की मारे पीड़ा के चीत्कार निकल गई, परंतु बालि को दया नहीं आई। वह उसे क्रूरता से मारता रहा। किसी का साहस न हुआ कि क्रोध से भरे बालि को रोकता। अब निश्चय ही निरपराध सुग्रीव मृत्यु को प्राप्त होगा। अब सुग्रीव को भी अपनी मृत्यु निश्चित लग रही थी, अत: उसने प्राण बचाने का विचार कर युक्ति से काम लिया। उसने स्वयं को श्वास रोककर मृत समान कर लिया। बालि ने देखा कि अब उसमें प्राण नहीं रहे तो उसे छोड़ दिया।

"तू क्यों रोती है तारा!" बालि ने कड़ककर रोती हुई सुग्रीव की पत्नी से कहा–"यह पापी भ्रातृघाती है। इसने अपने सहोदर के साथ विश्वासघात किया है। इसका वध मैंने नीति के अनुसार किया है। इसमें तेरा अहित अवश्य हुआ है, परंतु मैं ही तेरा प्रिय भी करूंगा। मैं तुझे किष्किंधा की राजरानी बनाऊंगा।"

तारा ने अपने कानों पर हाथ रख लिये और मारे भय के उसका रोना भी बंद हो गया। अभी तक वह पति के प्राणों के लिए रो रही थी, अब तो अपने ही सम्मान पर संकट आ गया था। इसी बीच उसने देखा कि सुग्रीव वहां से भाग लिया था। उसके हृदय पर जैसे वज्रपात हुआ। ऐसी कायरता! अपनी स्त्री को ऐसे संकट में छोड़कर अपने प्राण बचाकर भाग जाने वाले को कायर ही कहा जाएगा। अत: ऐसे रोने-बिलखने की अपेक्षा तो सुख भोगकर जीवन व्यतीत करना उचित है।

सुग्रीव को वहां से भागते देखकर बालि को और भी क्रोध आया और वह उसके पीछे दौड़ पड़ा। सुग्रीव प्राणपण से ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंच जाना चाहता था। एक वही स्थान था, जहां साक्षात् कालरूप बालि से उसके प्राण बच सकते थे, क्योंकि उसे वहां जाने पर मृत्यु का श्राप लगा था। अंतत: वह वहां पहुंच गया और थककर गिर पड़ा। बालि सेतु के दूसरी ओर खड़ा था।

"विश्वासघाती! आज तूने अपने प्राण बचा लिये, परंतु मैं तुझे जीवित न छोड़ूंगा। कभी तो इस श्रापित स्थान से बाहर आएगा।" बालि यह कहकर लौट गया।

सुग्रीव ने प्राण बचने पर बहुत समय तक विचार किया। वह नीतिज्ञ था, ज्ञानी भी था, अत: जानता था कि भाई जैसा मित्र कोई अन्य नहीं होता और भाई

जैसा शत्रु भी कोई नहीं होता। ऐसे कठिन समय में उसे किसी सबल आश्रय की आवश्यकता थी और वह कृपासिंधु हनुमान के अतिरिक्त और कौन हो सकता था! अत: सोच-विचारकर उसने एक शुक पक्षी से अपनी व्यथा कही और हनुमान को अपना संदेश पहुंचाया। संदेश प्राप्त कर हनुमान शीघ्र ही आ गए और अपने चिंतित मित्र को सांत्वना दी।

"मित्र सुग्रीव! यह विधाता का खेल है। ऐसे प्रगाढ़ संबंधों में जब भी कटुता आती है तो बड़े धैर्य व संयम की आवश्यकता होती है। नियति कुछ विशेष कार्य संपन्न करने हेतु ऐसी विकट परिस्थितियां उत्पन्न करती है। बालि में बल का अभिमान उसी समय घर कर गया था, जब उसने रावण को हराया। अब अभिमान में उसे कृत-अकृत का ज्ञान नहीं रहा है, अत: उसके पतन का समय आ गया है। मेरे प्रभु शीघ्र ही हम सब भक्तों के संताप हरण का महाधर्मयज्ञ करेंगे। अभी उनकी बाललीला का समय चल रहा है, अत: कुछ दिन प्रतीक्षा करो।"

सुग्रीव को हनुमान के शब्दों से बड़ा ही साहस और संबल मिला।

10

देवर्षि का श्रीहरि को शाप

"ऐसे मत हंसो भगवन्!" नारद और भड़क गए–"नारद को साधारण न समझो। इस कपट से ऐसे निष्कलंक न निकलोगे। वे शिव थे जिन्हें समुद्र-मंथन में आपने विष पिला दिया और स्वयं अमृत ले उड़े और उन्होंने क्षमा भी कर दिया।"
"हे देवर्षि!" भगवान श्रीहरि बोले–"मैंने क्या कपट किया? तुमने ही हरि रूप मांगा था। हरि तो वानर को भी कहा जाता है।"
"अहा, इस समय आपको समानार्थ सूझे! सबको ठग-ठगकर निर्भय हो गए हो, अतः शुभ-अशुभ कर्मों से नहीं डरते। अबकी बार साफ न निकलोगे। आपने मुझे स्त्री-वियोग की पीड़ा दी है तो मेरा भी श्राप है कि आपको भी स्त्री-वियोग का दुख सहना पड़ेगा और जो वानर रूप देकर मेरा उपहास कराया है, वही वानर आपके सहायक होकर यश को प्राप्त होंगे।" नारद ने क्रोधवश श्रीहरि को श्राप दे दिया।

कुल और कीर्ति बढ़ने से बल में वृद्धि हो रही थी और बल से भय में! रावण का भय सभी दिशाओं में बढ़ रहा था। उसके अनेक पुत्र उसके ही समान पराक्रमी और महत्त्वाकांक्षी थे जिनमें मेघनाद, अक्षय, प्रहस्त आदि बड़े बलवान योद्धा थे। रावण के आदेश पर मेघनाद ने इंद्र पर आक्रमण किया और देवताओं को परास्त करके इंद्र को युद्ध से

भागने पर विवश कर दिया। इससे रावण उस पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसका नाम इंद्रजीत रख दिया। अनेक पुत्र-पौत्रों के बल से रावण ने सभी दिशों को पददलित कर दिया।

प्रतिदिन अनेक मुनि राक्षसों का आहर बन रहे थे और स्थान-स्थान पर पड़ी ब्रह्म अस्थियां अपार बोझ बनकर पृथ्वी को पीड़ा दे रही थीं। अधर्म के विस्तार से जो पापभार बढ़ रहा था, उससे पृथ्वी कराहने लगी थी, अतः एक दिन वह गौ का रूप धारण कर प्रजापति ब्रह्मा की शरण में गई और नेत्रों में अश्रु भरकर करुण स्वर में पुकार की।

"हे विधाता! सृष्टि के सृजनहार! आपने मेरी रचना करके मुझे सृष्टि का भार वहन करने का कार्य सौंपा था। अनेक अपरिमित पर्वत, महासागर, वन और प्राणियों का भार संभालने में मुझे सुख की अनुभूति होती थी और यह भार मुझे पुष्प समान लगता था, परंतु जब से रावण ने अत्याचार आरंभ किए हैं, धर्म का लोप होता जा रहा है। हिरण्यकश्यपु व वृत्रासुर से भी अधिक क्रूर यह रावण कौन है, जो किसी का भय नहीं मानता? क्या अब मेरे ऊपर अधर्म का ही साम्राज्य स्थापित होगा?"

"हे धैर्यशीला पृथ्वी! ये मेरे ही वरदान के कारण उत्पन्न हुए संकट हैं।" ब्रह्माजी ने दीर्घ श्वास लेते हुए गंभीरता से कहा–"परंतु यह सब परम पावन श्रीहरि की प्रेरणा के कारण है। जब तक देवगण धर्म की रक्षा में समर्थ रहते हैं, तब तक श्रीहरि क्षीरसागर में रहकर सृष्टि का पालन करते हैं। जब देवता भी असमर्थ हो जाते हैं तो वे स्वयं मनुष्य रूप में अवतार लेकर अधर्मियों का समूल विनाश करके धर्म की पुनर्स्थापना करते हैं। यह जो रावण है, उसका भीषण बल कई कारणों से अपरिमति है। तुम ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें इसके पूर्व जन्मों के कुछ वृत्तांत सुनाता हूं जिनमें यह इतना उत्कट और निर्भयी योद्धा है।"

गौरूपी पृथ्वी उत्सुकता से सुनने लगी।

ब्रह्माजी कहने लगे–"एक बार सदा विचरण करने वाले नारद हिमालय क्षेत्र में भ्रमण कर रहे थे। वहां एक अत्यंत रमणीक उपवन देखकर घड़ी-भर के लिए रुक गए थे कि शीतल समीर के मंद झोंके और प्रभु की प्रेरणा से उनकी समाधि लग गई और नारद वहीं स्थिर हो गए। नारद का समाधिस्थ होना अचरज की बात थी। जो ढाई घड़ी से अधिक किसी एक स्थान पर नहीं ठहरता, वह समाधिस्थ हो जाए तो प्रश्न तो उठता है, परंतु देवराज के मन में यह प्रश्न शंका बन गया। नारद का तपस्या से क्या प्रयोजन, वे तो देवर्षि थे। समस्त देवपदों के अधिकारी थे।"

देवराज ने यह शंका अपने परम मित्र कामदेव से व्यक्त की...।

"प्रिय मित्र मदन! तुम मेरे सदा हितैषी रहे हो।" इंद्र चिंतातुर स्वर में बोले–"जब भी किसी तपस्वी-योगी ने इंद्रासन की इच्छा से तप किया, तब तुमने मेरा सहायक होकर उसकी तपस्या भंग की और मेरे कार्य सिद्ध किए।"

"मित्र!" कामदेव ने कहा–"मित्रता का यही अर्थ है।"

"इस बार फिर मेरा इंद्रासन संकट में प्रतीत होता है मित्र!" देवराज ने शंका प्रकट की–"ढाई घड़ी से अधिक एक स्थान पर न ठहरने वाले देवर्षि आज भीषण तप कर रहे हैं। उनके मन की थाह कोई नहीं ले सकता। मुझे भय है कि वे स्वर्ग के भोगों के लालच में मेरा पद छीनना चाह रहे हैं।"

"देवराज, आप अत्यधिक शंकालु हैं। देवर्षि को किसी पद की लालसा नहीं है।"

"तुम उनके मन को नहीं जानते। और चलो, मैं तुम्हारी यह बात भी मान लूं तो भी उनकी समाधि तो भंग करनी ही होगी, अन्यथा प्रजापति का श्राप मिथ्या होगा।"

"हां, यह बात तो है।" कामदेव ने स्वीकार किया–"देवर्षि के गतिहीन होने से सृष्टि का तारतम्य बाधित हो रहा है।"

"मित्र! तुम जाकर इस बाधा को दूर करो, जिससे तुम्हारा यश बढ़ेगा।"

कामदेव चल पड़ा। उसका यही काम था। ब्रह्मचारियों के ब्रह्मचर्य को खंडित करने से ही उसे यश मिलता था। उसने कितनी ही बार इस असाध्य कार्य को साध्य किया था, परंतु इसका विपरीत फल भी उसे एक बार मिल चुका था, जब उसने देवताओं के कहने पर भगवान शिव पर अपनी कामशक्तियों का प्रयोग किया। शिव तो विचलित हुए, परंतु उनका तीसरा नेत्र खुला और कामदेव भस्म हो गया।

यह तो देवों की विनती और रति के सतीत्व का प्रताप ही था कि शिव ने प्रसन्न होकर कामदेव को बिना शरीर, अर्थात् अनंग होते हुए भी कामशक्ति का अधिकारी बनाया, तब से वह ऐसे कार्य सावधानी से करता था।

हिमालय के उस सुंदर उपवन में, जहां देवर्षि समाधिस्थ होकर हरिनाम का जाप कर रहे थे, कामदेव ने अपने सभी कामशस्त्रों का प्रतिस्थापन कर दिया। उसके उपायों के प्रभाव से पाषाण भी कामासक्त होकर जुड़ने लगे थे, परंतु देवर्षि पर इनका काई प्रभाव न पड़ा। कामदेव ने अपने अंतिम उपाय में भी सफलता न पाई और हारकर देवर्षि को प्रणाम करके इंद्र के पास आया।

"देवराज मुझे क्षमा करें! देवर्षि ने मुझे परास्त कर दिया। उनकी कामेंद्रियां सुषुप्त हैं अर्थात् हैं ही नहीं। मेरे सभी उपाय निष्फल सिद्ध हुए।"

इंद्र की चिंता बढ़ गई, परंतु अब वे उपाय क्या करें? वह विचारमग्न हो गया।

इधर प्रभु की प्रेरणा से देवर्षि समाधि से निवृत्त हुए तो स्वयं में एक विचित्र प्रकार का भाव अनुभव कर रहे थे। उन्होंने कामदेव को जीत लिया था तो कामजित् होने का दर्प हो जाना स्वाभाविक ही था। अहंकार से फूले नारद कैलाश पर्वत जा पहुंचे।

"नारायण-नारायण! देवाधिदेव को मेरा प्रणाम! प्रभो, यह कामदेव कुछ अधिक ही स्वेच्छाचारी हो गया है।" नारद गर्वित स्वर में बोले—"हम तनिक श्रीहरि के चरणों में निमग्न क्या हुए कि वह हम पर ही अपने काम-बाण चलाने लगा।"

भोलेनाथ मुस्कराए।

नारदजी का वाक्य विन्यास गर्व से परिपूर्ण था।

"परंतु हे आशुतोष, आपका यह सेवक आपकी कृपा से आपसे कम तो नहीं है।" नारद ने कहा—"हमने उसके सारे प्रयास निष्फल कर उसे पराजित कर दिया। अब उसे सीख मिल गई होगी कि वह अपराजेय नहीं है।"

"आप धन्य हैं देवर्षि, आपकी महिमा अनंत है।" भोलेनाथ मुस्कराते हुए बोले—"अब आपसे मेरी विनती है कि इस वृत्तांत को किसी अन्य से न कहना। श्रीहरि से तो कदापि न कहना। कभी चर्चा भी चले तो भी इस विषय से अनभिज्ञ ही रहना।"

नारदजी ने अनिच्छा से उनकी यह बात तत्काल तो मान ली, परंतु उनका अगला पड़ाव तो क्षीरसागर ही था।

क्षीरसागर में शेषशैया पर भगवान श्रीहरि अपनी प्रिया सहित मंद-मंद मुस्करा रहे थे तो उसी समय नारद वहां पहुंचे। अपने इष्ट की स्तुति की।

"देवर्षि! इधर बहुत समय बाद दर्शन दिए। किस लोक की ओर प्रस्थान कर गए थे?"

"भगवन्! आप तो अंतर्यामी हैं। आपसे क्या छिपा रह सकता है?" नारद जी ने विनयपूर्वक कहा—"चराचर की समस्त क्रियाओं में आप हैं। मैं तो हिमालय के पुण्य क्षेत्र में आपका सुमिरन कर रहा था कि...।"

देवर्षि ने सगर्व अपनी विजयगाथा वर्णित कर दी। सर्वज्ञ ईश्वर जानते तो सब थे, परंतु अपने परम भक्त के हृदय में अंकुरित अहंकार की पुष्टि पाकर कृपानिधान ने उसके निवारण का निश्चय कर लिया। भक्त-वत्सल भगवान ऐसे ही होते है, जो अपने प्रिय के बिना कहे उसका हित करते हैं।

"हे मुनिश्रेष्ठ! आपके स्मरण-मात्र से पंचविकार छूट जाते हैं।" श्रीहीरि प्रत्यक्ष में बोले—"फिर यह आपके लिए कौन-सी बड़ी बात थी?"

देवर्षि तो अब और भी गर्वीले हो गए। विष्णुलोक से चलकर जहां भी जाते, पशु-पक्षियों तक से अपने कामजित् होने का वर्णन करने लगते। अहंकार का अंकुर अब वटवृक्ष बन रहा था। सहसा ठिठक गए, इस मार्ग से वे पहले भी कई बार गए थे, परंतु यह रमणीक नगर पहले कभी दृष्टि में नहीं आया। जिज्ञासा बढ़ी तो नगर में प्रवेश कर गए। अहा! साक्षात् वैकुंठ ही था वहां—नगर के भव्य द्वार पर खड़े द्वारपालों ने मुनिवर का सादर स्वागत किया।

"हे द्वारपालो! यह कौन-सा नगर है? कौन पुण्यवान राजा इस स्वर्ग समान नगरी का अधिपति है! यह नगर कभी हमारी दृष्टि में नहीं आया!" नारद कौतूहल से बोले।

"देवर्षि! यह निधिनगर है और राजा शीलनिधि हमारे अधिपति हैं। आप उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करें।" द्वारपाल ने विनयपूर्वक कहा—"आप जैसे दयालु और कामजित् का इस नगरी में पधारना बड़े सौभाग्य की बात है।"

नारद फूले न समाए। उनके यश ने विस्तार पा लिया था। उन्हें आदर से राजभवन ले जाया गया, जहां विष्णु समान राजा शीलनिधि ने सिंहासन छोड़कर उनका स्वागत किया।

देवर्षि ने ऐसा आतिथ्य तो पहले कभी न पाया था। वे गद्‌गद हो गए। यह सब कामजित् होने का प्रभाव था।

"हे देवर्षि! आपने यहां पधारकर मेरा बड़ा उपकार किया है।" राजा शीलनिधि ने विनयपूर्वक कहा—"मैं अपनी सुशील कन्या विश्वमोहिनी के विवाह के विषय में आपसे कुछ जानने की प्रार्थना करता हूं। कुछ दिन पश्चात् ही उसका स्वयंवर है, अतः आप उसकी रेखाओं को पढ़कर उसके भावी वर के विषय में बताएं।"

नारद मुनि ने सहर्ष स्वीकार किया और विश्वमोहिनी को बुलाया गया जिसका अनुपम सौंदर्य देखकर नारद भी क्षण-भर में सम्मोहित हो गए। ऐसी रूपवती कन्या उन्होंने स्वर्ग में भी न देखी थी। वह साक्षात् लक्ष्मीरूपा थी।

नारद ने जब उसके ललाट और हस्तरेखाओं को देखा तो हर्षित हो गए। उस राजकन्या की कुंडली का प्रभाव ऐसा था कि जिसे भी वरण करेगी, उसे समस्त लोकों में पूजा जाएगा। राजा को यह सब बताकर मुनि वहां से चल दिए, परंतु उनका मन विचलित हो गया था। जिस काम को जीत लिया था, वह अब चित्त पर बैठ गया था। त्रिलोक में पूजित होने की इच्छा जाग्रत हो उठी। अब कोई ऐसा उपाय करना होगा कि यह कन्या उनका ही वरण करे। जप-तप के लिए समय न था, अब तो भक्त-वत्सल श्रीहरि ही कुछ करेंगे। नारद जी विष्णुलोक चले आए और अपनी इच्छा श्रीहरि को बता दी।

"हे दीनानाथ, हे कृपासिंधु! अपने इस भक्त की यह इच्छा पूरी करने का कोई उपाय करें और मुझे हरिरूप प्रदान करने की कृपा करें।" नारद ने अनुनय-विनय की।

"देवर्षि, आपका हित करना मुझे अतिप्रिय है। मैं ऐसा ही करूंगा—जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।"

नारद के हर्ष का ठिकाना न रहा। वे शीघ्र ही निधिनगर जा पहुंचे। अरे, यहां तो स्वयंवर आरंभ भी हो गया था। अनेक सजे-धजे राजा, राजकुमार वहां बैठे थे। नारद हरिरूप लेकर वहां पहुंचे और एक आसन पर जा बैठे। सभी राजा उनको देखकर हंस रहे थे।

नारदजी हंसने का मर्म न समझ पाए। वहीं शिवजी के दो गण भी थे, जो सारा भेद जानते थे और बार-बार नारद के पास आकर उन्हें प्रणाम करके ठठाकर हंसकर चले जाते।

कुछ समय पश्चात् विश्वमोहिनी वरमाला लेकर आई, परंतु यह क्या! उसने तो उनकी ओर देखा तक नहीं। हरिरूप की भी उपेक्षा कर दी। उसने आगे बढ़कर एक राजपुरुष के रूप में पधारे श्रीहरि के गले में वरमाला डालकर उनका वरण किया।

"नारदजी अहा! आप इतना सुंदर रूप लेकर आए, फिर भी इच्छा पूरी न हुई।" शिवगण हंसकर बोले—"तनिक अपना रूप दर्पण में देखकर सुनिश्चित तो कर लें कि अंततः कमी कहां रह गई। भैया, हमें तो इस रूप ने मोहित कर लिया था।"

नारद की बुद्धि भ्रम में थी, तब शिवगणों ने उन्हें दर्पण लाकर दिया और उसमें अपना वानर मुख देखकर नारद की देह क्रोधाग्नि से जलने लगी।

"अरे दुष्टो! तुमने सब जानकर भी मेरा उपहास किया। जाओ, तुम राक्षस हो जाओ।"

शिवगण भयभीत होकर भाग गए।

नारद सक्रोध वैकुंठ पहुंचे।

"भगवन्! आपने अच्छा बैर साधा। हरि रूप मांगा और वानर रूप दे दिया, क्योंकि इस विश्वमोहिनी पर आपकी दृष्टि थी तो कैसे किसी अन्य का भला कर देते! आपने कभी किसी का हर्ष देखा ही कब है! परम स्वतंत्र होकर स्वेच्छाचारी हो गए हो।"

भगवान श्रीहरि मुस्कराए और लक्ष्मीजी की ओर देखा।

"ऐसे मत हंसो भगवन्!" नारद और भड़क गए—"नारद को साधारण न

समझो। इस कपट से ऐसे निष्कलंक न निकलोगे। वे शिव थे जिन्हें समुद्र-मंथन में आपने विष पिला दिया और स्वयं अमृत ले उड़े और उन्होंने क्षमा भी कर दिया।"

"हे देवर्षि!" भगवान श्रीहरि बोले–"मैंने क्या कपट किया? तुमने ही हरि रूप मांगा था। हरि तो वानर को भी कहा जाता है।"

"अहा, इस समय आपको समानार्थ सूझे! सबको ठग-ठगकर निर्भय हो गए हो, अत: शुभ-अशुभ कर्मों से नहीं डरते। अबकी बार साफ न निकलोगे। आपने मुझे स्त्री-वियोग की पीड़ा दी है तो मेरा भी श्राप है कि आपको भी स्त्री-वियोग का दुख सहना पड़ेगा और जो वानर रूप देकर मेरा उपहास कराया है, वही वानर आपके सहायक होकर यश को प्राप्त होंगे।" नारद ने क्रोधवश श्रीहरि को श्राप दे दिया।

कृपानिधान श्रीहरि ने देवर्षि के श्राप को शिरोधार्य किया और तत्काल अपनी माया समेटकर नारद का मोह दूर किया।

नारद को जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो ग्लानि के कारण रोने लगे और सब प्रकार से भगवान श्रीहरि की स्तुति करते हुए अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे।

"हे कृपासिंधु, हे दीनदयाल! मुझे आपने उबार लिया, परंतु अपने सिर श्राप न ले लिया। हे नाथ! मेरा श्राप मिथ्या हो जाए।" नारद करबद्ध होकर अनुरोध करते हुए बोले।

"मुनिवर! संताप न करें! यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है। जगत-कल्याण हेतु मुझे मनुष्य रूप में अवतार लेना था, क्योंकि मैं कश्यप और अदिति को ऐसा वचन दे चुका हूं कि मैं उनके पुत्र रूप में जन्म लूंगा। ऐसा ही वचन मैंने मनु और शतरूपा को भी दिया था। अब उन वचनों को पूरा करने का समय आ गया है, अत: उसके निमित्त कोई कारण तो होना चाहिए।"

"हे जगत के पालनहार! आप ही कण-कण में विराजमान हैं। आपने मुझ अकिंचन पर दया करके इस महाकाज का निमित्त बनाया, यह आपकी कृपा है, परंतु मेरा हृदय अशांत है। इसे शांत करें प्रभो!"

"मुनिवर! जाकर शिव शतनाम का जाप करो, आपका हृदय शांत हो जाएगा।"

नारद ने बार-बार श्रीहरि की स्तुति की और वहां से चले गए।

इस प्रकार गौरूपी पृथ्वी के सामने प्रभु अवतार के कारणों में से एक का ब्रह्माजी ने वर्णन किया।

"हे परम धीर पृथ्वी! नारदजी के श्राप के कारण शिव के दोनों गण ही अब रावण और कुंभकर्ण नाम के सुभट राक्षए हुए हैं और उनका वध करके तुम्हें संताप से मुक्त करने के लिए भगवान श्रीहरि ने अयोध्या में दशरथनंदन के रूप में जन्म लिया है,इसलिए थोड़ा और धैर्य धारण करो। मैं तुम्हें एक और प्राचीन कथा सुनाता हूं जिसमें इन राक्षसों के जन्म का कारण है।"

गौमाता बड़े मनोयोग से उन वृत्तांतों को सुन रही थीं।

11

ताड़का व अन्य राक्षसों का वध

उसी समय एक दिशा से भयानक राक्षसी अनेक राक्षसों सहित भीषण चीत्कार करती चली आई। दोनों वीर सुकुमारों ने बड़ी कुशलता और निर्भयता से तीक्ष्ण बाणों से उनका संहार करना आरंभ कर दिया। राक्षसों के सिर, धड़, भुजाएं कटकर भूमि पर गिरने लगे। राम ने एक तीक्ष्ण बाण से उस राक्षसी का वध कर दिया जिसका नाम ताड़का था। ताड़का का विशाल शरीर निर्जीव होकर गिरते ही राक्षसों में भगदड़ मच गई। पहले चरण का युद्ध समाप्त हो गया। राम द्वारा पृथ्वी का भार हरण करने का यह पहला अभियान था अर्थात् राक्षसों के अंत का शुभारंभ हो गया। अभी क्षण-भर भी न बीता था कि भयानक राक्षसों का दल आ गया। इस दल का नेतृत्व मारीच और सुबाहु नाम के भयानक राक्षस कर रहे थे। पहले धावे में शेष बचे राक्षसों ने उन्हें जाकर ताड़का के मरने की सूचना दी तो वे अति क्रोध में भरकर उसका वध करने वाले से प्रतिशोध लेने चल पड़े थे।

अयोध्या के आंगन में बाल-क्रीड़ाएं करते हुए राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न बालक से किशोर हो गए और गुरुकुल में विद्याध्ययन करके सभी वेद-विद्याओं में पारंगत हो गए थे। राजा दशरथ अपने प्रिय पुत्रों को देखकर हर्ष से फूले न समाते थे। कैकेयी के लिए तो वे नयनतारे थे, जो

क्षण-भर भी आंखों से ओझल हो जाते तो वे विकल हो जातीं और दास-दासियों को इधर-से-उधर दौड़ाती। अयोध्या-भर में चारों ओर आनंद वर्षा हो रही थीं।

एक दिन महर्षि विश्वामित्र का आगमन हुआ। राजा दशरथ ने उनका यथोचित सत्कार किया और विनयपूर्वक उनके पधारने पर आभार व्यक्त किया।

"राजन्! हम एक विशेष प्रयोजन से यहां आए हैं। आशा है कि आप हमें निराश नहीं लौटाएंगे, क्योंकि यह प्रयोजन संतजनों को सुख देने वाला है।" विश्वामित्र बोले।

"महामुने, आप आदेश करें। आपका यह सेवक सहर्ष प्रस्तुत है।"

"राजन्! वन में मुनिजन यज्ञ-तप आदि करते हैं। धर्म के विस्तार और जगत्-कल्याण के लिए योगी-तपस्वी वनखंडों में रहते हैं, परंतु अब राक्षसों का संक्रमण बढ़ गया है। सारा संसार ही उनके संताप से त्रस्त है। हम भी जिस वन में तप करते हैं, वहां सुबाहु और मारीच के साथ ताड़का नाम की राक्षसी ने मुनिजनों को बहुत त्रस्त किया है। वे यज्ञों का विध्वंस कर देते हैं और वेदियों में अभक्ष्य डाल देते हैं। विरोध करने पर मुनियों को शारीरिक कष्ट देते हैं या खा जाते हैं।"

"आह! ऐसा अनाचार! महर्षि आप आदेश करें तो मैं अभी आपके साथ सेना लेकर चलता हूं और उन क्रूरकर्मा राक्षसों को नरकधाम पहुंचाता हूं।"

"राजन्, आपकी सामर्थ्य पर हमें तनिक भी संदेह नहीं है, परंतु हम अयोध्या के भावी बल की परीक्षा भी करना चाहते हैं, अतः आप हमारे साथ राम और लक्ष्मण को भेज दो। हमारा कार्य उनसे भी सिद्ध हो जाएगा और इसका सुफल आपको प्राप्त होगा।"

राजा दशरथ का कंठ जैसे सूख गया—मुनि की इच्छा कष्टदायक थी।

"हे मुनिवर! आप जानते हैं कि मैंने आयु के चौथे चरण में पुत्र-सुख पाया है और मैं क्षण-भर भी अपने पुत्रों का वियोग सहन नहीं कर सकता, फिर राम-लक्ष्मण तो अभी बालक हैं, उनसे उन क्रूर, भयानक, मायावी राक्षसों का युद्ध न सधेगा। मैं आपका कार्य सहज ही सिद्ध करने का विश्वास दिलाता हूं।"

"राजन्!" विश्वामित्र तनिक कठोर स्वर में बोले—"अपने मोह को त्यागकर हमारे वचनों को शिरोधार्य करो। राम-लक्ष्मण आपके पुत्र हैं और आपकी पितृ-दृष्टि में वे सदैव अबोध बने रहेंगे, जबकि वास्तव में वे क्या हैं, यह हम जानते हैं। विधि ने जो कार्य जिसके लिए निश्चित किया है, वह कार्य उसी के द्वारा सिद्ध होना चाहिए।"

"मुनिश्रेष्ठ! आपने तो हमें धर्मसंकट में डाल दिया।" दशरथ करुण स्वर में बोले—"हम आपका कार्य सिद्ध करने में अपना कल्याण समझते हैं, परंतु...।

"राजन्! प्रतीत होता है कि अब रघुवंशी विकारग्रस्त हो रहे हैं। हम इससे पूर्व भी इस दरबार में आ चुके हैं और आपके पूर्वजों ने क्षण-भर में हमारी इच्छा की पूर्ति की थी। अब लगता है कि कुछ परिवर्तन आ रहा है।"

"ऐसा न सोचें मुनिवर! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। रघुकुल रीति में किंचित-मात्र भी परिवर्तन नहीं हो सकता। मैं क्षण-भर के लिए मोहग्रस्त हो गया था, परंतु इसका अर्थ यह नहीं हैं कि मैं धर्म से विमुख हो गया। आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करके मैं अपने प्रिय पुत्रों को आपके साथ भेजता हूं।" राजा ने दृढ़ता से कहा।

विश्वामित्र प्रसन्न हो गए, फिर राम-लक्ष्मण ने माता-पिता और गुरु की आज्ञा ली और अपने धनुष-बाण उठाकर विश्वामित्र के साथ चल पड़े।

विश्वामित्र अपने साथ चल रहे कुमारों की अनुपम झांकी का दर्शन पाकर अभिभूत हो रहे हैं। मार्ग में पड़ाव ले-लेकर मुनिवर उन्हें अनेक प्राचीन कथाएं सुनाते हैं, उनके कुल का पावन इतिहास बताते हैं। सत्यवादी हरिश्चंद्र, महाप्रतापी त्रिशंकु, अंबरीश आदि के सुंदर चरित्र सुनाते हैं। उन्हें धनुर्वेद के विषय में महत्त्वपूर्ण शिक्षा देते हैं और अभ्यास कराते हैं। इस प्रकार मार्ग तय करते हुए वे आश्रम पर पहुंचे।

"प्रिय राम और लक्ष्मण! तुमने मार्ग में राक्षसों द्वारा किए ध्वंसों के चिह्न देखे हैं। टूटे हुए आश्रम, वेदियां और मानव अस्थियां उन क्रूर दुष्ट राक्षसों के कुकृत्यों के प्रमाण हैं। जहां भी यज्ञवेदी से अग्नि की लौ और धुआं उठते देखते हैं, वहीं पहुंचकर विध्वंस मचा देते हैं।" विश्वामित्र ने बताया।

"गुरुदेव! आपके शिष्य उन दुष्टों को अपने तीक्ष्ण बाणों से मृत्यु की गोद में सुला देंगे। आप यज्ञवेदी में अग्नि प्रज्वलित करें और हम उन क्रूर राक्षसों के आने की प्रतीक्षा करते हैं।" राम ने कहा—"अनुज, तुम वायव्य कोण पर खड़े हो जाओ।"

दोनों भाइयों ने चारों दिशाओं को अपनी दृष्टि में भर लिया और यज्ञ रक्षक बनकर खड़े हो गए। महर्षि ने यज्ञवेदी में समिधा रखकर अग्नि का आह्वान किया और वेदी प्रज्वलित हो गई। मुनिवर मंत्रोच्चारण कर रहे थे।

उसी समय एक दिशा से भयानक राक्षसी अनेक राक्षसों सहित भीषण चीत्कार करती चली आई। दोनों वीर सुकुमारों ने बड़ी कुशलता और निर्भयता से तीक्ष्ण बाणों से उनका संहार करना आरंभ कर दिया। राक्षसों के सिर, धड़, भुजाएं कटकर भूमि पर गिरने लगे। राम ने एक तीक्ष्ण बाण से उस राक्षसी का वध कर दिया जिसका नाम ताड़का था। ताड़का का विशाल शरीर निर्जीव होकर

गिरते ही राक्षसों में भगदड़ मच गई। पहले चरण का युद्ध समाप्त हो गया। राम द्वारा पृथ्वी का भार हरण करने का यह पहला अभियान था अर्थात् राक्षसों के अंत का शुभारंभ हो गया।

अभी क्षण-भर भी न बीता था कि भयानक राक्षसों का दल आ गया। इस दल का नेतृत्व मारीच और सुबाहु नाम के भयानक राक्षस कर रहे थे। पहले धावे में शेष बचे राक्षसों ने उन्हें जाकर ताड़का के मरने की सूचना दी तो वे अति क्रोध में भरकर उसका वध करने वाले से प्रतिशोध लेने चल पड़े थे। अरे, यहां तो कोई सेना नहीं है। केवल दो छोटे बालक छोटे धनुष लेकर खड़े थे।

सुबाहु व मारीच आश्चर्य में पड़ गए।

"इन दूध पीते बच्चों ने ताड़का को मार दिया।" सुबाहु आश्चर्य से बोला।

"मैं इनको मारकर इनका नरम-नरम मांस खाऊंगा और इस दुस्साहसी मुनि को तो उल्टा लटकाकर उसी अग्निकुंड में भूनूंगा।"

"हे सुकुमार बालको! तुम इस भिक्षुक मुनि के बहकावे में आकर इस मृत्यु-वन में क्यों चले आए, यह मुनि तो संसार द्वारा परित्यक्त है, परंतु तुम्हारे तो माता-पिता होंगे। तुम्हें मारने में हमारे निर्दयी हृदय भी संकोच कर रहे हैं, पर तुमने खिलवाड़ में हमारी प्रिय ताड़का को मारकर हमें घोर अप्रसन्न कर दिया है, अत: तुम पर दया नहीं की जाएगी।"

"अरे वाचाल क्रूरकर्मा सुबाहु!" राम ने गरजकर कहा—"दयालु बनकर अपने कुकर्मों का यशगान न कर। तुम दुष्टों ने इन वनवासियों को बहुत पीड़ित किया है, आज उसका दंड भोगना पड़ेगा। जिस प्रकार कटे वृक्ष की भांति यह राक्षसी पड़ी है, वैसे ही तुम्हारे भी शव भूमि पर लोटने वाले हैं। हे अनुज, इन दुष्टों को यह समझा दो कि हम दिखने में ही सुकुमार और दूध पीते बच्चे हैं, हमारे प्रलयंकारी बाण जब शरीर में धंसते हैं तो यम के पाश बन जाते हैं।"

"आक्रमण!" सुबाहु ने दांत किटकिटाए तो दोनों भाइयों ने भीषण बाण-वर्षा आरंभ कर दी।

लक्ष्मण के बाण तीखे थे और उन्होंने एक साथ अनेक बाण छोड़कर बहुत से राक्षस योद्धाओं को यमपुरी पहुंचा दिया। उनका रण-कौशल देखकर कई राक्षस तो जैसे स्तंभित हो गए। कब वे तुणीर में हाथ डालते, कब बाण को डोरी पर चढ़ाते और कब छोड़ते, इसका अनुमान तक न हो रहा था। उधर राम ने अनेक राक्षसों को धराशायी करके एक तीक्ष्ण फलवाले बाण से सुबाहु का शीश धड़ से अलग कर दिया। वह कटे वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ा और थोड़ी देर तड़पकर शांत हो गया, फिर राम ने एक फलविहीन बाण लिया और बड़े वेग से

मारीच को मारा, जो उसे उड़ाता हुआ ले गया और देखते-ही-देखते वह आंखों से ओझल हो गया। उन दोनों का यह परिणाम देखकर राक्षस दल भाग खड़ा हुआ, परंतु राम-लक्ष्मण के प्रहारों से वही जीवन बचा सका जिसका अभी कुछ जीवन शेष था। युद्ध समाप्त हो गया था। इस प्रथम विजय पर देवताओं ने पुष्प-वर्षा करके प्रभु श्रीराम और अनुज लक्ष्मण का स्तुतिगान किया।

विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न संपन्न हो गया था और वन राक्षसों से मुक्त हो गया। सभी वनवासी उनका गुणगान कर रहे थे। वन में शांति स्थापित हो गई थी। पुनः वहां आश्रमों का पुनरुद्धार हुआ और स्थान-स्थान पर वेदियां प्रज्वलित हो उठीं। मंत्रोच्चारण के सस्वर पाठ होने लगे। वहां श्रीराम के पराक्रम से धर्म की पुनर्स्थापना हो गई थी। सभी ने महर्षि विश्वामित्र का आभार व्यक्त किया, जो उन पराक्रमी राजकुमारों को वहां लेकर आए थे।

कुछ दिन और व्यतीत हुए। राम-लक्ष्मण ने वन-भ्रमण कर ऋषि-मुनियों के दर्शन किए और जिज्ञासु बनकर ज्ञान भी प्राप्त किया।

"वत्स! यहां का कार्य तो संपन्न हो गया।" एक दिन मुनि विश्वामित्र ने कहा—"अब यहां सर्वत्र शांति है। किसी राक्षस के यहां होने के चिह्न नहीं मिलते, परंतु राम! मेरी एक शंका का निवारण करो। युद्ध में तुमने अन्य राक्षसों पर तो तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया, परंतु मारीच को फलविहीन बाण से कहीं दूर फेंक दिया।"

राम मुस्कराए—बहुत ही रहस्यमयी पर स्निग्ध मुस्कान, जैसे कह रहे हों कि महर्षि सब कुछ जानकर भी कैसी अनभिज्ञता का प्रदर्शन कर रहे हैं। क्या वे नहीं जानते कि राक्षसों के दमन का यह महायज्ञ अंततः किस रणांगण में संपन्न होगा और वहां तक पहुंचने का मार्ग बनाने के लिए कितने निमित्त होंगे। मारीच भी वैसा ही एक निमित्त था जिसे इस महान लक्ष्य में अभी महती भूमिका निभानी थी। उसके द्वारा संसार को एक संदेश दिया जाना था कि अकल्पनीय वस्तु की इच्छा से उत्पन्न भ्रम से कैसा अनर्थ हो सकता है!

"प्रभो!" विश्वामित्र नतमस्तक हो गए—"आपकी महिमा अपरंपार है। समस्त जीवधारियों की गति, निवास और परिणाम आपके द्वारा पूर्व निर्धारित हैं। किसे कहां होना चाहिए, यह आपके अतिरिक्त और कौन जानता है।"

राम और लक्ष्मण परस्पर मुस्कराए।

"अब हमें यहां से प्रस्थान करना चाहिए राजकुमारो! हम तुम्हें जनकपुरी लेकर चलते हैं, जहां राजर्षि जनक की पुत्री सीता का भव्य स्वयंवर है। वहां की छटा ही निराली है। अवश्य ही वहां तुम्हारा मन रम जाएगा।" विश्वामित्र बोले।

"अहा गुरुदेव! हमारा हृदय भी ऐसे आयोजन को देखने की इच्छा रखता है। हमारी माता महारानी कैकेयी ने हमें अपने स्वयंवर की बात बताई थी, जो हमें बड़ी रोचक लगी थी। क्या इस स्वयंवर में कोई शर्त है गुरुदेव?"

"अवश्य ही वत्स! राजर्षि जनक के पास भगवान शिव का एक प्राचीन धनुष है जिसे शिव के अलावा कोई नहीं उठा सकता था। एक दिन सीता ने वह धनुष यूं ही उठाकर दूसरे स्थान पर रख दिया था। जब राजा जनक को इस बात का पता चला तो उन्हें घोर विस्मय के साथ अत्यंत गर्व भी हुआ। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि स्वयंवर में जो भी उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देगा, वही सीता का वर होगा।"

"अत्यंत रोचक!" लक्ष्मण ने बाल-सुलभ उत्साह दिखाया–" सुना है कि भगवान शिव का पिनाक नाम का यह धनुष अकेला ही कई अक्षौहिणी सेना का विनाश करने में सक्षम होता है। उसके दर्शन तो साक्षात् शिव के दर्शन हैं। गुरुदेव, अब विलंब न कीजिए। जाने कितनी दूर की यात्रा है। कहीं हम तब पहुंचें, जब धनुष-यज्ञ समाप्त भी हो गया हो। इस भूमंडल पर बलवानों की कमी नहीं है।"

"हे शेषावतार लक्ष्मण! तुम्हारा यह कौतूहल कितना विनोदप्रिय है।" विश्वामित्र ने बलिहारी हो जाने वाली दृष्टि से देखते हुए कहा–"क्या ऐसे महान यज्ञ कभी प्रभु की गरिमामयी उपस्थित के बिना संपन्न हुए हैं?"

लक्ष्मण ने अनुराग व श्रद्धा भरी दृष्टि से श्रीराम को देखा।

"हम कल प्रातः यहां से प्रस्थान करेंगे और कुछ ही दिनों में जनकपुरी पहुंच जाएंगे।" विश्वामित्र ने कहा।

"गुरुदेव, कोई ऐसा वृत्तांत सुनाएं, जो रुचिकर हो।"

मुनि विश्वामित्र ने उन्हें कई अति प्राचीन वृत्तांत सुनाए। इसके बाद सभी शयन को गए।

12

महर्षि गौतम का शाप

"एक स्त्री अपने पति को वेश से नहीं रस-स्पर्श और गंध से भी पहचानती है दुष्टा! तूने अपनी और उस कुटिल की दमित इच्छा को पूर्ण होने में अपनी स्वीकृति दी है। अपने दांपत्य जीवन में कभी हमने इस समय काम-सुख की चेष्टा नहीं की तो तुझे उसी समय संदेह क्यों न हुआ? इस अपराध में तू भी भागीदार है, अतः मैं तुझे श्राप देता हूं कि तू पाषाण की शिला हो जा। इस रूप में तेरी सभी आसक्तियां तो जीवित रहेंगी, परंतु पाषाण होने के कारण तू सदैव अतृप्त रहेगी।"

"नाथ! यह आपने बिना विचारे श्राप दिया है! उसी छली ने जब आपकी बुद्धि को मोह में डाल दिया और आप अपनी नित्यचर्या से भटक गए तो मैं मंदबुद्धि उसके कुप्रभाव को कैसे समझती? समय को जानने के और भी साधन हैं, केवल मुर्गे की बांग और चंद्रमा के प्रकाश से ही तो इसका निर्णय नहीं होता।"

जनकपुरी की यात्रा बड़ी उमंग के साथ आरंभ हो गई थी। राम-लक्ष्मण के मन में बड़ा उत्साह था। लीलाधर को तो लीला करनी थी। मर्यादाओं की स्थापना करनी थी। राम रूप में वे अयोध्या के राजकुमार थे। सामान्य मनुष्य की भांति उनका व्यवहार था। ईश्वर होने के दर्प का सदा अभाव था। वह स्थापित करना चाहते थे कि आत्मा और परमात्मा अभिन्न हैं।

विश्वामित्र इनके साथ चल रहे थे। मार्ग में पड़ने वाले तीर्थों के विषय में बता रहे थे। कोई आश्रम मिलता तो विश्राम लेकर मुनिसंगत करते और राम-लक्ष्मण का अयोध्या के राजकुमारों के रूप में परिचय देकर उनके परारक्रम का गुणगान करते। जो तत्त्व-सत्त्व जानते हैं, वे प्रथम दृष्टि में ही प्रभु को जान लेते हैं और हृदय से श्रद्धावनत् हो जाते हैं। कहीं वे पराक्रमी राजकुमारों के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं तो कहीं उनके दर्शन से ऋषि-मुनि धन्य हो रहे हैं। राजकुमार राम और प्रभु श्रीराम दोनों चरित्र एक साथ व्यवहार में हैं। पहला वे स्वयं निभा रहे हैं और दूसरा उनके भक्तों के द्वारा हृदयपटलों पर निभ रहा है।

मार्ग में एक प्राचीन आश्रम पड़ता है तो विश्वामित्र श्रद्धा से शीश झुकाते हैं। दोनों भाई भी उनका अनुसरण करते हैं। आश्रमवासी दौड़कर बाहर आते हैं और उस भव्य युगल को देखकर सम्मोहित हो जाते हैं। नेत्रों को स्वत: ही शीतल कर देने वाली अनुपम झांकी! दिव्य दर्शन!

"प्रभु, इस आश्रम को अपने चरण कमलों से पावन करें।" आश्रमवासी बोले–"हम आतुरता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गुरुदेव ने हमें बहुत समय पूर्व ही इस शुभ समय के विषय में बता दिया था।"

"यह परम पूज्य महर्षि गौतम का आश्रम है।" विश्वामित्र ने बताया–"यह वह स्थान है, जहां सभी शंकाओं का समाधान हो जाएगा। यहीं से भगवान नारायण के नर रूप में अवतार लेने का निर्विवाद सत्य उद्घोषित होगा। समस्त संसार के प्राणी यहां से नि:शंक होकर स्वीकार करेंगे कि उनका उद्धारक आ गया।"

राम ने महर्षि के वचनों का आशय समझा।

"गुरुदेव! आप रहस्यमय बात कर रहे हैं।" लक्ष्मण ने चपलता दिखाई–"जाने किस शंका की बात कर रहे हैं। महामना महर्षि गौतम के विषय में हमने माता कैकेयी से सुना है। बड़े ही पुण्यवान ऋषि थे और उनकी पत्नी...क्या नाम था, स्मरण नहीं आ रहा...बड़ी ही धर्मपरायण व पतिव्रता नारी थीं जिन्हें इंद्रादि के छल के कारण अपने पति के श्राप से पाषाण होना पड़ा।"

"उस महान पतिव्रता नारी का नाम अहिल्या था कुमार लक्ष्मण! वह देखो, वे आज भी पाषाणमूर्ति बनी अपने उद्धारक की प्रतीक्षा कर रही हैं। कितने युग बीत जाने के पश्चात् आज वह पवित्र मुहूर्त आया है।" विश्वामित्र ने गंभीर स्वर में कहा।

राम और लक्ष्मण ने देखा कि कुछ ही दूरी पर एक स्त्री रूपी पाषाण शिला पड़ी है। दोनों भाइयों ने उसे श्रद्धा से सिर नवाया।

"गुरुदेव!" लक्ष्मण ने उत्सुकता व्यक्त की–"हमें माता कैकेयी ने इस कथा के विषय में बताया था, परंतु तब हम छोटे थे। क्या आप हमें विस्तार से बता सकते हैं?"

"अवश्य कुमार लक्ष्मण!" विश्वामित्र ने कहा–"अहिल्या परमपिता ब्रह्मा की मानस पुत्री थीं, जो अत्यंत सुंदर थीं। जब वे विवाह योग्य हुईं तो उनसे विवाह करने की इच्छा में देव, दानव, यक्ष, गंधर्वादि ब्रह्माजी के पास जाकर विनती करने लगे। ब्रह्माजी असमंजस में पड़ गए। एक-से-एक श्रेष्ठ वर थे, अत: किसे स्वीकार करें और किसे अस्वीकार करके उसका अपमान करें। अत: ब्रह्माजी ने अहिल्या का स्वयंवर करने के विचार से शर्त रखी कि जो भी सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा पूरी कर आएगा, वही अहिल्या का वरण करेगा। सभी प्रतियोगी अपने-अपने वाहन से चल पड़े। इन्हीं में अग्निपुत्र गौतम भी थे। उनके पास कोई वाहन न था, परंतु तप का बल था। वे बड़ी द्रुतगति से जा रहे थे कि मार्ग में एक अकेली गाय को प्रसव-वेदना से पीड़ित देखा। पास ही सियार और भेड़िये खड़े थे। दयालु ऋषि ने अपना उद्देश्य छोड़कर गौमाता को सुरक्षित किया और उसके प्रसव को संपन्न कराया, फिर वह स्वयंवर का परिणाम जानने हेतु वहां पहुंचे।"

अहिल्या के स्वयंवर का समापन हो चुका था, केवल अभी वरमाला डालने की तैयारी चल रही थी। इंद्र विजेता थे। सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके लौटे थे और मुदित मन से अहिल्या के रूप-सौंदर्य की कल्पना कर रहे थे।

"नारायण-नारायण!" देवर्षि नारद का आगमन हो गया था और उसी क्षण से इंद्र का हृदय प्रकंपित हो रहा था। देवर्षि किसी भी शुभ कार्य में बिना मांगे परामर्श जो देते थे।

"परमपिता!" देवर्षि ने संदेह भरे स्वर में कहा–"हमें प्रतीत होता है कि नीति के अनुसार यहां वर का चयन नहीं हुआ। जो दिखाई देता है, वह सदैव ही सत्य नहीं होता, अत: ऐसे निर्णय बहुत विचारकर लिये जाने चाहिए।"

"देवर्षि आप मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं।" इंद्र अप्रसन्नता से बोले–"आप सृष्टि के सृजनहार के निर्णय पर संदेह कर रहे हैं।"

"देवराज!" देवर्षि नारद ने कहा–"आप नि:संदेह सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा कर आए हैं, परंतु एक दीनदयालु, सबकी पीड़ा हरने वाला, आपसे भी पहले यह कार्य संपन्न का चुका था। नारायण-नारायण! परमपिता ने अपने प्रतियोगियों में किसी गुण का निर्धारण न किया और न इसकी परीक्षा की, परंतु मैंने की। अहिल्या मेरी भगिनी है प्रभो, मुझे यह अधिकार है।"

प्रजापति ब्रह्मा ने देवर्षि की इस बात का अनुमोदन किया।

"परमपिता, मैंने परिक्रमा मार्ग पर गौ रूप में पृथ्वी को प्रसव वेदना से पीड़ित होते पड़े रहने की विनती की थी। अपने कुछ विश्वस्त गणों को वहां

हिंसक पशुओं के रूप में भेजा। देवराज, क्या उस गौमाता ने आपसे कुछ याचना की थी?"

देवराज इंद्र मौन रह गए, जो उनकी स्वीकारोक्ति थी।

"परमपिता!" नारद ने बताया—"उस असुरक्षित और प्रसव पीड़ा से जूझती हुई गौमाता की पुकार अनसुनी करके देवराज सहित अन्य सभी प्रतियोगी आगे बढ़ गए, परंतु मुनि गौतम ने ऋषियोचित दया दिखाई और अपना उद्देश्य छोड़कर उस गौमाता को पीड़ा से मुक्ति दी। उसका प्रसव कराया और इस क्रिया में उनके द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण हो गई, जो अन्य प्रतियोगियों की अपेक्षा कम समय में ही पूर्ण कर ली गई थी। अत: शर्तानुसार वही अहिल्या के वरण के अधिकारी हैं।"

प्रजापति ब्रह्मा ने गंभीरता से विचार किया और निर्णय किया कि जो अपने स्वार्थ में किसी पीड़ित की पुकार अनुसनी कर दें, वे हृदयहीन होते हैं और अहिल्या किसी हृदयहीन के साथ जीवन कैसे व्यतीत कर सकेगी? अत: मुनि गौतम ही उसे वरण करने के सच्चे अधिकारी हैं। अहिल्या का पाणिग्रहण ऋषिवर के साथ हुआ और वे अपने आश्रम पर आकर आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। अहिल्या पतिव्रता और अत्यंत सुशीला नारी थीं।

उधर इंद्र को अहिल्या का प्राप्त न होना सता रहा था। वह कामाग्नि से पीड़ित था। उसे नारद पर क्रोध आ रहा था जिनके कारण त्रैलोक्य सुंदरी के अनुपम सौंदर्य का भोग एक साधु को प्राप्त हुआ। इंद्र ने अपने मित्र चंद्रमा से अपनी विरह व्यथा कही और कोई उपाय सुझाने की विनती की।

"देवराज! अब तो वही उपाय शेष है, जो दैत्य जलंधर की पत्नी वृंदा के साथ किया गया था अर्थात् छल से अपनी मनोकामना सिद्ध करो। मैं तुम्हारा सहायक हूं। एक योजना मेरी समझ में आ रही है। मुनि गौतम ब्रह्ममुहूर्त में गंगास्नान के लिए जाते हैं। हम यदि उपाय करें तो...।" चंद्रमा ने बताया।

दोनों छली देवता रात्रि के तीसरे प्रहर के आरंभ होते ही मुनि गौतम के आश्रम की ओर आ गए। इंद्र ने मुर्गे का रूप धारण करके बांग दी और चंद्रमा ने अपनी शीतलता मंद कर दी, जैसे कि उस समय होनी चाहिए थी। मुर्गे की बांग सुनकर ऋषिवर अपनी नित्यक्रिया के अनुसार आश्रम से गंगातट की ओर चले गए। इंद्र ने उनका रूप धारण किया और आश्रम में प्रवेश कर गया। चंद्रमा प्रहरी बनकर सजग रहा। अहिल्या उस छल को कैसे समझती, अत: उसने स्वयं को समर्पित कर दिया, जैसा एक पत्नी का धर्म है।

गौतम ऋषि ने गंगा में जाकर आचमन ही किया था कि स्वयं गंगाजी प्रकट हो गईं।

"मुनिवर! यह कौन-सा समय है? तुम समस्त नियम-उपनियमों को जानने वाले हो, फिर ऐसी भूल कैसे कर दी?" गंगा ने कहा।

"माते! मैं तो नित्य-प्रति इसी समय आता हूं।"

"मुनिवर! अभी तीसरा प्रहर चल रहा है। तुम्हारे साथ छल हुआ है। इंद्र और चंद्रमा ने मिलकर तुम्हें भ्रमित कर दिया है। इंद्र तुम्हारा रूप धरकर...।"

मुनि गौतम सब समझ गए और तत्काल क्रोध में भरकर आश्रम की ओर दौड़ पड़े। चंद्रमा ने उन्हें आते देखा तो इंद्र को सूचित किया और स्वयं भागा, परंतु मुनिवर ने अपने गीले वस्त्र उसे फेंककर मारे जिससे वह सदैव के लिए कलंकित हो गया। इंद्र भी निकलकर भागा तो मुनि ने उन्हें श्राप दे दिया।

"छली इंद्र! तेरे इस कुकृत्य का फल मैं तुझे श्राप रूप में देता हूं। तू हजारों खंडों में विभक्त हो जाएगा और कहीं आदर का पात्र न होगा।"

अहिल्या भय से थर-थर कांपती हुई बाहर आई। वह अपने साथ हुए छल को तभी समझ गई, जब उसके साथ आनंदरत मुनि वेशधारी किसी सांकेतिक स्वर को सुनकर भाग लिया था। वह तभी कंपित हो गई थी, फिर मुनिवर का क्रोधपूर्ण स्वर सुना और इंद्र का नाम सुना तो स्पष्ट ही हो गया। सामने क्रोध से कांपते मुनि गौतम खड़े थे और अहिल्या अपराधी भाव सिर झुकाए खड़ी थी।

"न...नाथ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं। वह आपके वेश में था।" वह बोली।

"एक स्त्री अपने पति को वेश से नहीं रस-स्पर्श और गंध से भी पहचानती है दुष्टा! तूने अपनी और उस कुटिल की दमित इच्छा को पूर्ण होने में अपनी स्वीकृति दी है। अपने दांपत्य जीवन में कभी हमने इस समय काम-सुख की चेष्टा नहीं की तो तुझे उसी समय संदेह क्यों न हुआ? इस अपराध में तू भी भागीदार है, अत: मैं तुझे श्राप देता हूं कि तू पाषाण की शिला हो जा। इस रूप में तेरी सभी आसक्तियां तो जीवित रहेंगी, परंतु पाषाण होने के कारण तू सदैव अतृप्त रहेगी।"

"नाथ! यह आपने बिना विचारे श्राप दिया है! उसी छली ने जब आपकी बुद्धि को मोह में डाल दिया और आप अपनी नित्यचर्या से भटक गए तो मैं मंदबुद्धि उसके कुप्रभाव को कैसे समझती? समय को जानने के और भी साधन हैं, केवल मुर्गे की बांग और चंद्रमा के प्रकाश से ही तो इसका निर्णय नहीं होता।"

मुनिवर के क्रोध को झटका लगा। अहिल्या का तर्क उचित था। कपट करने वाले अपनी माया से बुद्धि भ्रमित करते हैं, लेकिन श्राप तो मिथ्या न हो सकता था।

"अहिल्या! संभवतः तुम सत्य कह रही हो। आज के बाद कोई मुर्गे की बांग और चंद्रमा की गति पर विश्वास नहीं करेगा। प्रिये, मेरा श्राप तो मिथ्या नहीं होगा, परंतु तुम्हारे उद्धार हेतु मैं उपाय करता हूं। त्रेता में जब भगवान श्रीराम यहां आएंगे तो उनके स्पर्श से तुम अपना रूप पाकर स्वर्ग में मुझे प्राप्त करोगी।"

इस प्रकार विश्वामित्र ने अहिल्या की कथा सुनाकर लक्ष्मण को संतुष्ट किया।

श्रीराम ने आगे बढ़कर पाषाण-शिला से अपने चरण का स्पर्श किया तो वह शिला परम सुंदर स्त्री बन गई और प्रभु को शीश झुकाकर आकाश मार्ग की ओर चली गई, जहां एक दिव्य विमान उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

भक्त-वत्सल भगवान श्रीराम ने अहिल्या का उद्धार कर दिया था।

13

दशानन के पूर्व जन्म की कथा

"अरे नीच पातकी राजा! तूने ब्राह्मणों का धर्म भ्रष्ट करने का कुचक्र रचा। आज ईश्वर ने हमें बचा लिया। जा, तू परिवार सहित मांसभक्षण करने वाला राक्षस हो।"

राजा प्रतापभानु सिर पकड़कर बैठ गए। ब्राह्मणों के श्राप के भय से उसके मुंह से बोल न फूटा जिससे वे स्वत: अपराधी माने गए। यद्यपि प्रत्यक्ष में उनका कोई दोष नहीं था, परंतु ब्राह्मणों का श्राप कैसे निष्फल हो सकता था? अत: वही राजा प्रतापभानु, रावण के नाम से और उसका अनुज अरिमर्दन कुंभकर्ण के नाम से त्रेतायुग में पराक्रमी राक्षसों के रूप में प्रसिद्ध हुए।

गौ रूपी पृथ्वी को राम जन्म के कारण और रावण के पूर्वजन्मों को वृत्तांत बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं–

"हे सृष्टिधारिणी पृथ्वी!" ब्रह्माजी बोले–"बहुत प्राचीन समय में भगवान विष्णु के परम भक्त, सदैव गतिशील सनकादिक (सनत, सनंदन, सनातन व सनत्कुमार) मुनि एक बार प्रभु दर्शन के लिए वैकुंठ लोक पहुंचे। वहां भगवान विष्णु के द्वारपाल जय-विजय ने उन्हें वैकुंठ में प्रवेश करने से रोक दिया। उनके सब प्रकार समझाने पर भी अहंकारवश अपना हठ न छोड़ा। तब प्रत्येक ऋषि ने उन्हें भीषण राक्षस होने का श्राप देना आरंभ किया और अभी तीन ऋषि ही श्राप दे पाए थे कि भगवान विष्णु ने वहां आकर मुनियों

का क्रोध शांत किया। अत: जय-विजय को तीन जन्मों तक राक्षस होने का श्राप भोगना पड़ा। पहले जन्म में वे हिरण्यकश्यपु व हिरण्याक्ष हुए, दूसरे जन्म में जलंधर व तीसरे जन्म में रावण व कुंभकर्ण के नाम से संसार को त्रास देने वाले हुए।"

गौमाता ने जलंधर का भीषण त्रास भी सहा था और वह उसके विषय में जानती थी। राक्षस कुल में जन्मे जलंधर की पत्नी का नाम वृंदा था, जो अत्यंत सती व पतिव्रता स्त्री थी। उसके सतीत्व और तप के प्रभाव से ही जलंधर का बल और स्वेच्छाचारिता बढ़ती जा रही थी। तीनों लोक उसके त्रास से त्रस्त थे, तब देवताओं के अनुनय-विनय पर श्रीहरि ने अपनी माया के द्वारा जलंधर का वेष धारण किया और वृंदा की बुद्धि को मोहग्रस्त करके उसका सतीत्व भंग किया था। इसके बाद ही जलंधर मारा गया था और तीनों लोकों में शांति स्थापित हुई थी।

"हे जगतधारिणी!" ब्रह्माजी ने कहा—"रावण व कुंभकर्ण के जन्म का एक और कारण था। प्राचीन समय में कैकेय देश में सत्यकेतु नाम का एक धर्मशील राजा था। उसके दो पराक्रमी पुत्र प्रतापभानु और अरिमर्दन थे, जो अपने पिता के समान ही धर्मनिष्ठ, प्रजा-वत्सल और प्रभु-भक्त थे। समय आने पर राजा सत्यकेतु ने वानप्रस्थ धारण किया और अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रतापभानु को राज्य देकर वन की ओर चले गए। राजा प्रतापभानु ने अपने पराक्रम से राज्य का विस्तार किया और अनेक राजाओं को अपने अधीन करके यश में वृद्धि की। इससे एक शत्रु राजा उससे प्रतिशोध लेने की ताक में रहता था। उस शत्रु राजा का एक मित्र कालकेतु राक्षस था। दोनों मिलकर अवसर की खोज में रहते थे। एक दिन राजा प्रतापभानु आखेट के लिए वनखंड में गए तो कालकेतु ने शूकर का वेश धारण कर उसे अपनी ओर आकर्षित किया और उसे घनघोर जंगल की ओर ले चला...।"

राजा प्रतापभानु ने जीवन में बहुत आखेट किए थे जिनमें उन्होंने बब्बर शेर तक शिकार किया था, परंतु आज वह शूकर उन्हें बहुत छल रहा था। वह न तो दूर ही जाता था और न ही लक्ष्य की सीध में आता था। कभी दिख जाता था और कभी अदृश्य हो जाता था। राजा उसके खिलवाड़ पर और भी दृढ़ निश्चयी हो जाते थे और अपने अश्व को और तेज दौड़ा रहे थे। सारा दिन यही खिलवाड़ चलता रहा और सूर्यास्त होने पर शूकर लुप्त ही हो गया। राजा ने दिशा और स्थान का ज्ञान किया। साथी कहीं पीछे छूट गए थे। अंधेरी रात थी और वे नितांत अपरिचित और निर्जन वन में थे। जहां ऐसा विकराल शूकर रहता था, वहां और भी अनेक हिंसक पशु हो सकते थे। यद्यपि राजा को इससे भय नहीं था, परंतु चिंता थी कि उसका खोजी दल खतरे में पड़ सकता था। वे अश्व को लेकर अनुमान से ही चल पड़े, परंतु कहीं दूर आग जलने का प्रकाश देखकर आशा बंधी और वे उसी ओर आ गए। वहां एक कुटिया

थी, जहां धूनी जल रही थी और एक मुनि समाधिलीन थे। रात्रि विश्राम की समस्या तो दूर हो गई थी और मुनि-संगत का लाभ भी मिलने वाला था, राजा ने सोचा।

"आपका स्वागत है चक्रवर्ती सम्राट प्रतापभानु!" मुनि का गंभीर स्वर उभरा–"आप वहां क्यों खड़े हैं? आइए, इस पर्णकुटी को कृतार्थ कीजिए।"

राजा को क्षणिक आश्चर्य तो हुआ कि मुनि उसका नाम-पता सब जानते हैं, परंतु यह मुनियों के लिए साधारण बात थी। वे मुनि के चरणों में नतमस्तक हो गए।

"राजन्! अवश्य ही किसी चतुर आखेट ने दिशा-भ्रम उत्पन्न कर दिया है।" मुनि ने कहा–"पर यह सब ईश्वर की प्रेरणा से होता है। किसे, कब, कहां होना चाहिए–यह श्री प्रभु ही निर्धारित करते हैं। जो भी होता है, अच्छे के लिए होता है। आप थक गए होंगे, अत: जलपान करके विश्राम करें। वह शीतल जल का घड़ा रखा है।"

राजा ने शीतल जल पीकर स्फूर्ति का अनुभव किया।

"कुटी में कुछ फलादि रखे हैं राजन्! नित्य-प्रति देवगण मेरे भोजन हेतु दिव्य फल रख जाते हैं, परंतु मैं केवल वायुसेवन करता हूं और कोई आप जैसा अतिथि इधर आ जाता है तो आतिथ्य हो जाता है। आप भोजन करें।"

राजा ने फलाहार करके तृप्ति का अनुभव किया। तत्पश्चात् मुनि ने धर्म संबंधी व्याख्यान देकर स्वयं को सिद्धपुरुष सिद्ध किया। राजा उसका भक्त हो गया था, जब उसने अमरत्व को भी साधारण सिद्धि उपाय द्वारा संभव बता दिया।

"मुनिवर, अमरत्व तो स्वयं देवताओं को भी दुर्लभ है और आप कह रहे हैं कि यह साधारण उपाय से ही संभव है।" राजा उत्सुकता से बोला–"यदि साधारण उपाय से ही संभव होता तो यम देवता तो कर्मच्युत हो जाते।"

"राजन्, उपाय साधारण ही है, परंतु सर्वसुलभ नहीं है। यम के नियमों से बंधा हुआ यह उपाय किसी पुण्यवान को ही सुलभ होता है। आप मेरे विषय में नहीं जानते हैं। मैं देवताओं का रसोइया पाकसेन हूं, जो सभी सुखों से विरक्त होकर इस निर्जन वन में प्रभु की भक्ति में लीन हूं। जब मेरे द्वारा बनी रसोई से लक्ष ब्राह्मणों ने भोजन किया तो उनके आशीर्वाद से इंद्र ने अमरत्व पाया। मेरे द्वारा बनी रसोई को ब्राह्मणों को परोसने के कारण दैत्यराज बलि अमर हुए। अब आप सोचिए कि यह उपाय साधारण होकर भी सर्वसुलभ तो नहीं है। संसार में श्रीप्रभु ने संयोग की उत्पत्ति अकारण नहीं की। कारण ही कार्य का निमित्त होता है।"

"हे दयानिधान! आज तक अपने जीवन में कभी आखेट में असफल न होने वाले प्रतापभानु को संभवत: प्रभु-कृपा से ही आपका सान्निध्य प्राप्त हुआ है। अब आप ही मेरे जीवन की नैया को पार लगा सकते हैं। हे कृपानिधान! आप मुझे वह उपाय और मार्ग बताइए जिससे मुझे भी अमरत्व प्राप्त हो जाए।" राजा ने विनती की।

"राजन्, आप मेरे अतिथि हैं और अतिथि की इच्छा पूरी करना मेरा धर्म है, परंतु इस कार्य में गोपनीयता आवश्यक है। किसी को मेरे विषय में पता नहीं चलना चाहिए। मैं आपको अपने योग-बल से आपके राजभवन पहुंचा दूंगा, आप वहां जाकर सब तैयारी करेंगे और ब्राह्मणों को निमंत्रण देंगे। मैं समय पर रसोइए के रूप में पहुंच जाऊंगा और आपका कार्य सिद्ध करके लौट आऊंगा।"

"आपकी इस कृपा का मैं सदैव ऋणी रहूंगा।"

"अब आप थोड़ी देर निद्रा ले लें।"

राजा सो गया, तब राक्षस कालकेतु वहां आया। दोनों कपटियों ने मिलकर जाल रच दिया था। राजा को सोते हुए ही उठाकर कालकेतु ने उनके महल में पहुंचा दिया। जब उनकी नींद खुली तो स्वयं को महल में पाकर हर्ष से भर गए कि मुनि वास्तव में ही तपोबली और सिद्ध हैं। उन्होंने ब्राह्मणों के महाभोज की तैयारी शुरू कर दी। नियत समय पर वे मुनि रसोइए के वेश में आ गए थे। राजा ने उनके लिए एकांत रसोइघर बनाई थी और मुनि के आदेशानुसार किसी अन्य के वहां जाने की आज्ञा नहीं थी। मुनि ने कहा था कि उनकी सहायता देवताओं के सहायक रसोइए करेंगे। गोपनीयता बनाए रखने के लिए अलग से भी रसोई बनाई जा रही थी। राजा बड़ा प्रसन्न था।

रसोई में कपटी मुनि को राक्षस कालकेतु ने भांति-भांति के मांस और अभक्ष्य लाकर दे दिए और वह मांसाहारी व्यंजन बनाता रहा।

ब्राह्मण भोजन के लिए आ गए थे। राजा प्रतापभानु ने स्वयं सभी को भोजन परोसा और ग्रहण करने की विनती की। ब्राह्मणों ने जैसे ही पहला ग्रास उठाया और खाने को उद्यत हुए, तभी कालकेतु ने गरजकर भविष्यवाणी की।

"अरे ब्राह्मणो! इस विषाक्त भोजन को मत खाना। जानवरों की चर्बी से बनी खीर और मांस से सब्जी बनी है। खाते ही धर्मभ्रष्ट हो जाओगे।"

ब्राह्मण सभा में हड़कंप मच गया। राजा प्रतापभानु स्तंभित हो गए।

"अरे नीच पातकी राजा! तूने ब्राह्मणों का धर्म भ्रष्ट करने का कुचक्र रचा। आज ईश्वर ने हमें बचा लिया। जा, तू परिवार सहित मांसभक्षण करने वाला राक्षस हो।"

राजा प्रतापभानु सिर पकड़कर बैठ गए। ब्राह्मणों के श्राप के भय से उसके मुंह से बोल न फूटा जिससे वे स्वतः अपराधी माने गए। यद्यपि प्रत्यक्ष में उनका कोई दोष नहीं था, परंतु ब्राह्मणों का श्राप कैसे निष्फल हो सकता था? अतः वही राजा प्रतापभानु, रावण के नाम से और उसका अनुज अरिमर्दन कुंभकर्ण के नाम से त्रेतायुग में पराक्रमी राक्षसों के रूप में प्रसिद्ध हुए।

14

माता पार्वती का आशीर्वाद

'हे जगत्माता पार्वती!' सीता मन में कह रही थी–'मेरे मनोरथ को आप भली-भांति जानती हैं, क्योंकि आप सबके हृदय में निवास करती हैं। सर्वज्ञ माता से यही प्रार्थना है कि मेरा कल्याण करें।' माता पार्वती की पुष्पमाला से एक पुष्प सीता की अंजुरी में गिरा तो सीता का हृदय पुलकित हो गया। यह माता पार्वती का आशीर्वाद था। मनोकामना सिद्ध होने पर कौन प्रसन्न नहीं होता! वे भी अपने मन का मयूर नचा रही थी। मंदिर से बाहर आकर एक बार फिर मन में बसी उस मोहिनी सूरत को देखने की इच्छा हुई।

सती अहिल्या का उद्धार करके प्रभु श्रीराम और अनुज लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुंचे। जनकपुर की शोभा देखकर दोनों भाई हर्षित हो गए। जैसे इंद्र की अमरावती की शोभा थी, वैसे ही जनकपुरी की साज-सज्जा थी। अनेक अतिथिशालाएं, उद्यान, स्वागत-कक्ष और विश्रामगृह बने हुए थे। विश्वामित्र दोनों भाइयों को लेकर एक अतिथिगृह में ठहर गए। रात्रि-विश्राम में दोनों भाइयों ने नगर के देखे हुए भागों की शोभा का वर्णन किया और अंततः लक्ष्मण ने अपने अग्रज से विनयपूर्वक नगर-भ्रमण की इच्छा व्यक्त की।

प्रातःकाल सभी नित्यकर्मों से निवृत्त होने के पश्चात् प्रभु श्रीराम ने गुरु-चरणों की वंदना की और उनसे अनुज व अपनी इच्छा व्यक्त की।

"गुरुदेव! यदि आपकी आज्ञा मिले तो मैं अनुज लक्ष्मण को नगर-भ्रमण कराकर ले आऊं! इस नगरी की शोभा अवर्णनीय है और इसे समीप से देखने की हमारी अत्यधिक इच्छा हो रही है।" राम ने गुरु विश्वामित्र से सविनय पूछा।

"अवश्य राम! जनकपुरी के मार्गों को अपनी चरण-रज से पवित्र करो।"

दोनों सुकुमार वहां से चल दिए। जो भी व्यक्ति इस सुंदर जोड़ी को देखता, वही सम्मोहित हो जाता। मुनिवेश में जैसे साक्षात् कामदेव किशोरमय बन गए हों। नगर की नर-नारियां एक-दूसरे से जानकर इस मनमोहिनी झांकी को देखने चले आते थे और विस्मय व मुग्धता से उन्हें देखते। श्याम वर्ण के राम और गौर वर्ण के लक्ष्मण की यह जोड़ी सूर्य की भांति दीप्त हो रही थी। रमणियों के हृदय में जहां आकर्षण था, वही प्रौढ़ाओं का वात्सल्य उमड़ रहा था। इसी प्रकार भ्रमण करते-करते राम-लक्ष्मण राजसी उद्यान की ओर चले आए। उस उद्यान की शोभा भी दर्शनीय थी। भांति-भांति के वृक्ष, लताएं, पुष्प, पत्र आदि थे। वहीं एक अत्यंत रमणीक सरोवर भी था।

"अहा!" लक्ष्मण हर्षित होकर बोले—"भैया, ऐसा सुंदर उद्यान तो संभवत: हमारा भी नहीं है। क्या हम यहां से कुछ पुष्प चुन सकते हैं?"

"अनुज! हमें माली से आज्ञा लेनी होगी। बिना आज्ञा किसी की कोई वस्तु लेना उचित नहीं।" राम ने कहा।

"ठीक है भैया! तब हमें माली से आज्ञा ले लेनी चाहिए।"

राम-लक्ष्मण माली के पास गए और विनयपूर्वक अपनी इच्छा बताकर पुष्प चुनने की आज्ञा प्राप्त की, फिर प्रसन्न मन से पुष्प चुनने लगे। यही वह समय था, जब जनकनंदिनी सीता अपनी माता की आज्ञा से गिरिजा-पूजन के लिए सभी सखियों सहित वहां आईं। उसी उद्यान में सरोवर के समीप गिरिजा का सुंदर मंदिर था। सीता की सखियां मीठी वाणी में गीत गा रही थीं। इसी समय एक सखी पूजन के लिए पुष्प लेने गई। वह अभी फूल चुन भी न पाई थी कि उसकी दृष्टि पुष्पवाटिका के दूसरे छोर पर फूल चुनते राम-लक्ष्मण की जोड़ी पर पड़ी तो वह जैसे सम्मोहित हो गई। वह एकटक उन्हें ही देखे जा रही थी। ऐसे सुकुमार उसने पहले कभी न देखे थे। उसने जल्दी से कुछ पुष्प चुने और बौराई-सी वापस सीता के पास आई।

"अरे, तू पुष्प चुनने गई थी।" एक सखी ने कहा—"तुझे तो किसी सुगंध ने बौरा दिया लगता है, जो बावली-सी हो रही है।"

"सखी! बाग में दो सुंदर सुकुमार पुष्प चुनने आए हैं। उनकी मोहिनी छवि देखकर मेरा हृदय पुलकित हो रहा है। मेरी सुधि जाती रही।"

"उनकी तो नगर-भर में चर्चा हो रही है। वे मुनि विश्वामित्र के साथ आए हैं। क्या वे इसी उद्यान में ही हैं। अहा, चलो देखते हैं।"

सीता का हृदय भी उत्कंठा से भर गया। गिरिजा की प्रार्थना कर उन्होंने मन-ही-मन अपने इच्छित वर के प्रथम दर्शन की आज्ञा मांगी। सखियों से अपने भावों को छुपाती, परंतु हृदय में विचित्र-सी हलचल का अनुभव करती हुई सीता जब वहां पहुंची तो दोनों सुकुमारों की पीठ उनकी ओर थी। जब सीता ने धीरे से अपनी पाजेब को खनकाया तो दोनों भाई उस ओर मुड़े। राम और सीता के नेत्र मिले और बिना किसी के जाने परस्पर हृदय में अभिनंदन हो गया। दोनों के नेत्र जैसे झपकना भूल गए थे। सखियां सीता की ओर देखकर मुस्करा रही थीं और लक्ष्मण अपने भाई की मुग्धता पर आनंदित हो रहे थे। राम और सीता के हृदय परस्पर बदल गए थे। यह स्थिति बहुत समय तक रही, जैसे सबकी वाणी मौन हो गई थी।

"अरे जनकनंदिनी! अब पूजन कर लो।" एक सखी ने तंद्रा भंग की–"माता गिरिजा से अपने मन की प्रार्थना करना और सुख प्राप्त करना।"

सीता सकुचा गई और लौटकर मंदिर में आई। नेत्रों के समक्ष वह श्यामल मूर्ति जैसे स्थायी हो गई थी। हृदय आकुल हो रहा था। बार-बार जाकर उन्हें देखने की इच्छा हो रही थी, परंतु लज्जा के कारण दृष्टि उधर न उठती थी। सखियां उनकी इस दशा पर आपस में नेत्रों से बतिया रही थीं, फिर गिरिजा-पूजन किया और अपनी प्रार्थना में राम को ही वर रूप में पाने की इच्छा की।

'हे शिवप्रिया! हे जगत्माता पार्वती, हे गिरिजा!' सीता मन-ही-मन कह रही थी–'मेरे मनोरथ को आप भली-भांति जानती हैं, क्योंकि आप सबके हृदय में निवास करती हैं। सर्वज्ञ माता से यही प्रार्थना है कि मेरा कल्याण करें।'

माता पार्वती की पुष्पमाला से एक पुष्प सीता की अंजुरी में गिरा तो सीता का हृदय पुलकित हो गया। यह माता पार्वती का आशीर्वाद था। मनोकामना सिद्ध होने पर कौन प्रसन्न नहीं होता! वे भी अपने मन का मयूर नचा रही थी। मंदिर से बाहर आकर एक बार फिर मन में बसी उस मोहिनी सूरत को देखने की इच्छा हुई।

राम-लक्ष्मण पुष्प चुनकर उद्यान से बाहर जा रहे थे। सीताजी व्याकुल हो रही थीं कि प्रभु एक बार अपने कमलनयनों की दृष्टि से पुनः तृप्त कर दें, जैसे मन के मार्ग से मन ने अरदास सुन ली। प्रभु अपने अनुरागी की प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं तो अपनी सदाप्रिया की इच्छा कैसे पूरी न करते! उन्होंने पीछे फिरकर देखा और सीता के हृदय को तृप्त कर दिया।

"भैया, थोड़े समय की बात और है!" लक्ष्मण ने चुटकी ली।

"अनुज, तुम बड़े नटखट हो।" राम धीरे से बोले और आगे बढ़ चले।

दोनों भाई गुरु विश्वामित्र के पास आए और पुष्प अर्पण करके उनके चरणों में बैठ गए। सर्वज्ञ मुनि आनंद से मुस्करा रहे थे।

"प्रिय राम, धनुष यज्ञ आरंभ होने वाला है।" मुनिवर बोले–"राजर्षि जनक ने हमें भी बुलाया है, अतः चलकर धनुष लीला देखते हैं। देखते हैं कि भगवान शिव किस पर कृपा करते हैं।"

राम के मन में शिव के प्रति अनुराग उमड़ आया। सदाशिव भोले तो उनके परम स्नेही हैं, जिनकी तो उन पर सदा कृपा रही है। मुनिवर के साथ दोनों भाई मन में उत्कंठा लिये रंगभूमि में आ गए। पंक्तिबद्ध और समुचित लगे आसनों पर अनेक राजा बैठे हैं। एक से बढ़कर एक की शोभा है, परंतु यहां रूप नहीं देखा जाएगा। यहां तो वह बल देखा जाएगा, जो शिव के विराट प्रचंड धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाएगा। वह रहा धनुष! कितना विशाल है! राम ने मन-ही-मन शिव को प्रणाम किया। सभी राजाओं की दृष्टि दोनों सुकमारों पर टिक गई। एक सौम्यता की मूर्ति तो दूसरा चंचलता की। इन दिव्य कुमारों को देखकर सबके मन हर्षित हो गए। किसी के भी विचार में उन्हें स्वयंवर का प्रतिभागी होना नहीं आया था। सब यही समझ रहे थे कि वे मुनिवर के शिष्य दर्शक-मात्र हैं। शिव धनुष से उनके कोमल अंग मेल नहीं खा रहे थे। नर-नारी उनकी मोहक मूर्ति देखकर प्रफुल्लित हो रहे थे।

सभी राज-समाज अपने आसनों पर बैठ गए थे, तब राजा जनक ने गुरु शतानंदजी से आज्ञा लेकर सीता को वहां बुलाने का संकेत किया। सभी शृंगारों से युक्त सीता सखियों सहित वहां आईं तो उनके अनुपम सौंदर्य को देखकर सभी राजा, राजकुमार मोहित हो उठे और अपने-अपने इष्ट को मनाने लगे कि हे विधाता, आज के लिए इतना बल देने की कृपा करें कि संसार की यह अनमोल निधि उसे ही प्राप्त हो, फिर धनुष की ओर देखते हैं तो निराश हो उठते हैं सोचते हैं–इतना विराट धनुष कैसे भुजाओं में समाएगा, पर प्रयास तो करेंगे ही। प्रयास न करने वाले मनुज को तो धिक्कार है! प्रयास से तो सब सहज हो जाता है। इस अमूल्य सौंदर्य निधि के लिए तो साक्षात् काल से भी सामना करना पड़े तो अवश्य करेंगे।

सीता की पलकें झुकीं थीं, परंतु केवल वही जानती थी कि उनकी चितवन किसे खोज रही थी। जब राम दिखाई दिए तो नेत्र खुल गए और उन्हीं पर स्थिर हो गए। राम ने क्षण-भर तो देखा, परंतु समाज व गुरु का ध्यान करके दूसरी ओर देखने लगे। राजा जनक की आज्ञा से चारण ने श्रेष्ठ वचन कहकर यज्ञ की नियम-विधि व शर्त की व्याख्या करके राजर्षि का मंतव्य सभी के सामने प्रकट किया।

"हे श्रेष्ठ भूपतियो! हम अपने महाराज जनक व गुरु शतानंदजी की आज्ञा पाकर आपको अपने महाराज का प्रण कहते हैं। यह परम शिव का प्रचंड कठोर धनुष है जिसे बड़े-बड़े योद्धा इसके स्थान से अंगुल-मात्र नहीं हिला सके। इस राज-समाज में जो भी इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाएगा, उसे ही जानकीजी वरण

करेंगी। अतः आप सभी इस अवसर पर एक-एक करके बल का प्रदर्शन करें और अपने सौभाग्य के द्वार खोलें।"

इसके पश्चात् ढोल-नगाड़े बजने लगे। जिन्हें अपने बल पर मान था, वे पहले ही उसका प्रदर्शन करने को आतुर हुए। क्या पता उनसे पहले ही कोई उस कार्य को कर दिखाए और पछतावा रह जाए। एक बलिष्ठ नरेश ने उठकर समाज को देखा। मुनियों को प्रणाम किया और धनुष की ओर बढ़ चला। अन्य सभी ने उसका उत्साहवर्धन किया। उसने पहले तो धनुष की परिक्रमा की, फिर उसे स्पर्श करके उठाने के लिए तनिक बल लगाया, फिर और बल लगाया, पर धनुष जैसे भूमि का ही हिस्सा बन गया था तो उससे तनिक भी अलग न हो रहा था। बल लगाते-लगाते वह हांफने लगा था और मस्तक पसीने से भीग गया था, परंतु धनुष सूत-भर न हिला। असंभव समझकर वह लज्जित होते हुए अपने आसन पर आकर बैठ गया। उसके पश्चात् तो एक-एक करके सबके मान भंग हुए। धनुष अपनी जगह से हिला भी नहीं।

अब कोई किसी से दृष्टि नहीं मिला रहा था। अपनी बारी आने से पूर्व, जो पराजितों को हेय दृष्टि से देख रहे थे, अब मन-ही-मन सकुचा रहे थे कि उन्होंने दूसरों के प्रति ऐसा सोचा।

अब कोई भी राजा शेष न बचा था। स्वयंवर की शर्त पूरी न हुई थी। यह देखकर राजा जनक शोकमग्न हो गए। उनका मन व्याकुल हो गया। अंततः उनकी अधीरता क्रोध बनकर भू-पतियों के बल को धिक्कारने लगी।

"हे महाबलियो! मेरे प्रण को सुनकर आप सब चले तो आए, परंतु अपना बल कहीं रखकर भूल आए? इस समाज में दैत्य, देव, मनुष्य सभी पधारे हैं, परंतु धनुष की प्रत्यंचा तो दूर, उसे कोई भी जौ-भर हिला न सका। मेरी पुत्री जिसे खिलवाड़ में ही उठाए फिरती थी, वह धनुष आप सबके लिए धराधाम हो गया। आप सभी श्रीहीन हो गए। अब कोई वीरता का अभिमान न करे। मैं जान गया कि पृथ्वी वीरों से खाली है। मेरा प्रण किसी से संतुष्ट न हुआ। क्या मेरी पुत्री का यह स्वयंवर संसार में उपहास बनकर रह जाएगा। हे श्रेष्ठ मुनिवरो, क्या धरा वीरों से शून्य हो गई है? क्या अब मेरी पुत्री के योग्य कोई वर नहीं?"

राजा जनक के क्रोध में व्यथा थी और यह सब स्वाभाविक ही था। लज्जा के मारे सिर न उठते थे, पर उनके धिक्कार भरे वचन लक्ष्मण से न सुने गए।

"भैया, जिस समाज में कोई एक भी रघुकुलवंशी होता है, वहां ऐसे शब्द कोई नहीं कह सकता, जैसे राजा जनक ने आपको उपस्थित जानकर भी कहे हैं।" लक्ष्मण सरोष बोले—"यदि आपकी आज्ञा मिले तो मैं इस धनुष को उठाकर कई सौ योजन दूर फेंक दूं। नाथ! राजर्षि जनक का यह भ्रम मिटाना ही होगा कि

भूमि वीरशून्य है। हे रघुकुल के वंशज और श्रेष्ठतम सर्वशक्तिशाली! जो उचित हो, वह आज्ञा दीजिए।"

"अनुज! क्रोध के वशीभूत न हो जाओ। जहां श्रेष्ठ गुरुजन हैं, वहां आज्ञा देने वाला मैं कौन होता हूं। शांत हो जाओ।" राम ने स्नेह से कहा।

"हे रघुकुल शिरोमणि श्रीराम!" मुनि विश्वामित्र बोले–"उठो और अपने प्रिय भक्त राजर्षि जनक का संताप हरो–जनकनंदिनी के मनोरथ को सफल करो।"

गुरु की आज्ञा पाकर राम ने शीश झुकाया और शिव-धनुष की ओर बढ़े। राजाओं की दृष्टि विस्मय से उनकी ओर उठी। यह सुकुमार बालक उस धनुष को क्या उठाएगा, जो उनके अपार बल प्रयास से तिल-भर भूमि न छोड़ सका था। न उठेगा धनुष तो भी क्या? उसका उपहास भी कौन करेगा! बालक जानकर सब यही कहेंगे कि जब बड़े-बड़े बलवानों ने घुटने टेक दिए तो उस बालक से आशा क्यों?

राम जब धनुष के पास पहुंचे तो सीता का मन हर्ष के साथ शंका से भी लरज रहा था। वे प्रार्थना कर रही थीं–हे महाशिव, अपने इस धनुष को प्रेरित करो कि वह अपना भार शून्य कर ले और मेरे हृदयेश्वर को सफल होने का अवसर देकर मुझे सुखी करे। ऐसी ही प्रार्थना जनकपुर के नर-नारी भी कर रहे थे। स्वयं जनक भी प्रभु से यही विनती कर रहे थे कि यह अंतिम विकल्प अभीष्ट सिद्ध हो।

राम ने सर्वप्रथम सदाशिव का स्मरण करके उनकी वंदना की, फिर अपने पूर्वजों और देवताओं की स्तुति करके गुरुजनों को नमन किया और बड़ी फुर्ती से धनुष को इस प्रकार उठा लिया, जैसे वह रुई का बना हो। सभी राजा जैसे तंद्रा से जागे। सबकी कमर सीधी हो गई। एक अकल्पनीय कार्य जो हो गया था।

राम ने धनुष को खड़ा करके उसका ऊपरी सिरा हल्के से दबाया तो वह सूत्र के कच्चे धागे की भांति अर्द्ध चंद्राकार होता चला गया। राम ने डोरी को उसके सिरे पर रखकर तनिक और दबाव बनाया ही था कि भीषण आवाज के साथ वह प्रचंड धनुष टूटकर दो टुकड़े हो गया। उसकी तीव्रतर घोर ध्वनि से सबके कान सुन्न हो गए, परंतु राजा जनक के नेत्रों में प्रसन्नता अश्रु बनकर बह रही थी। उनका प्रण पूरा जो हो गया था। जनक ने हर्ष से विह्वल होकर सीता की ओर देखा तो सीता वरमाला लेकर राम के पास पहुंची और उनके गले में वरमाला डाल दी। आकाश से देवताओं ने पुष्पवर्षा की। चारों ओर हर्ष भरा कोलाहल था। स्त्रियां मंगलगान गा रही थीं। सर्वत्र हर्ष उमड़ रहा था, परंतु कुछ ईर्ष्यालु राजाओं ने कुमंत्रणा कर ली थी कि कुछ उपाय कर सीता को छीनना चाहिए।

15

पाणिग्रहण संस्कार

अब चार मंडप सजाए जा रहे थे। सभी ने दोनों राजाओं की दूरदर्शिता की भूरि-भूरि सराहना की। एक ही अवसर पर ऐसा भव्य निर्णय निःसंदेह संबंध की प्रगाढ़ता में वृद्धि करने वाला था। नेगियों, याचकों के लिए भी प्राप्ति में चौगुनी वृद्धि करने वाला था। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा विवाह मुहूर्त शोधित किया गया था और उसी मुहूर्त पर वर-वधु मंडप में बैठे। एक में राम-सीता की जोड़ी की भव्य झांकी थी। दूसरे में लक्ष्मण और उर्मिला शोभायमान थे। तीसरे में भरत-मांडवी तो चौथे में शत्रुघ्न के साथ श्रुतकीर्ति उस दिव्य महोत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे। वेद-वर्णित परिणय मंत्रों से पुरोहित उस पाग्रिहण संस्कार को संपन्न कर रहे थे। देवता भी उस दिव्य उत्सव के साक्षी थे।

महर्षि परशुराम, जो भगवान विष्णु का ही अंशावतार थे और पृथ्वी पर बढ़ते हुए अत्याचारों का दमन करने के लिए अवतरित हुए थे। उन्होंने अपने पराक्रम से इक्कीस बार महायुद्ध करके पृथ्वी से पापियों का विनाश किया था। भगवान शिव के अनन्य भक्त परशुराम अपने आश्रम पर इष्ट साधना में लीन थे, जब उन्होंने वह प्रचंड ध्वनि सुनी और चौंक पड़े। यह तो शिव के उस प्राचीन धनुष के टूटने का कठोर स्वर था, जो राजा जनक के यहां था। उस प्रलयंकारी धनुष को तोड़ने का अमंगलकारी

कार्य किसने किया और यह हुआ कैसे? उसे तोड़ना तो दूर हिलाना भी किसी सामान्य जन के वश में नहीं था। अवश्य ही किसी शिवद्रोही ने ऐसा किया है, अतः उसे दंडित करना ही होगा। क्रोध में भरे परशुराम ने अपने योगबल से स्वयं को वहां से अंतर्ध्यान किया और जनकपुरी में प्रकट हुए। जिधर कोलाहल हो रहा था, उधर चल पड़े। रंगभूमि के द्वार पर पहुंचे।

वहां युद्ध जैसा वातावरण बन रहा था। जनकनंदिनी नववधु के रूप में शोभित थीं और वर रूप में जयमाला धारण किए राम शोभायमान हो रहे थे।

"हे जनक!" परशुराम का स्वर गूंजा जैसे डंके पर चोट पड़ी हो—"इस सभा में वह शिवद्रोही कौन है जिसने शिव का पवित्र धनुष तोड़ने का अक्षम्य अपराध किया है? वह इस समाज से बाहर आकर मेरा सामना करे और अपनी मृत्यु से भेंट करे। अन्यथा उसके साथ अन्य सभी भी मेरी क्रोधाग्नि में भस्म हो जाएं। जिसने भी यह धनुष तोड़ा है, वह सहस्त्रार्जुन की भांति मेरा घोर शत्रु है।"

राम के विरुद्ध एकमत होकर लड़ने को आतुर राजाओं को जैसे मुंहमांगा वरदान मिला। अब उन्हें लड़ने की आवश्यकता ही क्या है? अब तो अत्यंत क्रोधी महर्षि परशुराम ही उसे मृत्यु को सौंप देंगे! वैसे भी सिंह के शिकार पर हाथ नहीं डालना चाहिए। वे सभी तो अपने-अपने स्थानों पर जाकर बैठ गए।

परशुराम के क्रोध भरे वचनों को सुनकर राजा जनक का कंठ सूख गया। सीता भी शंकित होकर व्याकुल हो गईं। जैसे-तैसे तो मनोरथ सिद्ध हुआ, अब ये कोपी मुनि आ गए।

"जनक! सुना नहीं कि मैंने क्या कहा?" परशुराम गरजकर बोले—"क्या मेरे फरसे के प्रभाव से तुम सभी अनभिज्ञ हो! किसी एक के अपराध के लिए सभी क्यों मारना चाहते हो?"

"हे पूज्य महामुने!" राम ने ही हाथ जोड़कर कहा—"भगवान शिव के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई सेवक ही होगा। कोई अन्य तो ऐसा साहस नहीं कर सकता।"

"हे राम, सेवक इस प्रकार का कुकृत्य नहीं करता। यह शिव के प्रति द्रोहीभाव है और जो शिवद्रोही है, वह मेरा परम शत्रु है।" परशुराम क्रोध से बोले।

"महामुने!" लक्ष्मण ने सामने आकर निर्भयता भरी चपलता से कहा—"आप किस कारण इतना क्रोधित हो रहे हैं। एक धनुष के ही कारण! ऐसे कितने ही धनुष हमने खेल-खेल में तोड़ दिए, तब तो आपने कभी इतना क्रोध नहीं किया?"

"अपनी जुबान संभाल बालक! तू इस धनुष की तुलना धनुषियों से कर रहा है। कहीं तुम पर ही तो काल की दृष्टि नहीं पड़ गई है?"

"मुनिवर, आप जैसे योगी को क्रोध नहीं शोभता। ब्राह्मण तो शीलता का भंडार होते हैं। आप मुझे बार-बार कुल्हाड़ी न दिखाएं।" लक्ष्मण ने कहा–"हम रघुवंशी किसी से भय नहीं मानते। आप एक पुराने धनुष के लिए इतना शिव-हितैषी बनकर दिखा रहे हैं। वह तो श्रीराम के हाथ लगाते ही चटक गया था। आप भृगुवंशी हैं, ब्राह्मण हैं और गुरु भी हैं, तभी आपके इन कठोर वचनों को मैं सहे जाता हूं। आपके ये वचन तो अस्त्र-शस्त्र से भी अधिक मारक हैं, फरसा, कुठार व धनुष-बाण तो आप व्यर्थ ही धारण किए हैं।"

लक्ष्मण के इन शब्दों ने जैसे जलती अग्नि में घी डाल दिया।

"हे विश्वामित्र! इस कुटिल बुद्धि बालक की उद्दंडता अब सीमा से बाहर जा रही है। मैं बालक जानकर क्षमा किए जा रहा हूं और यह मानता ही नहीं है। संभवत: यह मुझे निरा साधु ही समझ रहा है। जानता नहीं कि मैंने अपने फरसे से इक्कीस बार क्षत्रियों का मान-मर्दन किया है। मुझसे बढ़कर क्षत्रियद्रोही कोई नहीं हुआ। आप इसे मेरे विषय में बताइए, अन्यथा...।"

"मुनिवर!" लक्ष्मण ने उपहास भरे स्वर में कहा–"किसी अन्य को आपके विषय में बताने की आवश्यकता ही क्या है? आप स्वयं ही इस अद्भुत कार्य में निपुण हैं, जो अपने पराक्रम और प्रताप की गाथा सुंदर शब्दों में सुना रहे हैं।"

परशुराम से न रहा गया और वह लक्ष्मण की ओर फरसा लेकर दौड़े। सारे समाज में भय व्याप्त हो गया कि अब लक्ष्मण की मृत्यु निश्चित है, पर राम हाथ जोड़कर बीच में आ गए तो मुनिवर को ठहरना पड़ा।

"महामुने, लक्ष्मण अभी बालक है और नासमझ है। आपके विषय में नहीं जानता है। आपका अपराधी मैं हूं, अत: आप मुझे दंड देकर अपना क्रोध शांत करें।"

"हे राम! तेरा यह भाई उजड्ड है। तेरे कुल को कलंकित करने वाला है।"

"उसे क्षमा कर दें महामुनि! मैं क्षमाप्रार्थी हूं।"

"तो इसे समझाओ, अन्यथा व्यर्थ में इसके प्राण चले जाएंगे।"

"मुझे महान भय लग रहा है मुनिवर!" लक्ष्मण ने भयभीत होने का नाटक किया–"देखिए, मेरा मुख निस्तेज हो गया है। आप तो साक्षात् यमरूप में दिख रहे हैं। अरे, कोई मुझे इन प्रतापी योगी से बचाइए जिन्होंने अपने पिता की आज्ञा-पालन करने के लिए अपनी माता का ही शीश काट दिया था। अपने माता-पिता से ये उऋण हो गए हैं–अब गुरु-ऋण शेष है तो मेरे मत्थे मढ़ रहे हैं।"

"देखा, देखा राम! यह केसी कुटिल चोट करता है। अब मैं समझ गया हूं कि तुम इसे फुसला रहे हो। स्वयं शीतल रहकर इस अग्नि उगलने वाले को

आगे कर देते हो। यह तुम दोनों भाइयों का युगल खेल है, अतः अब तुम भी मेरे क्रोध से नहीं बचोगे।"

"गुरुवर! मैं आपके समक्ष प्रस्तुत हूं। आप अपने परसे से मेरा शीश काटिए।"

"हम झुकी हुई गरदनें नहीं काटते राम! दोनों भाई धनुष-बाण लटकाए हो तो चलाना भी सीखा होगा। हमसे युद्ध करो और अपने प्राणों की रक्षा करो।"

"महामुने! हम क्षत्रिय हैं और युद्ध की चुनौती मिलने पर हम साक्षात् इंद्र से भी पीछे नहीं हटते।" राम के शब्दों में क्षात्र-भाव आ गया–"देवता, दैत्य, राजा या उससे भी अधिक बलवान साक्षात् काल हो तो भी हम रणविमुख नहीं होते। यह धनुष व बाण हमने शोभा के लिए धारण नहीं किए हैं, परंतु आप हमारे पूज्य हैं, ब्राह्मण हैं। आप हमें मारेंगे तो भी हम आपकी सेवा में रहेंगे। अब अपने क्रोध को शांत करें।"

राम के शब्दों का ऐसा प्रभाव था कि महर्षि नरम पड़ गए।

"हे राम! शिव का यह धनुष शिव के अलावा श्रीहरि व लक्ष्मीजी ही उठा सकते हैं, इसलिए मुझे जो शंका है, उसे दूर करिए। पुनः मेरे सामने इसे उठाइए।"

राम ने महर्षि की इच्छा को पूर्ण करने में विलंब न किया तो परशुराम पुलकित हो गए।

"हे दीनबंधु, अब मेरे सब संदेह मिट गए। हरि-लक्ष्मी का यह मनुष्य रूप देखकर पापियों का भी उद्धार हो जाता है, इसलिए आपकी बारंबार जय हो! आप दोनों ही संसार को सब कुछ देने वाले हैं, अतः आपको कुछ देने की बात सोचना भी मूर्खता है, परंतु मैं ब्राह्मण हूं और नवदंपती को आशीर्वाद देना मेरा धर्म है। अतः हे करुणामय, इसे मेरी धृष्टता न मानकर मेरी श्रद्धा के रूप में स्वीकार करें।"

परशुराम को भी राम के समक्ष नत देखकर वे राजा, जो क्रोध में एकमत होकर उनके विरुद्ध आक्रमण की योजना बना रहे थे, भयभीत हो गए और वहां से चुपचाप जाने लगे।

परशुराम ने लक्ष्मण की ओर भी देखा और प्रसन्नता से मुस्कराए। लखनजी ने भी श्रद्धा भरे नेत्रों से उनका अभिनंदन किया।

परशुराम चले गए, तब जाकर जनक के जी में जी आया। इसके पश्चात् वहां उत्सव जैसा वातावरण बना।

राजा जनक ने गुरु शतानंद और गुरु विश्वामित्र की ओर हर्ष से देखा–"गुरुदेव! जिस प्रकार नदी के भंवर में फंसे व्यक्ति को जीवन की आशा नहीं रहती, वैसे ही

धनुष भंग होने से पूर्व मेरी मनःस्थिति थी। आपकी कृपा से श्रीराम व लक्ष्मण ने मुझे उबार लिया। अब आप जो भी उचित संस्कार हों, सो कहिए।" जनक बोले।

"राजन्! अब इस संबंध को लोकाचार की रीति से संपन्न करने के लिए अयोध्या नरेश को विनयपत्रिका भेजी जाए और इन दोनों श्रेष्ठ कुलों को एकसूत्र में बांधकर जगत-कल्याण के महायज्ञ का सूत्रपात किया जाए।" विश्वामित्र ने कहा।

"महर्षि सत्य कह रहे हैं राजन्!" गुरु शतानंद ने स्वीकृति दी—"श्रीराम को साधारण राजकुमार न समझो। ये जगत का कल्याण करने वाले साक्षात् श्रीहरि हैं, जो इस मनुज रूप में अनेक मर्यादाओं की स्थापना करने व दुष्टों का संहार करने के लिए अवतरित हुए हैं। जो हुआ, जो हो रहा है या जो होगा—सब इन्हीं की इच्छा के अधीन है।"

राजा जनक इन उद्गारों को सुनकर भावविह्वल हो गए। शीघ्र ही दूत को विनयपत्रिका लेकर अयोध्या भेज दिया गया। जनकपुरी बरात के स्वागत की तैयारी में जुट गई। घर-घर मंगलगान गए जाने लगे। सैकड़ों तोरण द्वारों से नगर की शोभा और भी भव्यता को पहुंची। लोकनीति से यह विवाह संपन्न होना था।

राजा जनक किसी भी तरह की कमी न रहने देना चाहते थे। सभी राजपरिवार के सदस्य और प्रजा इस भव्य विवाह के परमानंद में गोते लगा रहे थे।

इस विराट समारोह को देखने के लिए देवता भी ब्राह्मणों का वेश धारण करके स्वर्ग छोड़कर जनकपुरी में आ गए थे। राजा जनक को कई नई अतिथिशालाओं का निर्माण कराना पड़ गया था। जनकपुरी में जैसे महापर्व था। चारों ओर आनंद बरस रहा था। अपेक्षित समय से पूर्व, जैसा कि अयोध्या से प्रत्यत्तर में राजा दशरथ ने समय दिया था, बरात मिथिला की सीमा में आ गई थी। दूत प्रत्येक क्षण की सूचना दे रहे थे और बरात की शोभा का वर्णन कर रहे थे। स्वयं राजा जनक अपने प्रियजनों को साथ लेकर अगवानी को उत्सुक थे।

जब जनक और दशरथ दो पुराने मित्रों की भेंट हुई तो जैसे दो सूर्यों का मिलन हो रहा था। बरात का भव्य स्वागत हुआ। भरत और शत्रुघ्न अपने भाइयों से मिलकर प्रेम-विह्वल हो गए। चारों भाइयों की इस जोड़ी को देखकर जनकपुर वासी मन में फूले न समाते थे। इनको देखकर रानी सुनयना अत्यंत मुदित थीं। वे और भी सपने सजाने लगी थीं। उनकी दो पुत्रियां थीं—उर्मिला और श्रुतकीर्ति। मन में इच्छा जाग्रत हुई कि उनके विवाह भी उन्हीं योग्य राजकुमारों से हो जाएं तो पुत्री-ऋण से निवृत्त हों, परंतु तीन का विवाह शास्त्र-सम्मत न था।

राजा जनक ने रानी के मन की बात जानी तो बहुत हर्षित हुए। उपाय भी सूझ गया। उनके छोटे भाई कुशध्वज की एक पुत्री मांडवी थी। चार पुत्रियों के

लिए रघुकुल के चारों राजकुमारों से उपयुक्त घर-वर त्रैलोक्य में और कहां होगा! जनक ने राजा दशरथ से अपने मन की बात कह दी तो उन्होंने इस सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। राम के विवाह की जो अपार प्रसन्नता थी, वह चौगुनी हो गई थी।

अब चार मंडप सजाए जा रहे थे। सभी ने दोनों राजाओं की दूरदर्शिता की भूरि-भूरि सराहना की। एक ही अवसर पर ऐसा भव्य निर्णय निःसंदेह संबंध की प्रगाढ़ता में वृद्धि करने वाला था। नेगियों, याचकों के लिए भी प्राप्ति में चौगुनी वृद्धि करने वाला था।

श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा विवाह मुहूर्त शोधित किया गया था और उसी मुहूर्त पर वर-वधु मंडप में बैठे। एक में राम-सीता की जोड़ी की भव्य झांकी थी। दूसरे में लक्ष्मण और उर्मिला शोभायमान थे। तीसरे में भरत-मांडवी तो चौथे में शत्रुघ्न के साथ श्रुतकीर्ति उस दिव्य महोत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे। वेद-वर्णित परिणय मंत्रों से पुरोहित उस पाणिग्रहण संस्कार को संपन्न कर रहे थे। देवता भी उस दिव्य उत्सव के साक्षी थे।

अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधुओं ने परस्पर सात वचनों का आदान-प्रदान किया। इस अवसर पर राजा जनक ने असंख्य पुष्प व दूधारू गाएं, द्रव्य, मणि, स्वर्ण, वस्त्र आदि का मुंहमांगा दान दिया। किसी-किसी याचक के पास इतना हो गया कि उसे ले जाने में भी कठिनाई प्रतीत हुई। ऐसे याचकों को राजा ने अश्वादि भी दिए।

महीनों तक यह उत्सव चलता रहा। अयोध्या के बराती जनकपुर के नर-नारियों से लोकोचित परिहास करते हैं। अयोध्या वाले बहनोई हैं तो जनकपुर वाले साले-सलहज व सालियां ही तो हुए। इन संबंधों में मनोविनोद तो चलता ही है। जब बहुत दिन बीत गए, तब राजा जनक से दशरथ ने जाने की आज्ञा मांगी। इच्छा न होते हुए भी जनक को रीत निभानी ही थी। अंततः नववधुओं को लेकर बरात उसी भव्यता से अयोध्या की ओर चली, जिससे आई थी।

जनकपुरी में जो महोत्सव हुआ, वैसा ही अयोध्या में भी होने लगा। नववधुओं के स्वागत के लिए सभी नगरवासी उत्सुक थे। जब से बरात गई थी, तभी से नित्य प्रति मंगलाचरण हो रहे थे। भली-भांति के लोकाचार चलते रहे थे और जब से दूत ने बरात के लौटने की सूचना दी थी, तब से तो उत्सुकता और बढ़ गई थी।

महारानी कौशल्या सहित सभी रानियां अपनी पुत्रवधुओं के स्वागत की तैयारियां कर रही थीं। कैकेयी के उत्साह को देखकर तो ऐसा लगता था, जैसे वे आनंदमग्न होकर विक्षिप्त ही हो जाएंगी। यहां वह सजाना, वहां वह रखना, दास-दासियों को निर्देश देते रहना, तनिक-सी त्रुटि पर झिड़कना, अपनी पुत्रवधुओं के रूप और कुल की प्रशंसा करते रहना ही कैकेयी के अनंत उत्साह का प्रतीक था। राम का गुणगान तो उनका गीत ही बन गया था।

"यह मेरा राम ही था जिसने कौशिक मुनि के यज्ञ की रक्षा करते हुए अनेक राक्षसों को समाप्त किया। वहां से वे जनकपुर पहुंचे। राजर्षि जनक ने जैसा भीषण प्रण किया था, उसे मेरे राम के अतिरिक्त और कौन पूरा करता! सब राजा, महाराजा तो घुटने टेककर रह गए। बाणासुर से तो धनुष हिला भी नहीं और रावण जैसा महाबली भी उसे सूत-भर न हिला सका। मेरे राम ने उसे फूल की तरह उठाकर खंड-खंड कर डाला और राजा जनक को सुख प्रदान किया।"

कैकेयी के हृदय में राम के प्रति अपार स्नेह था।

जब वर-वधु अयोध्या आ गए तो हर्षोल्लास का पारावार न रहा। चार वधुओं को, जो सभी रूप, गुण और सौंदर्य की स्वामिनी थीं, देखकर कैकेयी तो जैसे बौरा ही गई थीं। जब नववधुओं ने अपनी सास-माताओं के चरण छुए तो उसने आशीषों की झड़ी लगा दी। उनकी बलइयां लीं और वधु स्वागत के सभी कार्य संपन्न किए। ब्राह्मणों, याचकों और कन्याओं को दान दिया गया। सभी सौभाग्यसूचक संस्कार संपन्न हुए।

राजा दशरथ जैसे सर्वस्व निधि पाकर पूर्ण संतुष्ट हो गए थे। चार बहुएं और वे भी रूप में साक्षात् रति, गुणों में पार्वती और सौभाग्य में साक्षात् लक्ष्मी थीं तो किसे अपने भाग्य पर इतराना न होगा। सभी लोकाचार किए जाने लगे। गुरु वशिष्ठ सभी कार्य शुभ मुहूर्त में करा रहे हैं। विश्वामित्र उनका साथ दे रहे हैं। यह विश्वामित्र की कृपा का ही फल है, जो आज अयोध्या में आनंद की वर्षा हो रही है।

अवधपुरी में नित्य ही मंगलोत्सव हो रहे हैं। आनंद की अधिकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। रनिवास में भी आनंद-ही-आनंद है।

"राजन्!" एक दिन विश्वामित्र बोले—"अब हमें ऋषि धर्म का पालन करते हुए अपने आश्रम को जाना है, क्योंकि बहुत अधिक समय का आतिथ्य-सुख साधु को निषेध है। जनकपुरी और यहां रहते हुए बहुत समय हो गया। अतः आप हमें प्रस्थान की आज्ञा दें।"

"मुनिवर, आपकी कृपा से मुझे स्वर्ग का वैभव प्राप्त हुआ है, अतः मेरा भाव सदा आपके दर्शन चाहता है, परंतु आपकी आज्ञा भी टाल नहीं सकता।"

"आपका सदा कल्याण हो राजन्!"

इस प्रकार मुनि विश्वामित्र ने सबसे विदा ली। राम सहित सभी भाइयों ने गुरु से आशीर्वाद प्राप्त किए। इस समय अयोध्या स्वर्ग समान हो गई थी।

16

देवताओं की इच्छा

"मंथरा!" कैकेयी चीख पड़ीं–"तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है?"
"रानी, फिर भरत को निर्विघ्न राज्य कौन करने देगा? हाथ आई चीज निकल जाए तो क्या राम, क्या कौशल्या–सब भरत के शत्रु हो जाएंगे। कुछ प्राप्त कर लेना ही कुछ नहीं होता, उसे सुरक्षित भी करना होता है। राम पर प्रजा का बहुत स्नेह है और सिंहासन के लिए मैंने बड़े रक्तपात देखे हैं। अपने प्रिय भरत को कुछ देना ही है तो निर्भय, निष्कंटक और पूरी तरह सुरक्षित दो। अब जब उपाय है तो करना चाहिए।"
कैकेयी ने ऐसा ही करने का निश्चय कर लिया। इसके साथ ही देवताओं की इच्छा पूरी होने की ओर बढ़ने लगी।

राजा दशरथ दरबार जाने की तैयारी कर रहे थे। स्नानादि के पश्चात् वस्त्र पहनकर वे अपने केश संवार रहे थे। परम सुख में जीवन व्यतीत कर रहे राजा दशरथ का वैभव इस समय इंद्र के समान था। अपने चार पराक्रमी पुत्रों के बल पर उन्होंने कई कठिन यज्ञ संपन्न करके अपनी कीर्ति का विस्तार कर लिया था। अन्य राजा उनसे यदा-कदा सहायता मांगते ही रहते थे। वे सबकी सहायता करने को तत्पर रहते। अभी पिछले दिनों कैकेय देश पर निर्गतों के आक्रमण बढ़ गए थे तो वहां के राजा और अपने साले की विनती पर उन्होंने भरत

को सहायता के लिए भेज दिया था। तीनों लोकों में राजा दशरथ के सुख और वैभव की चर्चा होती रहती थी।

राजा ने दर्पण में अपना मुख देखा तो कनपटी के पास एक सफेद बाल देखकर उनके नेत्र सिकुड़ गए। यह जीवन के चौथे चरण का संकेत था, जो अन्य कई संकेत भी दे रहा था। अब वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का समय हो चला था। वैसे भी प्रजा-वत्सल राम एक परिपक्व युवक थे, जो सभी दायित्वों का निर्वहन भली-भांति करते थे अत: अब राज्य उन्हें सौंपकर दायित्व मुक्त होकर ईश्वर में ध्यान लगाना ही श्रेयस्कर होगा। राजा ने अपने इस विचार को दृढ़ किया व उसी दिन गुरु वशिष्ठ से अपनी बात कहकर परामर्श लिया।

"राजन्!" गुरु वशिष्ठ ने कहा–"आपने उचित समय पर उचित निर्णय लिया है। जब पुत्र और पिता के कंधे एक बराबर हो जाएं तो पिता को अपने सभी दायित्वों का भार पुत्र के कंधों पर रख देना चाहिए और शास्त्र-सम्मत नियमों का पालन करना चाहिए। समस्त सुख-वैभव आपने भोग लिए हैं, अत: अब उपयुक्त समय है कि ईश्वर की भक्ति में लगकर उनकी कृपा का धन्यवाद करें।"

"गुरुदेव! मेरा राम भी सभी प्रकार से योग्य और सर्वप्रिय है। प्रजा उसके स्नेह में डूबी है। सभी माताओं का यह अत्यंत दुलारा है। भाई उसे पितातुल्य मानते हैं, अत: सभी प्रकार के श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त राम के लिए आप शुभ मुहूर्त विचारकर बताइए और इस आशय की सूचना प्रजाजनों को भी दी जाए।"

"अवश्य राजन्! यह शुभ समाचार सभी को दिया जाए जिससे प्रजा अपने आनंद को दुगना सके। हम काल, नक्षत्र सब विचारकर राम के राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त निकालते हैं।" गुरु वशीष्ठ ने कहा।

राजा ने प्रसन्नतापूर्वक यह समाचार सर्वप्रथम रानी कैकेयी को दिया, जो हर्ष से फूली न समाई और अन्य सभी को यह शुभ समाचार उसी ने सुनाया। राजभवन में मोद मनाया जाने लगा। यूं तो अयोध्या नित्य उत्सवों की नगरी थी, परंतु ऐसे शुभ समय पर आनंद और उत्साह कई गुना हो जाता था। यह समाचार जिसने भी सुना, वही आनंदमग्न हो गया। यद्यपि राजा दशरथ की प्रजा-वत्सलता और न्यायप्रियता जगतप्रसिद्ध थी, परंतु भावी राजा राम के विषय में विचारकर लोगों में जैसी प्रसन्नता थी, वह अद्‌भुत थी।

प्रत्येक शुभ-अशुभ घटना का प्रभाव द्विपक्षीय होता है। एक घटना किसी को आनंद देती है तो उसी से दूसरे को विषाद या दुख उत्पन्न हो जाता है। राम के राज्याभिषेक के शुभ समाचार ने जहां सभी मनुष्यों को आनंद दिया, वहीं देवतागण

चिंतित हो गए। यदि राम राजकार्य में व्यस्त हो गए तो उन्हें इतना समय ही कहां मिलेगा कि वे दुष्टों का दमन कर सकें।

"हे देवगणो! पृथ्वी पाप के भार से आकुल है। दक्षिण पूर्ण रूप से अधर्म युक्त हो गया है।" देवराज इंद्र ने चिंता व्यक्त की–"इसी हेतु प्रभु से अनुनय-विनय करके उन्हें पृथ्वी का भार हरण करने के निमित्त अवतरित होने की प्रार्थना की गई थी, परंतु भौतिकता में भी एक आकर्षण होता ही है। अब श्रीराम राजा बनने जा रहे हैं। धर्म, दायित्व का सदा पालन करने वाले श्रीराम निश्चय ही अयोध्या को पृथ्वी का स्वर्ग बना देंगे, परंतु मानवता को त्रास देने वाले और हमें सताने वाले राक्षसराज रावण के प्रकोप को कौन शांत करेगा? कुछ करो देवगणो! अन्यथा बना-बनाया कार्य बिगड़ जाएगा।"

"अब तो राजा दशरथ की बुद्धि भ्रमित हो और वे अपना निर्णय बदलें तो ही कुछ हो सकता है।" अग्निदेव ने कहा।

"गुरुदेव! आप मौन क्यों हैं?" देवराज ने देवगुरु बृहस्पति से कहा–"इस संकट के समय हमें आपके सुझाव की अत्यंत आवश्यकता है। आप सभी नीतियों को जानने वाले और तीनों लोकों का हित चाहने वाले हैं, अतः कोई तो सुझाव दें।"

"देवराज, अब माता सरस्वती ही हमारा मनोरथ पूर्ण कर सकती हैं। सबके कंठ में वास करने वाली सरस्वती को ही इस महाकाज में हमारी सहायता करनी होगी। हम सभी उनके पास चलकर अनुनय-विनय करते हैं।"

गुरु बृहस्पति की सलाह पर सभी देवगण वाणी की स्वामिनी माता सरस्वती के पास पहुंचे और अपनी समस्या बताई।

"देवगणो! प्रभु श्रीहरि ने सब कुछ पूर्व-निर्धारित किया हुआ है, अतः आप सबकी शंका निर्मूल है कि प्रभु श्रीराम अपने अवतार के उद्देश्य को भूलकर राजकार्य में संलग्न हो जाएंगे। अतः उनकी प्रेरणा से हम सभी को सहायक बनकर घटनाक्रम को सुव्यवस्थित करना है अर्थात् निमित्त बनना है। मैं अपना कार्य अवश्य करूंगी और आप सभी की शंकाओं का निवारण करूंगी, लेकिन जैसी प्रभु की इच्छा होगी, वैसा ही होगा।"

सभी देवगण निश्चिंत होकर लौट गए और माता सरस्वती ने देवकार्य के लिए प्रभु की वंदना की और अपनी योगमाया का विस्तार किया।

कैकेयी की दासी मंथरा, जो कैकेयी को माता के समान प्रिय थी, बड़े उत्साह से राज्याभिषेक की तैयारियां करते दास-दासियों को वृद्धानुभव से निर्देश दे रही थीं, जबकि योगमाया ने तत्काल उसकी बुद्धि को मोहग्रस्त किया।

मंथरा मौन हो गई और किसी मांत्रिक प्रभाव से ग्रस्त प्रतीत हो रही थी। वह उठकर लाठी टेकती हुई कैकेयी के कक्ष में आई, जो थक-हारकर विश्राम कर रही थीं। कल ही राज्याभिषेक होना था, अतः आज उसने बहुत भाग-दौड़ की थी और तनिक विश्राम करने अपने कक्ष में आ गई थीं।

"मंथरा! तू सही समय पर आई है। मेरी पीठ में बड़ी पीड़ा हो रही है। तनिक अपने कुशल हाथों से दबा दे।" कैकेयी ने कहा—"कल कितना आनंद का दिन होगा। कहीं ऐसा न हो कि इस पलंग पर ही पड़ी रह जाऊं और अपने प्रिय राम का राजतिलक समारोह भी न देख सकूं—तू शीघ्रता कर।"

"रानी, मंथरा तो वृद्धा हो चली है, जब तक जीवित है सेवा करती रहेगी।" मंथरा ने मोहग्रस्त वाणी से कहा—"परंतु मेरे मरने के पश्चात् क्या होगा?"

"चल हट! मेरी चार बहुएं हैं। दास-दासियों की मुझे क्या कमी?"

"उनका आनंद तो बड़भागिनी कौशल्या लेगी रानी! तुम्हारा यहां क्या मान रह जाएगा? तुम भी महारानी कौशल्या की चेरी बन जाओगी। मेरी आयु ऐसे ही नहीं व्यतीत हुई। कितने ही राजकुलों में मैंने ऐसा होते देखा है कि जिसका पुत्र राजा है, वही स्वामिनी होती है, शेष तो सब दासियां ही होती हैं। कौशल्या ने मीठे बोल बोलकर तुम्हें मोहवश कर लिया और भरत को अयोध्या से बाहर भेजकर महाराज को प्रेमवश करके राम का राज्याभिषेक निश्चित करा लिया। क्या इसमें तुम्हें कोई भी छल नहीं दिखाई देता?"

"तू क्या व्यर्थ की बकवास कर रही है करमजली!" कैकेयी भन्ना गईं—"यह तुझे क्या कुनीति सूझ रही है? ऐसे आनंद के अवसर पर तेरा यह प्रलाप मेरे कानों को दग्ध कर रहा है। तू मेरी प्रिय न होती तो मैं तुझे कठोर दंड देती।"

"यह प्रियता ही तो मुझे चिंतित कर रही है रानी! मुझे तो इस संसार में तुमसे अधिक कोई प्रिय नहीं है और तुम्हारे हित के अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा मेरे हृदय में उपजती भी नहीं है। मैं सदैव से तुम्हें राजरानी के रूप में देखने की इच्छा करती रही हूं। मेरे जैसी समर्पित दासी के लिए यह अपराध तो नहीं है। भरत मेरे हृदय में है, अतः उन्हें राजा बनते देखना मेरी इच्छा है तो इसमें क्या दोष है?"

"तेरे स्नेह व प्रेम पर मैं बलिहारी हूं मंथरा! तेरे विचार मेरे प्रति हितैषी हैं, अतः इन्हें तेरा दोष तो मैं कैसे कहूं। छोटी बुद्धि में प्रायः ऐसे क्षुद्र स्वामिभक्त विचार आ ही जाते हैं, जो अंततः सेवक और स्वामी दोनों को कलंकित करते हैं।" कैकेयी ने गंभीर स्वर में कहा—"अब अपने विचारों को अपने हृदय में ही रख और किसी से कभी भूलकर भी इनकी चर्चा न करना। मैं तुझे क्षमा करती हूं।"

"रानी मुझे दंड स्वीकार है, पर अपनी प्रिय रानी का दासत्व स्वीकार नहीं।

तुम कैकेय की राजकुमारी थीं। तुम्हें दैव ने जो रूप और बुद्धि दी, वह राजरानी बनने को दी है और तुम राजरानी की दासी बनना स्वीकार कर रही हो।" मंथरा ने मर्म पर चोट की।

"मंथरे! दैव की यही इच्छा है। सभी इच्छाएं तो सबकी पूरी नहीं होतीं। भाग्य ने मुझे महाराज की सबसे छोटी रानी बनाया। अब इसी के अनुसार तो मेरा वैभव तय होगा। तू अकारण ही दुखी हो रही है।"

"दैव की यही इच्छा होती तो वे मेरे मन में ऐसे विचार क्यों लाते रानी? दैव कुछ और ही चाहते हैं। यह दैव की प्रेरणा ही है कि मेरी बुद्धि में ऐसा उपाय आया है कि सब मनोरथ पूरे हो जाएंगे। तुम राजरानी बन जाओगी, भरत महाराज होंगे और मैं अपने शेष जीवन को आनंदपूर्वक व्यतीत करके संसार से विदा हो जाऊंगी। रानी, जब उपाय न हो तो मनुष्य को दैव के आश्रित होकर अपनी स्थिति स्वीकार कर लेनी चाहिए, पर जो उपाय होते हुए भी अपना उत्थान नहीं चाहते, वे संसार का सुख नहीं भोगते।"

कैकेयी अब विचारमग्न हो गई थीं। कुटिल बात में यदि रस आने लगे तो वह हितकर लगती है। कैकेयी भी स्त्री थी, राजवधु थी, महत्त्वाकांक्षी भी थीं। भले ही अभी तक उसके हृदय में ऐसा कोई विचार न था, परंतु जब परामर्श में इच्छाओं की पूर्ति उपाय सहित होती है तो मन में दमित इच्छा सिर उठा ही लेती है।

"ऐसा...ऐसा क्या उपाय है कि प्रातः राजतिलक होना निश्चित हो गया है और तेरे उपाय से टलकर भरत राजा बन जाएगा?" कैकेयी ने धीरे से पूछा।

"रानी! आप वे दो वरदान भूल गईं, जो महाराज ने आपको दिए और धरोहर के रूप में आज भी आपके पास सुरक्षित हैं। दैव ने इसी समय के लिए उन्हें साथ रखा था। महाराज उनमें वचनबद्ध हैं और रघुकुल के वचन का बड़ा महत्त्व है।" मंथरा ने सरस्वती प्रेरित उपाय बताया–"आप अभी कोपभवन में जा पसरिए। महाराज आएंगे तो उन्हें वरदानों का स्मरण कराते हुए बुद्धिमत्ता दिखाकर, स्त्री-सुलभ हठ से पहले वरदान में भरत के लिए राज्य मांग लेना–बन गया काम।"

"मंथरे...मंथरे, कहीं कुछ अनुचित न हो जाए।" कैकेयी कंपित हुईं–"तेरा उपाय तो अच्छा और मन की इच्छा पूरी करने वाला है, फिर भी सोच ले।"

"सोचना क्या? अब समय ही कितना रहा है, रात्रि बीच में है। सोचने में समय नष्ट करने से क्या सिद्ध होगा? पछतावा शेष रह जाएगा कि उपाय था, अवसर था, इच्छा भी थी, पर कुछ हाथ न आया। दासी तो तुम्हारे हितेन प्राण भी दे देगी।"

"ठ...ठीक है।" कैकेयी दृढ़ हो गईं–"पर दूसरे वरदान में क्या मांगूं?"

"राम को चौदह वर्ष का वनवास।"

"मंथरा!" कैकेयी का सर्वांग कांप गया और वे चीख पड़ीं—"तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है?"

"रानी, फिर भरत को निर्विघ्न राज्य कौन करने देगा? हाथ आई चीज निकल जाए तो क्या राम, क्या कौशल्या—सब भरत के शत्रु हो जाएंगे। कुछ प्राप्त कर लेना ही कुछ नहीं होता, उसे सुरक्षित भी करना होता है। राम पर प्रजा का बहुत स्नेह है और सिंहासन के लिए मैंने बड़े रक्तपात देखे हैं। अपने प्रिय भरत को कुछ देना ही है तो निर्भय, निष्कंटक और पूरी तरह सुरक्षित दो। अब जब उपाय है तो करना चाहिए।"

"पर...पर राम क्या सोचेगा?" कैकेयी के मस्तक पर पसीना आ गया।

"यहां रहेगा तो सोचेगा न! वन में सोचता भी रहे तो भी क्या! चौदह वर्ष पश्चात् तो ईश्वर जाने क्या हो? अभी हृदय कठोर कर लो राजरानी!"

कैकेयी ने ऐसा ही करने का निश्चय कर लिया। इसके साथ ही देवताओं की इच्छा पूरी होने की ओर बढ़ने लगी।

17

दो वरदान की इच्छा

"एक समय तू मेरे जीवन का कारण बनी थी कुटिला! परंतु आज प्रतीत होता है कि तू ही मेरी मृत्यु का कारण भी बनेगी। तूने अपने पहले वरदान में मेरे हृदय को छलनी कर दिया है। अब निश्चय ही तू मेरे प्राण लेने वाली है, पर राम के साथ अन्याय करने के पश्चात् अब इस जीवन का अर्थ भी क्या रह जाएगा? अत: तू अपने दूसरे वरदान में जो भी उल्कापात करना चाहती है, वह भी कर ले, क्योंकि राज्य, पुत्र और परिवार के बिना रहना तो कठिन नहीं, पर धर्म और वचन से रहित होकर जीना कठिन है।"
"अपना हृदय और भी दृढ़ कर लीजिए महाराज! मेरे दूसरे वरदान के बदले मेरी इच्छा आपके अस्तित्व को हिलाकर रख देगी।"

राजा दशरथ के हृदय में उल्लास हिलोरे ले रहा था। उनके प्रिय पुत्र राम के राजतिलक की तैयारियां चल रही थीं। सभी अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे। जिसे जो कार्य सौंपा गया था, वह उसे पूरे उत्साह के साथ कर रहा था।

राजभवन में बड़ी गहमागहमी थी। राजा स्वयं गुरु की आज्ञा से सभी तैयारियों का निरीक्षण कर रहे थे। अहा! देव ने कैसा आनंद भरा दिन दिखाया है! स्वर्ग के सुख भी इसके सामने फीके हैं। आज शेष रह गई सब इच्छाएं पूर्ण हो जाएंगी! जीवन की सार्थकता सिद्ध हो जाएगी! सभी

आश्रमों का विधिवत् पालन करने के बाद मनुष्य जीवन सार्थक हो जाता है। इन्हीं आनंद भरे विचारों में डूबे, प्रफुल्लित होते राजा दशरथ अपनी प्रिय रानी कैकेयी के कक्ष की ओर आ गए, जहां मस्तक पर हाथ रखे मंथरा बैठी थी। राजा की भृकुटि तन गई। ऐसे शुभ अवसर पर उस दासी का यह व्यवहार क्रोध दिलाने वाला ही था।

"मंथरा, इस प्रकार दिन-रात्रि मिलने के समय यहां क्यों बैठी है?" राजा ने कठोरता से प्रश्न किया-"ऐसे शुभ दिन ऐसी मुद्रा का क्या कारण है और रानी कहां हैं?"

"महाराज, रानी कोपभवन में हैं। कुछ दिनों से आपकी व्यस्तता के कारण संभवत: उन्हें अपनी उपेक्षा का अनुभव हो रहा है अत: वे तनिक रोष में हैं। मैंने समझाने के सभी प्रयास किए, पर उन्हें तो आपसे ही...।"

"ओह! प्रिये कैकेयी का विचार ठीक हो सकता है, पर समय उचित नहीं। कोई बात नहीं। हम अभी जाकर उन्हें मना लेते हैं। तुम अपनी मुखाकृति संभालो और जाकर कोई कार्य देखो। वृद्धों का अनुभव ऐसे ही अवसरों पर काम आता है।"

मंथरा कुटिलता से मन-ही-मन मुस्कराई और चली गई। राजा को अभी तक स्थिति की गंभीरता का भान नहीं था, अत: वे निर्भीक कोपभवन पहुंच गए। वहां कैकेयी का रूप देखकर पहली बार उनका हृदय आशंका से लरज उठा-जैसे साक्षात् भयमाता ही क्रोध में क्रूर रूप धारण किए बैठी थी। खुले हुए केश, अस्त-व्यस्त वस्त्र और नेत्रों में प्रचंड क्रोध के भाव थे! सभी आभूषण तिक्त से पड़े थे।

"प्रिये...यह...यह क्या दशा बना रखी है! आज घर में ऐसा मनोहारी उत्सव है और तुम यहां साक्षात् चंडी रूप धारण किए हो! क्या बात है कैकेयी! क्या हमसे कोई भूल हो गई? संभवत: व्यस्तता के कारण हम तुम्हें समय न दे पाएं।"

"भूल!" कैकेयी ने नागिन की भांति पलटकर कहा-"ऐसी भूल रघुकुल में पहले कभी न सुनी, न देखी। मेरे दो वरदान आज तक धरोहर बने पड़े हैं और आप जैसे उन्हें भूल ही गए। आज ब्राह्मणों, याचकों को क्या नहीं मिला और मेरा तो ऋण था दान या याचना भी न थी। इससे अच्छा समय मेरे लिए कब आएगा?"

"प्रिये, इसमें इतना क्रोध क्यों? तुम्हारे वरदान आज भी सुरक्षित हैं। यह तो तुम्हारी इच्छा के अधीन थे कि वे तुम्हें कब चाहिए। तुमने संकेत किया होता तो हम उन्हें भव्य रूप से तुम्हें दे देते। तुम्हें ऐसा स्वांग न करना चाहिए था।"

"इसे आप स्वांग कह रहे हैं।" वे फड़फड़ा उठीं-"मेरी इच्छा को स्वांग कह रहे हैं। क्या मैं चारण-भाट या नट की पुत्री हूं, जो स्वांग करती हूं। आप वचनबद्ध होकर मेरे दो वर मुझे प्रदान करें तो मेरा सब शोक समाप्त हो जाएगा।"

"अपनी प्रिय का शोक समाप्त करने के लिए तो हम स्वयं यम से लड़ जाएंगे।" दशरथ ने वहीं रखे जलपात्र से अंजली भर जल लिया–"हम संकल्प करते हैं कि आज इस शुभ अवसर पर तुम अपने दोनों वरदानों में जो भी मांगोगी, वह हम नि:संकोच देंगे।"

अनहोनी से अनभिज्ञ राजा ने कुल की रीति के अनुसार संकल्प लिया था। प्राण जाए पर वचन न जाए–यह रघुकुल की रीति थी। देवताओं के अभीष्ट ने सिद्ध होने के लिए एक और पग आगे बढ़ा दिया था।

"प्रिये! तुम जानती हो कि वचन और संकल्प हमारे लिए प्राण की भांति हैं। अब तुम व्यर्थ शोक को न बढ़ाकर अपने वरदान मांग लो और यहां से चलो। किसी ने तुम्हें इस दशा में देख लिया तो अकारण बातें बनेंगी।" दशरथ ने गंभीरता से कहा।

"महाराज, रघुकुल की रीति और वचन को निभाने का संकल्प लेकर मैं आपसे अपना पहला वरदान मांगती हूं। अपना हृदय कठोर कर लेना। अपने पूर्वजों का स्मरण कर लेना।" कैकेयी दृढ़ता से बोलीं–"मुझे मेरे पहले वरदान के फल में अपने प्रिय पुत्र भरत के लिए अयोध्या का राज्य चाहिए।"

राजमहल ही जैसे भरभराकर राजा दशरथ के सिर पर गिर गया था। वे लड़खड़ाकर गिर पड़े थे। नेत्रों के समक्ष घोर अंधकार छा गया। कैकेयी के कहे शब्द किसी वज्रपात के समान थे जिन्होंने उनके अस्तित्व को खंड-खंड कर दिया था।

"क्या हुआ रघुकुल शिरोमणि!" कैकेयी ने कुटिल स्वर में कहा–"पहले ही वरदान ने आपके संकल्प की नींव को थरथरा दिया।"

"कैकेयी!" राजा विस्फारित नेत्रों से बोले–"तू कैकेयी नहीं हो सकती। अवश्य ही तेरे शरीर में कोई दुरात्मा प्रवेश कर गई है, जो तू ऐसी अवसर पर ऐसे अनहोनी वाणी बोल रही है। तू ऐसी अनर्थकारी बात कैसे सोच सकती है? वह कैकेयी जो राम को प्राणों से प्रिय मानती है, वह जो रघुकुल के सम्मान और मर्यादा का भार उठाए है, वह संसार में निंदित होने का कार्य कैसे कर सकती है?"

"क्योंकि मैं भरत की माता भी हूं। नौ माह अपने गर्भ में रखकर जिस पुत्र को मैंने जन्म दिया, उसका हित-अहित सोचना मेरा परम धर्म है। जब पिता से पुत्र को उपेक्षा मिले तो माता को चाहिए कि वह पुत्र के हितों की रक्षा करे।"

"तू निश्चयी ही किसी कुटिल की दुर्बुद्धि से बुद्धिहीन हुई है।" राजा रो पड़े–"तेरे ये आरोप और विचार तेरे अपने नहीं हैं। सचेत हो जा कैकेयी! संसार में कलंकित होकर पुत्र-हितैषी बने लोग कभी सुखी नहीं हुए।"

"आप अपना संकल्प पूरा कर रहे हैं या नहीं?" कैकेयी ने दृढ़ स्वर में पूछा।

"कैकेयी, तू अवसर तो देख! सारा संसार राम के राजतिलक का उत्सव मना रहा है। ऐसे अवसर पर ऐसा निर्णय रघुकुल की कीर्ति को कलंकित कर देगा। तुझे भरत को राजा बनते देखना है तो मैं तेरी यह इच्छा अवश्य पूरी करूंगा। इस उत्सव को पूर्ण हो जाने दे। मैं एक नहीं, चार राज्य जीतकर भरत को दे दूंगा।"

"मुझे अधिकार चाहिए महाराज, कृपा नहीं। भरत के अधिकार अयोध्या में हैं। मैं बस नियमपूर्वक इतना ही कर सकती हूं कि भरत का चौथा हिस्सा बनता है, उसे वह दीजिए और कल ही उसका भी राजतिलक करिए।"

"संसार हंसेगा कैकेयी! तेरी दुर्बुद्धि भरी इच्छा को ऐसे पूरा भी करूं तो सारी कीर्ति धूमिल हो जाएगी। तू अपने वास्तविक रूप में आ और मुझे धर्मसंकट में न डाल।"

"यही मेरा वास्तविक रूप है महाराज! मैं हठ नहीं कर रही हूं। यदि आप मुझे मेरे वरदान नहीं देना चाहते तो न दीजिए। इसमें मैं क्या कर पाऊंगी?"

"तूने मुझे वचनबद्ध करके सभी मार्ग बंद कर दिए हैं।"

"तो साहसी रघुवंशी की भांति यह दुर्बलता त्याग दीजिए। पुरुषोचित साहस का प्रदर्शन करिए। वचन दिया है तो निभाइए अन्यथा वचनहार हो जाइए। मैं ऐसी ही निर्दयी नहीं कि अपने स्वामी के वचन हारने का प्रचार करूंगी।"

राजा दशरथ ने अपना सिर भूमि पर दे मारा। मानसिक वेदना इतनी हो गई थी कि मस्तिष्क के टुकड़े हो सकते थे। कैसा धर्मसंकट था! उस कुटिल स्त्री ने कैसा मायाजाल रचा था जिसमें से निकलना भी मृत्यु था और रहना भी! अंतिम प्रयास के रूप में राजा ने हाथ जोड़ दिए।

"हे कैकेयी! तेरी दुर्बुद्धि निश्चय ही हमारे पूर्वजन्मों के पापों के कारण उपजी है, परंतु तू अपनी मर्यादा, अपने राजपद और दो कुलों की आन का स्मरण कर। मैं तेरे समक्ष नत हुआ। तुझे भरत को सिंहासन पर देखना है—तेरा मनचाहा शीघ्र हो जाएगा। मेरा राम अपने पिता को ऐसे धर्मसंकट में नहीं देख सकता। बस कल इस लोक विदित अवसर को पूर्ण हो जाने दे, फिर मैं शीघ्र ही उसे अपने वचन के विषय में बताकर उसे आज्ञा भी दूंगा तो वह सहर्ष मेरा कार्य सिद्ध करके प्रसन्न होगा।"

"लाभ मिलने पर, शक्ति प्राप्त होने पर उसे छोड़ने का कार्य किसी मनुष्य से तो क्या किसी देवता से भी कभी न हो सका है महाराज! मुझे बहलाने के प्रयास न करें और इसी कक्ष में निर्णय कर दें कि आप मुझे इच्छित वरदान दे रहे हैं या नहीं!

"मेरा राम अपने पिता को ऐसे दुखी नहीं देख सकता कैकेयी! मैं अभी जाकर उसे तेरी इच्छा बताता हूं और वह परम त्यागी बड़े हर्ष से उस राजमुकुट को भरत के सिर पर रख देगा, क्योंकि ऐसे मुकुट उसके लिए गौण हैं। वह तो साक्षात् विष्णु है, जो ब्रह्मांड का शासक है। उसे ऐसे तुच्छ सिंहासनों से क्या प्रीति होगी! अब तू यहां से इस अशुभ अमंगल सूरत को हटा।"

"अभी मेरा एक और वरदान शेष है महाराज! यह तो वर्षापूर्व की बिजली कड़की थी। भयानक चक्रवात आना तो शेष है। आज ही सब हिसाब पूरे कर दीजिए। पीछे कुछ भी शेष न रहना चाहिए और सत्य मानिए कि इसमें भी आपका परम आज्ञाकारी पुत्र राम ही आपको सुखी करेगा। वह विष्णु रूप अपने पिता के समस्त दुखों का निवारण करते हुए उन्हें अपी प्रिय माता से उऋण कर देगा।"

"एक समय तू मेरे जीवन का कारण बनी थी कुटिला! परंतु आज प्रतीत होता है कि तू ही मेरी मृत्यु का कारण भी बनेगी। तूने अपने पहले वरदान में मेरे हृदय को छलनी कर दिया है। अब निश्चय ही तू मेरे प्राण लेने वाली है, पर राम के साथ अन्याय करने के पश्चात् अब इस जीवन का अर्थ भी क्या रह जाएगा? अतः तू अपने दूसरे वरदान में जो भी उल्कापात करना चाहती है, वह भी कर ले, क्योंकि राज्य, पुत्र और परिवार के बिना रहना तो कठिन नहीं, पर धर्म और वचन से रहित होकर जीना कठिन है।"

"अपना हृदय और भी दृढ़ कर लीजिए महाराज! मेरे दूसरे वरदान के बदले मेरी इच्छा आपके अस्तित्व को हिलाकर रख देगी।"

कैकेयी का हृदय पाषाण हो गया था–"मुझे मेरे दूसरे वरदान के फलस्वरूप राम को चौदह वर्ष का वनवास चाहिए।"

"कैकेयी!" राजा दशरथ ने कानों पर हाथ रखकर अपना सिर धरती पर पटका और तब तक पटकते ही रहे, जब तक अवचेत न हो गए, परंतु कैकेयी निष्ठुरता की प्रतिमूर्ति बनी रही। तंत्र, मंत्र या यंत्र से मोहित बुद्धि एक बार को सत्य का अनुभव करके सद्मार्गी हो जाती है, परंतु इच्छा, लालच और निष्ठुरता से मोहित बुद्धि संभाले नहीं संभलती। उसने जल भरकर राजा के मुख पर छिड़का तो वे चैतन्य हो उठे। वे इस प्रकार चारों ओर देखने लगे, जैसे निद्रा में स्वप्न से जागे हों, परंतु कैकेयी पर दृष्टि पड़ते ही भय से उनका मुख पीला पड़ गया। आंखों में आतंक की परछाई नजर आने लगी।

"महाराज! मैंने कहा था न कि मेरा दूसरा वरदान पहले से भी अधिक मर्मांतक होगा। क्या है कि भरत का राजा बन जाना ही मेरे लिए मनचाहा नहीं है। मुझे अपने पुत्र भरत को निर्भय, निष्कंटक साम्राज्य उपहार में देना है, जो राम

के होते असंभव है, क्योंकि एक तो मेरे भरत में राम के प्रति अत्यधिक स्नेह है। दूसरे राम की लोकप्रियता कुछ अधिक है। ये दोनों तथ्य मेरे स्वप्न-ध्वंस का कारण बन सकते हैं।"

"कैकेयी, कुलटा! तू इस वरदान के बदले मेरे प्राण ले ले, पर ऐसा अनर्थकारी वचन न बोल। मेरा राम कदापि तुझे या तेरे भरत को काई कष्ट न देगा। वह तो राजा न भी हो तो भी राजाधिराज है। उसे सिंहासनों में रुचि नहीं। वह सदैव भरत का सहायक होगा।"

"मैं आशाओं और विश्वासों से आश्रय नहीं मांगती। मैं अपने पुत्र को ऐसा कंटकताज नहीं देना चाहती, जिसमें हर क्षण प्राणों का संकट रहे। आप अपने सुपुत्र राम से पूछ लीजिए कि वह मेरे इन मनोरथों और अपने पिता के वचनों को पूरा करने में इतना त्याग कर सकता है कि नहीं। यदि नहीं तो बात ही समाप्त हो गई, फिर मैं सर्वदा मौन हो जाऊंगी।"

"कैकेयी, तू राम के प्रति इतनी निष्ठुर कैसे हो गई? उसका मुख देखे बिना तुझे शांति न मिलती थी, फिर आज उसके इतना विरुद्ध क्यों हुई?"

"क्योंकि तब मुझे मेरे गर्भ से जन्मे भरत के प्रति इतनी चिंता न थी। आज उसका अधिकार छीना जा रहा है। उसे दास बनाया जा रहा है। मुझे राजरानी होना था, पर मुझे भी कौशल्या की दासी बनाने का षड्यंत्र रच दिया गया है।"

आज दशरथ को श्रवण कुमार के अंधे माता-पिता के श्राप का स्मरण हो आया। ये सभी परिस्थितियां उसी श्राप के अनुकूल बन रही थीं।

18

कौशल्या का आशीर्वाद

लक्ष्मण ने प्रसन्नता से अपनी इच्छा माता सुमित्रा और कौशल्या को बताई।

"पुत्र, मैं बड़ी धन्यभागी हूं जो मेरे गर्भ से ऐसा परम भ्रातृ-भक्त पुत्र उत्पन्न हुआ।" सुमित्रा ने कहा–"वन में अपने भैया-भाभी की खूब सेवा करना। किसी आपत्ति-विपत्ति के समय अपने प्राण देकर भी इनकी रक्षा करना। जहां राम नहीं, वहां जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। हमारी तो विवशता है, परंतु तुम राम के सान्निध्य का यह अवसर क्यों छोड़ते हो? मैं सहर्ष तुम्हें आज्ञा देती हूं।"

"पुत्र लक्ष्मण, जब तक संसार रहेगा, तब तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी। जब भी कहीं भाई-भाई की बात चलेगी, वहां लक्ष्मण की उपमा दी जाएगी।" कौशल्या लक्ष्मण को आशीर्वाद देते हुए भाव-विह्वल होकर बोलीं–"तुमने मुझे निश्चिंत कर दिया है पुत्र!"

शीघ्र ही रंग में भंग पड़ गया। मंथरा के सौजन्य से यह समाचार सारे नगर में फैल गया। प्रजाजन कैकेयी की बुद्धि और व्यवहार पर आश्चर्य कर रहे थे। सायंकाल तक तो वे ऐसे प्रसन्न थीं, जैसे उसे नवनिधि की प्राप्ति हो गई हो, फिर अचानक उनके ऊपर क्या भूत सवार हुआ, जो ऐसा बड़ा संकट उत्पन्न कर दिया। हर कोई इसका कारण जानने को उत्सुक था और समूह-के-समूह राजभवन की ओर जा रहे थे। असंख्य

दीपों के प्रकाश से जगमगाती अयोध्या का भविष्य भी अब अंधकारमय होने जा रहा था। अब क्या होगा, यह जानने को सभी व्याकुल थे। रघुकुलवंशियों की वचनश्रद्धा जहां संदेहहीन थी, वहीं कैकेयी की हठधर्मिता अभी संदेहास्पद थी।

सर्वप्रथम गुरु वशिष्ठ ने जाकर कैकेयी को समझाया, पर वे केवल सुनती थीं। बोलना तो जैसे उन्होंने भुला ही दिया था। राजा विलाप करके अचेत हो जाते और चैतन्य होने पर फिर विलाप करने लगते। सब धर्म-आचरण और मर्यादा का उपदेश देकर अंततः गुरु वशिष्ठ ने इसे होनी का कठोर आक्रमण कहा, जिसे अब टाला नहीं जा सकता था। इसके बाद प्रबुद्ध मंत्री सुमंत सहित अनेक वरिष्ठ सभासद भी पहुंचे। नगर की गणमान्य स्त्रियां भी आईं, पर कैकेयी पर किसी के उपदेशों का प्रभाव न पड़ा। वे मौन ही रहीं, कौशल्या और सुमित्रा ने भी उन्हें समझाया।

"राम राजा न हो, इसमें तेरी प्रसन्नता है तो वही होगा।" कौशल्या ने कहा–"जिसमें कुल का हित हो और राज्य में शांति रहे, ऐसे किसी भी त्याग के लिए मैं और मेरा राम सहर्ष तैयार हैं। तू बस अपने दूसरे वरदान पर विचार कर ले। इससे कुल की हंसी और महाराज को दारुण दुख होगा। इनकी दशा पर दया कर बहन!"

जिसने यह सोच लिया हो कि बोलने पर उसका पक्ष कमजोर हो जाएगा, वह फिर क्यों उत्तर देने लगा। प्रभाव सरस्वती की योगमाया का भी था। कैकेयी को सभी परिजन ऊंच-नीच समझा रहे थे, परंतु वे सुनकर भी समझती न थीं। उन्हें इस प्रकार विनाश पर उतारु देखकर राजा का रुदन क्रंदन में बदल गया।

"हे कुलटा कैकेयी! इसमें तेरा कोई दोष नहीं है। अब मुझे स्मरण आ रहा है कि उन प्यासे और वृद्ध दंपती का श्राप मेरी मृत्यु बनकर तेरी जिह्वा पर आ बैठा है जिसने तेरी बुद्धि और वाणी सब छीन ली है।" दशरथ रोते हुए बोले–"अब उस श्राप के अनुसार ही मेरी मृत्यु निश्चित है। मेरी आंखों के सामने उन बूढ़ों ने अपने प्राण त्याग दिए थे और मुझे श्राप दिया था कि पुत्र-वियोग में ही मेरे प्राण भी जाएंगे, परंतु हे कलंकिनी, तू इसका निमित्त क्यों बनी! हां पुत्र राम, अब तुम ही मेरे क्लेश को दूर कर सकोगे। हे कमलनयन! आकर अपने पिता के व्याकुल हृदय को अंतिम दर्शन से तृप्त कर दो, क्योंकि अब किसी भी क्षण मेरे प्राण इस देह को त्याग सकते हैं।"

राजा घोर विलाप करते हुए अपने द्वारा श्रवण कुमार की हत्या और उसके वृद्ध माता-पिता के श्राप के विषय में बताने लगे।

यह समाचार अब तक राम को भी मिल गया था, जो अनुज लक्ष्मण के साथ राजसी उद्यान में बैठे गंभीर विषय पर वार्ता कर रहे थे। राम इस प्रथा पर विचलित थे कि राजकुलों में ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकारी घोषित क्यों किया जाता है।

"भ्राताश्री! यह राजवंशों की प्राचीन प्रथा है।" लक्ष्मण ने कहा था।

"इस प्रथा को बदलना चाहिए अनुज! युग बदलने के साथ भाइयों में ऐसा स्नेह नहीं रहेगा और राजसत्ता की महत्त्वाकांक्षाएं भ्रातृ-द्वेष में वृद्धि करेंगी।"

लक्ष्मण अपने अग्रज राम के श्रेष्ठ विचारों का सदा सम्मान करते थे। इस विषय पर दोनों भाई गहन विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि एक सेवक ने आकर लगभग रोते हुए राज्य पर आए इस आकस्मिक संकट के बारे में बताया।

दोनों भाई गंभीरता की प्रतिमूर्ति बने राजमहल पहुंचे और अपने शोकाकुल पिता को देखकर व्यथित हो उठे। माता कैकेयी ने उनकी ओर से मुंह घुमा लिया।

"पिताश्री, इस प्रकार शोकाकुल होना आपको शोभा नहीं देता। माता की इच्छा और पिता के वचनों के लिए तो यह राम त्रिलोक का राज्य भी छोड़ सकता है। आप अकारण ही इतनी मानसिक वेदना से व्यथित हुए। मुझे तत्काल बुला लिया होता तो मैं अपनी प्रिय माता और आपको इतना कष्ट क्यों उठाने देता। ऐसे पुत्र बड़भागी होते हैं, जो माता की इच्छा पूरी कर सकें और पिता के वचन को पूरा करने का श्रेय प्राप्त करें। आप शोक त्यागकर प्रसन्न हो जाइए।" राम ने पिता के चरण पकड़कर कहा।

राम के त्यागमय वचनों को सुनकर कौशल्या का ममत्व भले ही पीड़ित हुआ, परंतु हृदय गर्व से भर गया था। उसे संसार की सब निधियां जैसी उसी समय प्राप्त हो गई थीं। वे महारानी तो थीं, आज राजमाता हो गईं। संसार उसे उस राम की जननी कहकर सम्मान देगा जिसने विमाता की इच्छा और पिता के वचन की रक्षा के लिए राज्य-वैभव का सहर्ष त्याग कर दिया।

राम सभी के प्रिय थे, आज श्रद्धेय हो गए। कुल की मर्यादा की रक्षा करते हुए उन्होंने अपने ज्येष्ठ होने का प्रमाण दे दिया। रघुकुल की रीति अक्षुण्ण रही।

"माते, आप मेरी पूजनीय हैं।" राम ने कैकेयी को संबोधित किया-"आप स्वप्न में भी मेरा अहित करें, ऐसा विचार भी मेरे लिए पाप होगा। आपने मेरे वनगमन में भी मेरा हित ही सोचा है। मुझे वहां ऋषिजनों का सान्निध्य प्राप्त होगा और उनके उपदेशों से मेरा जीवन सार्थक हो जाएगा। मात्र चौदह वर्ष की ही तो बात है, मुनि-मुनीश्वरों की संगति में समय यूं ही व्यतीत हो जाएगा। बस मेरी इच्छा है कि मेरे लौटने के बाद मेरी माता मुझे हृदय से लगाकर अपना वह समस्त स्नेह उंडेल दे, जो मेरी अनुपस्थित में उसके हृदय में मेरे लिए संचय होगा।"

कैकेयी को लगा कि उसका हृदय किसी ने मुट्ठी में भरकर भींच दिया था, पर वे इन अंतिम क्षणों में कमजोर नहीं पड़ना चाहती थीं। जाने किस अज्ञात शक्ति ने उसके कानों में कहा-'सावधान कैकेयी, राम राजनीति में पारंगत और शहद से मीठी वाणी बोलने में कुशल है।'

राम ने यह समाचार सीता को देना उचित समझा और जब वे सीता के पास चले तो लक्ष्मण सहित कौशल्या, सुमित्रा, सुमंत व अन्य गणमान्य सदस्य भी चले। समस्या बड़ी थी। राम के अतिरिक्त किसी के पास इसका समाधान नहीं था। राम सीता के कक्ष में चले गए थे, सब परिजन बाहर थे।

"सीते! तुम्हारे अतिरिक्त और कौन जानता है कि काल की क्या गति है।" राम ने गंभीर स्वर में कहा–"जीवन संबंधों के आधार पर टिका हुआ है, जो हमारे सुख-दुख को प्रभावित करते हैं। संबंधों का सम्मान और निर्वहन ही वास्तव में जीवन जीने की कला है। संबंध परस्पर अपेक्षाओं से सक्रिय रहते हैं। कोई हमें कुछ देता है तो कोई हमसे कुछ लेता है। हमें इसी प्रवाह में रहना होता है।"

"स्वामी!" सीता विकल स्वर में बोलीं–"भाग्य और समय व्यक्ति के जीवन में बड़ी ही निर्णायक भूमिका निभाते हैं। हमें इनके निर्णय स्वीकार करने होते हैं। लाभ-हानि, जीवन-मरण और यश-अपयश विधाता के हाथ होते हैं। इनमें धीरपुरुष के स्वभाव का ज्ञान हो जाता है। आप जैसा आदेश करें, दासी प्रस्तुत है।"

"प्रिये! माता-पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके मैं चौदह वर्ष के लिए वन-गमन करता हूं। तुम इस कुल की ज्येष्ठ पुत्रवधु हो, अतः मेरी अनुपस्थिति में तुम सभी की सेवा और देखभाल कर सकोगी–इसका हमें विश्वास है।"

"नाथ, आप सर्वज्ञ हैं। मैं आपका हर आदेश स्वीकार करूंगी, परंतु आप मेरे हृदय को संतुष्ट करें। आर्य, क्या प्राण से विलग होकर देह का कोई अस्तित्व रह जाता है। चंद्रमा के अभाव में चांदनी का कोई अपना स्रोत होता है। पत्नी का जीवन तो पति के चरणों में समर्पित होता है। हे कृपानिधान, मैं आपसे अलग रहकर जीवित रह सकूं, ऐसा कोई उपाय मुझे बताइए।" सीता ने हाथ जोड़कर कहा।

"जनकदुलारी! तुम्हारा प्रश्न और विकलता उचित है। एक स्त्री का अपने पति में अधिक अनुराग रहता है और वह उसके सुख-दुख के साथ जीवन व्यतीत करती है, परंतु इस समय परिस्थितियां कुछ विशेष हैं। दुर्भाग्य और सौभाग्य ने रघुकुल की परीक्षा लेने का निर्णय लिया है और हम सभी को बड़े धैर्य से वह परीक्षा देनी होगी। हमारे पूर्वजों ने भी ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं और सृष्टिपर्यंत कुल की कीर्ति को स्थायित्व दिया है, अतः हमें भी अपने-अपने धैर्य का परिचय देना होगा।"

"आर्य, मेरे धैर्य की परख तो पति के सुख-दुख में साथ देने से होगी। इस राजमहल में मेरी देह भले ही सुखी रहे, पर मेरे प्राण क्षण-क्षण व्याकुल होंगे, अतः मैं भी अपने पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए आपके साथ वन में चलूंगी।"

"सीते, तुम सुकोमल हो! कभी दुख की परछाई भी तुम पर नहीं पड़ी है। वन में जीवन बड़ा ही कठिन होता है। वहां हिंसक जीव-जंतु रहते हैं।"

"और इतने पर भी मैं अपने स्वामी को अकेला जाने दूं?" सीता के नेत्र भर आए–"नाथ, क्या इसी दिन के लिए आपने मुझ अभागिन का वरण किया था कि मुझे दोष लगे। संसार व्यंग्य करेगा कि सीता राजसुखों की लिप्सा में अपने पति को घोर संकटों में भेजकर स्वयं सुख से रही। नाथ! अपनी अर्धांगिनी को ऐसा कलंक न लगाएं। मेरी विनती स्वीकार करें और मुझे साथ चलने की आज्ञा दें।"

"सीते, माता-पिता और गुरुजनों से जो भी आज्ञा मिले, उसका अनुसरण करो।"

सीता तत्काल बिलखती हुई कौशल्या और सुमित्रा के पास आकर उनके चरणों में गिर पड़ीं और उनसे पति के साथ वन-गमन की आज्ञा मांगी। दोनों ही माताओं का हृदय दुख से पहले ही आकुल था, अब सीता का विलाप उन्हें और भी पीड़ित कर रहा था।

"पुत्री, विकल न हो। स्त्री का धर्म अपने पति की सेवा करना है। सुकन्या ने अपने पिता की आज्ञा पाकर अंधे च्यवन ऋषि की सेवा की थी।" कौशल्या ने कहा–"तू अपने धर्म पर दृढ़ रह और यथोचित धर्म का पालन करते हुए अपने पति की सेवा में जा।"

"पुत्री! राम सत्य कहता है कि आज इस कुल के सभी सदस्यों को धैर्य के साथ विपरीत परिस्थितियों का सामना करना है।" सुमित्रा बोलीं–"तू अपना धर्म क्यों छोड़ती है? स्त्री की गति उसके पति के चरणों में होती है। तुझे हमारी आज्ञा है।"

सीता ने प्रसन्नता से आंसू पोंछे और राम के पास आई।

"सीते, वस्त्राभूषणों को त्यागकर हमें वनवासियों का बाना धारण करना चाहिए।"

"जो आज्ञा आर्यपुत्र!" सीता ने कहा।

उसी समय वहां सिर झुकाए लक्ष्मण भी आ गए और अपने भाई को राजसी वस्त्रों का त्याग करते देख उनके नेत्र भर आए।

"अनुज, यह क्या? यदि तुम भी ऐसा व्यवहार करोगे तो पीड़ित पिता, माताओं व प्रजाजनों को कौन संभालेगा? प्रिय भरत का कौन सहायक होगा?" राम बोले।

"हे कृपासिंधु, जिस प्रकार धरा नित्य आकाश का दर्शन करके प्रसन्न रहती है, वैसे ही यह लक्ष्मण तो आपके दर्शनों से श्वास लेता रहा है। मुझे स्मरण नहीं कि जीवन में कभी एक क्षण के लिए भी आपसे विलग हुआ। अत: हे दयानिधान, अब ऐसा क्या अपराध हो गया मुझसे, जो आप मुझे त्याग रहे हैं।"

"अनुज, ऐसा विचार भी क्यों करते हो?" राम ने स्नेह से लक्ष्मण के सिर पर हाथ फिराया–"समय ने हमारी ऐसी परीक्षा ली है कि हमें कुछ समय का वियोग सहना ही होगा। माता कैकेयी की इच्छा है कि राम वन को जाए तो उनकी इच्छा पूरी करना तो मेरा धर्म है–सुख-'दुख तो जीवन के अंग हैं।"

"हे नाथ, आपने सदैव मुझे अपने संग रहने का आशीर्वाद दिया है। आप अपने ही आशीर्वाद से विमुख कैसे हो सकते हैं? हे दयासिंधु, सेवक को अपने साथ चलने की आज्ञा दें। हे माते, आप ही मेरे संताप को दूर करने की की कृपा करें।"

"भैया लक्ष्मण!" सीता ने स्नेहपूर्वक कहा—"मैं इस विषय में क्या कह सकती हूं! मेरा स्नेह भी तो यही कहेगा कि तुम्हारा सुकोमल गात वन के कष्टों को कैसे सह सकेगा और तुम इस कष्ट को क्यों प्राप्त होते हो?"

"भ्राताश्री, जिस प्रकार बिना मूर्ति के मंदिर में पूजा-अर्चना नहीं की जाती, वैसे ही इस नगर में आपके बिना श्वास लेना होगा। हे करुणानिधान, मुझ अकिंचन पर दया करें और मुझे एक लंबी अवधि की यंत्रणा का दंड न दें। मैं शपथ उठाकर कहता हूं कि आपके बिना मेरा जीवन शून्य हो जाएगा और यदि आप मुझे यहां छोड़कर गए तो संभवतः लौटने पर बहुत पश्चाताप करेंगे।" लक्ष्मण ने विनती की।

"अनुज, तुमने मुझे धर्मसंकट में डाल दिया है।" राम विवश होकर बोले—"तुम मेरे स्नेह में बंधकर ऐसा कष्टमय जीवन स्वीकार कर रहे हो। यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो जाकर माताओं, पिता और गुरुजनों से आज्ञा प्राप्त करो, फिर जैसा उनका आदेश हो, वैसा ही करना।"

लक्ष्मण ने प्रसन्नता से अपनी इच्छा माता सुमित्रा और कौशल्या को बताई।

"पुत्र, मैं बड़ी धन्यभागी हूं जो मेरे गर्भ से ऐसा परम भ्रातृ-भक्त पुत्र उत्पन्न हुआ।" सुमित्रा ने कहा—"वन में अपने भैया-भाभी की खूब सेवा करना। किसी आपत्ति-विपत्ति के समय अपने प्राण देकर भी इनकी रक्षा करना। जहां राम नहीं, वहां जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। हमारी तो विवशता है, परंतु तुम राम के सान्निध्य का यह अवसर क्यों छोड़ते हो? मैं सहर्ष तुम्हें आज्ञा देती हूं।"

"पुत्र लक्ष्मण, जब तक संसार रहेगा, तब तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी। जब भी कहीं भाई-भाई की बात चलेगी, वहां लक्ष्मण की उपमा दी जाएगी।" कौशल्या लक्ष्मण को आशीर्वाद देते हुए भाव-विह्वल होकर बोलीं—"तुमने मुझे निश्चिंत कर दिया है पुत्र!"

जब दशरथ को यह समाचार मिला तो उनका शोक चार गुना हो गया। अब वे क्षण-भर को सचेत होते और हृदयघात की-सी स्थित बन जाती। वैद्य उन्हें संभालने का बहुत प्रयास कर रहे थे, परंतु शोकाकुल राजा 'हाय राम-हाय लक्ष्मण' के अलावा कोई शब्द न बोलते थे। सारे नगर में शोकाकुल सन्नाटा छा गया था। वह कालरात्रि अयोध्या के नगरवासियों को जैसे काट खाने को दौड़ रही थी।

19

केवट की चतुराई

गंगापार होने पर केवट करबद्ध होकर खड़ा हो गया। राम ने सीता की ओर संकेत किया जिन्होंने अपनी अंगूठी केवट की ओर बढ़ाई।
"प्रभो, मेरे जीवन के परिश्रम का पारिश्रमिक मुझे आज भरपूर मिल गया है। मेरे सभी कष्ट दूर हो गए हैं।" केवट ने चतुराई से कहा–"मुझे उतराई नहीं चाहिए नाथ! बस जब मैं भव सागर के किनारे पहुंचूं तो अपने कृपालु कर-कमलों से मुझे भव सागर पार करा दीजिए।"
राम ने उसे अपनी निर्मल भक्ति का वरदान दिया। उसके पश्चात् उन्होंने केवट से प्रेमपूर्वक विदा ली।

अयोध्यावासियों के लिए वह सवेरा ही अत्यंत कष्टकारी था, जब तीन भव्य मूर्तियां वनवासी के वेश में उनके सामने आईं। उन्हें किसी श्रृंगार और आभूषण से रहित देखकर हृदय फटे जा रहे थे, परंतु उनकी सौम्यता और सुंदरता के आकर्षण से आकुल हृदय भी जैसे शीतल हो रहे थे। सभी की आज्ञा लेकर राम-सीता और लक्ष्मण राजमहल से बाहर की ओर आ रहे थे और पीछे अनेक स्त्री-पुरुषों का करुण क्रंदन गूंज रहा था। इन सबके बीच एक आर्तस्वर भी गूंजता था जिसमें अपार वेदना थी और जो राजमहल के हर कोने को व्याकुल व्यथित कर रहा था। यह राजा

दशरथ का विलाप था। एक पराक्रमी, देवों से प्रशंसित और नृपश्रेष्ठ नरेश आज ऐसी दयनीय अवस्था में विलाप कर रहा था कि पाषाण भी अश्रुमय हो चले।

जब राम, लक्ष्मण और सीता राजा से आज्ञा लेने पहुंचे तो कैसा करुण दृश्य उत्पन्न हुआ था! अपने प्राणों से प्रिय पुत्रों और पुत्रवधु को वनवासियों के वस्त्रों में देखकर वह हाहाकार करने लगे।

"हाय दैव! क्या इसी दिन के लिए तूने मुझे जीवित रखा था! क्या वे वृद्ध अंधे श्राप देने में इतनी क्रूरता तेरे ही संकेत पर कर गए, अन्यथा क्या वे मुझे तत्काल मृत्यु का श्राप देने में सक्षम नहीं थे? हे विधाता, मेरे जो पुत्र इंद्र के आसन से भी उच्चासन के अधिकारी थे, वे आज मुनिवेश बनाकर वन को जा रहे हैं। हे गुरु वशिष्ठ, हे तात सुमंत, इन्हें रोको। अरी कुटिला कैकेयी! अयोध्या उजाड़ हो रही है। जैसे जल के बिना नदी और जड़ के बिना वृक्ष व्यर्थ हैं, वैसे ही राम-लक्ष्मण के बिना यह अयोध्या व्यर्थ हो जाएगी। तेरा भरत क्या फिर श्मशान पर शासन करेगा?"

पिता का शोक बढ़ता ही जा रहा था। राम अधिक देर तक रुककर उनके संताप में वृद्धि नहीं करना चाहते, अत: सभी को सिर नवाकर चल दिए। गुरु वशिष्ठ मौन थे, गंभीर थे, क्योंकि प्रभुलीला के संदर्भ में सब जानते थे। उन्होंने सभी को समझाया कि इस प्रकार शोकमग्न होने से विधि का मन नहीं बदला जा सकता, अत: नियति को स्वीकार करके अपने प्रिय राम व लक्ष्मण को जाने दिया जाए। उनके ही आदेश पर मंत्री सुमंत ने रथ मुख्यद्वार पर ला खड़ा किया। राम, लक्ष्मण और सीता ने सभी प्रकार से अपने पुरवासियों को समझाया और रथ में चढ़ गए।

नगरवासी हाहाकार करने लगे।

"हे तात! यह आर्तनाद अब हमसे सुना नहीं जा रहा, अत: अब विलंब न कीजिए और हमें वनक्षेत्र में छोड़कर शीघ्र पिताजी के पास लौटिए। उनकी शोकाकुल दशा को देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। आप जिस उपाय से हो सके, उनका शोक दूर करने का प्रयास कीजिए।" राम ने सुमंत से कहा।

"प्रिय राम! महाराज ने मुझसे कहा है कि मैं तुम्हें कुछ दिन वन में रखकर वापस ले आऊं। चौदह दिन बाद वापस आने से रानी कैकेयी का मान भी रह जाएगा और अयोध्यावासी भी इस दुख से उबर जाएंगे।"

"तात, आप नीति में निपुण हैं, अत: आपको सोचना चाहिए कि क्या दैव ने हमारी इच्छाओं को हमारे अनुसार पूरी करने के लिए यह भयानक खेल रचा है जिसने समस्त अयोध्या का अस्तित्व हिलाकर रख दिया? विकट दुख या अपार

सुख जब भी आते हैं तो वैसे ही बड़े परिवर्तन होते हैं। अतः पिताश्री की यह इच्छा उनके मोह से उत्पन्न है, विवेक से नहीं।" राम ने समझाते हुए कहा–"अब आप चलिए।"

मंत्री सुमंत ने रथ को हांक दिया तो नगरवासी उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। कोई उस नगर में नहीं रहना चाहता, जहां राम न हों। इससे सुखकर तो वन में रहना होगा। रथ नगर से बाहर आ गया था और नगरवासी भी पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं। राम समझ गए कि उनके स्नेह-बंधन में बंधे प्रजाजन उनके साथ ही वन जाने को तत्पर हैं, अतः उन्होंने अपना प्रथम विश्राम तमसा नदी के किनारे किया। वहां उन्होंने नीति और धर्म संबंधी अनेक मधुर वचनों से लोगों को समझाया। सभी मुग्ध होकर सुनते हैं, परंतु मानता कोई नहीं है। राम की मधुर वाणी उन्हें प्रिय है, परंतु आज वे उनका आदेश नहीं मान रहे हैं।

अंततः रात्रि हो गई और लोग थकान से सो गए। देवता भी राम के इस असमंजस को जानकर उनके सहायक बने और अपनी माया से उन पुरवासियों को गहरी निद्रा के वशीभूत कर दिया। जब रात्रि के दो प्रहर बीत गए, तब राम ने सुमंत, लक्ष्मण व सीता को जगाया।

"हे तात! इन लोगों को मेरा स्नेह अत्यधिक पीड़ा दे रहा है और ये लोकाचार भूलकर कर्म-विमुख हो रहे हैं।" राम ने कहा–"अतः हमें इसी समय यहां से चल देना चाहिए। आप रथ के चिह्नों को इस प्रकार छुपाते हुए चलें जिससे ये हमारे पीछे न आ सकें। इसी से इन सबका हित होगा।"

राम की बात मानकर सुमंत ने रथ वहां से आगे बढ़ा दिया। वे इतने कुशल सारथी थे कि अश्व वायुवेग से चल रहे थे और पीछे इतनी धूल उड़ती जिससे सभी चिह्न छुप जाते। प्रातःकाल होते-होते वे गंगा के तट पर श्रृंगेश्वरपुर पहुंच गए। राम ने देवनदी गंगा की स्तुति की और सभी ने स्नान करके थकान दूर की।

श्रृंगेश्वरपुर निषादों की नगरी थी, जहां का राजा गुह था। वह श्रीराम का परम भक्त था। उसे किसी ने यह समाचार सुना दिया था तो वह हर्ष से भरकर अपने प्रभु की सेवा में चला आया। अनेक प्रकार के फलों की भेंट लेकर वह प्रेम-विह्वल होकर प्रभु के सामने पहुंचा और उनके चरणों में नत हो गया। राम ने उसे प्रेमपूर्वक उठाकर अपने हृदय से लगाया।

"हे सर्वेश्वर, हे मेरे प्रभो! आपने मुझ दास की प्रतिष्ठा बढ़ा दी, इसी से यह जगत आपको करुणानिधान कहता है।" निषादराज सजल नेत्रों से बोला–"प्रभो, अब इस दास के नगर में पधारकर उसे पवित्र करें और दास को सेवा का अवसर प्रदान करें।"

"हे सखा! तुम्हारा स्नेह मुझे प्रियकर लगा, परंतु व्रत के अनुसार अब हम वन-वृक्षों के मध्य ही निवास कर सकेंगे। ग्राम, नगर के बीच निवास करना हमारे लिए निषिद्ध है। हम यहीं अशोक वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं।"

निषादराज ने वहीं अशोक वृक्ष के नीचे कुशा आदि से कोमल आसन बना दिया। उसके नगर के नर-नारी इन सुंदर झांकियों को देखने आते हैं और तृप्त हो जाते हैं। हर्ष और विषाद के मिश्रित भाव उनकी आंखों में हैं। हर्ष इसलिए है कि उनके दर्शन हुए और विषाद इसलिए कि वे वनवासी हुए। कोई विधाता को धन्यवाद दे रहा है जिसने उनके इष्ट को वनवास दिलाकर उन्हें दर्शन सुलभ कराए और कोई विधाता की क्रूरता पर उसे कोसता है कि ऐसे सुकुमारों को वनवास दिया। जिन्हें इंद्रासन भी सुलभ था, वे आज भूमि पर सो रहे हैं। कर्म की गति विचित्र है, जो कैकेयी तीनों लोकों में राम पर स्नेह के कारण कौशल्या से भी अधिक पूजनीय माता कही जाती थी, आज वे अपने कोप व कठोरता के कारण कलंकित हो गई थीं। शृंगेश्वर-पुरवासी उन्हें बुरा-भला कह रहे थे, तब लक्ष्मण ने ही उन्हें समझाया।

"स्नेहीजनो, कोई अन्य किसी को सुख-दुख देने वाला कौन होता है! यह सब तो अपने ही कर्मों का फल होता है। मिलना-बिछुड़ना, सुख-दुख, शत्रु-मित्र-सभी भ्रम के फंदे हैं। किसी को दोष देना उचित नहीं है।"

लक्ष्मण के वचन सुनकर सभी विवेकशील हुए और श्रीराम व सीता की सेवा में जुट गए। उनका जीवन धन्य हो गया। जिनका दर्शन भी योगी तपस्वी के लिए अनेक साध्यों से भी कठिन था, वे साक्षात् समक्ष हैं। सारी रात्रि निषादों ने अपने प्रभु की सेवा की। प्रातःकाल होने पर राम, लक्ष्मण सहित सभी ने गंगास्नान किया और फिर राम ने मंत्री सुमंत को अयोध्या लौट जाने को कहा।

सुमंत का हृदय शोक से भर गया, परंतु राम की नीतियुक्त बातें सुनकर उनहें शांति मिली। उनका लौटने का मन न होता था, पर राम की आज्ञा नहीं टाल सकते थे। रथ पर चढ़ते हैं, उतर आते हैं। मन में कितने ही प्रश्न हैं। वे अयोध्या जाकर महाराज को क्या उत्तर देंगे! पुरवासियों को कैसे समझाएंगे। तब राम ने उन्हें पुनः नीति उपदेश दिए। वे लौट तो गए, परंतु अत्यंत व्याकुल होकर।

अब राम गंगा पार करना चाहते थे। वहां केवट नाम का नाविक अपनी नाव लेकर खड़ा था, जो बड़े कौतूहल से उस त्रिमूर्ति को देख रहा था।

"हे भैया नाविक!" राम ने मृदुल स्वर में कहा-"हमें गंगापार जाना है, कृपा करके अपनी नाव ले आओ और हमें पार उतार दो। जो भी तुम्हारी उतराई बनती हो, वह हम तुम्हें देने को तैयार हैं।"

"हे प्रभो, मैं आपको पहचान गया हूं। आपके पैरों में तो कोई जादू बताया जाता है, जो पत्थर को भी छुए तो वह मनुष्य बन जाता है। आप मुनि विश्वामित्र के साथ गए थे, तब यह कौतुक अनेक लोगों ने देखा था। मैंने भी वह सुना।" केवट ने कहा–"मैं अपनी नाव की यह दशा नहीं करना चाहता कि आपके चरणों का स्पर्श हो और यह स्त्री बनकर आकाश में उड़ जाए। नाथ, मेरे परिवार के भरण-पोषण का तो यही एकमात्र साधन है और आप इससे भी मुझ दरिद्र को वंचित कर देंगे।"

"भैया, ऐसी अनोखी बात क्यों करते हो?" राम हंसकर बोले–"मेरे पैर कोई पारस तो नहीं हैं। वह तो संयोग-मात्र था, जो ऐसा हो गया।"

"प्रभो, वैसा ही संयोग फिर हो गया तो मैं तो कहीं का न रहूंगा। आप नदी पार करने का कोई और उपाय देखिए। थोड़ी-सी उतराई के लिए मैं अपना जमा-जमाया काम नहीं बिगाड़ सकता। मुझे तो क्षमा करें भगवन्!" केवट ने हाथ जोड़ दिए।

क्या यह केवट की शठता या अल्पबुद्धि थी?

"अब यहां हम क्या उपाय करें भैया! यहां कोई दूसरी नाव भी तो नहीं है। अब तुम्हीं कोई उपाय सुझा दो जिससे हम नदी पार कर सकें।"

"उपाय। हां, एक उपाय हो सकता है।" केवट सोचने की मुद्रा में बोला–"यदि आप मुझे अपने इन जादुई चरणों को धोने-पखारने दें जिससे इनका वह प्रभाव न रहे जिसकी मुझे शंका है तो आप भले ही उतराई न दें, मैं आपको पार ले जाऊंगा।"

राम मुस्कराकर रह गए, उस केवट की चतुराई पर।

"अच्छा भैया, जिससे तुम्हारी शंका दूर हो, वही उपाय कर लो, पर हमें जल्दी से नदी पार करा दो। हमें पहले ही विलंब हो गया है।"

केवट तत्काल कठौती में पानी ले आया। राम ने उसमें चरण रख दिए और केवट बड़े अनुराग से उन चरणों को पखारने लगा। उसके नेत्र सजल हो गए। जो सबको भवसागर से पार उतारते हैं, आज उनके चरण पखारने का अवसर किसी जन्म का पुण्य फल है। भली-भांति चरण पखारकर केवट ने प्रेम के अश्रु बहाते हुए उस चरणोदक को स्वयं पिया और अपने परिवार को भी पिलाया। इसके बाद केवट ने राम की वंदना की और उन्हें नाव में चढ़ाया। निषादराज भी उनके साथ ही थे।

गंगापार होने पर केवट करबद्ध होकर खड़ा हो गया। राम ने सीता की ओर संकेत किया जिन्होंने अपनी अंगूठी केवट की ओर बढ़ाई।

"प्रभो, मेरे जीवन के परिश्रम का पारिश्रमिक मुझे आज भरपूर मिल गया है। मेरे सभी कष्ट दूर हो गए हैं।" केवट ने चतुराई से कहा–"मुझे उतराई नहीं चाहिए नाथ! बस जब मैं भव सागर के किनारे पहुंचूं तो अपने कृपालु कर-कमलों से मुझे भव सागर पार करा दीजिए।"

राम ने उसे अपनी निर्मल भक्ति का वरदान दिया। उसके पश्चात् उन्होंने केवट से प्रेमपूर्वक विदा ली। केवट नाव को लेकर वापस चला गया, तब तीनों मूर्तियों ने गंगापूजन किया और सीता ने गंगा मैया से आशीर्वाद लिया। वहां से वे प्रयाग आ पहुंचे। तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयाग पवित्र नदियों के संगम से मोक्षदायिनी नगरी के रूप में प्रसिद्ध था। अनेक आश्रम वहां की महिमा का साक्षात् प्रमाण हैं। ऐसा सुंदर पुण्य स्थान जगत में दूसरा कौन होगा! निषादराज अपने भाग्य को सराह रहा था कि उसे प्रभु की सेवा के पुण्य से ही उस तीर्थ के दर्शन हो सके।

प्रयागस्नान का पुण्य लेकर राम, लक्ष्मण व सीता, निषादराज के साथ मुनि भारद्वाज के आश्रम में आए। मुनिराज ने उनका स्वागत किया। राम ने उन्हें दंडवत् प्रणाम करके आशीष पाया। उस रात जैसे वह आश्रम ही पूरी नगरी बन गया। राम-सीता और लक्ष्मण के दर्शनों के लिए अनेक मुनि, गृहस्थ आदि वहां आए।

20

कहां हैं प्रिय राम

मंत्री की व्याकुलता भांपकर सेवक उन्हें महारानी कौशल्या के महल में ले गए, जहां 'राम-राम' की रट लगाते महाराज दशरथ मरणासन्न थे। कौशल्या और सुमित्रा उनके समीप बैठी श्रीहीन मूर्ति की भांति लग रही थीं। कौशल्या ने सुमंत को आया देखकर महाराज को धीमे स्वर में सचेत किया। व्याकुल राजा ने अपने निर्जीव हो चले नेत्र खोले और सुमंत को देखकर जीवन की एक किरण-सी उनकी आंखों में चमकी।

"हे तात, आ...आप आ गए? मेरे प्रिय राम कहां हैं?" राजा ने पूछा। सुमंत बिलखकर उनके चरणों में बैठ गए। महाराज बार-बार वही प्रश्न करते रहे और उनकी दशा विक्षिप्तों जैसी हो गई।

मंत्री सुमंत रास्ते-भर सोचते-विचारते, रोते-बिलखते अयोध्या तो आ गए थे, परंतु रथ से उतरकर राजमहल में प्रवेश करने का साहस न हो रहा था। क्या मुंह लेकर राजा के सामने जाएं! क्या कहें उनसे कि उनके तीनों प्रियों में से किसी एक को भी साथ लेकर नहीं लौटे थे! राजा के प्राण तो इतना सुनते ही निकल जाएंगे! कितनी सूनी और अनाथ-सी लग रही थी अयोध्या! गलियां सुनसान, बाजार जनशून्य, पक्षियों का कोई कलरव नहीं। पेड़-पौधे भी मुरझाए हुए! राम की अनुपस्थिति का प्रभाव ऐसा ही होना था। देर से प्राण निकल जाने पर ऐसा ही होता है।

उसी समय कई दास-दासियां व्याकुल और मुरझाए हुए मुख के साथ उनके रथ के आसपास खड़े हो गए। सबके नेत्रों में एक ही मूक प्रश्न था, जो सुमंत जान रहे थे, परंतु उन्हें उत्तर न सूझता था। कंठ सूखा जा रहा था। उनके लौटने का समाचार रनिवास में भी पहुंच गया था तो सभी रानियां दौड़ी आईं। अकेले सुमंत को देखकर उनके मुरझाए हुए मुख विकृत हो उठे और पुनः विलाप शुरू हो गया। सुमंत भी रोते हुए रथ से उतरे और भूमि पर बैठकर रोने लगे। सब उनसे पूछते हैं, परंतु वे जैसे सुनते ही नहीं।

मंत्री की व्याकुलता भांपकर सेवक उन्हें महारानी कौशल्या के महल में ले गए, जहां 'राम-राम' की रट लगाते महाराज दशरथ मरणासन्न थे। कौशल्या और सुमित्रा उनके समीप बैठी श्रीहीन मूर्ति की भांति लग रही थीं। कौशल्या ने सुमंत को आया देखकर महाराज को धीमे स्वर में सचेत किया। व्याकुल राजा ने अपने निर्जीव हो चले नेत्र खोले और सुमंत को देखकर जीवन की एक किरण-सी उनकी आंखों में चमकी।

"हे तात, आ...आप आ गए? मेरे प्रिय राम कहां हैं?" राजा ने पूछा।

सुमंत बिलखकर उनके चरणों में बैठ गए। महाराज बार-बार वही प्रश्न करते रहे और उनकी दशा विक्षिप्तों जैसी हो गई। यह देखकर विकल मंत्री ने अपने हृदय को दृढ़ किया और मौन तोड़ा।

"महाराज, आप सभी नीतियों को जानने वाले और धैर्यवान पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। आपने सदा साधु-संगति करके ज्ञान लाभ प्राप्त किया है। आपसे अधिक कौन जानता है कि सब फल-प्रतिफल दैव के अधीन हैं। हे नरश्रेष्ठ, श्रीराम ने मुझे तमसा के तट पर यह ज्ञान दिया कि धर्म का व्यवहार करने वाले रघुकुल के पूर्वजों का अनुसरण करना ही श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है। मोहवश अपने धर्म से विमुख होकर क्षणिक भौतिक लाभ या सुख तो हो सकता है, परंतु इससे कुल की गरिमा कलंकित होती है, इसलिए हे राजन्, उनका शोक न करो।"

"तात! मैंने तुम्हें उन्हें लौटा लाने को कहा था।" दशरथ ने कहा।

"मेरे सभी प्रयास निष्फल हुए महाराज! मैं कैसे उन नीतिवान, ज्ञानवान और पुरुषश्रेष्ठ के विशुद्ध तर्कों को काट देता जिनमें नीति, धर्म, न्याय, लोक, परलोक आदि से संबंधी सभी नियम व वर्जनाएं वर्णित थीं। मैं बुद्धिहीन ऐसा न कर सका।"

राजा के प्राण कंठ पर आ अटके। इंद्रियां शून्य होने लगीं। कौशल्या ने उनकी यह दशा देखी तो व्याकुल हो गईं। राजा के नेत्रों की ज्योति बुझती जा रही थी। अब रघुकुल के उस प्रतापी नरेश की जीवन संध्या होने वाली थी।

"हाय राम, हाय राम...मेरे राम...मेरे राम...!"

अंततः राजा दशरथ ने पुत्र-वियोग में प्राण त्याग दिए। उनकी पार्थिव देह कौशल्या की गोद में निश्चेष्ट हो गई। कौशल्या और सुमित्रा दहाड़ मारकर विलाप कर उठीं। क्षण-भर में राजमहल करुण क्रंदन में डूब गया और कुछ ही देर में समूची अयोध्या नगरी में विलाप के स्वर सुनाई देने लगे। सामूहिक विलाप से अयोध्या भयावह हो गई। उस रुदन में कैकेयी को कोसते स्वर भी हैं। जिसने अयोध्या को उजाड़ दिया। कैकेयी के लिए यह कलंक चंद्रमा में लगे दाग के समान था, जो कभी छूटने वाला नहीं था।

मुनि वशिष्ठ को यह समाचार मिला तो वे आ गए। जीवन-मृत्यु के भेद से परिचित मुनि ने अपने मुख को समयानुकूल उपदेश देकर शोक-संतप्त लोगों को सांत्वना देने के सभी उपाय किए। अब वहां गुरु वशिष्ठ ही सब संभालने में लगे थे। श्रवण के माता-पिता का श्राप शत-प्रतिशत पूरा उतरा था। राम-लक्ष्मण तो वन चले ही गए थे, भरत भी ननिहाल में थे और शत्रुघ्न भी उन दिनों महर्षि परशुराम के आश्रम में धनुर्वेद की शिक्षा लेने गए हुए थे अर्थात् चार पुत्र होते भी राजा का दुर्भाग्य और श्राप-प्रभाव था कि उनके प्राण निकलते समय उनका एक भी पुत्र उनके पास नहीं था। समय बड़ा बलवान होता है। यह भूप-महीपति को भी नहीं बख्शता, यहां तक कि देवताओं को भी नचाता है।

वशिष्ठजी ने राजा की मृत देह को तेल के कड़ाह में रखवा दिया और एक द्रुतगामी दूत भरत के पास व एक शत्रुघ्न के पास भेजा। अयोध्या का राजभवन ही क्या, साधारण घरों में भी दीपक नहीं जल रहे थे। जब सूर्यकुल का सूर्य ही अस्त हो गया था तो दीपकों की रोशनी से क्या होता! जिस अयोध्या की ओर भूत-प्रेत भूले से न आते थे, आज वे वहां निर्भय होकर नृत्य कर रहे थे। सियार रो रहे थे। ऐसे अपशकुन हो रहे थे कि सुनते भय लग रहा था। उल्लुओं और चमगादड़ों के स्वरों से नगरी और भी भयावह हो गई थी। वह कालरात्रि रुदन-क्रंदन में बीती और किसी तरह सवेरा हुआ। आज सूर्य भी जैसे राहु ने ग्रस लिया था। अब बस भरत और शत्रुघ्न के आने की प्रतीक्षा में ही सबके नेत्रों में आंसू सूख गए थे। आंसुओं की भी कोई सीमा होती है। सुबह से दोपहर हो गई थी। सीमावर्ती नरेश और संबंधी सब आ गए थे। ग्रामों, नगरों से लोग आते जा रहे थे।

अंततः भरत और शत्रुघ्न के आने का समाचार भी मिला। गुरु वशिष्ठ ने संदेशवाहक को समझाया था कि वह भरत या शत्रुघ्न को वास्तविकता न बताकर उन्हें तत्काल अयोध्या पहुंचने का संदेश-भर दें। अतः अभी तक भरत या शत्रुघ्न उस होनी-अनहोनी के विषय में अनभिज्ञ थे जिसने अयोध्या को ग्रस लिया था।

गुरु वशिष्ठ का संदेश मिलते ही दोनों भाई अपने-अपने कार्य छोड़कर तीव्रगामी अश्वों पर सवार होकर अयोध्या की ओर चल पड़े थे। पिछले कुछ समय से भरत को अपशकुन भी सूझ रहे थे, ऐसे स्वप्न दिखाई दे रहे थे, जैसे कुछ अशुभ होने वाला हो। अब गुरु के संदेश से हृदय आशंकाओं से लरज रहा था। संयोग और गति ऐसी बनी कि दोनों भाई अयोध्या की सीमा पर ही मिल गए थे। दोनों ने परस्पर कुशल-क्षेम पूछी और अपनी-अपनी आशंकाएं व्यक्त करते हुए नगर की ओर बढ़े।

"अनुज!" भरत व्याकुल होकर बोले-"नगर के ऊपर चील-कौए मंडरा रहे हैं। वह देखो, सियार निर्भय घूम रहे हैं। शुक, गौरैया आदि के स्वर सुनाई नहीं दे रहे। वह पताका जो दूर से दिखाई देती थी, अब नहीं दिखाई दे रही। अनुज, मेरा हृदय घबरा रहा है। कहीं कुछ अनिष्ट तो नहीं हो रहा है!"

"भ्राताश्री, मन तो मेरा भी घबरा रहा है, पर जिस नगर के स्वामी स्वयं श्रीराम हों, वहां किसी अनिष्ट का प्रवेश कैसे संभव है। इन अपशकुनों का कोई और कारण हो सकता है। देखो, कुछ नगरवासी आ रहे हैं, उनसे पूछते हैं।"

दोनों उधर बढ़े और नगर के लोग प्रणाम करके चल दिए। कोई पूछने पर भी कुछ नहीं बताता। भय और विषाद ने दोनों भाइयों को घेर लिया। राजपथ पर आते ही सांय-सांय सन्नाटा, कुत्तों के स्वर सुनाई पड़े तो कलेजा मुंह को आ गया। परिचित प्रजाजन मिलते हैं, परंतु मुंह फेरकर निकल जाते हैं। सभी शोभा जैसे स्वप्न हो गई थी। क्या हो गया था! राजमहल के द्वार पर प्रहरी नहीं है। अब भरत को कोई शंका न रह गई थी कि कुछ घोर अनिष्ट हो गया था।

परंतु माता कैकेयी तो आरती का थाल लेकर बाहर खड़ी हैं। अन्य कोई उनके साथ नहीं है। केवल वही प्रसन्न मुख दिखाई दे रही थीं। अपने पुत्रों को अनुराग और गर्व से देखती कैकेयी ऐसे खड़ी थीं, जैसे उन्होंने जग जीत लिया था।

दोनों भाइयों ने उनके चरण स्पर्श किए, उन्होंने ढेरों आशीष दिए।

"माते, नगर में यह कैसा भयावह वातावरण है! नगरवासी हमें उपेक्षित दृष्टि से क्यों देख रहे थे? बाजार-दुकानें बंद क्यों हैं और केवल आप ही हम दोनों के स्वागत में खड़ी हैं! माता कौशल्या, माता सुमित्रा, माता समान सीताजी, महाराज, मेरे प्राणाधार प्रभु श्रीराम और प्रिय लक्ष्मण कहां हैं?" भरत ने एक ही श्वास में कई प्रश्न कर डाले थे। यही प्रश्न शत्रुघ्न के मन में भी थे।

"प्रिय भरत, प्रिय शत्रुघ्न!" कैकेयी शहद से भी मीठे स्वर में बोलीं-"जब संसार में किसी की बढ़त होती है तो सर्वप्रथम अपने ही उससे ईर्ष्या करते हैं, परंतु इसमें घबराने की क्या बात है? अपने पास सामर्थ्य होती है तो कोई क्या बिगाड़ सकता है, तुम्हारी माता ने अपनी बुद्धि के प्रयोग से तुम्हारे मार्ग की सभी

बाधाओं में से कुछ को तो दूर कर दिया, कुछ का पराभव कर दिया। इस मंथरा के सहयोग से मैंने वह कर दिया, जो तुम स्वप्न में भी न सोच सकते थे। बस इस बीच एक हानि हुई कि तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधार गए।"

दोनों भाइयों के नेत्र भय से फैल गए और वे पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़े। अयोध्या की भयानकता के लिए यह कारण पर्याप्त था, परंतु केवल यही तो न हुआ होगा!

"माते, म......महाराज तो स्वस्थ, पूर्ण चिंतामुक्त व सर्वसंपन्न थे, फिर अचानक ऐसा क्या हुआ कि वे हमारे पीछे स्वर्ग सिधार गए? हमें बताओ माते!" भरत ने व्याकुल होकर पूछा।

"पुत्र!" कैकेयी ने अपने शब्द चुने–"संसार में माता होने का क्या अभिप्राय है? माता का अर्थ है कि अपनी संतान का सब प्रकार से हित करे। उसे सबसे श्रेष्ठ बनाए। पिता होने का यही अर्थ है, परंतु महाराज ने इसमें भेदभाव किया। उन्होंने राम का राजतिलक करने की घोषणा कर दी। अपने पुत्रों के प्रति यह पक्षपात मुझसे न देखा गया, तब मैंने बुद्धि का प्रयोग किया और महाराज पर मेरे दो वरदान धरोहर रूप में थे। मैंने उन्हें मांग लिया। पहले वरदान में तुम्हारे लिए राज्य और दूसरे में राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास।"

जैसे शीशा पिघलाकर भरत के कानों में डाल दिया गया। वे भय और पीड़ा से सुन्न हो गए।

"पुत्र, राम ने पिता के वचन की लाज रखी और वन जाना स्वीकार किया। सीता उसकी पत्नी थी तो उसे जाना ही था। हां, लक्ष्मण अकारण चला गया। महाराज इसी वियोग में अपने प्राण त्याग बैठे। अब इसमें मेरा क्या दोष बेटा?" कैकेयी ने सफाई दी।

"दोष! तेरा क्या दोष है?" भरत दावानल की भांति फट पड़े–"अरे, तुमने तो कुल का विनाश ही कर दिया। तुम्हारी कुटिलता से रघुकुल की कीर्ति कलंकित हो गई। माते! यह कैसा अनर्थ कर डाला? पेड़ की जड़ को काटकर जैसे कोई उसके पत्तों को सींचता है, वैसी ही मूर्खता तुमने कर दी। हाय, जब यह कुटिलता तुम्हारे मन में आई, तभी तेरे हृदय के टुकड़े क्यों न हुए। तुम रामद्रोही हो, तुम्हें माता कहे तो कैसे कहे! तुमने रघुकुल के मान-सम्मान को विनष्ट कर दिया। इस कुटिल मंथरा ने तुम्हारी मति हर ली।"

शत्रुघ्न के नेत्र अंगारे हो रहे थे। उनकी कोपदृष्टि मंथरा पर पड़ी तो वह भी सहम गई। शत्रुघ्न का क्रोध अपार हो गया था, अत: उन्होंने कुटिल मंथरा को एक जोर का धक्का दिया और मारने को चले तो भरत ने उन्हें रोक लिया।

"अनुज, इन कुटिलाओं ने पहले ही अपना जीवन नरक की अग्नि को समर्पित कर दिया है। संसार में जितने भी अपयश होंगे, इनके नाम होंगे। भविष्य में कभी कोई अपनी पुत्री का नाम मंथरा या कैकेयी न रखेगा। जो राम का द्रोही है, उसका नाम लेना भी पाप कर्म है।"

कैकेयी का हृदय बैठ गया। वे वहीं भूमि पर गिर पड़ीं। जिस पुत्र के भले के लिए उन्होंने अपने सिर अपयश लिया, वह उनका मुख नहीं देखना चाहता था। भ्रमित बुद्धि के सब कपाट खुल गए, पर अब क्या करतीं! वे पाषाण की शिला बन गईं।

दोनों भाई दौड़कर महल में पहुंचे, जहां राजा के पार्थिव शरीर के पास सभी बैठे थे। दोनों भाई पछाड़ खाकर कौशल्या के चरणों में गिर पड़े। वे स्वयं को सभी अनर्थों का कारण बताते हुए विलाप करते जा रहे थे।

कौशल्या और सुमित्रा उनके विलाप पर बिलख रही थीं। भरत की दशा विक्षिप्तों जैसी हो गई थी। वे रोते, फिर अचेत हो जाते। कौशल्या ने उन्हें अपने अंकपाश में समेटा। सुमित्रा ने शत्रुघ्न को अपने हृदय से लगा लिया।

21

भरत का भ्रातृ-प्रेम

राम ने भाव-विह्वल होकर भरत को हृदय से लगाकर अंकपाश में भर लिया। भ्रातृ-मिलन का ऐसा भावुक दृश्य देखकर आकाश से निरखते देवता भी द्रवित हो गए। ऐसा अगम्य प्रेम संसार में अन्यत्र कहीं न देखा गया था।
इंद्रदेव तो चिंतित ही हो उठे। भरत का यह भ्रातृ-प्रेम कहीं श्रीराम को वापस अयोध्या न ले जाए। कई क्षण व्यतीत हो गए। दोनों भाइयों के आंसू रोके न रुकते थे। इधर शत्रुघ्न और लक्ष्मण की भी यही दशा थी। कोई किसी से न कुछ कहता था और न पूछता था—यह अश्रुवार्ता है।

सीता सहित राम और लक्ष्मण भारद्वाज मुनि के आश्रम में मुनिजनों और सार कथाओं को सुनकर भाव-विभोर हो रहे थे। वेद, वेदांग आदि के गूढ़ तत्त्वों को मुनिवर भिन्न-भिन्न प्रकार से समझा रहे थे और तीनों मूर्तियां ऐसे ध्यानमग्न होकर सुन रही थीं, जैसे पहली बार सुनने को मिला हो। मुनि के आश्रम में तिल रखने को भी जगह नहीं थी। वनक्षेत्र में अनेक आश्रमों से आचार्य, शिष्य, ब्राह्मण आदि वहां आकर राम-दर्शन का लाभ ले रहे थे। कब रात्रि का दूसरा प्रहर व्यतीत हो गया, यह सत्संग में पता ही न चला। मुनि भारद्वाज को ही इसका भान हुआ कि तीनों मूर्तियां थकान से पीड़ित होंगी, अतः उन्होंने सत्संग

का समापन किया और सबको विश्राम करने को कहा। पर्णकुटी में ही उन तीनों के शयन की व्यवस्था की गई।

प्रातःकाल तीनों ने मुनि भारद्वाज से विदा ली और आगे बढ़ चले। वनवासी उन्हें देखने आते थे। उनके साथ चलते थे। इस तपस्वी वेष में वे कितने सौम्य और तेजस्वी लग रहे थे। ऐसे राजकुमारों को कैसे उनके माता-पिता ने वन-गमन की कठोर आज्ञा दे दी! स्त्रियां सीता का अनिंद्य सौंदर्य देखकर चकित थी कि क्या संसार में ऐसी सुंदर स्त्री भी होती है। अप्सरा की तरह! वन का कष्टकारी जीवन वह सुकोमल काया कैसे सह पाएगी?

ये तीनों जिस ग्राम नगर या वन के समीप से गुजरते, वहीं से निवासी एक-दूसरे से सुनकर दौड़ पड़ते और उस अनुपम झांकी को देखकर अपने नेत्रों को तृप्त करते थे। जहां भी इनका रात्रि-विश्राम होता, वहीं लोग प्रेमभाव से भोजन और शयन की व्यवस्था करके अपने को धन्य मानते। इसी प्रकार ही यात्रा होती रही। अनेक ऋषि-महर्षियों के दर्शन और उपदेश सुनने को मिले। इस प्रकार राम-लक्ष्मण और सीता कामदगिरि के अंचल में बहती सुरम्य पयस्विनी नदी के तट पर आ गए और सुंदर स्थान देखकर वहीं कुछ दिन रुकने का विचार बना लिया। कंद-मूल और फलों की वहां कमी नहीं थी। वहां वे पर्णकुटी बनाकर रहते थे। लक्ष्मण अपने भाई व भाभी की सेवा में मनोयोग से जुटे रहते।

एक सुबह सीता जागीं तो राम को सामने देखकर मुस्कराईं।

"सीते, इस कठोर भूमि पर तुम्हें सोने में कष्ट तो होता होगा?" राम ने पूछा।

"नाथ, जहां स्वामी हों, वहां कष्ट कैसा! आर्य, मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा। कहते हैं कि भोर का स्वप्न सत्य होता है।" सीता ने कहा–"मैंने देखा कि प्रिय भरत, राज-समाज और परिवार सहित यहां आए हैं। उनका मुख मलिन है। ग्लानि से उनके नेत्र नहीं उठते और निरंतर रो रहे हैं। ऐसी ही दशा उनके साथ आए अन्य सभी लोगों की है। सभी दीन, दुखी और व्याकुल हैं।"

"सीते, यह स्वप्न अच्छा नहीं है। यह संताप में वृद्धि करने वाला और किसी बहुत ही अशुभ समाचार का संकेत है। अवश्य ही कुछ अनर्थ घटित हुआ है। प्रिय अनुज लक्ष्मण यह उत्तर दिशा में क्या धूल भरी आंधी है, जो इधर बढ़ती आ रही है?"

लक्ष्मण ने सावधान होकर उत्तर दिशा में देखा तो ऐसी धूल भरी आंधी बढ़ी आ रही थी, जैसे कोई बड़ी सेना उधर चली आ रही हो।

"प्रभु, यह तो किसी सैन्यबल का आगमन प्रतीत होता है, परंतु इस निर्जन स्थान पर किसी सेना का क्या काम! यहां तो ऐसा मार्ग भी नहीं है जिससे ज्ञात होता हो कि यदा-कदा यहां से सेनाओं का आवागमन होता है।" लक्ष्मण चिंतित होकर बोले।

लक्ष्मण ने ऊंचाई पर जाकर देखा तो विशाल चतुरंगिणी सेना को उधर ही आते देखा। इसके साथ ही उन्होंने रथों की ध्वजा देखी तो चौंक पड़े। यह तो उनके अपने ही सूर्यवंश की ध्वजा थी। कुछ स्पष्ट दृश्य होने पर उन्हें रथारूढ़ भरत दिखाई दिए तो वे सोच में पड़ गए और उनकी आंखों में रोष उभर आया।

"अनुज! ऐसा क्या देख लिया, जिससे रोष उत्पन्न हुआ?" राम ने पूछा।

"प्रभु, कैकेयीनंदन अवधनरेश राजाधिराज भरत चतुरंगिणी सेना लेकर इधर ही आ रहा है। आप जिस भरत पर अत्यंत स्नेह और विश्वास करते हैं, आज वह राजपद पाकर शक्ति के मद में चूर हो गया है। आप सभी को अपने समान सहृदयी समझते हैं।" लक्ष्मण रोष में कह गए।

"अनुज, हो सकता है कि भरत प्रेमवश हमसे मिलने आया हो!"

"प्रभु, भ्रातृप्रेम का ऐसा भीषण प्रदर्शन कौन करता है। यदि उसे प्रेमवश ही आना होता तो इस विशाल सेना की क्या आवश्यकता थी? कोई राजा जब किसी से मिलने सेना सहित जाता है तो उसका कुटिल मंतव्य झलकता है। आप अधिक ही उदार और निर्मल हृदय हैं, परंतु लक्ष्मण इनकी सीमा पर ही रहता है। मैं समझ गया कि भरत और उसकी सेना यहां क्यों आई है! उसे चौदह वर्ष का सत्ता-सुख नहीं, अपितु सदैव के लिए निष्कंटक राज्य चाहिए।"

"अनुज लक्ष्मण! केवल लक्षणों और पूर्व घटनाओं के आधार पर निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए।" राम गंभीर स्वर में बोले—"भरत को हम भली-भांति जानते हैं।"

"हे दयानिधान, आप सब कुछ जानते हैं, इसमें तो कोई संदेह नहीं, परंतु आप यह भी तो जानते हैं कि प्रभुता पाकर मनुष्य तो क्या इंद्रादि देवता भी बौरा जाते हैं। ऐसा ही भरत के साथ हुआ प्रतीत होता है। वह आपको इस वन में असहाय जानकर अपना कार्य सिद्ध करने आया है, परंतु नहीं जानता कि संग्राम में तो अनेक इंद्र भी मिलकर आपका सामना नहीं कर सकते। वह यह भी नहीं जानता कि श्रीराम के सेवक लक्ष्मण का पराक्रम भी उसके लिए असहनीय है। यदि आज युद्ध होता है, तो यह उन दोनों भाइयों का अंतिम युद्ध होगा।"

राम ने क्रोध से तमतमाए लक्ष्मण को स्नेहपूर्वक अपने पास बिठाया और कहा—"अनुज, अंधकार सूर्य को निगल सकता है, चिड़िया चोंच से समुद्र सुखा सकती है, परंतु भरत कभी मद नहीं कर सकता। अयोध्या का राजपद तो क्या यदि उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इंद्र का पद भी मिल जाए तो भी उस वीरवर में रंच-मात्र भी मद उत्पन्न नहीं हो सकता—यह मेरा सत्य वचन है।"

राम का सदैव अनुसरण करने वाले लक्ष्मण को अपने विचार पर क्षोभ हुआ।

राम स्वयं सत्य हैं! उनका कहा हर शब्द सत्य है तो यह भी सत्य है! लक्ष्मण का रोष समाप्त हो गया। वे उस दिशा में देखने लगे, जिधर से सेना आ रही थी।

विराट वटवृक्ष के नीचे तीनों मूर्तियां उपस्थित थीं—यह भरत को दूर से ही दिखाई दे गया था और वे रथ से कूदकर प्रेम-विह्वल होकर दौड़े चले आए और राम-जानकी के पैरों में गिरकर विलाप करने लगे।

राम ने भाव-विह्वल होकर भरत को हृदय से लगाकर अंकपाश में भर लिया। भ्रातृ-मिलन का ऐसा भावुक दृश्य देखकर आकाश से निरखते देवता भी द्रवित हो गए। ऐसा अगम्य प्रेम संसार में अन्यत्र कहीं न देखा गया था।

इंद्रदेव तो चिंतित ही हो उठे। भरत का यह भ्रातृ-प्रेम कहीं श्रीराम को वापस अयोध्या न ले जाए। कई क्षण व्यतीत हो गए। दोनों भाइयों के आंसू रोके न रुकते थे। इधर शत्रुघ्न और लक्ष्मण की भी यही दशा थी। कोई किसी से न कुछ कहता था और न पूछता था—यह अश्रुवार्ता है। तब तक वहां मुनि वशिष्ठ, तीनों माताएं, राजर्षि जनक और रानी सुनयना सहित सभी राज-समाज आ गया। राम ने सर्वप्रथम माता कैकेयी को प्रणाम करके उनके चरण छुए। कैकेयी अपराधबोध से ग्रस्त थीं, अत: बिलख पड़ीं और राम से क्षमा-याचना करने लगीं, तब राम ने काल, कर्म और विधाता को दोष देते हुए माता कैकेयी का संताप दूर किया। उनके सरल, सुंदर और नीतियुक्त वचनों से सभी बड़े हर्षित हुए और आशंकाओं के बादल छंट गए, फिर राम अन्य सभी से मिले। धीरे-धीरे बड़ा ही आनंद भरा वातावरण हो गया।

इसके बाद कुलगुरु वशिष्ठ और सभी परिजन बैठे तो कुलगुरु ने बड़ी गंभीर वाणी में महाराज दशरथ के देहांत का समाचार दिया। श्रीराम के नेत्रों से अश्रु बहने लगे। उन्हें पिता का अपने प्रति अति अनुराग ही उनकी मृत्यु का कारण लगा और वे स्वयं को दोषी कहकर विलाप करने लगे। वातावरण एक बार फिर करुणाजनक हो गया, तब गुरु वशिष्ठ ने ही सबको समझाया। वह रात जैसे रघुकुल परिवार के पुनर्मिलन की रात थी। सीता अपनी माता, अपनी सास माताओं के पास बैठी थी। सुनयना अपनी पुत्री का तपस्विनी रूप देखकर उसे प्रेमपूर्वक निहार रही थीं और कुछ सोच रही थीं। कैकेयी अभी भी हृदय से दुखी थीं। उन्हें अपने कर्म स्मरण हो रहे थे और उन्हें सोचकर वे दुखी थीं।

एक ओर वशिष्ठजी सहित राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न व मंत्री सुमंत और राजा जनक बैठे थे। जनक निस्पृह थे। उन्हें अपने जामाता अभी भी वैसे ही लग रहे थे, जैसे प्रथम बार देखा था। लोक-व्यवहार के लिए भी जनक ने दुख प्रकट नहीं किया, क्योंकि वे राजर्षि जानते थे कि यह सब माया है—प्रभु की माया!

22

चरण-पादुकाएं देने का अनुरोध

"हे जगत्पति श्रीराम! लोक-व्यवहार में ऐसा अभागा कौन बनना चाहेगा कि ज्येष्ठ भ्राता के होते हुए भी सिंहासन पर बैठने का घोर पाप करे। हे नाथ, क्या भरत इस कलंक को धारण करे? अतः हे नाथ, आपकी आज्ञा मानकर यह सेवक एक अवधि के लिए आपके राज्य की सेवा अवश्य कर सकता है। दास यह सोचकर हृदय में धैर्य धारण कर लेगा कि उसके स्वामी एक दायित्व देकर तीर्थ को गए हैं और शीघ्र ही लौट आएंगे। अतः हे प्रभु, उस सिंहासन की शोभा बढ़ाने के लिए आप इस दास को अपनी चरण-पादुकाएं देने की कृपा करें।"

दो दिन के प्रवास में ही सभी के हृदय निर्मल हो गए थे। राम की सौम्यता व स्नेह ने सबका हृदय जीत लिया था। उस वन में भी राम की कृपा से उस चतुरंगिणी सेना को भोजनादि का अभाव नहीं रहा था। वन के भील, कौल और अन्य वनजातियों के लोग सेवकों की भांति उनकी सेवा में तत्पर रहते थे।

अभी तक भरत अपने हृदय की बात राम से न कह सके थे। कुछ मन में संकोच था तो कुछ अपराध भाव भी था। वे आए तो इसी उद्‌देश्य से थे कि किसी भी प्रकार प्रेम, हठ या रुदन से राम को द्रवित करके अयोध्या लौट चलने के लिए सहमत करें और उनका राजतिलक करें,

परंतु उनकी सत्य-प्रतिज्ञा, मर्यादा और पितृभक्ति का स्मरण करके साहस न होता था। भरत का असमंजस बढ़ रहा था। वे राम के चरणों में बैठे थे, परंतु मन की बात कह नहीं सकते थे।

"अनुज भरत!" राम ने स्नेहपूर्वक कहा–"वैसे तो समस्त भूमि ही तुम्हारी है और तुम कहीं भी निवास कर सकते हो, परंतु मेरा विचार है कि अब तुम सबको अयोध्या लौट जाना चाहिए। यहां आराम के लिए साधन नहीं है और नगरवासी कष्ट पा रहे हैं। कंद-मूल-फल इत्यादि खाकर इनकी क्षुधा तो न मिटती होगी। हमारी माताएं भूमि पर शयन करने योग्य नहीं हैं, अत: हे प्रिय भरत! मेरी बात मानकर इन सबका दुख दूर करो।"

भरत के नेत्र भर आए। कहना चाहते थे, परंतु नहीं कह पा रहे थे–'प्रभु यह सब कष्ट तो आपको भी हो रहे हैं, अत: आप भी हमारे साथ चलें।'

इसके बाद गुरु वशिष्ठ उनके पास आए। राम ने उनसे भी यही विनय की।

"हे राम! तुम दया के सागर और प्रजा-वत्सल हो, अत: तुम ऐसा न कहो तो कौन कहेगा! तुम अपनों का तो क्या, परायों का भी कष्ट नहीं देख सकते हो। तुमसे तो जंतुओं का कष्ट भी नहीं सहा जाता तो हम तो मनुष्य हैं। तुम सभी का पालन करने वाले हो। श्रमी-अश्रमी सबको भोजन देते हो।" वशिष्ठ ने अनुराग भरे स्वर में कहा–"परंतु हे करुणानिधान, ये सभी लोग जिस इच्छा से आपसे प्रार्थना कर रहे हैं, उसे सुनो और इन्हें सुखी करो।"

"अनुज भरत, क्या यहां आने का कोई विशेष प्रयोजन है?" राम ने पूछा।

भरत करुण स्वर में बोले–"हे दीनबंधु, समय की कुचाल ने रघुकुल को एक भीषण आपदा से त्रस्त किया है। अयोध्या को श्रीहीन कर दिया है। हे नाथ! जो हुआ, वह आपके प्रति हम सबका अपराध है, परंतु आप तो क्षमासिंधु हैं, इसलिए हम मतिमूढ़ों को क्षमा करके अयोध्या को सुखी करें और हमें अपने चरणों से विलग न करें।"

"प्रिय अनुज! तुम अपने हृदय में व्यर्थ की ग्लानि करते हो। जीव की गति ईश्वर के ही अधीन है।" राम ने सस्नेह गंभीर वाणी से कहा–"मैं तुम्हें सभी कालों और सभी लोकों के सबसे उत्तम पुरुष के रूप में मानता हूं। जो भी तुम पर किसी प्रकार का आरोप लगाए, वह गौहत्या जैसे पाप का भागी बनता है। माता कैकेयी को भी वही दोष दे सकते हैं, जो बुद्धि से हीन और गुरुहीन हैं। मैं तुम्हारे प्रेम के वश में हूं। तुम मुझसे जो भी इच्छा करो, मैं उसे पूरी करना यज्ञ समान समझता हूं, परंतु अनुज, तुम वेदपारंगत, नीति-निपुण और सब धर्म-पुरुषार्थ को जानने वाले हो। क्या जिस वचन के लिए पिता ने प्राण त्याग दिए, उसे स्नेहवश

तोड़ देना रघुकुल की मर्यादा के अनुकूल होगा? क्या भौतिक सुख रघुकुल की रीति से अधिक प्रिय हैं! हमारे पूर्वज सत्यवादी हरिश्चंद्र ने स्वप्न में वचन दिया और उसे अनेक कष्ट सहकर भी निभाया! क्या उस कीर्ति को धूमिल करने का कलंक राम के सिर लगे—क्या तुम यह चाहते हो?

भरत कंपायमान हो गए। सभी के हृदय कांप उठे।

"हे गुरुदेव! जब भरत इस इच्छा से अयोध्या से चले थे तो आपने उन्हें कुल का इतिहास न बताया था। यद्यपि भरत सर्वज्ञ है, परंतु मोहवश उन्हें स्मरण न रहा हो तो गुरुकृपा से ये सचेत हो जाते। यदि मैं प्रेम के वश, जो कि भरत के प्रति मुझे इतना है कि वे जो चाहे, वह मैं करूं, ऐसी मेरी शपथ है और अयोध्या लौट जाऊं तो यह मुझे, मेरे स्वर्गीय पिता को तो नर्क की अग्नि में झुलसाएगा ही, अनुज भरत को भी इसका कुफल ही मिलेगा। प्रेम के दुरुपयोग का कलंक इनके सिर लगेगा और राम ऐसा कैसे होने दे सकता है?" राम ने समझाते हुए कहा।

भरत ने अपने अग्रज के चरणों पर सिर रख दिया।

"गुरुदेव!" राम ने सजल नेत्रों से कहा—"बहुत अधिक प्रीति भी हितकर नहीं होती। मैंने आपके और राजर्षि के होते इतना अधिक कह दिया है। अब आप दोनों ही बताएं कि प्रेम और कर्तव्य में से किसका निर्वाह करूं? प्रेम के प्रति कठोर होता हूं तो मेरे प्रियजन दुखी होते हैं और कर्तव्य से विमुख होता हूं तो अपयश का भागी बनता हूं। हे ब्रह्मर्षि, आप तो नीति, न्याय, कृत-अकृत सबको जानने वाले हैं। हे राजर्षि! आप तो आत्मज्ञानी हैं। आप ही कुछ कहें।"

"हे राम, आप सर्वेश्वर हैं।" मुनि वशिष्ठ का स्वर आर्त हो गया, वे करबद्ध हो गए।

"हमने मोहवश आपके हृदय को कष्ट दिया। सत्य वही है, जो आपने कहा है। आप मर्यादाओं की स्थापना करने वाले हैं। आपके वास्तविक रूप का भान होते ही हृदय प्रकाश से भर गया है। हे सबका दुख हरने वाले सच्चिदानंद स्वामी! हमें क्षमा करो और हमारा पथ-प्रदर्शन करो।"

"प्रभु!" राजर्षि जनक गंभीर वाणी से बोले—"देह में रहकर भी आत्मा देह का स्पर्श नहीं कर सकती, वैसा अस्पृश्य आपका प्रेम ही सच्चा प्रेम है। नीति जो कहती है, वही आपने कहा है। दुख देह को होते हैं, आत्मा को नहीं।"

"हे प्रभो! आप ही कोई मार्ग सुझाएं जिससे हम सभी का दुख दूर हो।" कुलगुरु बोले।

"गुरुदेव! आत्मज राजर्षि ने स्पष्ट तो कर दिया है कि देह है तो दुख है। आत्म से वंचित होने पर दुख प्राप्त होते हैं। आत्म-स्मरण होते ही दुख दूर हो जाते

हैं। जहां सब विधि से आत्म-दर्शन हो जाएं, वहां दुख का क्या काम? अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते रहने से ही हम एक सभ्य समाज का निर्माण कर सकते हैं। यह मूल्यवान नहीं कि कर्तव्य किस रूप और किस कारण से मिला है, मूल्यवान है उसे निर्वाह करने का संकल्प! विधाता ने किसी प्रयोजन से हम सभी को भिन्न कर्तव्य सौंपे हैं। मुझे चौदह वर्ष मुनियों का सान्निध्य सुख मिला है तो मुझे इसका निर्वहन करना है। अनुज भरत को प्रजा की सेवा करने का कर्तव्य मिला है तो उसे उसका निर्वहन करना चाहिए। यह अवधि-भर का दुख है या सुख है, यह मानकर हमें दैव की आज्ञा का पालन करते रहना चाहिए।"

राम के इन सुंदर वचनों ने सभी को मोह-मुक्त कर दिया था। जीवन कर्तव्यों का नाम है और इन्हें निभाते रहना ही पुरुषार्थ है।

"हे प्रभु, आपने हमारा संताप हर लिया।" भरत भाव-विह्वल होकर बोले-"हम मोहवश आपको कर्तव्य-पथ से विमुख करने का प्रयास व अपराध कर रहे थे। आप कृपासिंधु हैं, भक्त-वत्सल हैं, अतः कैसे अपने प्रियजनों को यह करने देते। हे नाथ, आप सभी को उभारने वाले हैं। इस ब्रह्मांड में कौन जीव ऐसा है, जो आपकी कृपा पर निर्भर न हो? आप मुझ अकिंचन को आज्ञा करें नाथ!"

"अनुज, दैव ने तुम्हें बड़ा सुंदर अवसर दिया है। प्रजा की सेवा, न्याय का पद पूर्व-जन्मों के पुण्य कर्मों का फल होता है। माताओं की सेवा से बड़ा पुण्य कार्य क्या होगा! इसलिए हे अनुज, शोकरहित होकर सभी नगरजनों के साथ प्रेमपूर्वक अयोध्या जाओ और सुचारू रूप से राजकार्य करो। यही कर्तव्य व धर्म है। रघुकुल की रक्षा व मार्गदर्शन करने वाले गुरुश्रेष्ठ वशिष्ठजी व नीति-निपुण तात सुमंत सदैव आपको सचेत रखेंगे। नगर के सुसभ्य गणमान्य व्यक्ति, श्रमिक, कृषक व अन्य सभी प्रजाजन अपने-अपने धर्म में रत रहकर राज्य की प्रगति में अपना सहयोग देंगे। जो बीता है, उसे भूलकर आने वाले समय का स्वागत करो। हे अनुज, इसी में हम सबका हित है।"

"हे प्रभो, आपकी आज्ञा भरत कभी नहीं टाल सकता, परंतु हे नीतिपुरुष परमब्रह्म! लोकाचार का भी जिससे कुशल निर्वहन हो, ऐसी रीति का ध्यान करके यह दास आपसे एक विनती करना चाहता है।" भरत ने कहा।

"अनुज, निर्भय होकर कहो। मैं जानता हूं कि भरत कभी व्यर्थ बात नहीं कर सकता।"

"हे जगत्पति श्रीराम! लोक-व्यवहार में ऐसा अभागा कौन बनना चाहेगा कि ज्येष्ठ भ्राता के होते हुए भी सिंहासन पर बैठने का घोर पाप करे। हे नाथ, क्या भरत इस कलंक को धारण करे? अतः हे नाथ, आपकी आज्ञा मानकर यह सेवक

एक अवधि के लिए आपके राज्य की सेवा अवश्य कर सकता है। दास यह सोचकर हृदय में धैर्य धारण कर लेगा कि उसके स्वामी एक दायित्व देकर तीर्थ को गए हैं और शीघ्र ही लौट आएंगे। अत: हे प्रभु, उस सिंहासन की शोभा बढ़ाने के लिए आप इस दास को अपनी चरण-पादुकाएं देने की कृपा करें।"

भरत के इन वचनों को सुनकर सभी हर्षित हो उठे। कर्तव्य और अनुराग का ऐसा अद्‌भुत उपाय भरत के अतिरिक्त कौन सोच सकता था!

दयासिंधु श्रीराम ने अनुज की इच्छा स्वीकार कर ली और अपनी चरण-पादुकाएं उतार दीं जिन्हें भरत ने अपने माथे से इस प्रकार लगाया मानो उसे संसार की सबसे अमूल्य निधि प्राप्त हो गई हो।

इसके बाद कैकेयी ने भी साहस किया।

"हे पुत्र! तुम सबके अपराधों को क्षमा करने वाले और दया के सागर हो। मुझ मूढ़ स्त्री को विधाता ने मेरे किन्हीं पूर्व-जन्मों के कारण ऐसे कलंक का निमित्त बनाया, जो अब कभी न छूटेगा। तुमने सब प्रकार से मुझे दोषमुक्त करके मुझ पर कृपा की है, अत: मेरी एक विनती और स्वीकार करो। अपने अनुज शत्रुघ्न को भी अपनी सेवा में रहने की आज्ञा दो।" कैकेयी ने कहा।

"माते, दैव जो उपहार दे, उसे श्रेष्ठ सुयोग्य मानकर ही स्वीकार करना चाहिए। इसमें न कोई यश होता है और न अपयश। लोकाचार में अवश्य इनकी प्रतिष्ठा हो सकती है, आत्म-जगत में इनका कोई प्रभाव नहीं होता। लोक-व्यवहार में सदैव मति-भिन्नता होती है और किसी का कोई कार्य किसी की मति में निंदनीय होता है और कोई प्रशंसनीय! मति के व्यवहार से वही पीड़ित होते हैं, जो आत्म-बल से वंचित होते हैं, अत: हे पूज्य माते, स्वयं को आत्म-बल से पूर्ण करो तो तुम्हें ज्ञान होगा कि तुमने जगत का कितना कल्याण किया है। राम का यह धनुष और तूणीर यदि राजमहल की शोभा बढ़ाता है तो इसका क्या अर्थ होता है? तुमने इसे इसकी पहचान और दायित्व निर्वहन का मार्ग प्रशस्त किया है। जो मतिहीन होंगे, वे इस सत्य को कभी न जान सकेंगे कि राम के जन्म की सार्थकता पुण्यशीला माता कैकेयी के बिना सिद्ध नहीं हो सकती थी।"

राम के वचनों से कैकेयी सहित सभी को अपार सुख मिला।

"माते! मैं तो लक्ष्मण व जनकनंदिनी से भी कहता हूं कि ये अयोध्या लौटकर आप सबकी सेवा में रत हों, परंतु सीता का पतिव्रत धर्म और लक्ष्मण का सदा संग सेवाव्रत इन्हें मेरे साथ रखता है।" राम ने सहज भाव से कहा—"इसलिए शत्रुघ्न को भी अपने साथ रखने की आपकी इच्छा मैं पूर्ण करने में असमर्थ हूं। भरत और आप सबकी सेवा ही मेरी प्रसन्नता है और शत्रुघ्न को वही करना चाहिए।"

"धन्य हैं राम, जो सबके हित और सुख का साधन करते हैं।" गुरुदेव वशिष्ठजी ने कहा–"अब मेरा विचार है कि हम सभी को शुद्ध हृदय से सदा सुमिरन योग्य प्रभु श्रीराम के उपदेश व आदेशों का पालन करते हुए अपने-अपने कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ना चाहिए।"

सभी ने गुरुवर के इस आदेश को शिरोधार्य किया। जैसा करुण दृश्य उनके मिलन के समय उत्पन्न हुआ, वैसा ही अब वियोग की घड़ी आने पर हुआ। यह वियोग की अवधि चौदह वर्ष की थी, परंतु राम को हृदय में स्थित करके कोई भी अवधि लंबी नहीं होगी, यही उनका विचार था।

23

रामद्रोही जयंत को दंड

"जयंत तुमने गंभीर अपराध किया था। जब दंपती एकांत में प्रेमपूर्वक बात कर रहे हों तो देवताओं का भी वहां आना वर्जित है अर्थात् धर्म-विरुद्ध है। जो भी ऐसा करेगा, वह घोर नरक का भागी होगा। उस पर भी तूने स्त्री पर प्रहार करके अपने अपराध को और बढ़ा लिया। मैं तुझे जीवनदान तो देता हूं, परंतु दंड भी अवश्य दूंगा जिससे लोगों को सीख मिले कि वर्जित स्थान पर झांकने का दंड निश्चय ही मिलता है।"
ऐसा कहकर प्रभु श्रीराम ने जयंत की एक आंख में सींक चुभो दी और उसे मुक्त कर दिया। जयंत अपने मन में पश्चाताप करता हुआ इंद्रलोक चला गया।

चित्रकूट का वह वन-क्षेत्र और वहां के वनवासी धन्य हो गए थे, जब वहां दशरथनंदन श्रीराम ने सीता सहित निवास किया। वृक्षों की शीतल छाया के नीचे लक्ष्मण ने बड़ी सुंदर पर्णकुटी बनाई जिसमें श्रीराम-सीता निवास करने लगे। लक्ष्मण एक सजग प्रहरी की भांति वीतासन पर बैठे उनकी सेवा और सुरक्षा में तत्पर रहने लगे। वहां अनेक आश्रम और दिन के समय लक्ष्मण श्रीराम से आज्ञा लेकर वन-भ्रमण को चले जाते हैं। मुनियों के दर्शन करते और कंद, मूल, फल और पुष्प चुनकर लाते हैं। नित्य ही श्रीराम के दर्शनों की इच्छा

लेकर संतजन, भील, कौल वहां आते ही रहते और राम अपने सुंदर वचनों से सबको सुखी करते।

एक दिन प्रात:काल श्रीराम ने नदी किनारे पुष्पवाटिका से कुछ सुंदर फूल चुने और उनसे एक सुंदर पुष्पहार, सुंदर जूड़ा व सुंदर बाजूबंद बनाकर सीता को प्रेमपूर्वक पहनाने लगे। पति-पत्नी का ऐसा प्रेम स्वाभाविक ही है। उस पर भी राम तो नर रूप में नारायण व सीता स्त्री रूप में स्वयं लक्ष्मी हैं। उनके नर स्वरूप की चर्चा तो स्वर्ग के देवता भी बड़े अनुराग से करते थे। ऐसे ही एक दिन इंद्र का पुत्र जयंत भी उस चर्चा को सुनकर कौतूहलवश प्रमाद में आ गया। पुरुष रूप की तुलना उसे विष्णु रूप से किया जाना अच्छा न लगा। उसने कई बार क्षीरसागर जाकर लक्ष्मी और विष्णु के भव्य रूप के दर्शन किए थे। अत: अब सीता-राम के दर्शन करके वह उस तुलनात्मक भव्यता को परखने का इच्छुक था। वह कौए का वेश धरकर चित्रकूट आ गया, लेकिन वहां का दृश्य देखकर वह विचलित हो उठा।

'सुंदरता में तो चलो मान लूं कि यह श्रीविष्णु व लक्ष्मी से कम नहीं।' जयंत सोच रहा था-'पर इनका कार्य देखकर हंसी आती है। साधारण पुरुष की भांति स्त्री से अनुराग रखने वाले को विष्णु कैसे मान लूं! जो अपने हाथों से स्त्री शृंगार करता हो, वह कैसे विष्णु समान पराक्रमी होगा। अब तो इनका बल परखना ही होगा।'

मूढ़मति कौए रूपी शचिपुत्र जयंत तत्काल उड़कर नीचे आया और सीता के पैर में चोंच मारकर भाग लिया। सीता के पांव से रक्त बह चला तो राम ने रोष से कौए को देखा और वहीं से एक सींक उठाते हुए धनुष पर चढ़ाकर छोड़ दी। पहले तो जयंत को कोई भय न हुआ, पर जैसे ही सींक रूपी बाण समीप आया तो वह घबराया। वह तो अग्निबाण के समान जल रहा था। उसने भागकर अपने प्राण बचाने में ही भलाई समझी और भागा, परंतु यह क्या! वह बाण तो उसके पीछे ही दौड़ा आ रहा है। वह जिधर उड़ता, मुड़ता, गोते खाता, उसी गति और क्रम में वह बाण चलता है। जयंत को अब अपने बलशाली पिता की याद आई। अब वही सहायक हो सकते हैं।

जयंत देवलोक में पहुंचा तो बाण वहां भी आ गया।

"रक्षा करो पिताश्री, इस दग्ध बाण से मेरी रक्षा करो।" वह आर्तनाद कर उठा।

इंद्र ने देखा और मुंह घुमा लिया। रामद्रोही की सहायता कौन करना चाहेगा?

जयंत सन्न रह गया। पिता ने भी उपेक्षा कर दी थी। इसका अर्थ तो यह था कि उसने मूढ़ता दिखाई थी। उसने गलती कर दी थी। उसकी बुद्धि भ्रम में पड़ गई थी, जो उसने जगत्नियंता श्रीहरि के बल की परीक्षा करनी चाही थी।

अब तो गुरु बृहस्पति ही सहायक हो सकते हैं। वह दौड़कर गुरु गृह पहुंचा तो गुरु भी उपेक्षित दृष्टि डालकर समाधिलीन हो गए। बाण का ताप अब जलाने लगा था और उसकी पीड़ा सही नहीं जा रही थी। उसने सोचा, भोलेनाथ की दया ही काम आएगी, क्योंकि वे दयानिधान किसी का भी संकट देखकर शीघ्र द्रवित हो जाते हैं, परंतु वह जब कैलाश पर्वत पर पहुंचा तो वहां भी निराशा ही हाथ लगी। कोई उसका मुख भी नहीं देखना चाहता था। शिव ने भी एक दृष्टि डालकर नेत्र बंद कर लिए। अब ब्रह्माजी कुछ करें तो करें और वे मुंह भी न घुमा सकते थे, क्योंकि चतुरानन थे, परंतु वहां जो स्वागत हुआ, उसने तो उसकी सूरत ही रोनी कर दी।

"यहां से चला जा रामद्रोही!" ब्रह्माजी ने फटकार लगाई–"तू मूढ़मति! चींटी होकर सागर की थाह पाना चाहता था! भाग जा यहां से।"

जयंत को अब जीवन की आशा न रही थी। जब सभी ने तिरस्कृत कर दिया तो अब कौन उसे उस निश्चित मृत्यु से बचाएगा! उसने अकारण ही अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे दिया था। जब सब देवगण कह रहे थे, वंदना कर रहे थे कि श्रीहरि ही राम रूप में शोभित हो रहे हैं तो उसने क्यों मूर्खता की। जयंत दग्धता की पीड़ा से रोए जा रहा था और इधर-से-उधर भागा फिर रहा था।

तभी उसे वीणा का स्वर और 'नारायण-नारायण' संकीर्तन सुनाई पड़ा।

"देवर्षि! देवर्षि! मेरी रक्षा करो।" जयंत को जीवन की अंतिम आशा चमकी तो वह दौड़कर नारदजी के चरणों में नत हो गया और बाण भी स्थित हो गया। प्रभु के भक्त की शरण में जाना भी प्रभुशरण में जाने के समान है। नारदजी तो दयालु हैं, उनसे किसी की पीड़ा देखी नहीं जाती, यद्यपि परिहास वे अवश्य कर लेते हैं।

"नारायण-नारायण! कौन हो भैया! यह पीछे से अग्नि क्यों फेंक रहे हो?"

"नाथ! परिहास न करें! प्राणों पर संकट आ पड़ा है। मुझ मूढ़मति ने प्रभु श्रीराम से बैर ले लिया और मूर्खतावश उनसे द्रोह कर बैठा। अब यह बाण मेरे प्राण लेने को मेरे पीछे पड़ा है–शिव, ब्रह्मा और स्वयं पिताश्री ने मेरा तिरस्कार कर दिया। अब मैं आपकी शरण में हूं, अतः हे नाथ, मेरी रक्षा करो।"

"नारायण-नारायण! पुत्र जयंत, जो राम का द्रोही है, वह सबसे उपेक्षित होता है और कोई उसकी सहायता नहीं कर सकता। मैं स्वयं भी नहीं कर सकता, परंतु मैं तुम्हें उपाय तो अवश्य ही बता सकता हूं, क्योंकि यही मेरा काम है।" देवर्षि ने कहा।

"हे प्रभु, उपाय ही बताइए और मुझे इस पीड़ा से मुक्ति दिलाइए।"

"शचिनंदन, तुम्हें ईश्वर सद्बुद्धि दे दे तो तुम उन्हीं भक्त-वत्सल प्रभु श्रीराम व जानकी की शरण में जाओ और अपने अपराध की क्षमा-याचना करो। दयासिंधु श्रीराम बड़े दयालु हैं। वे तुम्हारी पीड़ा दूर कर देंगे। मेरी बात को सत्य जानना।"

जयंत ने जल्दी से देवर्षि को प्रणाम किया और वहां से चित्रकूट की ओर दौड़ लगाई। वहां जाकर वह करुण विलाप करते हुए उन्हीं भक्त-वत्सल श्रीराम के चरणों में गिर पड़ा।

"हे दयानिधान, हे शरणागत के रक्षक! मुझ मूढ़मति, पातकी के अपराध को क्षमा कर दीजिए, जो आपकी महिमा न जान सका और कौतूहल व भ्रम के कारण आपको साधारण स्त्री-प्रेमी पुरुष समझने की भूल कर बैठा।" जयंत ने आर्तपुकार की-"मुझे अपने इस प्रचंड कालरूपी बाण से बचाइए। हे रघुनंदन, हे लक्ष्मीपति, मेरी रक्षा कीजिए। इस बाण के ताप से मेरा शरीर जल रहा है।"

करुणानिधान प्रभु श्रीराम ने उदारता दिखाई। जयंत को दग्ध करते बाण को प्रभु ने हाथ से स्पर्श कर पुनः सींक में परिवर्तित कर दिया।

"जयंत तुमने गंभीर अपराध किया था। जब दंपती एकांत में प्रेमपूर्वक बात कर रहे हों तो देवताओं का भी वहां आना वर्जित है अर्थात् धर्म-विरुद्ध है। जो भी ऐसा करेगा, वह घोर नरक का भागी होगा। उस पर भी तूने स्त्री पर प्रहार करके अपने अपराध को और बढ़ा लिया। मैं तुझे जीवनदान तो देता हूं, परंतु दंड भी अवश्य दूंगा जिससे लोगों को सीख मिले कि वर्जित स्थान पर झांकने का दंड निश्चय ही मिलता है।"

ऐसा कहकर प्रभु श्रीराम ने जयंत की एक आंख में सींक चुभो दी और उसे मुक्त कर दिया। जयंत अपने मन में पश्चाताप करता हुआ इंद्रलोक चला गया।

24

त्रिदेवों का बाल रूप

त्रिदेव शंकित हुए कि भेद खुल गया, परंतु तब तक सती के तपोबल से वह चमत्कार हो गया था जिसकी कल्पना भी न की जा सकती थी। तीनों ब्राह्मण रूपी त्रिदेव नवजात शिशुओं के रूप में बदल गए थे और शिशु क्षुधा के कारण क्रंदन कर रहे थे। सती ने वात्सल्य भाव से उन्हें उठाया। दो को स्तनपान कराने लगी और तीसरे के मुख में अपना अंगूठा डाल दिया। कैसा सुंदर दृश्य था! सती का प्रभाव ऐसा ही था। जगत के तीनों आधार अब शिशु रूप में सती के आश्रम में थे और नित्य प्रति माता अनुसुइया का दुग्धपान करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा रहे थे।

चित्रकूट में श्रीराम ने बहुत से सत्पुरुषों व मुनिजनों को दर्शन देकर सुखी किया। अब सारा चित्रकूट क्षेत्र उन्हें जानता था और नित्य ही उनका आश्रम श्रद्धालुओं से भरा रहता। दिन-रात्रि सत्संग होने लगे। नित्य जुटने वाली इस भारी भीड़ के कारण श्रीराम-सीता का मन उचाट होने लगा था। बहुत से वनवासी तो वहीं पर्णकुटी के आसपास ही रहने लगे थे। यद्यपि उन सभी में श्रद्धा-भाव था, तथापि वे एकांतवास चाहते थे, तब एक दिन राम ने लक्ष्मण व सीता सहित उन लोगों से विदा मांगी।

"हे प्रभु, हमसे क्या अपराध हो गया या यहां आपको कोई कष्ट हो

रहा है या हममें से किसी ने आपको कष्ट करने वाला कार्य कर दिया है, जो आप हमें इस प्रकार त्याग रहे हैं? हे दीनबंधु, आपके नित्य दर्शनों से हमें यह वन ही स्वर्ग के समान प्रतीत होता था। आप हमें छोड़कर न जाएं प्रभो!"

"हे मुनिवरो! ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जिससे हम आपसे रुष्ट हों। हमें तो यहां रहकर बड़ा ही अच्छा लगा। एक परिवार की भांति आप लोगों के साथ रहकर हमें अपने परिवार की भी कमी नहीं खली, परंतु हे प्रिय वनवासियो, हम एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहर सकते, क्योंकि यह तपस्वी परंपरा के विरुद्ध है। अत: आप सभी से निवेदन है कि हमें प्रेमपूर्वक जाने की आज्ञा दें।"

राम की स्नेहवाणी ने सबको वशीभूत कर लिया और सबने प्रसन्नता के साथ उन्हें विदा किया। चित्रकूट से वे आगे बढ़े तो मार्ग में महर्षि अत्रि का आश्रम पड़ा। इस क्षेत्र में श्रीराम के आगमन की सूचना मिलते ही मुनि और उनकी सुशीला पत्नी जगत्प्रसिद्ध माता अनुसुइया उनके स्वागत को दौड़ी आईं।

श्रीराम सीता और लक्ष्मण की अनुपम दिव्य झांकी देखते ही ऋषि दंपती के हृदय खिल उठे। तीनों ने उन्हें सादर प्रणाम किया तो महर्षि ने श्रीराम की भांति-भांति से स्तुति की और उन्हें सप्रेम अपने आश्रम में ले गए। कुशल-क्षेम के बाद उन्हें श्रेष्ठ फलों का भोजन कराया गया। राम, लक्ष्मण महर्षि के पास बैठ गए और सीता को सती अनसूइया प्रेमपूर्वक अपने साथ ले गईं।

सती अनुसुइया की कीर्ति तीनों लोकों में फैली हुई थी। एक बार नारद के उकसाने पर त्रिदेवियों—लक्ष्मी, पार्वती व शारदा ने त्रिदेवों को अनुसुइया के पतिव्रत-धर्म व दान महिमा की परीक्षा लेने हेतु भेजा था। त्रिदेवों ने ब्राह्मण वेश बनाकर आश्रम पर आकर सती से भिक्षा की याचना की। सती अनुसुइया ने उन्हें सुंदर, रसीले फल, गौरस आदि सब देना चाहा, परंतु ब्राह्मण त्रिदेव साधारण याचक न थे।

"माते!" ब्राह्मण रूपी श्रीविष्णु ने कहा—"फल-मिष्टान आदि तो आपकी कृपा से इस पुण्य क्षेत्र में हम नित्य प्रति ही प्राप्त करते हैं और उनसे पूर्ण तृप्त भी हो गए हैं। हमने तो सुना था कि आपके आश्रम में इच्छित भिक्षा दी जाती है और आज तक कोई भी यहां से निराश होकर नहीं लौटा।"

"श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मुझे माता कहकर आपने मेरा हृदय पुलकित कर दिया है।" सती ने स्नेह भरे स्वर में कहा—"अत: जो तुम्हारी इच्छा हो, मांग लो। प्रभु कृपा से तुम्हारी माता को कामधेनु की भांति सबकी इच्छा पूरी करने का वरदान प्राप्त है।"

"माते! अधिक मीठे फल व मिष्टान खा-खाकर अपच हो गया है। बाल्यकाल में जब भी अपच हो जाता था, तब हमारी माताएं हमें दुग्धपान करा देती थीं और

हम स्वस्थ हो जाते थे। हमारी माताएं तो रही नहीं, अतः आपको माता कहा है। अब आप ही मातृत्व से हमारा कल्याण करें।" ब्राह्मण रूपी शिव बोले।

सती इन अनोखे ब्राह्मणों की अनोखी इच्छा जानकर मन में शंकित हो गईं और अपने सतीबल के प्रभाव से उनकी वास्तविकता जान गईं।

"अवश्य पुत्रो! माता अपने पुत्रों का कष्ट दूर करने के लिए कुछ भी कर सकती है। आओ मेरे पुत्रो, तुम्हें दुग्धपान कराती हूं। मुझसे अधिक बड़भागी कौन होगी–मेरे तीन-तीन पुत्र तेज में त्रिदेवों के समान और तेजस्वी हैं।"

त्रिदेव शंकित हुए कि भेद खुल गया, परंतु तब तक सती के तपोबल से वह चमत्कार हो गया था जिसकी कल्पना भी न की जा सकती थी। तीनों ब्राह्मण रूपी त्रिदेव नवजात शिशुओं के रूप में बदल गए थे और शिशु क्षुधा के कारण क्रंदन कर रहे थे। सती ने वात्सल्य भाव से उन्हें उठाया। दो को स्तनपान कराने लगी और तीसरे के मुख में अपना अंगूठा डाल दिया। कैसा सुंदर दृश्य था!

सती का प्रभाव ऐसा ही था। जगत के तीनों आधार अब शिशु रूप में सती के आश्रम में थे और नित्य प्रति माता अनुसुइया का दुग्धपान करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा रहे थे।

देवर्षि नारद गगनमंडल से विचरण करते हुए यह सब कौतुक देख-देखकर हर्षित होते थे। बड़े चले थे सती की परीक्षा लेने, अब पालनों में पड़े अंगूठे चूस रहे हैं। शिशुवत् व्यवहार कर रहे हैं।

नारदजी को ऐसे कौतुक पचते नहीं। इन्हीं में उनका मनोविनोद होता है, अतः त्रिदेवियों के पास चले आए, जो चिंतित मुद्रा मैं बैठी थीं।

"नारायण-नारायण! माताओ, मेरा प्रणाम स्वीकार करें और अपनी चिंता का भी कारण बताएं।" देवर्षि ने सहज मुस्कराकर पूछा।

"देवर्षि!" लक्ष्मीजी ने कहा–"यह आपने किस उलझन में डाल दिया? प्रभु गए थे सती की परीक्षा करने और अभी तक नहीं लौटे, जाने कहां रह गए!"

"हां देवर्षि! बिना महादेव के कैलाश सूना है। कार्तिक और गणेश मुझे परेशान कर रहे हैं। कहां चले गए भोलेनाथ!" पार्वती ने कहा।

"हमारे ब्रह्मदेव भी उनके साथ युवा ब्राह्मण बनकर गए हैं।" शारदा भी कलपीं।

"देवियो! तनिक सती के आश्रम में दृष्टिपात करके तो देखिए। वहां आपके अनोखे परमेश्वर कैसे अनोखे रूप में विराजमान हैं। पालना झूल रहे हैं–अंगूठा चूस रहे हैं।"

तीनों ने दिव्यदृष्टि से देखा तो नारदजी का कथन सत्य था।

"देवियो! अब यदि अपने-अपने परमेश्वर उसी रूप में चाहिए तो सती से जाकर क्षमा-याचना करो, अन्यथा वे उन्हें इसी प्रकार पाल-पोसकर बड़ा करके उनके विवाह मुनि-कन्याओं से कर देंगी और तीनों देव वहीं रम जाएंगे।"

त्रिदेवियां घबरा गईं और तत्काल जाकर सती अनुसुइया के पास जाकर भांति-भांति से उनकी स्तुति करने लगीं—उनकी श्रेष्ठता का गुणगान करने लगीं, तब माता प्रसन्न हुईं और अपनी माया समेटकर सबको सुखी किया। त्रिदेवों ने पुत्र-भाव से सती को प्रणाम किया और त्रिदेवियों सहित अपने-अपने लोक को पधार गए।

ऐसी परम सती का सान्निध्य सीताजी के लिए सुख प्रदान करने वाला था। माता अनुसुइया ने सीता को नारी-शिक्षा का रहस्यमय गूढ़ ज्ञान दिया—पति और पत्नी के भेद, धर्म व कर्तव्यों का विशद वर्णन किया।

ऐसा ही वेद-वर्णन मुनि अत्रि ने भी श्रीराम-लक्ष्मण को भी सुनाया। कुछ दिन वहां रहकर मुनि-दर्शन और ज्ञान-लाभ प्राप्त करके श्रीराम ने वहां से प्रस्थान की आज्ञा मांगी।

"हे प्रभु, यहां तक की वनभूमि तो आपके प्रताप से दैत्य रहित है अर्थात् यहां कोई राक्षस बहुत समय से नहीं दिखाई दिया, परंतु आगे वनों में उनका निवास है। हे प्रभो, दक्षिण क्षेत्र उनके अत्याचारों से त्रस्त है और पीड़ित जन आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नाथ, आपको जाने तो नहीं देना चाहता, परंतु प्रेमवश किसी महाकाज में अवरोध उत्पन्न करना उचित नहीं होगा। बस नाथ, सदा अपनी कृपा बनाए रखें।"

इस प्रकार मुनि अत्रि व माता अनुसुइया व अन्य आश्रमवासियों से विदा लेकर श्रीराम लक्ष्मण और सीता सहित आगे बढ़े। वनवासियों को दर्शन देते श्रीराम को मार्ग में एक श्रापित राक्षस विराध मिला, जो उनकी ही प्रतीक्षा में न जीता था न मरता था। प्रभु ने करुणा करते हुए उसे शाप से मुक्त कर परमधाम को भेजा। आगे उनका विश्राम मुनि शरभंग का आश्रम था, जहां मुनि उनके दर्शन से भाव-विह्वल हो गए।

25

मुनिवरों को दर्शन-लाभ

"हे मुनिश्रेष्ठ! सुमेरू पर्वत के अहंकार को तोड़ने वाले महायोगी, महामुने अगस्त्य के शिष्य को आपके जैसा ही पुण्यवर होना चाहिए। आपकी निष्काम भक्ति ने मुझे पुलकित कर दिया है, अत: हे मुनिनाथ! इच्छित वर मांग लो।"

"प्रभो, जब प्रभु-दर्शन का परम लाभ हो जाए तो फिर भी इच्छा रखने वाले को दोषों से युक्त जानना चाहिए। सर्वस्व मिलने पर भी जो कुछ और इच्छा करे, वह कैसे प्रभु का भक्त कहा जा सकता है। अत: हे नाथ, मैं संपूर्ण हुआ।"

शरभंग ऋषि बड़े तपस्वी और वेदविज्ञ थे। उनका समस्त जीवन ज्ञानार्जन और तपादि में व्यतीत हुआ था और वे श्रीहरि विष्णु व लक्ष्मी के साकार नर रूप के दर्शन के अभिलाषी थे, परंतु दोनों के संयुक्त अवतार में बहुत अधिक कल्पों का समय था। नारदजी ने उन्हें बताया भी था कि जब हरि-लक्ष्मी का नर रूप में अवतार होगा, तब तक वे चार जन्म ले चुके होंगे।

मुनिवर ने अपनी हठ ठान रखी थी कि इसी जन्म में युगलमूर्ति के दर्शन करने हैं, अत: उन्होंने उसी क्षण अपनी चिता सजाई और उस पर बैठकर प्रभु के आने की प्रतीक्षा करने लगे। उनके तप का ऐसा प्रभाव था कि उनकी एक जन्म की आयु समाप्त हो जाती और यम के दूत उनके समीप न फटकते थे।

यमराज बड़े विकल थे कि नियम भंग हो रहा है तो एक बार स्वयं भी चले, परंतु नारदजी ने सचेत कर दिया।

"मृत्युदेव! भूलकर भी ऐसी त्रुटि न कीजिएगा। मुनिवर ने अपने प्राणों को श्रीहरि में समाहित कर दिया है, अतः यह त्रुटि भारी पड़ सकती है। जब श्रीहरि उनकी इच्छा पूरी करना चाहते हैं तो आप हस्तक्षेप क्यों करते हैं? नारायण-नारायण, मैं केवल परामर्श ही देता हूं, शेष आपकी इच्छा।"

इस प्रकार यमराज ने भी प्रभु इच्छा समझकर तपस्वी मुनि के प्राण-हरण करने के विषय में सोचना छोड़ दिया था।

वह दिन अब आया था जब श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित मुनि शरभंग के आश्रम में पहुंचे तो वे चिता पर बैठे थे और राम नाम का अखंड, अनवरत् जाप कर रहे थे। श्रीराम अपने इस परम भक्त की अगाध भक्ति पर रीझ गए। भक्त के वशीभूत होकर ही भगवान भक्त के वश में होते हैं, यह मुनि ने सिद्ध कर दिखाया था। भगवान स्वयं दर्शन देने पहुंचे थे।

तीनों ने आदर सहित मुनिवर को प्रणाम किया तो कर्णप्रिय वचनों को सुनकर उन्होंने समाधि भंग कर दी और इस प्रकार प्रसन्न हो गए जैसे बच्चा मनचाहा खिलौना सामने देखकर प्रसन्न होता है। मुनिवर ने बच्चों की भांति किलकारी मारी और त्रिमूर्ति के चरणों में कूदकर दंड की भांति नत हो गए। वे भांति-भांति के वचनों से उनकी स्तुति करने लगे।

"हे कृपानिधान, हे गुणसागर, हे जगत के सर्वेश्वर! आपने बड़ी कृपा की, जो मुझ अकिंचन की लाज रखी। मैं कब से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। हे दयासिंधु, मैं आपकी महिमा का किस प्रकार वर्णन करूं! जिनके वर्णन में सहस्त्रों मुखों वाले शेषजी भी असमर्थ हैं, उनकी महिमा मुझ वैरागी के लिए कहां संभव है! हे नाथ, मेरी प्रतीक्षा पूर्ण हुई। मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था, परंतु आपके इस नर रूप के पावन दर्शन की ऐसी आकांक्षा थी कि मैं अब तक प्रतीक्षारत रहा।"

"हे महामुने, हमारे कारण आपको बहुत अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, परंतु हम भी नियति के अधीन हैं, अतः हमें क्षमा कर दीजिए।"

"हे देव, मैं दिन-रात आपकी प्रतीक्षा कर रहा था, परंतु कभी भी मेरे हृदय में अधीरता नहीं रही, क्योंकि मैं आपकी करुणा पर अगाध विश्वास रखता हूं। आप आएंगे, इस विश्वास का आलंब ही मेरा धैर्य था।" मुनिवर फिर सीताजी और लक्ष्मण से बोले-"हे कृपापुंज, हे निधियों की स्वामिनी श्री लक्ष्मीजी, हे भूमि का भार धारण करने वाले शेषजी, अब मुझे इस भौतिक देह से मुक्त होने

की आज्ञा दें और चिरकाल तक मेरे हृदय में अपनी निष्काम भक्ति को दृढ़ बने रहने का आशीष दें।"

तीनों मूर्तियों ने हाथ उठाकर मुनि को इच्छित वर दिया।

मुनि ने हर्षित होकर प्रभु को मन-ही-मन स्मरण किया और अपने योगबल से अग्नि का आह्वान किया। उनके देखते-ही-देखते चिता प्रज्वलित हो उठी। मुनि की ऐसी सुंदर गति देखकर देवता भी हर्षित हो उठे और श्रीराम की स्तुति करने लगे। अनेक ऋषि-मुनि वहां प्रभु श्रीराम की अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार वंदना करने लगे।

श्रीराम वहां से आगे बढ़े तो मुनिगण उनके प्रेम के वशीभूत होकर उनके साथ हो लिये। आगे चलने पर एक स्थान पर अस्थियों के ढेर यहां-वहां पड़े थे। मानव अस्थियों का यह ढेर देखकर श्रीराम समझ गए कि अब राक्षसों की सीमा प्रारंभ हो गई है, फिर भी उन्होंने मुनियों से उन अस्थियों के विषय में पूछा।

"हे सृष्टि के सृजनहार, पालनहार व संहारक!" मुनि बोले-"आप चींटी से लेकर हाथी तक के घट के सभी रहस्य जानने वाले हैं। आप फिर भी सुनना चाहते हैं तो सुनिए-प्रभु! यह सब लंकापति रावण के बल पर आश्रित राक्षसों का किया-धरा है, जिन्होंने अनेक मुनियों, वनवासी और वन्य जीवों को अपना आहार बना लिया है। यह उन्हीं निरपराधों की अस्थियों का ढेर है। हे नाथ, इस वन में मुनि अगस्त्य के प्रताप से ही शांति बनी हुई है और जब भी मुनिवर कहीं चले जाते हैं, तभी राक्षसों का आक्रमण होने लगता है।"

राम के हृदय में करुणा और रोष एक साथ उत्पन्न हो गए थे।

"हे मुनिवरो! आज मैं पंचभूतों को साक्षी मानकर, आप सभी श्रेष्ठ मुनियों के समक्ष शपथ लेता हूं कि पृथ्वी को राक्षसों से पूर्णतया मुक्त कर दूंगा।" राम ने रोष भरे स्वर में भुजा उठाकर प्रण लिया जिसके नाद से देवों में हर्ष छा गया और लंका में अपशकुन होने लगे।

श्रीराम के द्वारा राक्षसों के विनाश की यह प्रथम सार्वजनिक स्वीकारोक्ति थी। अब श्रीराम महामुनि अगस्त्य के दर्शन हेतु चल पड़े। मार्ग में उन्हें मुनि अगस्त्य के परम शिष्य सुतीक्ष्ण का आश्रम मिला, जो जाने कितने वर्षों से प्रभु के दर्शन की प्रतीक्षा में निराहार व्रत कर रहे थे।

प्रभु को आया देखकर वे भाव-विभोर हो गए और नेत्रों से प्रेमाश्रु बरसाते हुए उन करुणानिधान श्रीभगवान की स्तुति करने लगे। वे प्रेम में इतने लीन हुए कि उसी दशा में समाधिस्थ हो गए। राम ने उन्हें झकझोरा, परंतु मुनिवर अब उस दशा से बाहर आने की इच्छा या चेष्टा ही नहीं कर रहे थे।

कई क्षण यही दशा रही, तब कहीं जाकर उन्हें सुधि आई। वे प्रेममग्न होकर विभिन्न प्रकार से श्रीराम स्तुति करने लगे।

"हे प्रभो! मेरी विनती सुनिए–मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूं? आपकी महिमा अपरंपार है और मैं अल्पबुद्धि इसका गुणगान नहीं कर सकता। हे दयानिधान! मैं निरंतर आपको हृदय में धारण करके नमस्कार करता हूं। हे माता लक्ष्मी, हे शेषजी, अब यह अनुपम झांकी देखकर मेरा हृदय शीतल हो गया है। गुरु की अपार कृपा हुई, जो उन्होंने मुझे इस अद्‌भुत मनभावन मूर्तियों के साक्षात् दर्शन करने की युक्ति बताकर कृपा की। हे दीनों के नाथ, आप मेरे हृदय में माता सीता और शेषावतार लक्ष्मण सहित सदा निवास करें। हे प्रभु, आपकी निर्मल भक्ति मेरी श्वास बने।"

"हे मुनिश्रेष्ठ! सुमेरू पर्वत के अहंकार को तोड़ने वाले महायोगी, महामुने अगस्त्य के शिष्य को आपके जैसा ही पुण्यवर होना चाहिए। आपकी निष्काम भक्ति ने मुझे पुलकित कर दिया है, अतः हे मुनिनाथ! इच्छित वर मांग लो।"

"प्रभो, जब प्रभु-दर्शन का परम लाभ हो जाए तो फिर भी इच्छा रखने वाले को दोषों से युक्त जानना चाहिए। सर्वस्व मिलने पर भी जो कुछ और इच्छा करे, वह कैसे प्रभु का भक्त कहा जा सकता है। अतः हे नाथ, मैं संपूर्ण हुआ।"

"हे मुनिश्रेष्ठ, आप मेरे लोक के रक्षक बनें, ऐसी मेरी अभिलाषा है। अब आप मेरा मार्गदर्शन करें और महामुने अगस्त्य के दर्शन हेतु उनके आश्रम ले चलें।"

हर्ष में भरे सुतीक्ष्ण मुनि अपने प्रभु को लेकर मुनि अगस्त्य के आश्रम में पहुंचे। परम ज्ञानी मुनि अगस्त्य को जब यह सूचना मिली तो वे दौड़े चले आए। इच्छा थी कि प्रभु के चरणों में अपना शीश रखकर स्तुतिगान करेंगे, परंतु यह क्या प्रभु श्रीराम सहित लक्ष्मण भी उनके चरणों में नत हो गए।

श्रीराम जब महामुनि अगस्त्य से मिले तो वे भाव-विह्वल होकर हृदय से लग गए। कुशल-क्षेम के पश्चात् श्रीराम ने मुनिवर से अपने रहने योग्य किसी स्थान के विषय में पूछा।

"हे प्रभो, आप मुनि गौतम के शाप से पीड़ित दंडक वन का उद्धार करें और अपने महाकाज का शुभारंभ करें। प्रभु! उस स्थान को पवित्र करें, क्योंकि यहीं से राक्षसों के अधिपति लंकापति दशानन का प्रभुत्व आरंभ होता है।" मुनिवर ने बताया।

श्रीराम ने मुनि की आज्ञा शिरोधार्य की और दंडक वन की ओर प्रस्थान किया।

26

शूर्पणखा का स्वांग

शूर्पणखा ने क्षण-भर विचार किया और लक्ष्मण की ओर देखा। गौरवर्ण लक्ष्मण अब उसे श्याम वर्ण राम से अधिक आकर्षक लगे। वह तो काम से पीड़ित थी, अतः उसे दोनों में से किसी एक से भी तृप्ति मिल जाती। वह लक्ष्मण के पास पहुंची।
"हे सुकुमार, इंद्र को भी लजा देने वाले! तुम्हारे इस रूप ने मेरे हृदय को काम से पीड़ित कर दिया है। तुम्हारे भाई से तुम्हारे विषय में सब जानकर आई हूं कि तुम अविवाहित हो। अब तुम्हारी आयु भी स्त्री-सुख पाने की हो गई है। मैं तुम्हारे मन के अनुरूप कन्या हूं, अतः मुझे स्वीकार करके मेरा मान रखो।"
लक्ष्मण ने राम की ओर देखा जो मुस्कराकर संकेत में ही कुछ कह गए।

त्रेतायुग के धर्म-अधर्म व सत्य-असत्य के बीच महासंग्राम की सूत्रधार का नाम था शूर्पणखा! लंकापति रावण की बहन! दिखने में ही ऐसी भयावह कि यदि साधारण गर्भवती स्त्री देख ले तो उसका गर्भपात हो जाए।

कुरूप होना राक्षस जाति में शक्ति का प्रतीक माना जाता है और इस विशेषता में शूर्पणखा सबसे अधिक गुणवान थी। उसकी मुखाकृति ऐसी थी कि यदि दिन में भी कोई साधारण मनुष्य देख ले तो हृदयगति रुक जाए। विशाल शरीर, अमावस के अंधकार को भी पीछे छोड़ती त्वचा का

रंग, विकराल और बड़ी-बड़ी आंखें, गालों के पोटे मांस का लोथड़ा और नाक ऐसी जैसे बगुले की चोंच हो। होंठ ऐसे जैसे अभी-अभी रक्तपान करके आई हो। मायावी ऐसी कि क्षण-भर में रूप बदल लें।

दंडक वन में शूर्पणखा अपने भाई खर के साथ रहती थी। खर भी अत्यंत क्रूर और मायावी राक्षस था। जब रावण ने अपने सेनापतियों को क्षेत्र बांटे थे, तब खर को दंडक वन दिया था जिसमें उसका मित्र दूषण भी रहता था। खर और दूषण ने ही दंडक वन को हिंसाग्रस्त कर दिया था।

शूर्पणखा के पति का नाम विद्युतध्वजा था, जो रावण की भांति पराक्रमी और महत्त्वाकांक्षी था। प्राय: वह रावण के विरुद्ध ही बोलता था, क्योंकि उसे रावण की कुछ नीतियां स्वीकार नहीं थीं, जैसे कि रावण ने उसके पराक्रम की उपेक्षा की उसे दंडक वन का अधिकारी न बनाकर खर का सहायक बना दिया था। इस उपेक्षा से ग्रस्त विद्युतध्वजा स्वेच्छाचारी हो गया था। वह प्राय: खर के साथ झगड़ा करता रहता और अपनी मनमानी करता था। इससे कुपित होकर रावण ने एक दिन उसका वध कर दिया। शूर्पणखा को इससे क्रोध तो बहुत आया, परंतु समय को पहचानकर उसने अपने प्रतिशोध की भावना को हृदय में दबा लिया।

शूर्पणखा ने भी कई बार ऋषि-मुनियों से सुना था कि राक्षस जाति का नाश करने के लिए श्रीहरि विष्णु नर रूप में अवतार ले चुके हैं और तपस्वी वेश में दंडक वन की ओर आकर इस कार्य का शुभारंभ करेंगे।

वह प्राय: भोजन की खोज में इधर-उधर घूमती रहती थी। एक दिन वह पंचवटी की ओर आ गई। वह पहले भी कई बार वहां आई थी, परंतु वहां प्राय: निर्जनता छाई रहती थी। राक्षसों के भय से कोई ऋषि-मुनि या वनवासी उधर नहीं आता था, परंतु आज वहां एक सुंदर आश्रम देखकर वह चकित रह गई। ऐसा निर्भय मुनि कौन हो गया, जो जानकर भी इस मृत्युक्षेत्र में आ बसा। शूर्पणखा ने ओट से स्थिति का निरीक्षण करने का विचार किया, क्योंकि वह जानती थी कि इस स्थान पर निर्भय निवास करने वाला साधारण वनवासी तो न होगा।

उसे दो सुकुमार तपस्वी दिखाई दिए, जिनका अनुपम रूप देखकर वह मोहित हो गई। ऐसे सुंदर तपस्वी आहार योग्य नहीं थे। कामदेव को भी लजा देने वाली उनकी मनमोहिनी सूरत और इंद्र जैसी शारीरिक सौष्ठव ने शूर्पणखा के हृदय में काम-वासना जाग्रत कर दी। यदि उनमें से कोई तपस्वी उसे पत्नी रूप में वरण कर ले तो जीवन का आनंद ही आ जाए।

शूर्पणखा ने सोचा, जैसा उसका वीभत्स रूप था, उसे देखकर तो ये सुकोमल, सुकुमार तपस्वी भय से मूर्च्छित ही हो जाएंगे। अत: पहले वह सुंदर वेश धारण

करेगी, जो उसके लिए कोई कठिन कार्य नहीं था। वह मायावी थी—अपनी माया से उसने स्वयं को अप्सरा समान सुंदर रूप दे दिया। अब उसे लगा कि वह ब्रह्मांड की परम सुंदरी है और उसे देखकर दोनों ही तपस्वी कामासक्त हो जाएंगे। संभवतः उसे प्राप्त करने के लिए परस्पर झगड़ा भी कर बैठें।

शूर्पणखा अपने ही विचारों से आनंदित होती अभी अपने रूप में किसी कमी का निरीक्षण ही कर रही थी कि चौंक गई। कुटी से उसने एक तपस्विनी को बाहर आते देखा और उसका सौंदर्य देखकर वह विस्मित रह गई। साक्षात् रति ही जैसे तपस्विनी वेश में उस आश्रम में विचर रही थी। शूर्पणखा को स्त्री-सुलभ ईर्ष्या होने लगी, फिर उस पर काम का आवेग चढ़ा। सुंदर वह भी कम नहीं थी। वह बड़ी ही आकर्षक चाल से चलती हुई उस सांवले तपस्वी के पास पहुंची जो बड़े मनोयोग से अपने तूणीर को साफ कर रहा था। तपस्विनी वापस कुटी में चली गई थी तो सूर्पणखा ने कुछ सहजता का भी अनुभव किया।

"हे मनोहर रूप वाले सुकुमार तपस्वी! मेरा प्रणाम स्वीकार करें।" वह मधुर स्वर में बोली और चित्ताकर्षक ढंग से झुककर प्रणाम किया।

"हे वनदेवी, तुम्हारा इस आश्रम में स्वागत है।" श्याम वर्ण राम ने कहा—"आप कौन हैं देवी! क्या साक्षात् स्वर्ग से उतरकर इस वन में विचरण कर रही कोई देवकन्या हो या प्रकृति के समस्त सौंदर्य को समेटे कोई वनकन्या? आज से पूर्व हमने आपको यहां नहीं देखा।"

"हे कामदेव के समान स्त्री को मोहित करने वाले तपस्वी! मैं वनकन्या हूं। समीप ही मेरा निवास है। आज इधर भ्रमण को आई तो आपको देखा, जैसे वर्षों की साध पूरी हुई हो। अखंड तप के पश्चात् भवानी ने मुझे जैसे प्रियतम की प्राप्ति का वरदान दिया था, आप उन सभी लक्षणों से युक्त हैं। इस संसार में न तो कोई आपके समान पुरुष होगा और न मेरे समान स्त्री! मैं प्रथम दृष्टि में ही आप पर मोहित हो गई हूं। मेरा प्रणय निवेदन स्वीकार करके भवानी के वरदान को पूर्ण करें और मेरे उदात्त यौवन का सुख भोगें।"

"हे देवी, आपका यह रूप देखकर स्वयं इंद्र भी आपके अधीन हो जाएं तो मैं तो एक साधारण तपस्वी हूं। निश्चय ही आप सर्वांग सुंदरी हैं और जो भी आपका वरण करेगा, वह बहुत भाग्यशाली होगा।" राम मुस्कराकर बोले—"परंतु देवी, अभी जो स्त्री आपने देखी थी, वह मेरी पत्नी है और मैं एक पत्नीव्रत का साधक हूं, अतः आपका वरण करना मेरी कुंडली में नहीं है। वह जो उधर बाणों को स्फटिक शिला पर घिसकर तीक्ष्ण कर रहा है, वह मेरा अनुज है। वह रूप में मुझसे भी सुंदर है। यदि वहां तुम्हारी बात बने तो बने।"

शूर्पणखा ने क्षण-भर विचार किया और लक्ष्मण की ओर देखा। गौरवर्ण लक्ष्मण अब उसे श्याम वर्ण राम से अधिक आकर्षक लगे। वह तो काम से पीड़ित थी। अत: उससे दोनों में से किसी एक से भी तृप्ति मिल जाती। वह लक्ष्मण के पास पहुंची।

"हे सुकुमार, इंद्र को भी लजा देने वाले! तुम्हारे इस रूप ने मेरे हृदय को काम से पीड़ित कर दिया है। तुम्हारे भाई से तुम्हारे विषय में सब जानकर आई हूं कि तुम अविवाहित हो। अब तुम्हारी आयु भी स्त्री-सुख पाने की हो गई है। मैं तुम्हारे मन के अनुरूप कन्या हूं, अत: मुझे स्वीकार करके मेरा मान रखो।"

लक्ष्मण ने राम की ओर देखा, जो मुस्कराकर संकेत में ही कुछ कह गए थे।

"हे देवी, हम क्षत्रियकुल के निर्दोष कुमार हैं। हमें अपनी जाति, वर्ग से भिन्न विवाह की आज्ञा नहीं है। वैसे भी मैं तो उन श्रीराम का सेवक हूं। वे अयोध्या के राजा हैं। उनकी आज्ञा के बिना तो मैं श्वास भी नहीं ले सकता। यदि वे ही आज्ञा दें तो जाति, वर्ग, कुल का भेद भी न मानूं, क्योंकि स्वामी की आज्ञा ही सर्वोपरि होती है। तुम्हारे जैसी आनिंध सुंदरी भाग्यशाली को मिलती है।"

शूर्पणखा अपनी प्रशंसा से पुलकित थी। क्या मायावी रूप धरा था कि दोनों ही तपस्वी उस पर मोहित थे। बस दोनों के साथ समस्या थी। श्याम वर्ण तो विवाहित था और पत्नी भी साथ थी तो संकोच स्वाभाविक था। गौरवर्ण सेवक था, जो स्वामी की आज्ञा से ही श्वास लेता था, अत: पुन: राम के पास आई, जहां सीता भी मंद-मंद मुस्कान से उसे देख रही थी।

"हे देव, अब मेरी इच्छा पूरी करना आपकी दया पर निर्भर है।" वह राम से बोली–"आपका अनुज, मुझे वरण करने की इच्छा तो रखता है, पर सेवकभाव से आपकी आज्ञा का आकांक्षी है, अत: आप विलंब न करते हुए उसे आज्ञा दें जिससे कि शीघ्र ही मेरा मनोरथ पूर्ण हो। स्वामी को अपने सेवक के सुख का ध्यान भी रखना चाहिए। आप तो आनंद में हैं और सेवक की इच्छाओं का दमन हो रहा है।"

"हे सुंदरी, तुम कौन हो?" सीता ने मुस्कराकर पूछा –"इस श्रापित वन में तुम इस रूपराशि को लेकर अकेली क्यों विचरण कर रही हो? यहां राक्षसों का वास बताया जाता है। सुना है, कोई कुरूपों में भी कुरूप, भयानक सूरत वाली राक्षसी शूर्पणखा भी इधर ही रहती है, जो बड़ी मायावी है।"

शूर्पणखा का तन-बदन क्रोध की अधिकता से जल उठा, परंतु अभी कामाग्नि शांत हो जाए, फिर पहले उस स्त्री का और फिर दोनों तपस्वियों का संहार करके आहार बनाएगी।

"हे देव, आप मेरी पीड़ा को समझें।" वह प्रत्यक्षतः बोली—"प्रेम की अग्नि कितना पीड़ित करती है, आप तो जानते ही होंगे।"

"मेरे स्वामी सब जानते हैं।" सीता ने रहस्यपूर्ण स्वर में कहा—"यदि मृगी के रूप में लोमड़ी हो तो इन्हें ज्ञात हो जाता है।"

"देवी, मेरी प्रियतमा परिहास करती है।" राम बोले—"तुम पुनः अनुज के पास जाओ और कहो कि वे जो भी कहना चाहें, कह सकते हैं।"

शूर्पणखा सीता को घूरकर पुनः लक्ष्मण के पास पहुंची।

"हे मेरे मनोरथ को पूर्ण करने वाले, तुम्हारे स्वामी ने आज्ञा दे दी है। अब तुम अपने प्रेम को व्यक्त करते हुए कुछ भी कह सकते हो।" वह लक्ष्मण से बोली।

"परंतु मेरी स्वामिनी ने तो अभी तक आज्ञा नहीं दी। कहीं ऐसा न हो कि मैं स्वामी की आज्ञा मानकर अपने मन की बात कह दूं और स्वामिनी रुष्ट हो जाएं। तुम जानती ही हो कि घर में रसोई का स्वामी ही बड़ा होता है। वह रुष्ट हुआ तो भोजन भी नहीं मिलता। तुम वनकन्या हो, तुम्हें तो रसोई बनानी नहीं आती होगी।"

शूर्पणखा के धैर्य का बांध टूट रहा था। इतनी चिरौरी तो वह कभी अपने पति की भी नहीं करती थी। वह एक बार फिर राम के पास पहुंची।

"देव, तुम्हारा भाई तुमसे भी अधिक तुम्हारी पत्नी की बात मानता है।" श्रीराम से यह कहकर शूर्पणखा सीताजी से बोली—"हे देवी, तुम स्त्री हो और स्त्री की पीड़ा को समझती ही होगी। तुम अपने देवर को स्वीकृति दे दो तो मेरा कल्याण हो।" वह बोली।

"वाह लखन!" सीता ने उच्च स्वर में कहा—"क्यों इस अबला को सता रहे हो? इधर-से-उधर दौड़ाकर इसके पैरों में पीड़ा हो जाएगी। तुम इससे अपने हृदय की बात कह क्यों नहीं देते—अब जाओ।"

शूर्पणखा पुनः कुछ आशा के साथ लक्ष्मण के पास आई।

"आओ वनकन्या! मेरे हृदय की सुनो। मैं सत्य कहता हूं।" लक्ष्मण ने कहा—"जो स्त्री माता, पिता, भाई या पति के पीछे परपुरुष से काम-निवेदन करे, उस निर्लज्ज से कौन विवाह करना चाहेगा? तुम रूप में सुंदर हो, परंतु तुम्हारे हृदय में लज्जा नहीं है—क्या पता तुम्हारा यह रूप ही माया हो।"

शूर्पणखा के क्रोध की सीमा न रही और वह अपने विकराल भयावह रूप में आ गई। क्रोध ने उसे और भी भयानक कर दिया।

"तपस्वियो! तुम मुझे जानते नहीं हो। मैं लंकाधीश दशानन की बहन शूर्पणखा हूं। समीप के जंगल में मेरा भाई खर, हजारों राक्षस योद्धाओं के साथ सबको त्रास देता है। मैं तो तुम्हारा रूप देखकर मोहित हुई थी, परंतु वास्तव में तो तुम्हारी मांसल

देह ही मेरी जिह्वा के स्वाद पर चढ़ी थी। अब मैं तुम तीनों को खाकर अपनी भूख मिटाऊंगी। पहले इस तपस्विनी को ही देखती हूं।" इतना कहकर शूर्पणखा अपने भयानक रूप में सीताजी की ओर झपटी।

सीताजी तनिक भयभीत हुईं, तभी राम का संकेत पाकर लक्ष्मण ने धनुष पर बाण रखकर चला दिया जिसने शूर्पणखा के नाक और कान काट दिए। वह भयानक चीत्कार करती हुई पीछे की ओर भागी। रक्त उसकी नाक और कानों से ऐसे बह रहा था, जैसे काली शिला पर गेरुआ रंग बह रहा हो। वह भागती चली गई।

लक्ष्मण गंभीर होकर राम के पास आ खड़े हुए।

"सीते! तुम कुटी में जाओ।" श्रीराम ने सीताजी को संकेत करने के बाद लक्ष्मण से कहा–"और अनुज, अपने धनुष-बाण साथ लो।"

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने रण की तैयारी की।

27

खर-दूषण का संहार

यह माया और मायानाथ का अद्‌भुत संघर्ष था, जैसे नेवला सर्प से खेलता है, वैसे ही दशरथनंदन दूषण और अन्य राक्षसों से खेल रहे थे। उनके लिए उस राक्षसी सेना को क्षण-भर में समाप्त करना कठिन नहीं था, परंतु वे नरलीला कर रहे थे—पुरुषोचित पराक्रम से अधिक कुछ नहीं कर रहे थे।
दूषण का समय पूरा हुआ तो दशरथनंदन ने एक तीक्ष्ण फल वाले बाण का संधान किया और दूषण को लक्ष्य करके छोड़ा। एक प्रलयंकारी चीख उभरी और बाण ने दूषण के कंठ को भेद दिया। तत्काल उसकी श्‍वास रुक गई और वह कटे वृक्ष की भांति धरती पर गिर पड़ा—राक्षसी सेना स्तंभित रह गई।

राक्षस खर बहुत ही क्रूर और भयानक था। दंडक वन में उसने दूर-दूर तक अपनी क्रूरता से भय उत्पन्न कर दिया था। पंचवटी के क्षेत्र तक वह क्षेत्र मुनिशून्य हो गया था और अन्य भील, कौल आदि तो वहां से भाग ही गए थे। भोजन की समस्या और मनुज-मांस खाने की लिप्सा के कारण वह उस क्षेत्र से आगे बढ़ना चाहता था, परंतु वहां मुनि अगस्त्य आकर रहने लगे थे जिनके तपोबल से राक्षसराज खर व दूषण दंडक वन के भीतर ही सिमटकर रह गए थे। अब वे जंगली पशुओं का आहार करते थे या कभी किसी भूले-भटके मनुष्य को खा जाते थे।

आज खर को सौभाग्य से एक वृद्ध मुनि मिल गया था, जिसे उसने मार डाला था और अब क्रूरता से उसका भक्षण कर रहा था। अन्य राक्षस अपनी जीभों को लपलपाते हुए उसे देख रहे थे, परंतु वह किसी को अंश-भर भी नहीं देने वाला था।

"अहा, इसमें मांस तो कम है, पर जर्जर हड्डियां चबाने में आनंद आ रहा है।" खर ने कहा–"मित्र दूषण! अब तो कहीं से भरपेट मनुज-मांस मिले, तो आनंद आ जाए।"

"राक्षसराज!" दूषण जीभ चटकाता हुआ बोला–"अब इधर तो कोई भूला-भटका मनुज ही आता है, वह भी आपके लिए निश्चित है, उधर जा नहीं सकते। आज्ञा दें तो किसी नगर पर आक्रमण कर दें और भरपेट भोजन करें।"

अभी खर कुछ कहना ही चाहता था कि चौंक पड़ा। एक ओर से करुण क्रंदन करती हुई रक्तरंजित शूर्पणखा बड़े वेग से दौड़ती हुई वहां आई तो खर उठ खड़ा हुआ।

"अरे भाई, रक्षा करो। तुम्हारे इस साम्राज्य में तुम्हारी बहन ही सुरक्षित नहीं तो तुम्हारी वीरता को धिक्कार है।" शूर्पणखा आर्तनाद करके बोली–"वैसे ही स्वयं को राक्षसों में श्रेष्ठ योद्धा कहते फिरते हो और यहां पंचवटी में तुम्हारी नाक के नीचे दो तपस्वी कुमार एक अति सुंदर नारी के साथ कुटी बनाकर रह रहे हैं।"

"तीन मानव!" खर ने जीभ चटकाई–"बड़ा अच्छा समाचार लाई हो बहना! यह तनिक-सा भोजन तो मेरे दांतों में ही उलझा रह गया है। अभी उन्हें पकड़कर मंगाता हूं, पर तेरी यह दशा किसने की है?"

"उन्हीं दोनों तपस्वियों ने की भाई! मैं घूमते-फिरते उधर चली गई तो उस सुंदर स्त्री को देखकर उससे बात करने चली गई। बड़े तपस्वी को यह बुरा लगा...।"

"वह तो लगना ही था।" खर ने कहा–"तू इस विकराल भेष में गई होगी और वह बेचारी डर गई होगी। तू भी न बहन, बुद्धि से काम...।"

"पहले मेरी पूरी बात सुन भाई!" शूर्पणखा गुर्राई–"मैं इतनी मूर्ख नहीं हूं। शिकार कैसे करते हैं, मुझे आता है। मैं सुंदर रूप बनाकर बड़े ही मीठे वचनों से उस स्त्री से बात कर रही थी तो उस छोटे तपस्वी ने पीछे से बाण चलाकर मेरे नाक-कान काट दिए और मेरी ऐसी दशा कर दी।"

"उनका ऐसा दुस्साहस! तूने अपना परिचय नहीं दिया था?" खर क्रोध में आ गया।

"दिया था–कहा था कि मैं लंकापति रावण और महापराक्रमी खर की बहन हूं, पर वे तो खिल्ली उड़ाने लगे कि इन दोनों का तो कभी नाम भी नहीं सुना है।"

"क्या?" खर के नेत्र क्रोध से जल उठे–"वे जगत्प्रसिद्ध तीनों लोकों को भय देने वाले महापराक्रमी लंकाधीश दशानन को नहीं जानते जिनके भय से इंद्रादि देवता भागकर कहीं जा छुपे, उसे साधारण तपस्वी नहीं जानते।"

"वह तुम्हें भी नहीं जानता भाई! नाम तक नहीं सुना, कहता है और हंसता है। मैंने कहा कि मेरे बलवान भाई यहां आकर तुम्हें खा जाएंगे, तुम्हारी स्त्री को ले जाएंगे तो छोटे तपस्वी ने कहा, बुलाकर ला उन गीदड़ों को, हम उनका शिकार करेंगे।"

"दूषण, सुना तूने।" खर की त्यौरी चढ़ गई–"दो तपस्वी वेशधारी बालक कहते हैं कि उन्हें हम गीदड़ लगते हैं। आज खर उन्हें मारकर नहीं जिंदा ही खाएगा। तू सेना तैयार कर, तब तक मैं अपनी भूख बढ़ा लेता हूं।"

"मित्र! वे दो हैं और एक स्त्री भी है।" दूषण ने कहा–"हमें यहीं समझौता कर लेना चाहिए कि या तो दोनों को एक-एक आहार रूप में मिलेगा और स्त्री दोनों की साझी संपति होगी या मुझे केवल स्त्री दे देना।"

"देख दूषण, अभी उस स्त्री को देखकर कोई निर्णय नहीं करेंगे।" खर ने कहा।

"अरे, मेरे मंदबुद्धि वीरो!" शूर्पणखा झुंझलाकर बोली–"तुम यहीं आपस में बातें बनाते रहोगे। मानव बड़ा चतुर होता है। वे वहां से स्त्री सहित कहीं और जा सकते हैं, तब क्या करोगे? क्या बहन की कटी नाक देखकर अपने पौरुष का गुण गाओगे?"

"बहन! तू चिंता न कर। वे पाताल में भी जा छुपेंगे तो तेरे वीर भाई उन्हें वहां से भी ढूंढकर लाएंगे। उस स्त्री को तेरी दासी बनाएंगे।"

"और कहीं वे मुनि अगस्त्य की शरण में पहुंच गए तो!"

खर हड़बड़ाया। मुनि के आश्रम में वह उनका क्या बिगाड़ लेता!

"दूषण, अब विलंब न कर। बहन सत्य कह रही है।"

तत्काल दूषण के आदेश पर राक्षसों की टोलियां पंचवटी की ओर दौड़ पड़ीं। वे भीषण, विशालकाय और भिन्न-भिन्न आकृति के राक्षस थे जिनके हाथों में भांति-भांति के कठोर हथियार थे। खर-दूषण के नेतृत्व में आज दंडक वन में जैसे आंधी आ गई थी। वृक्षों को धराशायी करती, वन को उजाड़ती राक्षसी सेना पंचवटी में आ गई थी। खर वहां का दृश्य देखकर शंकित हुआ, क्योंकि वहां तो एक ही श्याम वर्ण धनुर्धर निर्भय होकर खड़ा था।

"दूषण यह तो अकेला ही है। दूसरा और वह सुंदर स्त्री कहां गए?"

"छुप गए होंगे हमारा भय मानकर! नाम ही तो न सुना था, पर शूर्पणखा को देखकर जान तो गए होंगे कि उसके भाई कितने भयंकर होंगे।"

"अब अकेले तपस्वी से क्या युद्ध करें–अपनी वीरता का भी अपमान होगा। वैसे भी मुझे तो यह बालक-सा प्रतीत होता है। इसका मुख देखकर दया भी आ रही है। बहन की नाक भी इसने नहीं काटी। काटने वाला तो भाग गया है। अब हमें कूटनीति और भयनीति से काम लेना चाहिए।"

"मित्र! वह युद्ध करने की मुद्रा में खड़ा है। देखो, कैसे धनुष उठाया है।" दूषण बोला।

"पहले हमें उस दुष्ट को पकड़ना है जिसने हमारी बहन की नाक काटी है। उस स्त्री को भी जिसकी वजह से यह सब हुआ है, फिर हम इसे भी नहीं छोड़ेंगे। तुम जाकर उससे बात करो और हमारा संदेश सुनाओ कि वह उस स्त्री और दूसरे तपस्वी को हमें सौंप दे तो हम उसे प्राणदान दे सकते हैं।" खर ने कहा।

"तुम तनिक ऊंचे स्वर में कहोगे तो वह सुन लेगा। अधिक दूर थोड़े ही है।"

"फिर मैं काहे को राजा हुआ। राजा की अपनी शान होती है। राजा को युद्ध-नियमों के अनुसार नीति बनानी पड़ती है। यदि हम इससे स्त्री के विषय में जाने बिना ही इसे मार दें तो यह हमारी मूर्खता होगी, इसलिए पहले इसके पास दूत भेजकर हम इसे अपनी नीति में फंसाएंगे, तब अनीति करेंगे–समझा!"

दूषण ने स्वीकार किया और आगे बढ़कर राम के पास पहुंचा।

"मैं राक्षसराज खर का दूत हूं और उनका एक संदेश लेकर आया हूं तपस्वी!" दूषण ने कहा–"हमारे राजा को तुम पर दया आ रही है, क्योंकि तुम्हें मारकर भी खाते हैं तो तिल-तिल मांस हिस्से में आएगा, इसलिए तुम अपनी स्त्री हमें दे दो और दोनों भाई अपने प्राण बचाकर इस दंडक वन से चले जाओ।" दूषण बोला।

"अपने इस मूर्ख राजा से कह दे कि हम क्षत्रिय हैं और आखेट के लिए वनपथ पर आए हैं। युद्ध हमारा प्रिय विषय है और तुम्हारे जैसे हिंसक पशुओं को समाप्त करके वनवासियों को निर्भय करना हमारा उद्देश्य है।" राम जोर से बोले जिसे खर ने भली-भांति सुन लिया था।

दूषण ने खर की ओर देखा, जो भावहीन चेहरा लिये अकड़कर खड़ा था, जैसे किसी बड़े साम्राज्य का सम्राट हो।

"सुन लिया महाराज! यह तो युद्ध ही चाहता है।" दूषण बोला।

"दूत की भांति यहां आकर बता कि उसने क्या कहा है।" खर कठोर स्वर में बोला।

दूषण झुंझला गया। क्या देखकर दशानन ने उसे अधिकारी बना दिया था।

"वह कहता है, महाराज खर को वह मूर्ख और गीदड़ समझता है।" उसने

पास आकर कहा–"वह लंकाधीश दशानन को भी कुछ नहीं समझता। कहता है कि व्यर्थ गाल बजाने से क्या होगा, युद्ध कर मोटी बुद्धि वाले खर।"

"इतनी बात उसने कब कह दी?" खर आश्चर्य से बोला–"मैं तो सब सुन रहा था। यदि इसने ऐसा कहा है तो अब इसकी मृत्यु को कोई नहीं टाल सकता। अब मैं दया रहित हो गया हूं दूषण! वीर राक्षस योद्धाओ! आक्रमण!"

खर का आदेश होते ही राक्षस दल दांत किटकिटाकर दौड़ा। राम के सौम्य मुख पर अब कठोरता आ गई थी। उनके नेत्र अब यम की दृष्टि बन गए थे। उनके प्रलयंकारी धनुष की टंकार से दंडक वन कंपित हो उठा।

रणभूमि में चारों ओर राक्षसों से घिरे दशरथनंदन इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे कोयले के बीच कौस्तुभ मणि! उन्होंने अपने तूणीर से बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाया और नटराज की मुद्रा में छोड़ दिया। एक ही बाण से अनेक बाण बन गए और चारों ओर के राक्षसों पर बरसने लगे। चीख-पुकार मच गई–किसी का सिर कटा, किसी का हाथ तो किसी का पैर। अब दशरथनंदन अपने प्रचंड रौद्र रूप में आ गए थे और उनके तीक्ष्ण बाणों की मार से राक्षसदल त्रस्त हो रहा था।

"दूषण!" खर आश्चर्य से बोला–"यह तो बड़ा पराक्रमी है। इसमें अकेले ही हमारे असंख्य योद्धाओं को मार गिराया। यह किसी को समीप ही नहीं फटकने दे रहा तो इसे मारें कैसे!

"मुझे तो इसे अकेला युद्ध के लिए तैयार देखकर ही शंका हो गई थी कि यह कोई साधारण योद्धा नहीं है। अब इसके रण-कौशल से तो मुझे प्रतीत हो रहा है कि यह सत्य ही कह रहा है कि यह निपुण शिकारी है। देखो न! इसके हाथों में धनुष कैसे शोभायमान हो रहा है और कब वह बाण निकालकर डोरी पर रखता है और कब छोड़ता है, कितने गिरते हैं और कितने मरते हैं, यह पता भी नहीं चल रहा है। हमारे योद्धाओं के खड्क, फरसे, परिह, भाले व त्रिशूल तो उसे स्पर्श भी नहीं कर रहे हैं। मेरा विचार है कि अब हमें मायावी युद्ध करना होगा।"

"तुम्हारा यह विचार उचित है मित्र! अब तुम अपना पराक्रम दिखाओ।"

दूषण ने तत्काल राम को ललकारते हुए अपनी माया का प्रयोग किया और चारों ओर अनेक दूषण नजर आने लगे, परंतु अगले ही क्षण उतने ही राम भी रणभूमि में दिखाई देने लगे थे। दूषण हत्प्रभ रह गया। वह अपनी सभी प्रकार की मायावी शक्तियों का प्रयोग कर रहा था, मगर राम उसकी सभी चालों को क्षण-भर में काट रहे थे।

यह माया और मायानाथ का अद्भुत संघर्ष था, जैसे नेवला सर्प से खेलता है, वैसे ही दशरथनंदन दूषण और अन्य राक्षसों से खेल रहे थे। उनके लिए उस

राक्षसी सेना को क्षण-भर में समाप्त करना कठिन नहीं था, परंतु वे नरलीला कर रहे थे—पुरुषोचित पराक्रम से अधिक कुछ नहीं कर रहे थे।

दूषण का समय पूरा हुआ तो दशरथनंदन ने एक तीक्ष्ण फल वाले बाण का संधान किया और दूषण को लक्ष्य करके छोड़ा। एक प्रलयंकारी चीख उभरी और बाण ने दूषण के कंठ को भेद दिया। तत्काल उसकी श्वास रुक गई और वह कटे वृक्ष की भांति धरती पर गिर पड़ा—राक्षसी सेना स्तंभित रह गई।

खर को इससे भीषण क्रोध आया और वह दांत किटकिटाकर श्रीराम की ओर दौड़ा। श्रीराम ने सहज में ही एक ऐसा बाण चलाया, जो चार हिस्सों में बंटकर खर की भुजाओं और दोनों जंघाओं में धंस गए और वह चिंघाड़कर पीछे की ओर लड़खड़ाया।

"हे खर!" दशरथनंदन ने आक्रामक स्वर में कहा—"आज इस महासंग्राम का शुभारंभ हो चुका है। उस महाभिमानी, आततायी, साधुद्रोही रावण के पतन का यज्ञ! उसे तुम्हारी मृत्यु के बाद ही यह शंका विचलित करती रहेगी कि अब उसका अंत समीप आ रहा है।"

पृथ्वी का भार हरण करने हेतु नर रूप में अवतार लिए दशरथनंदन ने अपने धनुष पर प्रचंड अर्द्धचंद्राकार बाण चढ़ाया और खर को लक्ष्य करके छोड़ दिया। बाण ने खर के मस्तक को धड़ से उतारा और दूर कहीं जाकर उछाल दिया।

28

दशानन का निश्चय

"विभीषण! बल और सेना का प्रयोजन कीर्ति में वृद्धि करना, सम्मान की रक्षा करना और अपमान का प्रतिशोध लेना होता है। हमारे पास तीनों ही कारण हैं। हमें परिणाम की चिंता नहीं करनी है। तुम्हारी तो प्रवृत्ति ही दयालु है। तुम्हें युद्ध के नाम से ही भय लगता है, अत: तुम इस प्रकरण से दूर रहो और जाकर अपनी समाधि में लीन होकर माला फेरते रहो।" दशानन ने निश्चयपूर्वक कहा–"ऐसे विषयों में हमें तुम्हारा परामर्श नहीं चाहिए। तुम उस कीर्ति को धूमिल करने का परामर्श दे रहे हो, जो हमने अर्जित की है। हमने देव, दानव, यक्ष, किन्नर और गंधर्वों को भी अपने बल से त्रास दिया है और अब दो साधारण मानवों से भय मान लें–हम अपनी बहन की कटी नाक देखकर भी कायर बनकर कलंकित हो जाएं?"

तीनों लोकों में अपना भय व्याप्त कर चुका राक्षसराज दशानन अब शक्ति के मद में चूर राजधानी लंका में बड़े दंभ से अपने विशाल परिवार को देखकर प्रसन्न रहता था। अनेक पराक्रमी पुत्र और प्रपौत्र उसके भय को स्थापित कर रहे थे। अनेक बलवान योद्धा उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे जिनमें माली, सुमाली, संघर्षण आदि पराक्रमी मायावी योद्धा थे। देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदि सभी को दशानन के बल के समक्ष झुकना पड़ा था।

देवराज इंद्र को भी दशानन के पुत्र मेघनाद ने जीतकर देवों का पराभव कर दिया था और इंद्रजीत की उपाधि धारण कर ली थी। अब दशानन के पास जीतने के लिए कुछ शेष न रह गया था तो वह दरबार में या तो नृत्यगान का आनंद उठाता था या रंगशाला में मल्लयुद्ध का। कई बार वह खिलवाड़ में ही कैलाश पर्वत को जा उठाता और अपने बल पर अभिमाान करता हुआ अट्टहास करता। मुनिगण तो उसके समक्ष आने से भी घबराते थे। किसी का भी भय न मानने वाला दशानन अपनी सेना, परिवार और राजधानी पर बड़ा ही गर्व करता था। वह ज्ञान-विज्ञान में पारंगत था और उसने रसायनों से अनेक प्रलयंकारी अस्त्र-शस्त्र बना लिये थे।

दशानन अपने दरबार में विशाल स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान सभी दरबारियों सहित इस समय नृत्यगान का आनंद ले रहा था। उसका अनुज विभीषण भी दरबार में ही उपस्थित था, परंतु उसके मन में उस नृत्यगान के प्रति कोई रुचि नहीं थी।

नृत्यांगनाएं स्वर्ण पात्रों में मदिरा लिये नृत्य कर रही थीं और नृत्य करते-करते ही मदिरा वितरण कर रही थीं। रावण का अपना विशेष मदिरापात्र था जिसमें से वह घूंट-घूंट करके मदिरा पीता था। उसके विशाल नेत्र मदिरा के प्रभाव से रक्तिम हो रहे थे। मुख पर अहंकार की छाया थी। नृत्य अपने चरम पर था, उसी समय दरबार में एक द्वारपाल ने आकर शीश झुकाया।

"राक्षस शिरोमणि लंकाधीश की जय हो! राजकुमारी शूर्पणखा क्षत-विक्षत दशा में विलाप करती हुई दरबार की ओर आ रही हैं।" द्वारपाल ने बताया।

नृत्यांगनाएं इस प्रकार थम गईं जैसे पाषाण मूर्तियां हों। वाद्ययंत्र इस प्रकार बंद हुए जैसे वहां थे ही नहीं। दरबार में सन्नाटा छा गया और दशानन सिंहासन छोड़कर क्रोध से थर-थर कांपता हुआ मुख्य द्वार की ओर देख रहा था। सभी की दृष्टि उसी ओर थी, जब विक्षिप्त दशा में रोती शूर्पणखा ने दरबार में प्रवेश किया।

दशानन का अंग-प्रत्यंग शूर्पणखा की दशा देखकर क्रोध से भर गया। उसके कटे हुए नाक और कान किसी अकल्पनीय घटनाक्रम का संकेत दे रहे थे।

"बहन...बहन शूर्पणखा...यह...यह तेरी दशा किसने की?" दशानन गर्जना करते हुए बोला।

"राक्षसकुल के सर्वशक्तिमान सम्राट!" शूर्पणखा क्रोध से बोली-"यह नाच-गाना और मदिरापान एक दिन इस कुल का विनाश कर देंगे। जिस प्रकार विषयों में आसक्त होने पर संन्यासी का समस्त संचित तप नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्रमाद में डूबे राजा का संचित प्रभाव और राज्य नष्ट हो जाता है। बल के

मद में जब कोई शत्रु रोग, अग्नि, पाकर स्वामी और सर्प को छोटा समझने की भूल करता है, तो उसे सदा संताप उठाना पड़ता है। तुम यहां मदिरा पी-पीकर निश्‍चिंत सोए पड़े हो और वहां दंडक वन में सब नष्ट हो गया। वहां तुम्हारे भाई-बंधु और अनुचरों के शवों को चील-कौऐ नोंचकर खा रहे हैं और तुम यहां आनंद मना रहे हो। ऐसे राजा को धिक्कार है, जो अपनी राजधानी में मनोरंजन करता रहे और प्रजा शत्रु द्वारा नष्ट होती रहे—शत्रु सीमा में घुसकर विध्वंस कर दे और राजा बेखबर रहे।"

"शूर्पणखे!" दशानन क्रोध से दहाड़ उठा—"लंकाधीश दशानन के स्नेह का अनुचित लाभ न उठा। इस प्रकार की कठोर और अपमान भरी वाणी बोलने का साहस इस त्रिलोक में किसी में नहीं है।"

"महाराज!" विभीषण ने नम्रता से कहा—"हमारी बहन जिस दशा में हमारे समक्ष आई है, उसे देखकर हमें स्वयं समझ जाना चाहिए कि उसके साथ अवश्य ही कुछ ऐसा घटित हुआ है जिसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। एक बली और सामर्थ्यवान परिवार की स्त्री यदि किसी अत्याचार से पीड़ित होती है तो उसके हृदय में क्षोभ आ ही जाता है।"

दशानन को अपनी कठोरता पर पश्‍चाताप हुआ—विभीषण ने सत्य ही कहा था।

"प्रिय शूर्पणखे! तू अपने मन में विषाद न कर।" रावण ने नम्र स्वर में कहा—"जो भी हुआ है, उसे बता। तेरा यह भाई इस भूमंडल को अपनी भुजाओं में भरकर पीस देने का बल रखता है। तू कहे तो मैं काल की गति रोक दूं। तू कहे तो मैं अमरावती को तेरी भ्रमणस्थली बना दूं। तू कहे तो...।"

"मेरा अपमान हुआ है लंकाधीश!" शूर्पणखा आवेश में आ गई—"जिन विश्रवापुत्रों के भय से इंद्रादि देवता अपने लोक तक त्यागकर अन्यत्र जा छुपे हैं, उनकी भगिनी की ऐसी गति हो जाए तो सारा ब्रह्मांड उपहास ही करेगा। वह दंडक वन हमारा था, वह पंचवटी हमारी थी। भ्राता खर और दूषण ने उस वन को मुनिशून्य कर दिया था। न कहीं यज्ञ की वेदी जलती थी और न श्लोक का स्वर उभरता था, परंतु हे दशानन! उसी दंडक वन में, उसी पंचवटी में अयोध्या के दो राजकुमार और उनकी एक स्त्री तपस्वी वेश में निर्भय होकर पर्णकुटी बनाकर रह रहे थे और लंकाधीश के गुप्तचरों को इसका भान तक नहीं था। होता भी क्यों, मद और मदिरा में चूर लोगों को गरुड़ भी गौरैया लगता है।"

रावण तिलमिला रहा था—विभीषण का हृदय कमलपुंज की भांति खिल रहा था।

"शूर्पणखे! तू अपने भाइयों को मूर्ख, निर्बल और मदमस्त सिद्ध न कर।" दशानन गरज उठा—"अपनी बात स्पष्ट कर और मुझे निर्णय लेने दे।"

"हे त्रैलोक्य को त्रास देने वाले दशानन!" शूर्पणखा बोली–"एक दिन मैं यूं ही भ्रमण करती हुई पंचवटी की ओर चली गई थी। मैंने वहां एक सुंदर पर्णकुटी देखी तो मुझे आश्चर्य हुआ। भ्राता खर और दूषण व अनेक योद्धाओं के रहते भी किसी तपस्वी ने वहां निर्भय होकर रहने का साहस किया था तो यह आश्चर्य की ही बात थी। मैंने वहां जाकर देखा तो दो तपस्वी राजकुमार, जिनका परिचय मैंने जाना कि वे अयोध्या के राजकुमार थे और एक अति सुंदर स्त्री को देखकर मेरे हृदय में स्त्री-सुलभ परिचय भाव जाग्रत हुआ और मैं सुंदर वेश बनाकर उनसे बात करने गई तो वह छोटा तपस्वी मेरे मायावी रूप पर मोहित हो गया।"

"पुत्री शूर्पणखा!" राक्षसों के मामा सुमाली ने गंभीरता से कहा–"मनुष्य सदैव से हमारा आहार रहे हैं। तुम्हें परिचय की आवश्यकता ही नहीं थी। तुम्हें तो उन तीनों का तभी भक्षण कर लेना चाहिए था।"

"मामाश्री!" शूर्पणखा व्यंग्य से बोली–"वे मुनि न थे–वे साधु न थे। उनके हाथों में ऐसे प्रचंड धनुष थे, जो डोरी खींचने पर भूमंडल को कंपायमान कर देते हैं। शिकार की इच्छा मेरी भी थी, परंतु जाल भी बिछाना था। मैं उस स्त्री से बात करने गई तो छोटा तपस्वी मुझ पर मोहित हो गया। उसने मेरे साथ कपट करना चाहा तो मुझे क्रोध आ गया और मैं अपने वास्तविक रूप में आ गई। उसे अपना परिचय दिया तो उसने हंसकर मेरे नाक-कान काट डाले और मेरी यह दशा कर दी। हाय! मैं सदैव के लिए कुरूप हो गई।"

"शूर्पणखे! उन तपस्वियों को उद्दंड़ता का दंड अवश्य मिलेगा।" दशानन ने बड़े अभिमान से कहा–"परंतु यह तो बता कि खर-दूषण ने क्या किया?"

"उन्होंने बहन के अपमान का बदला लेने में अपने प्राण गंवा दिए। अकेले बड़े तपस्वी ने ही खर-दूषण और सारी राक्षस सेना को समाप्त कर दिया। जो बचे होंगे, वे अपने विकृत हो चुके अंगों को लेकर कंदराओं में जा छुपे होंगे।"

"आश्चर्य! खर-दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे। उनके पराक्रम से तो स्वयं इंद्र भी भयभीत रहता था।" दशानन के नेत्र सिकुड़ गए–"एक अकेला तपस्वी इतने असंख्य राक्षसों का वध कैसे कर सकता है!"

"महाराज!" विभीषण गंभीर स्वर में बोला–"इसमें आश्चर्य की क्या बात है। एक अकेले परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का पराभाव कर दिया था। अवधनरेश दशरथ ने इसी दंडकारण्य में देवासुर संग्राम में देवों को विजयी बनाया था। राम उन्हीं पराक्रमी रघुकुलवंशी दशरथ के पुत्र हैं। उन्होंने ही ताड़का और सुबाहु का वध करके विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी।"

"अनुज विभीषण!" दशानन सक्रोध बोला–"वह जो भी हो, चाहे साक्षात् हमारा परम शत्रु विष्णु ही क्यों न हो, उसने हमारी बहन की ऐसी दशा करके हमें ललकारा है। हमारे बल को चुनौती दी है। एक स्त्री का अपमान करने वाला कितना भी बलवान हो, फिर भी दंडनीय होता है। बहन शूर्पणखे! तू क्या चाहती है?"

"मैं चाहती हूं कि वह स्त्री सीता मेरी दासी बनकर रहे। ज्येष्ठ भ्राता! वह ऐसी सुंदर है, जैसे हजारों रतियों का रूप एक ही स्त्री में समेट दिया गया हो। वह परम सुंदरी तो आप जैसे पराक्रमी की सेवा में होनी चाहिए।" शूर्पणखा ने कहा।

"बहन शूर्पणखा!" विभीषण ने गंभीर स्वर में कहा–"तुम इस कुल के विनाश की नींव रख रही हो। ऐसी इच्छा व्यक्त करके लंका पर महान संकट लाने का साधन कर रही हो। कहीं तुम्हारे हृदय में प्रतिशोध की भावना तो नहीं है? महाराज, हम सुन चुके हैं कि उस अकेले तपस्वी राम ने दंडक वन को राक्षसरहित कर दिया है तो हमें अकारण ही उससे बैर नहीं बढ़ाना चाहिए। शूर्पणखा की इस दशा में भी मुझे भेद लगता है। कोई क्षत्रिय, वह भी रघुकुलवंशी, किसी स्त्री का अकारण ही अपमान नहीं कर सकता। इसके दो ही कारण हो सकते हैं–या तो वह हमारा विनाश चाहता है या हमारी बहन हमारा विनाश चाहती है।"

"विभीषण! बल और सेना का प्रयोजन कीर्ति में वृद्धि करना, सम्मान की रक्षा करना और अपमान का प्रतिशोध लेना होता है। हमारे पास तीनों ही कारण हैं। हमें परिणाम की चिंता नहीं करनी है। तुम्हारी तो प्रवृत्ति ही दयालु है। तुम्हें युद्ध के नाम से ही भय लगता है, अतः तुम इस प्रकरण से दूर रहो और जाकर अपनी समाधि में लीन होकर माला फेरते रहो।" दशानन ने निश्चयपूर्वक कहा–"ऐसे विषयों में हमें तुम्हारा परामर्श नहीं चाहिए। तुम उस कीर्ति को धूमिल करने का परामर्श दे रहे हो, जो हमने अर्जित की है। हमने देव, दानव, यक्ष, किन्नर और गंधर्वों को भी अपने बल से त्रास दिया है और दो साधारण मानवों से भय मान लें–हम अपनी बहन की कटी नाक देखकर भी कायर बनकर कलंकित हो जाएं।"

"बकरी कभी भेड़िये का सामना करती है?" शूर्पणखा बोली–"चूहा कभी बिल्ली को देखकर बिल से बाहर आता है? हमारे भ्राता विभीषण तो यही हैं–पौरुषहीन हैं। कभी पराक्रम न दिखाना पड़ जाए, इसलिए प्रपितामह से वरदान भी ऐसा मांग लिया।"

विभीषण ने कुछ नहीं कहा, बस दरबार से उठकर चले गए।

"मैं इस नगरी में तब तक प्रवेश न करूंगी, जब तक मेरे अपमान का प्रतिशोध न ले लिया जाएगा।" शूर्पणखा ने कहा और पैर पटकती हुई वहां से चली गई।

दशानन अपने दरबारियों से मंत्रणा करने लगा। यद्यपि परिस्थिति का आकलन करने में उसका मस्तिष्क अस्थिर-सा हो गया था।

29

दशरथनंदन से बैर

नीतिवान विभीषण ने परशुराम का उदाहरण देकर संकेत दे दिया था कि दशरथनंदन श्रीराम के रूप में नारायण ने ही अवतार लिया है। दशानन यह अवसर कैसे हाथ से जाने दे! कुल का उद्धार करने का इससे अच्छा अवसर और कौन-सा होगा? अब तो हठ करके भी बैर लिया जाना श्रेष्ठ है। यदि दशरथनंदन साधारण मानव ही है तो उसे पराजित करने से कीर्ति में वृद्धि होगी और यदि नारायण ही नर रूप में काल रूपी धनुष उठाकर धरा पर अवतरित हुए हैं तो विश्रवा के संतप्त, श्रापित कुल का उद्धार हो जाना निश्चित है!

दशानन को अपने रनिवास में नर्म बिस्तर पर भी आज नींद नहीं आ रही थी। उसकी आंखों के समक्ष आज दरबार का दृश्य बार-बार उभर रहा था। इसके साथ ही शूर्पणखा की दशा और उसका क्रोध, विभीषण के नीतियुक्त वचन और दंडक वन में खर-दूषण का सेना-सहित विनाश, राम-लक्ष्मण का चित्र उसकी आंखों के सामने आकर विचलित कर रहे थे। राम को उसने जनकपुर में देखा था, जब वह सीता-स्वयंवर में पहुंचा था। उसने भी धनुष को उठाने का उपक्रम किया था, परंतु कैलाश पर्वत को खिलवाड़ समझकर उठाने वाले दशाननन से वह शिव-धनुष जौ-भर न हिला था। वह वहां से बिना कुछ कहे चला आया था, फिर

उसने सुना था कि उस धनुष को दशरथनंदन राम ने तोड़कर सीता का वरण किया था, तभी से वह राम के विषय में सोचता आ रहा था। कल्प, युग और काल भले ही दशानन को उसके अहंकार से अलंकृत करते हों, परंतु जो सर्वकालिक ज्ञानी है और विज्ञानियों के विषय में ज्ञान रखते हैं, वे जानते हैं कि लंकापति रावण जैसा विद्वान अन्य कोई नहीं हुआ। जब ब्रह्माजी उसे इच्छित वर दे रहे थे तो उसने मनुष्य से अभय न मांगा था, क्योंकि वह जानता था कि विष्णु का अवतार मनुष्य रूप में होने वाला है। वह पुलस्त्य का वंशज ब्राह्मण था, परंतु उन्हीं पुलस्त्य ने क्रोध में उसे ब्राह्मण रूप में भी शाप देकर राक्षस बना दिया था। इस गति से उन्हें छुटकारा पाना था! यदि वह पतित था, पापी था तो शिव उस पर क्यों प्रसन्न थे?

दशानन के मस्तिष्क में अनेक विचार चल रहे थे। वह परम ज्ञानी परिस्थितिवश राक्षस कहलाया और उसके पुत्र, पौत्र जाति एवं स्वभाव के कारण उस विशेषण का भार ढो रहे थे। कुछ और पीढ़ियों के पश्चात् तो यह सब विध्वंसक रूप में हो जाना था। इस कुल का उद्धार यदि नहीं हुआ तो भविष्य में ब्राह्मण शब्द भी राक्षस का पर्याय बन जाएगा और इसका कलंक रावण के सिर लगेगा।

दशानन के मस्तिष्क में विचार बड़ी तेजी से बन और बिगड़ रहे थे। खर-दूषण बल और पराक्रम में उससे तनिक भी कम न थे, अपितु बुद्धिहीनता के कारण उनकी क्रूरता और भी अधिक हो जाती थी। उन दोनों को सहज ही सेना सहित मार गिराने वाले दशरथनंदन को साधारण मनुष्य मानने की भूल दशानन नहीं कर सकता था।

नीतिवान विभीषण ने परशुराम का उदाहरण देकर संकेत दे दिया था कि दशरथनंदन श्रीराम के रूप में नारायण ने ही पृथ्वी पर अवतार लिया है। दशानन यह अवसर कैसे हाथ से जाने दे! कुल का उद्धार करने का इससे अच्छा अवसर और कौन-सा होगा? अब तो हठ करके भी बैर किया जाना श्रेष्ठ है। यदि दशरथनंदन साधारण मानव ही है तो उसे पराजित करने से कीर्ति में वृद्धि होगी और यदि नारायण ही नर रूप में काल रूपी धनुष उठाकर धरा पर अवतरित हुए हैं तो विश्रवा के संतप्त, श्रापित कुल का उद्धार हो जाना निश्चित है! विभीषण ने अपनी गति पा ली थी, अतः अब उसके विचार में हिंसा का सर्वथा अभाव कोई आश्चर्य नहीं था।

दशानन ने फिर करवट बदली, क्योंकि वह निर्णय पर पहुंच गया था। रात्रि का तीसरा प्रहर चल रहा था और समीप सोई हुई मंदोदरी को अपने पति के विचलन का आभास हो गया था। वह जाग गई और उठ बैठी।

"हे नाथ! आज आप विचलित हो रहे हैं। इसका क्या कारण है?" मंदोदरी ने पूछा।

"मंदोदरे! आज हमारे हृदय में पहली बार भय उत्पन्न हुआ है।" दशानन ने गंभीर स्वर में कहा–"आज दंडक वन में जो हुआ है, उसने हमें सोचने पर विवश

कर दिया है। बहन शूर्पणखे ने जो किया, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि उसकी बुद्धि इससे अधिक कुछ नहीं सोच सकती। खर-दूषण ने जो किया, वह अधिक महत्त्वपूर्ण है, उन्होंने अपने भ्रातृ-सेवक कर्तव्य का निर्वहन किया है।"

"हे नाथ! विभीषणजी ने भी कुछ कहा है, उस पर विचार क्यों नहीं करते?"

"मैंने उसी पर विचार किया है प्रिये! मैं अनुज विभीषण की बातों को नीति-सम्मत समझता हूं, परंतु जो राक्षसराज होने का विशेष भार मेरे कंधों पर है, उसमें अहिंसा, दया, और भय का स्थान नहीं है। हम विकारों से उत्पन्न ब्राह्मण हैं और इन विकारों से मुक्त हो पाना सरल नहीं है। हम यदि साधुत्व भी ग्रहण कर लें तो यह हमारे द्वारा किया गया कपट कहा जाएगा। इसे तुम इस प्रकार समझ सकती हो कि यह सिंह सवारी है। इससे नीचे उतरते हैं तो सिंह का आहार बनते हैं और बैठे रहते हैं तो अहंकारी कहे जाते हैं।"

"हे नाथ, आप शिव के परम भक्त हैं और सभी कालों में व्याप्त भगवान शिव कदापि ऐसे भक्त को स्वीकार नहीं करते, जो उनके विरुद्ध चलता हो। आपकी भक्ति उत्तम है, अतः आपका ज्ञान भी उत्तम ही है। हे नाथ, इस कुल का भार आपके कंधों पर है। इसे डुबोना या उबारना आपके हाथ में है। कीर्ति का अपना सुख होता है, परंतु जो कीर्ति धर्म में वर्णित न हो, वह व्यर्थ है। जिस यश को चराचर में प्रशंसित न किया जाए अर्थात् जिससे सभी को प्रसन्नता न हो, ऐसा यश तो व्यर्थ ही होता है।"

"प्रिये! तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है। आज त्रैलोक्य में हमारे नाम का यशगान हो रहा है, परंतु इस यशगान का कारण भय है। हमारे पुत्र, प्रपौत्र इसमें निरंतर वृद्धि ही कर रहे हैं। अब समय आ गया है कि हमें वास्तविक यश की प्राप्ति करनी चाहिए।"

"हे शैव, आप संसार की दृष्टि में चाहे जो हों, परंतु मैं आपकी अर्धांगिनी हूं और जानती हूं कि आपका हृदय कितना निर्मल है।"

"प्रिये! हमें इसी समय कहीं जाना होगा।" दशानन उठ बैठा-"शुभ कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए। आलस्य ने सदैव उन्नति को बाधित किया है।"

"देव! रात्रि का अंतिम प्रहर चल रहा है। ऐसे में आप कहां जाएंगे?"

"जो शुभेच्छु होते हैं, उनके लिए समय शयन नहीं करता अर्थात् शुभ की इच्छा से किए जाने वाले किसी भी कार्य को किसी भी समय किया जा सकता है। कार्य को टालते रहने से वह कभी सिद्ध नहीं होता। तुम निश्चिंत रहो। मैं इस कुल का संरक्षक हूं और इसका हित करने का दायित्व मेरे कंधों पर है। जीव का उद्धार प्रारब्ध के प्रताप और वर्तमान के कर्मों से होता है।"

दशानन उसी क्षण अपने अंतःपुर से निकलकर पुष्पक विमान पर सवार हुआ। उसका दुर्ग अभेद्य था। लवणसागर के मध्य द्वीप पर वह लंका नगरी सभी प्रकार

से सुरक्षित थी। दुर्लभ प्रहरी सावधानी के साथ अपना कार्य कर रहे थे। अथाह लवणसागर से घिरे दुर्ग पर किसी बाह्य शक्ति के आक्रमण की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। विभिन्न शक्तियों और माया के मर्मज्ञ असुर उसकी रक्षा करने में प्रवीण थे। कोई पक्षी भी उस दुर्ग का परकोटा तक स्पर्श नहीं कर सकता था। दशानन का विमान जब लंका के ऊपर से गुजरा तो सभी प्रहरियों ने उसे अपनी सजग उपस्थिति का अनुभव कराया। दशानन को बड़ा हर्ष हुआ कि उसकी राजधानी पूरी तरह सुरक्षित थी। सभी प्रहरियों ने अपने अधिपति को प्रणाम किया। अवश्य ही आज कोई विशेष कारण होगा। दशानन ने समुद्र को पार किया और एक निर्जन द्वीप पर पहुंचा। उसके विमान से निकलते प्रकाश को देखकर उस वन में रहने वाले सभी अनुचर वहां आ गए। इनमें मारीच भी था, जो राम के फलहीन बाण के आघात से सौ योजन दूर गिरकर इस निर्जन द्वीप में अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। उसने दशानन को प्रणाम किया।

"हे दशानन, इस समय आपकी विकलता आशंकित करती है।" मारीच ने धीरे से कहा–"जब सभी द्वीप शांत और निद्रामग्न हैं, तब लंकापति की व्यग्रता और जागरण मुझे विचलित कर रहा है। अवश्य ही कहीं कुछ अवांछनीय घटित हो रहा है।"

"मामा!" दशानन ने कहा–"सच्चे निशाचरों की सहायक यह रात्रि ही होती है। हमें दिन का प्रकाश लाभ नहीं देता। मैं तुम्हारे पास एक विशेष प्रयोजन से आया हूं और इसमें केवल तुम ही सहायक हो सकते हो।"

"लंकापति!" मारीच ने कहा–"मृत्यु होने तक मेरे से जो भी बन पड़ेगा, वह मैं करने को सहर्ष तैयार हूं। तुमने तीनों लोकों को अपने पराक्रम से संतुष्ट किया है, अतः तुम्हारे मुख पर यह उदासी शोभित नहीं होती। मैं तुम्हारा हितैषी हूं और सदैव राक्षस जाति के यश के लिए संकल्पबद्ध हूं। तुम्हारा जो भी विचार या कार्य है, वह मुझसे कहो।"

"मामा! त्रिलोक में आज तक दशानन का नाम सुनकर किसी ने कोई ऐसा काम न किया, जो मेरे विरुद्ध हो। देवगण मेरे आदेश की प्रतीक्षा में नत रहते हैं। इंद्र जाने कहां अज्ञातवास काट रहा है। जब चहुं ओर मेरे नाम का वर्चस्व है, तब दो तपस्वी मुझे ललकार रहे हैं। उन्होंने दंडक वन को मेरे भय से मुक्त करके खर-दूषण को सेना सहित समाप्त कर दिया है। हमारी बहन शूर्पणखा के नाक और कान काटकर हमारे पराक्रम को चुनौती दी है।"

"आश्चर्य! घोर आश्चर्य! इस संसार में ऐसा कोई मुनि, योगी और तपस्वी नहीं है, जो हम राक्षसों के विरुद्ध शंखनाद कर सके। अब न कहीं यज्ञ की वेदियां दिखाई देती हैं और न वेदों के मंत्र सुनाई पड़ते हैं तो यह केवल और केवल

महाप्रतापी लंकाधीश दशानन का प्रताप है। ऐसे में कोई दो तपस्वी दंडक वन में इतना उत्पात कर देते हैं तो यह घोर आश्चर्य का ही विषय है।"

"वे अयोध्या के दो राजकुमार हैं मामाश्री! राम और लक्ष्मण उनके नाम हैं। उनके साथ सीता नाम की एक स्त्री है और वे पंचवटी में रहते हैं।"

"र...रा...राम और लक्ष्मण!" मारीच अचकचा गया–"लंकेश, निश्चय ही ये दोनों बड़े रणकुशल औरी निर्भय हैं। मैं इस निर्जन द्वीप पर उनके ही कारण पड़ा हुआ हूं। जब सुबाहु और ताड़का का वध हुआ था, तब मैं भी उसी वन में था। मुझे उसी राम ने एक फलहीन बाण का आघात किया था और मैं उड़ता हुआ यहां आ गिरा था।"

"अर्थात् तुम्हारा भी उनसे बैर है। मामाश्री! यद्यपि हम पहले ही एक-दूसरे के हितैषी हैं, परंतु नीति कहती है कि शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है।" रावण बोला–"जब एक शत्रु से पीड़ित दो लोग मिलते हैं तो उनमें मित्रता स्वाभाविक हो जाती है। राम ने तुम्हें भी और मुझे भी कष्ट दिया है, अत: अब हम दोनों मिलकर उससे प्रतिशोध लेंगे। हमें छल द्वारा उस योद्धा को जीतना होगा। मेरे पास एक योजना है जिससे हम उस रघुवंशी को अपनी शक्ति का परिचय देंगे।"

"हे तात! प्रतिशोध में मेरा विश्वास नहीं है। जब शत्रु प्रबल हो तो समझदार आदमी को कभी उससे बैर नहीं साधना चाहिए।" मारीच विनयपूर्वक बोला–"राम कोई साधारण तपस्वी नहीं है। उसके बाण का प्रकोप मैं देख चुका हूं। पहले उसने किसी कारण मुझे जीवित छोड़ दिया। अब यदि मैं उसके सामने पड़ा तो निश्चय ही मेरे प्राण लिये बिना न मानेगा, इसलिए हे दशानन! मेरी बात सुनो और उससे दूर ही रहो, अन्यथा परिणाम अच्छा नहीं होगा।"

"मैं यहां तुम्हारा उपदेश सुनने नहीं आया मामा!" रावण क्रोध से बोला–"शत्रु प्रबल है या निर्बल–यह रणभूमि में पता चलता है। अपने आप ही उसे प्रबल मानकर उससे भयभीत हो जाना कायरता है। शत्रुता उसने हमसे की है। पहले उसने हमें घाव दिया है। हम उसे प्राणदंड नहीं दे रहे हैं, केवल वैसी ही पीड़ा दे रहे हैं, जैसी उसने हमें दी है। युद्ध का तो अवसर ही न आएगा।"

"हे तात, ऐसा आप क्या करने की सोच रहे हैं?"

"मैं उसकी स्त्री का हरण करके लंका ले जाऊंगा, जहां वह शूर्पणखे की दासी होगी। राम उसे खोजता फिरेगा। उसे कभी पता न चलेगा कि उसकी स्त्री कहां है। पता चल भी गया तो वह कभी लंका तक न पहुंच पाएगा और किसी भांति पहुंच भी गया तो दो बालक किस प्रकार हमारा सामना करेंगे?"

"यह एक कल्पनीय विजय के विचार हैं। तुम्हें पता नहीं है कि वह विष्णु का ही अवतार है जिसने जब भी अवतार लिया, दैत्यों का सर्वनाश कर दिया। हिरण्याक्ष

और हिरण्यकश्यपु जैसे महापराक्रमी दैत्य सम्राट उसके हाथों मारे गए। उसके लिए सब सुलभ है।" मारीच ने कहा–"इसलिए मेरी...।"

"मारीच! मैं यहां तुमसे सहायता का निवेदन नहीं करने आया, तुम्हें आदेश देकर अपने साथ ले जाने आया हूं और अपनी योजना के अनुरूप कार्य कराने ले जाऊंगा, इसलिए उपदेशक न बनो और मेरे साथ चलो।"

"राक्षसराज! तुम मुझे आज मृत्यु के पास जाने का आदेश दे रहे हो।" वह विचलित होकर बोला–"अपने बल का अनुचित लाभ उठा रहे हो।"

"मृत्यु तुम्हारे सामने भी खड़ी है मारीच! दशानन अपना कार्य किसी और विधि से भी पूरा कर लेगा, परंतु अपने आदेश की अवहेलना करने वाले को मैं जीवित नहीं छोड़ता, इसलिए शीघ्र निर्णय करो।"

मारीच सोच में पड़ गया। अब मृत्यु निश्चित थी। यदि दशानन के साथ नहीं जाता है तो वह उसे मार डालेगा और जाता है तो श्रीराम से बचना कठिन है। जब मरना ही है तो क्यों न स्वयं दशरथनंदन भगवान राम के हाथों मरकर उनके लोक जाऊं। इससे मेरा उद्धार हो जाएगा। दशानन के हाथों मरकर तो इस योनि से छुटकारा ही न मिलेगा–मरना है तो सद्गति पाकर मरे।

दशानन ने उसे सोच में पड़ा देखकर तलवार निकाल ली।

"मैं चल रहा हूं।" मारीच ने जल्दी से कहा–"मुझे क्या करना होगा?"

"तुम स्वर्णमृग का रूप धारण करके उस आश्रम के आसपास मंडराओ तो सीता स्त्री-सुलभ प्रवृत्ति के कारण तुम्हारी ओर आकर्षित होगी, क्योंकि स्त्री को स्वर्ण से मोह होता है। वह एक मृग का आखेट करके लाने के लिए उन दोनों तपस्वियों या उनमें से एक को भेजेगी। एक तुम्हारे पीछे जाए तो तुम उसे वन में भटका लेना और उसके स्वर में दूसरे को पुकार लेना। जब आश्रम पर वह स्त्री अकेली रह जाएगी, तब मैं उसका हरण कर लूंगा। उन्हें तो कभी भी पता तक न चलेगा कि क्या हुआ। तुम भी यदि चतुराई से काम लोगे तो जीवित रहोगे–क्या यह कठिन कार्य है?"

"अब कठिन हो या सरल–करना है तो विचार क्या करना! अभी तो रात्रि है। हमें सूर्योदय होने पर चलना है, तब तक मैं अपने जीवन का अंतिम भोजन कर लेता हूं। इस द्वीप पर अनेक स्वादिष्ट मांस वाले जानवर हैं। आज्ञा हो तो आपके लिए भी व्यवस्था करूं?" मारीच ने विनयपूर्वक कहा।

"दशानन ने कभी मांसभक्षण नहीं किया।" रावण अरुचि से बोला–"जन्म से राक्षस हूं, कर्म से नहीं–तू शीघ्रता कर।"

30

दशानन का षड्यंत्र

"सीते, पहचाना मुझे! मैं लंकाधीश दशानन हूं। तुमने अपने स्वयंवर में हमारी ओर दृष्टिपात तक न किया था। तुम्हारे स्वामी और सेवक को मैंने ही षड्यंत्र से यहां से दूर भेज दिया है।" दशानन ने झपटकर सीता को इस प्रकार दबोच लिया जैसे गरुड़ ने कबूतर को दबोच लिया हो—"अब तुम इस पर्णकुटी में नहीं, भव्य लंका में निवास करोगी। अब राम नाम का भजन विस्मृत करके दशानन का यशगान आरंभ कर दो।"
सीता भय से स्तंभित थीं, फिर परिस्थिति का स्मरण होते ही वे बंधनमुक्त होने के लिए छटपटाईं, परंतु कहां महाबलवान रावण और कहां सीता! वह उन्हें खींचता हुआ अपने पुष्पक विमान तक ले आया।

राम ने प्रातः होते ही नित्य कर्म से निवृत्त होकर नदी में स्नान किया और वेदी में अग्नि प्रज्वलित की। सीता भी स्नानादि करके उनके समीप आ बैठीं। नित्यप्रति की भांति ही लक्ष्मण वीतासन पर बैठे प्रहरी की मुद्रा में थे।

"हे जनकनंदिनी, अब हमारे लक्ष्य संधान का समय आ गया है। अब हमारी नरलीला अपने मुख्य सोपान पर आ पहुंची हैं।" राम गंभीरता से बोले—"मुनियों का परम शत्रु रावण अब हमारे लक्ष्य पर आ खड़ा है।

अतः अब तुम तब तक के लिए अग्नि में निवास करो, जब तक हम राक्षसों का विनाश नहीं कर देते।"

"जैसी आज्ञा आर्यपुत्र!" सीता ने शीश झुकाकर कहा और श्रीराम के चरण स्पर्श करके अपने सूक्ष्म शरीर को लेकर अग्नि में प्रवेश कर गईं।

राम ने उनके स्थूल शरीर को अपने प्रभाव से चैतन्य कर दिया। उन दोनों का यह कौतुक लक्ष्मण भी न समझ सके थे कि अब वहां माया रूपी सीता बैठी थीं, जो राम की लीला में सीता की भांति ही अपनी भूमिका का निर्वाह करने वाली थीं।

राम ने सदाशिव महादेव का स्मरण करके उनका जाप आरंभ कर दिया। 'ॐ नमः शिवाय' का महामंत्र राम और सीता के कंठ से निकलकर वातावरण को शिवमय कर रहा था। लक्ष्मण बड़ी श्रद्धा व अनुराग से उन्हें देख रहे थे। शिव-स्त्रोत का पाठ पूरा होने पर राम ने पूर्णाहुति दी और उठ खड़े हुए। लक्ष्मण ने उठकर दोनों के चरण स्पर्श किए और सूर्य नमस्कार किया।

सीता के नेत्रों पर जगमगाती हुई तीव्र चमक पड़ी, जैसे सूर्य-रश्मियां किसी दर्पण से टकराकर आ रही हों। उस चमक में स्वर्णिम आभा थी। सीता ने देखा तो उनके मुख पर विचित्र-सी कौतुक व विस्मय भरी चमक आ गई।

"आर्यपुत्र! अहा! यह कैसा चमत्कार है! वह देखिए, स्वर्णमृग! न कहीं देखा और न सुना। प्रिय लखन, तुम भी तो देखो!"

दोनों भाइयों ने उस दिशा में देखा तो आश्चर्य व्यक्त किया। वह सोने का ही हिरन था जिसके शरीर से सूर्य-रश्मियां टकराकर तीव्र चमक उत्पन्न कर रही थीं। वह निश्चिंत होकर तृण चर रहा था।

"अद्‌भुत, पर अविश्वसनीय! ऐसा होना असंभव है।" राम बोले।

"प्रभु, जो सामने है, उस पर संदेह कैसा!" सीता कौतूहल से बोलीं-"हे नाथ! इस मृग का चर्म तो मुझे अवश्य चाहिए? वह अद्‌भुत मृगछाला होगी। हे नाथ, बाण का संधान करके मेरी यह इच्छा पूरी कीजिए।"

"जनकनंदिनी! सोने के मृग नहीं होते। मुझे तो यह कोई राक्षसी माया प्रतीत हो रही है।" राम ने गंभीर स्वर में कहा।

"आप बाण तो चलाइए नाथ! यदि राक्षसी माया भी है तो भी आपको वह काटनी ही चाहिए और उसका चर्म अवश्य ही मुझे चाहिए।" सीता दृढ़ता से बोलीं।

राम ने मुस्कराकर लक्ष्मण की ओर देखा।

"संसार में बालहठ, राजहठ और त्रियाहठ बड़ी प्रसिद्ध हैं।" राम हंसकर बोले-"पर जब त्रियाहठ होती है तो बड़े परिवर्तन होते हैं सीते!"

"नाथ, इसमें हठ की क्या बात है? मृग सामने है। यदि आप उसका आखेट नहीं करना चाहते तो मुझे धनुष-बाण दीजिए। मैंने क्या धनुर्विद्या नहीं जानी। मेरे पिता ने मुझे सभी विद्याएं सिखाई हैं। एक ही बाण से...।"

"अब रहने भी दो प्रिये!" राम ने धनुष उठाया और बाण साधा ही था कि डोरी से तनिक-सी आवाज हुई।

मृग के कान खड़े हो गए थे। उसने चौकड़ी भर दी। यह देखकर सीता जैसे मुरझा गईं।

"अनुज लक्ष्मण! मैं इस मृग के पीछे जा रहा हूं। निश्चय ही मैं उसका आखेट करके ही लौटूंगा। तुम सजगता से सीता की रक्षा करना।" राम ने तत्परता से कहा और मृग के पीछे चले गए। कोई चीता जैसे अपने शिकार का पीछा करता है, वैसी ही गति राम की थी।

"भैया लखन!" सीता ने गंभीर स्वर में कहा–"मैंने कोई अनुचित हठ ही तो नहीं कर दी?"

"आप चिंतित न हों माते! प्रभु सकुशल अपना कार्य करके लौटेंगे। उनका कोई भी अहित नहीं हो सकता। जो संसार को चलाने वाले हैं, वे स्वयं ही संकट काटने वाले हैं, उन पर कोई संकट कैसे आ सकता है?"

"यदि वह कोई मायावी राक्षस हुआ तो!"

"माते, आपने स्वयं देखा था कि प्रभु श्रीराम ने अकेले ही खर-दूषण को उनकी सेना सहित समाप्त कर दिया था। मुझे भी आपके साथ रक्षित करते हुए कंदरा में भेज दिया था और अकेले ही राक्षसों का संहार करके मुनिजनों को भयहीन कर दिया। वह मृग चाहे राक्षस, देवता या यक्ष जो भी है, आज श्रीराम के हाथों उसका उद्धार होना निश्चित है।"

"हे प्रभु, वह स्वर्ण का मृग ही हो। उसकी मृगछाला कैसी सुंदर होगी!"

लक्ष्मण हंसकर रह गए। सीता कुछ चिंतित और कुछ प्रसन्न थीं।

उसी समय एक आर्तस्वर सुनकर सीता कंपायमान हो गईं।

"हे लक्ष्मण, सहायता करो।" राम की करुण पुकार सुनाई दी।

"भैया लक्ष्मण!" सीता का कंठ भर आया–"मुझसे भूल हुई। मैंने वही कर दिया, जैसा प्रभु ने अनुमान लगाया था। त्रियाहठ से अपने स्वामी को संकट में डाल दिया। हे लखन, मेरे स्वामी किसी संकट में फंसकर तुम्हें सहायता के लिए पुकार रहे हैं। तुम सुन रहे हो न लखन! कैसी करुण पुकार थी।"

"माते! यह प्रभु की पुकार नहीं है। उन पर कोई संकट नहीं आया है। यह किसी राक्षस की चाल है। आप निश्चिंत रहें। यह स्वर भ्रमित करने वाला है।"

"नहीं भैया, स्वामी का स्वर मैं भली प्रकार पहचानती हूं। यह उन्हीं का स्वर है। वे अवश्य किसी बड़े संकट में फंस गए हैं, अन्यथा तुम्हें न पुकारते। हे राम के प्रिय अनुज, शीघ्र जाकर उनकी सहायता करो। क्या पता, छली राक्षस ने उन्हें छलपूर्वक फंसा लिया हो। वे राक्षस बड़े मायावी होते हैं।"

"माते, जिनकी योगमाया से संसार मोहित होता है, उन पर किसी माया का प्रभाव क्या होगा! जिन्होंने इस मायावी जगत की रचना की जिसमें योगी, मुनि भी मोह में पड़े रहते हैं, उन जगदीश्वर को कोई माया स्पर्श नहीं कर सकती।"

"तुम बातों में समय व्यर्थ न गंवाओ लखन!" सीता तनिक रोष से बोलीं—"स्वामी इस समय मनुष्य रूप में हैं और मनुष्य की सामर्थ्य सीमित होती है। राक्षस बड़े दुष्ट होते हैं। तुम मेरा आदेश समझकर जाओ।"

"माते! मैं उन्हीं प्रभु श्रीराम के आदेश का पालन कर रहा हूं, जो यहां मुझे आपकी रक्षा में नियुक्त कर गए हैं। मैं उनके आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता।"

"यह कैसी बालहठ है लखन! तुम परिस्थिति को समझ नहीं रहे हो या समझकर भी नहीं समझना चाहते हो। कहीं तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार की कोई दुर्भावना तो नहीं आ गई। नहीं जाते तो न सही, परंतु यह धनुष-बाण तो मुझे दे ही सकते हो। मैं अपने स्वामी की रक्षा में स्वयं जाऊंगी। रणचंडी बनकर उन दुष्ट राक्षसों का लहू पी जाऊंगी। लाओ, शीघ्र यह धानुष-बाण मुझे दो।"

"माते, आप भ्रमित हो गई हैं।" लक्ष्मण विवश स्वर में बोले—"आप समझ नहीं रही हैं कि यह किसी राक्षस की चाल है, जो आपको असुरक्षित करना चाहता है। श्रीराम को तो यहां से दूर भेज दिया, अब मुझे भी यहां से हटाकर अपका कुछ अहित करना चाहता है। आप कुछ क्षण और धैर्य धारण करो। प्रभु आ ही रहे होंगे।"

"जब प्राणों पर बन आती है तो क्षण तो दूर क्षण का शतांश भी धैर्य नहीं होता है। मेरे स्वामी आज वन में असहाय हुए हैं। मैं क्या जानती थी कि जो लक्ष्मण मेरे प्राणनाथ के प्राण थे, वे अवसर आने पर उनके प्राण जाने तक धैर्य धारण करेंगे।"

"ऐसा न कहें माते! मैं अभी जाता हूं। ऐसे आरोप न लगाए।" लक्ष्मण रो पड़े और धनुष-बाण उठाकर कुटिया से बाहर आ गए। उन्होंने धनुष की कोर से कुटिया के चारों ओर एक घेरा बनाकर लकीर खींच दी और सीताजी से बोले—"माते, यह रेखा आपकी रक्षा मेरी ही भांति करेगी। आप किसी भी कारण से इस रेखा को न लांघिएगा। मेरी बात सत्य मानना माते! मैं अवश्य ही जा रहा हूं। अपने विवेक और बुद्धि से समय व काल के अनुसार व्यवहार करना।"

"तुम शीघ्र जाओ भैया! मैं अपनी रक्षा स्वयं कर लूंगी।"

लक्ष्मण ने प्रभु का सुमिरन किया और वहां से उस दिशा की चल पड़े, जिधर श्रीराम गए थे। सीता व्याकुल भाव से उन्हें तब तक देखती रहीं, जब तक वे दिखाई देते रहे। वे इधर-से-उधर टहलती हुई अपने स्वामी श्रीराम की कुशलता की कामना माता भावानी से करने लगीं।

"अलख निरंजन!" एकाएक एक साधु का उच्च स्वर सुनाई पड़ा तो सीता चौंककर अपने स्थान से उठीं। उनकी कुटिया के पास एक तेजस्वी साधु खड़ा था जिसके नेत्रों में विशेष चमक थी।

सीता ने साधु को प्रणाम किया तो साधु ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

"सौभाग्यवती भव! अंखड सौभाग्यवती भव! माते, भिक्षां देहि।" साधु आशीष देते हुए बोला।

सीता भिक्षा लेने के लिए अंदर कुटी में गईं तो वह साधु, जो वास्तव में लंकाधीश दशानन था। वह साधु वेश में सीता का हरण करने आया था, आश्रम के अंदर की ओर बढ़ा। अभी वह कुटिया के समीप ही पहुंचा था कि तेज अग्निपुंज की लपट उठी और वह घबराकर पीछे हट गया। वह समझ गया कि कुटिया को चारों ओर से अभिमंत्रित रेखा द्वारा सुरक्षित किया गया है। उसने छुपकर देखा था, जब लक्ष्मण वह रेखा खींच रहे थे। वह इतना भी जानता था कि वह या कोई और भी इधर से रेखा को पार करने का प्रयास करेगा तो उसे अग्नि भस्म कर देगी। प्रावेशिक मंत्रों का वह भी ज्ञाता था। अब सीता भिक्षा लेकर आ गई थीं। दशानन संभल गया और साधुवत् हो गया।

"बंधन! यह क्षेत्र तो मंत्रबाधित है माते! किसी ने यहां प्रावेशिक मंत्रों से प्रवेश निषिद्ध कर दिया है। अवश्य यह आपकी सुरक्षा हेतु होगा। सुंदर उपाय है। निर्जन वन में नारी सुरक्षा आवश्यक है, परंतु माते, यह सुरक्षा रेखा मेरी भिक्षा प्राप्ति में बंधक है। मैं किस प्रकार भिक्षा ग्रहण करूं?"

"हे मुनिवर, मेरे स्वामी आखेट को गए हैं। वे किसी संकट में फंस गए हैं तो मेरे देवर उनकी सहायता हेतु गए हैं। यह उन्हीं के द्वारा खींची गई रेखा है जिसका मैं उल्लंघन नहीं कर सकती।" सीता विनीत स्वर में बोलीं—"आप थोड़ी प्रतीक्षा करने की कृपा करें मुनिवर! वे आते ही होंगे।

"भिक्षुक क्यों प्रतीक्षा करे माते? क्या यही एकमात्र कुटी है, अन्यत्र कहीं भी भिक्षा मिल जाएगी। आप अपनी सुरक्षा देखें, मैं चलता हूं।" दशानन ने लौटने का उपक्रम किया।

"हे मुनिवर! द्वार से भिक्षुक का भिक्षा लिये बिना लौटना अशुभ होता है।"

सीता ने कहा–"आप आपको अपने द्वार से खाली हाथ न जाने दूंगी हैं। मैं अपने गृहस्थ धर्म का पालन अवश्य करूंगी।"

सीता ने लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन कर दिया तो दशानन तुरंत अपने वास्तविक रूप में आकर अट्टहास करने लगा।

"सीते, पहचाना मुझे! मैं लंकाधीश दशानन हूं। तुमने अपने स्वयंवर में हमारी ओर दृष्टिपात तक न किया था। तुम्हारे स्वामी और सेवक को मैंने ही षड्यंत्र से यहां से दूर भेज दिया है।" दशानन ने झपटकर सीता को इस प्रकार दबोच लिया जैसे गरुड़ ने कबूतर को दबोच लिया हो–"अब तुम इस पर्णकुटी में नहीं, भव्य लंका में निवास करोगी। अब राम नाम का भजन विस्मृत करके दशानन का यशगान आरंभ कर दो।"

सीता भय से स्तंभित थीं, फिर परिस्थिति का स्मरण होते ही वे बंधनमुक्त होने के लिए छटपटाईं, परंतु कहां महाबलवान रावण और कहां सीता! वह उन्हें खींचता हुआ अपने पुष्पक विमान तक ले आया।

31

दशरथनंदन की सौगंध

"हे जनकनंदिनी, दुर्भाग्य ने कैसा दिन दिखाया है, जो तुम्हें ऐसे घोर संकट का सामना करना पड़ा! राजाओं में श्रेष्ठ राजर्षि जनक की दुलारी पुत्री और कुलों में श्रेष्ठ रघुकुल की पुत्रवधु आज इस वन में किसी दुष्ट द्वारा प्रताड़ित की गई। धिक्कार है हमारी भुजाओं के बल को! हे सूर्य, हे पृथ्वी, हे आकाश, हे वन के मौन वृक्षो! आज तुम्हें साक्षी मानकर दशरथनंदन राम सौंगध लेता है कि जिसने भी मेरी परम प्रिय सीता का हरण किया है, मैं उसे उसके कुल सहित नष्ट कर दूंगा।"

श्रीराम की इस सौगंध में भावी भीषण महासंग्राम के संकेत थे।

राम उस स्वर्गमृग के पीछे-पीछे वन में बहुत दूर आ गए थे। माया का वह मृग कभी दृश्य होता, कभी अदृश्य हो जाता। मूर्ख मारीच उनसे खेल रहा था, जो सभी खेलों के प्रणेता थे। वे नरलीला कर रहे थे, अन्यथा उसके पीछे भागने की क्या आवश्यकता थी! बाण तो क्या एक सींक भी राम के धनुष से छूटती तो मारीच को क्षण-भर में समाप्त कर देती। जब वे बहुत दूर आ गए, तब उन्होंने बाण चलाकर मृग रूपी मारीच की गरदन पर लक्ष्य साधा।

मारीच ने बाण लगते ही योजना के अनुरूप राम के स्वर में आर्तपुकार की, फिर वह अपने वास्तविक रूप में आ गया। उसने अपने अपराधों

की क्षमा मांगते हुए राम को प्रणाम किया और शीघ्र ही वह देह त्यागकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

राम तो सर्वज्ञ थे। मारीच का वध करके अपनी कुटिया की ओर लौट पड़े। उनकी ही प्रेरणा से घटनाक्रम हो रहा था। क्या होना था, वे जानते थे और उसी के अनुरूप व्यवहार कर रहे थे, तभी सामने से लक्ष्मण को आते देखा तो शंकित हो उठे।

"अनुज, तुम यहां क्यों? मैंने तुमसे कहा था कि तुम किसी भी परिस्थिति में सीता को अकेली मत छोड़ना। तुमसे ऐसी अवज्ञा क्यों हुई लक्ष्मण! आह, अवश्य ही उस मायावी राक्षस का वह स्वर तुमने सुन लिया होगा और भ्रमित हो गए।" राम ने विकलता से कहा–"वही हो गया अनुज, जिसकी आशंका थी। अवश्य ही किसी कुटिल राक्षस ने यह षड्यंत्र रचा है। सीता तो स्त्री-सुलभ बुद्धि के अनुसार ही सोच सकती थी, परंतु तुम तो...अनुज, मेरा हृदय कह रहा है कि अब सीता हमें नहीं मिलेगी। अवश्य ही वह किसी की कुदृष्टि में आ गई है।"

"प्रभो! मैं क्या करता! मैं विवश था। माता सीता ने मुझे विवश कर दिया था। उन्होंने मुझ पर आरोप लगा दिया कि मैं आपके प्रति दुर्भावना रखता हूं।" लक्ष्मण ने सजल नेत्रों से कहा–"हे दीनबंधु! लक्ष्मण के हृदय की गति न रुक गई, यह आश्चर्य ही है। अत: मुझे आना पड़ा। मैं जानता था कि आप कुशल हैं, परंतु क्या करता! माता सीता के कटाक्षों ने मुझे विचलित कर दिया था।"

"स्त्री की बुद्धि प्राय: विवेक से नहीं सोचती। अब वह आश्रम पर अकेली और असुरक्षित होगी। हमें अतिशीघ्र पहुंचना होगा।" राम गंभीरता से बोले।

"प्रभो! मैं माता की सुरक्षा हेतु प्रावेशिक रेखा खींच आया हूं। कोई भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। आप चिंतित न हों। हम अभी वहां पहुंचते हैं।"

दोनों भाई तेज गति से आश्रम की ओर चल पड़े।

"अनुज, जब घटनाएं विपरीत होने लगती हैं तो सभी उपाय निष्फल हो जाते हैं। शत्रु जब प्रबल होता है, तब पराभव के सभी कारण उत्पन्न हो जाते हैं। प्रावेशिक रेखा से कोई अंदर नहीं जा सकता, परंतु सीता को बाहर आने के लिए बाध्य तो किया जा सकता है। छलपूर्वक उसे बाहर आने को उकसाया जा सकता है।"

"प्रभो!" लक्ष्मण भी चिंतित हो उठे–"मैंने माता को भली प्रकार समझा दिया था। वे अपना हित-अहित तो समझती हैं। वे रेखा का उल्लंघन नहीं करेंगी।"

"संकट आने पर सर्वप्रथम बुद्धि ही किनारा करती है अनुज! जनकनंदिनी ने कहां छल-कपट देखे हैं। वह तो निर्मल हृदय है। ईश्वर करे कि इस समय उसकी बुद्धि स्थिर और विवेकपूर्ण बनी रहे।" राम ने व्याकुलता से कहा।

"शिव उनकी रक्षा करेंगे।" लक्ष्मण ने कहा।

दोनों भाई व्याकुल दशा में कुटिया पहुंचे और सन्न रह गए। टूटी हुई चूड़ियां और यहां-वहां पड़े खडाऊं वहां घटे घटनाक्रम का संकेत कर रहे थे।

"अनुज...!" राम विक्षिप्तों की भांति आश्रम के अंदर की ओर दौड़े–"सीते... सीते...सीते...तुम कहां हो जनकनंदिनी? देखो! हम आ गए। वह स्वर्णमृग नहीं था, परंतु हे प्राणप्रिये! तुम शीघ्र ही दर्शन दो।"

लक्ष्मण ने इधर-उधर खोजा, परंतु सीता कहीं न थीं। कुछ दूर तक घिसटने के चिह्न अवश्य थे, परंतु वह भी एक स्थान पर जाकर नहीं दिखाई दे रहे थे। वे दौड़कर राम के पास आए। आश्रम का कोना-कोना देख लिया।

"प्रभो! अवश्य ही माता ने भूल कर दी। उन्होंने सुरक्षा रेखा का उल्लंघन किया।"

"उसने नहीं अनुज, हमारे दुर्भाग्य ने ऐसा किया। उस संकट ने किया, जो हम पर आने वाला था।" राम व्यथित स्वर में बोले–"इस निर्जन वन में कोई ऐसा भी नहीं है, जो हमें बता सके कि सीता के साथ क्या हुआ? कौन था वह दुष्ट जिसने रघुकुल के सम्मान पर हाथ डालने का दुस्साहस किया?"

"वह जो भी हो प्रभु, हमारे क्रोध की अग्नि में उसे भस्म होना होगा। लक्ष्मण के क्रोध को तो स्वयं इंद्र भी नहीं सह सकता। मैं उस वंश के विनाश की प्रतिज्ञा लेता हूं जिसने ऐसा दुस्साहस किया है।"

"अनुज, यह समय आवेश में आने का नहीं है। हमें शीघ्र ही सीता की खोज में चल देना चाहिए। कहीं तो कोई सूत्र मिलेगा। किसी ने तो उस आततायी को देखा ही होगा। वह अभी अधिक दूर नहीं गया होगा। हम उसे पकड़कर दंडित कर सकते हैं और जनकनंदिनी को संतापमुक्त कर सकते हैं। शीघ्र चलो लक्ष्मण! अब इस पंचवटी से हमारा संबंध समाप्त हो गया है।"

राम की विकलता दर्शनीय थी। लक्ष्मण भी चकित थे कि घट-घट का रहस्य जानने वाले राम सब जानकर भी किस प्रकार व्यवहार कर रहे हैं। जानते हैं कि जो भी हुआ, वह उनकी ही प्रेरणा से हुआ, फिर भी साधारण मनुष्य जैसी विकलता! यही तो प्रभु की नरलीला है। यहां विशेष होकर भी साधारण होना पड़ता है। विशेष होना तो एक प्रकार से दिव्यता है और इसका अनुसरण प्रायः चलन में होता है। विशेष का अपना ही प्रभाव होता है, परंतु जो साधारण रहकर अनुसरण की प्रेरणा दे, वह सच्चा पथ-प्रदर्शक होता है। राम ऐसे ही मापदंडों से व्यवहाररत थे। वे उसी प्रकार दुखी थे, जैसे साधारण व्यक्ति ऐसी स्थिति में व्यथित होता है।

"हे जनकनंदिनी, दुर्भाग्य ने कैसा दिन दिखाया है, जो तुम्हें ऐसे घोर संकट का सामना करना पड़ा! राजाओं में श्रेष्ठ राजर्षि जनक की दुलारी पुत्री और कुलों में श्रेष्ठ रघुकुल की पुत्रवधु आज इस वन में किसी दुष्ट द्वारा प्रताड़ित की गई।

धिक्कार है हमारी भुजाओं के बल को! हे सूर्य, हे पृथ्वी, हे आकाश, हे वन के मौन वृक्षो! आज तुम्हें साक्षी मानकर दशरथनंदन राम सौंगध लेता है कि जिसने भी मेरी परम प्रिय सीता का हरण किया है, मैं उसे उसके कुल सहित नष्ट कर दूंगा।"

श्रीराम की इस सौगंध में भावी भीषण महासंग्राम के संकेत थे। मार्ग में मुनिजन मिलते और राम की दशा देखकर विकल हो जाते।

"हे मुनिवर, आपने कहीं सीता को देखा है?" राम पूछते।

उन्हें कोई उत्तर न मिलता जैसे आज केवल राम ही वाणी-विलाप करेंगे, शेष सभी मौन रहेंगे। इस मौन ने और भी व्यथा बढ़ा दी थी। राम वन के मूक जीवों से भी करबद्ध होकर यही प्रश्न करते हैं, परंतु कोई उत्तर नहीं मिलता।

"हे अनुज, क्या जनकदुलारी को पृथ्वी ने निगल लिया, जो उनके चिह्न तक नहीं मिल रहे? क्या उस समय समस्त चराचर निद्रामग्न था, दृष्टिहीन हो गया था–जब कोई दुष्ट एक स्त्री का अपहरण करके ले जा रहा था? क्या सीता का विलाप किसी ने भी न सुना होगा? अनुज, तुम मौन क्यों हो?"

"प्रभु! मेरे हृदय में क्रोध का दावानल जल रहा है और इच्छा होती है कि इस पृथ्वी को पलट दूं।" लक्ष्मण ने कहा–"माता की हठ और मेरी भूल ने ऐसा दारुण दुख दिया है। हे तात, जो सबका सुख करने वाले हैं, आज वे इस प्रकार दुखी हैं–यह देखकर हृदय फटा जा रहा है। धैर्य जिनकी शोभा है, आज उनकी अधीरता कंपित करती है।"

राम के नेत्रों से अश्रु बह रहे थे और वे लता-कुंजों में झांककर सीता को खोज रहे थे। पुष्प, पत्रों और बेलों से करुणा स्वर में याचना करते थे कि किसी ने सीता को देखा हो तो कृपा करके बताइए। जैसे प्रकृति ही उदास हो गई थी। मृग, चीतल, खरगोश खड़े-खड़े रोने लगे थे। मुनिजन, वनवासी भी राम के साथ-साथ चलने लगे और एक-दूसरे से उस विषय पर बात करने लगे।

सीता को किसी ने भी नहीं देखा। ऐसा निर्जन स्थान तो पंचवटी नहीं था। जब से खर-दूषण का अंत हुआ था, मुनिगण लौट आए थे। बहुत से आश्रमों में चहल-पहल हो गई थी, फिर भी सीता का इस प्रकार हरण हो गया कि किसी को न कुछ सुनाई दिया और न दिखाई दिया, यह आश्चर्य की बात थी।

पंचवटी का वन-क्षेत्र राम के विलाप और उनकी दशा से उदास हो रहा था। कुछ तो इसी बात पर आश्चर्यचकित थे कि जिन्हें संसार ईश्वर के रूप में पूजता है, आज वे कैसे साधारण मनुष्य की भांति व्यवहार कर रहे थे।

32

जटायु का दशानन से युद्ध

"हे राम!" गिद्धराज जटायु ने आर्तस्वर में पुकार की—"पुत्री सीते, मुझे क्षमा करना। मैं इस कपटी के कपट को समझ नहीं पाया, जो युद्ध के नियमों के विपरीत है। हे सीते, तुम उन प्रभु श्रीराम की अर्द्धांगिनी हो, जो इस संसार से दशानन जैसे दुष्टों का विनाश करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। अतः हे सीते, मन में कोई संताप न करना! प्रभु के बाण तुम्हारी रक्षा हेतु विकराल रूप धारण कर रहे हैं। हे रघुनंदन! मुझे अपनी शरण में ले लो।" यह कहते-कहते गिद्धराज मरणासन्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सीता की मूर्च्छा टूटी तो वे हड़बड़ाकर उठ बैठीं। इससे विमान का संतुलन डगमगाया तो दशानन भी डगमगा गया।

"सीते! अब तुम अंतरिक्ष में हो। यह विमान है, साधारण रथ नहीं जिससे कूदकर भाग जाओ।" दशानन ने कहकहा लगाते हुए कहा—"तुम्हें तो नीचे भूमि भी दिखाई न देगी।"

"अरे दुष्ट पापी! क्या यही तेरा बल है! क्या इसी प्रकार छल-कपट और चोरी से तूने यह यश पाया।" सीता ने क्रोध से कहा—"धिक्कार है तुझे और तेरे बल को! तू भिक्षुक बनकर आया। यदि ऐसा ही साहस था तो कपट क्यों किया? क्यों रघुनाथ को धोखे से कुटिया से दूर भेजा। यदि कुछ पराक्रम ही था तो उनके सामने आता।"

"सीते! कूटनीति के द्वारा भी शत्रु का पराभव किया जाता है। जब थोड़े से छल से कार्य सरल हो जाए तो क्यों कठिन मार्ग अपनाया जाए?"

"अरे निर्लज्ज, उस पर भी स्वयं को योद्धा कहता है। तूने अभी रघुवीर की सामर्थ्य नहीं जानी। तू समझता है कि जो तूने किया, वह उन्हें नहीं पता। अरे मूर्ख, वे तो घट-घट के स्वामी हैं। सृष्टि में यदि कोई तृण भी इधर-से-उधर जाता है तो वह भी उन्हीं की प्रेरणा से गति पाता है।"

"सीते! स्वयं को भगवान कहने की यह भूल मानवीय स्वभाव है और तुम स्त्रियों में तो यह इस हद तक है कि तुम्हारे पति परमेश्वर ही होते हैं।" दशानन ने पुनः कहकहा लगाया।

"अभी तू हंस ले दशानन, परंतु शीघ्र ही वह समय आएगा, जब श्रीराम के क्रोध की अग्नि में तेरा वंश कीट-पतंगों की भांति भस्म हो जाएगा। तेरे पुत्र-पौत्रों के शव तेरे हृदय को कंपित करेंगे और तू पश्चाताप कि तूने श्रीराम से बैर ही क्यों लिया। तेरी सोने की लंका रक्त और राख से भर जाएगी।"

"सीते!" दशानन क्रोध से बोला—"रावण के पुत्र-पौत्रों की ओर कुदृष्टि डालने का साहस तो स्वयं शिव भी नहीं कर सकते।"

"तेरा यह अहंकार ही तेरे पतन का कारण होगा। हे रघुवीर, हे कौशलेश! आप कहां हैं? यह दुष्ट दशानन मेरा हरण करके ले जा रहा है।" सीता विलाप करने लगीं—"हे जगत के रखवाले, आज इतने निर्मोही क्यों बन गए हो, जो मेरी पुकार सुनकर भी नहीं सुनते? मुझसे ऐसा क्या अपराध हो गया, जो आपने इतनी निष्ठुरता धारण कर ली! हे लक्ष्मण! यह मेरा ही दोष था, जो मैंने तुम पर क्रोध और संदेह किया। उसी का फल है कि यह दुष्ट मुझे त्रास दे रहा है। हे शेषावतार, मैं विवेकशून्य हो गई थी, जो वास्तविकता न समझ पाई।"

सीता के इस करुण विलाप से रावण आनंदित हो रहा था।

"हे नाथ! आप तो तनिक भी किसी का दुख नहीं देख सकते थे और आज अपनी प्राणप्रिया को ही बिसरा दिया। आप ऐसा कैसे कर सकते हैं नाथ! अग्नि को साक्षी मानकर आपने मेरी सदा रक्षा का वचन दिया था और आप अब वचन-विरुद्ध हो रहे हैं। हे करुणानिधान! अपनी इस दासी की व्यथा सुन लीजिए और इस त्रास देने वाले दुष्ट दशानन का वध करके मुझे बचाइए। हे दयानिधान! कृपा करें।"

दशानन अपनी सफलता पर आनंदित था। किसी भी बाधा की उसे आशंका नहीं थी। जिस प्रकार उसने अपना कार्य सफल किया था, वह उसकी कुटिल बुद्धि का प्रमाण था, परंतु यह क्या? यह सामने से काले मेघ के समान भयानक स्वर में ललकारता हुआ कौन आ रहा था!

"ठहर जा दुष्ट! कौन है तू? किस बेचारी अबला को त्रास दे रहा है?"

सीता के नेत्रों में इस ललकार ने एक बार तो आशा की किरण जगमगाई कि उस विपत्ति में प्रभु प्रेरणा से कोई सहायक आ गया था।

दशानन ने देखा कि वह गिद्धराज जटायु था, अत्यंत बलशाली और पराक्रमी, परंतु अब वृद्ध हो गया था, फिर भी दशानन को वह व्यवधान विचलित कर रहा था।

"अरे, तू तो दशानन है!" गिद्धराज जटायु ने दशानन को क्रोध से ललकारा, फिर सीताजी की ओर देखकर सप्रेम कहा–"अहा, ये तो जनकनंदिनी सीता हैं। इन्हें तू कहां ले जा रहा है दुष्ट दशानन! अवश्य ही तू कपट से इनका हरण करके ले जा रहा है, क्योंकि श्रीराम के सामने तो तेरा बल किसी काम का नहीं है। हे पुत्री, तुम निश्‍चिंत रहो, मैं अभी इस दुष्ट का अंत किए देता हूं।"

गिद्धराज ने इतना कहकर दशानन के केश पकड़े और अनायास ही उसे नोंचना आरंभ कर दिया और फिर बड़े ही वेग से उसने रावण को अपनी चोंच से त्रस्त करना आरंभ कर दिया।

दशानन को संभलने का मौका ही न मिल रहा था। वह अपना बचाव तो कर रहा था, परंतु कोई प्रयास काम नहीं कर रहा था। उसे लगा कि आज उसने जटायु को वृद्ध जानकर बड़ी भूल की है। आज वह क्रोधित गिद्ध उसके प्राण ही ले लेगा। वह रक्तरंजित हो रहा था। उसका मुकुट शीश से उतरकर विमान में गिर पड़ा था। उसे स्मरण हो आया कि यदि वह इसी प्रकार निश्‍चेष्ट रहा तो जटायु उसे इस संसार से विदा कर देगा। अत: उसने अपने मायावी दिव्यास्त्र का आह्वान किया। एक तीक्ष्ण फलवाला अर्द्धचंद्राकार अस्त्र उसके हाथ में आ गया और उसने बड़े क्रूर भाव से उसके प्रहार गिद्धराज जटायु के पंखों व गरदन पर किए।

गिद्धराज के पंख, पंजे और संपूर्ण शरीर क्षत-विक्षत हो गया।

"हे राम!" गिद्धराज जटायु ने आर्तस्वर में पुकार की–"पुत्री सीते, मुझे क्षमा करना। मैं इस कपटी के कपट को समझ नहीं पाया, जो युद्ध के नियमों के विपरीत है। हे सीते, तुम उन प्रभु श्रीराम की अर्द्धांगिनी हो, जो इस संसार से दशानन जैसे दुष्टों का विनाश करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। अत: हे सीते, मन में कोई संताप न करना! प्रभु के बाण तुम्हारी रक्षा हेतु विकराल रूप धारण कर रहे हैं। हे रघुनंदन! मुझे अपनी शरण में ले लो।" यह कहते-कहते गिद्धराज मरणासन्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दशानन ने अपनी सांसों को व्यथित किया। आज यदि उसने दिव्यास्त्र का आह्वान करके बुद्धि से काम न किया होता तो निश्‍चित रूप से उस प्रबल गिद्ध

ने उसे मार दिया होता। वह धूल झाड़कर उठा और विमान में पड़े अपने मुकुट को शीश पर धारण किया।

सीता अपने सहायक का यह दुखद परिणाम देखकर आशाहीन और श्रीहीन हो गई थी। अब प्रभु श्रीराम से कौन उनकी व्यथा बताएगा? यह सोचकर उसने अपने आभूषण पृथ्वी पर फेंकने आरंभ कर दिए। ये आभूषण वे चिह्न थे, जो भावी नियति को संकेत देने वाले थे।

33

श्रीराम की शबरी से भेंट

"प्रभु! जंगल के सभी बेर मीठे नहीं होते, कुछ कड़वे भी होते हैं। मैं अपने प्रभु को कड़वा बेर नहीं खिला सकती।" शबरी ने बेर चखा–"अहा, यह तो शहद से अधिक मीठा है। मेरे प्रभु के लिए उत्तम है।"

शबरी ने अपना झूठा बेर राम को दिया तो उन्होंने भाव-विह्वल होकर उसे ले लिया और खाने लगे। ऐसे ही दूसरा बेर लक्ष्मण को दिया, परंतु जाने क्यों लक्ष्मण ने उसे दृष्टि बचाकर फेंक दिया। राम ने यह देख लिया था।

"अनुज, ऐसे प्रेमभाव और मातातुल्य स्नेह से परिपूर्ण यह बेर कितना अमृतमयी है, तुम अभी न जान सकोगे, परंतु एक दिन अवश्य जानोगे। यह फल तुम्हें किसी-न-किसी रूप में खाना ही होगा।"

वन-वन भटकते राम और लक्ष्मण उस दिशा में आ निकले, जहां गिद्धराज जटायु अपनी अंतिम सांसों के साथ 'राम-राम' पुकार रहा था। उस स्वर को सुनकर राम विकल होकर उसके समीप पहुंचे तो रक्तरंजित गिद्धराज ने नेत्र खोले।

"हे गिद्धराज, आपकी यह दशा किसने की?" राम ने पूछा।

"प्रभो! मेरा परम सौभाग्य है, जो इस अंतिम समय में आपके दर्शन हो गए। मेरा उद्धार हो गया प्रभो! हे करुणानिधान, लंका का राजा रावण

जनकनंदिनी सीताजी को हरण करके ले गया है। मैंने उनका विलाप सुना तो रावण को ललकारा, परंतु हे रघुवीर, उस कपटी ने छल से मुझे इस दशा में पहुंचा दिया और मैं सीताजी की रक्षा न कर सका। हे दशरथनंदन, उस मूर्ख ने निश्चय ही अपनी मृत्यु और कुल के विनाश को निमंत्रण दिया है।" गिद्धराज ने कहा।

"हे गिद्धराज, उस पापी को उसके किए का दंड अवश्य मिलेगा। हम आपके ऋणी हैं कि आपने हमारे हित के लिए अपने प्राण दे दिए।"

"ऐसी सुखद मृत्यु तो स्वर्गिक जीवन से भी बढ़कर है भगवन्! मेरे प्राण आपके करुणामय हाथों में निकलें, ऐसा तो मैंने सोचा भी न था। यह तो अनायास ही एक सुकर्म का तत्काल सुफल मिला है। मैं आपके लोक को जा रहा हूं नाथ! आप इसी दिशा में आगे बढ़ें और किष्किंधा पर्वत पर पहुंचें। वहां वानरराज सुग्रीव अवश्य ही आपके सहायक होंगे। लंका लवणसागर में मलय पर्वत सहित कई पर्वतों से सुरक्षित अथाह जलराशि के बीच छोटे-से द्वीप पर स्थित है।"

"हे गिद्धराज, आपने हमारे हृदय को बड़ी शांति प्रदान की है। अभी तक हम सीता के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे, परंतु अब शत्रु चिह्नित हो गया। दिशाहीन भटकने की व्यथा से तो मुक्ति मिली।"

"मुझे आज्ञा दें प्रभु!" गिद्धराज ने कहा तो राम ने स्नेह से उसके अधखुले नेत्रों पर हाथ रखकर उन्हें बंद कर दिया। गिद्धराज जीवन-मृत्यु के प्रभाव से मुक्त हो गए।

राम लक्ष्मण ने विधिवत् उनका दाह संस्कार किया और वे परम गति को प्राप्त हुए। राम-लक्ष्मण वहां से आगे बढ़े तो मार्ग में एक विचित्र दृश्य दिखा। उस पथरीले मार्ग पर जैसे किसी ने कुछ समय पूर्व ही झाड़ू लगाई हो।

"प्रभु! इस निर्जन वन में कौन आपका भक्त रहता है जिसने आपके लिए मार्ग को बुहारा है।" लक्ष्मण ने आश्चर्य से कहा–"अरे, काई मधुर स्वर में आपके नाम का गुणगान कर रहा है–प्रभु उसे तो दर्शन-लाभ होना ही चाहिए।"

"आओ अनुज! हम उस स्वर की दिशा में चलते हैं।"

दोनों भाई उस बुहारे हुए मार्ग पर बढ़ चले तो वह स्त्री स्वर स्पष्ट सुनाई देने लगा। अगाध भक्ति में डूबा स्वर था वह, जैसे उसे अपनी सुधि ही न हो। राम भाव-विभोर हो गए। दोनों भाइयों ने आगे बढ़कर देखा तो एक छोटी-सी कुटिया दिखाई दी जिसके सामने एक वृद्धा भीलनी झाड़ू बुहारती हुई निमग्न होकर रामगुण गा रही थी। उसने आहट सुनी तो उनकी ओर मुड़ी और जैसे स्तंभित हो गई। प्रसन्नता और आश्चर्य से उसकी आंखों से आंसू छलक पड़े और मुखाकृति बिगड़ने लगी।

"मे...मेरे प्रभु...मेरे प्रभु राम...मेरे स्वामी! आज इस शबरी की प्रतीक्षा समाप्त हुई। हे जगत के स्वामी! मेरा जीवन धन्य हुआ। मेरी यह कुटिया पवित्र हुई नाथ!

हे दीनों के सखा, आपकी कृपा को कौन नहीं जानता पर मुझ निकृष्ट पर, जिसे आपका गुणगान करना भी नहीं आता, जो आपकी सेवा विधि भी नहीं जानती और न धर्म आदि का ज्ञान है, आपने दया करके अकिंचनों का मान रख लिया। हे नाथ! पधारकर इस कुटिया को पवित्र करें।"

शबरी के नेत्रों से प्रेमाश्रु निकल रहे थे। श्रीराम प्रसन्नता के साथ उसकी कुटिया में पहुंचे। शबरी के पास तो कोई ऐसा बिछौना भी न था जिस पर उन्हें बैठने को कहती। संकोच में ही थी कि राम वहीं स्वच्छ भूमि पर बैठ गए। लक्ष्मण को भी उनका अनुसरण करना पड़ा। शबरी झोंपड़ी के कोने में रखी एक डलिया उठा लाई जिसमें वह प्रतिदिन बेर चुनकर लाती थी।

"हे प्रभु, मैं निर्धन भीलनी आपकी और कोई सेवा तो नहीं कर सकती। अत: हे नाथ! इन जंगली बेरों को स्वीकार कर मुझ पर कृपा करें।" शबरी भाव-विभोर होकर बोली–"मैं अपने हाथों से आपको ये बेर खिलाने का सुख पाने की इच्छा रखती हूं।"

राम ने मुस्कराकर सहमति दे दी तो शबरी ने एक बेर उठाया।

"प्रभु! जंगल के सभी बेर मीठे नहीं होते, कुछ कड़वे भी होते हैं। मैं अपने प्रभु को कड़वा बेर नहीं खिला सकती।" शबरी ने बेर चखा–"अहा, यह तो शहद से अधिक मीठा है। मेरे प्रभु के लिए उत्तम है।"

शबरी ने अपना झूठा बेर राम को दिया तो उन्होंने भाव-विह्वल होकर उसे ले लिया और खाने लगे। ऐसे ही दूसरा बेर लक्ष्मण को दिया, परंतु जाने क्यों लक्ष्मण ने उसे दृष्टि बचाकर फेंक दिया। राम ने यह देख लिया था।

"अनुज, ऐसे प्रेमभाव और मातातुल्य स्नेह से परिपूर्ण यह बेर कितना अमृतमयी है, तुम अभी न जान सकोगे, परंतु एक दिन अवश्य जानोगे। यह फल तुम्हें खाना ही होगा।" राम ने रहस्यपूर्ण स्वर में कहा जिसे शबरी तो क्या जान पाती, परंतु लक्ष्मण समझ गए कि शबरी के भाव का निरादर करके उन्होंने उचित नहीं किया और इससे राम अप्रसन्न हैं। लक्ष्मण ने क्षमा-याचना की।

"हे नाथ! आज आपने मुझ भीलनी का उद्धार कर दिया। मैं मूढ़मति किस प्रकार आपकी स्तुति करूं! स्त्री को अधमतम कहा गया है और उस पर भी मैं निम्न कुल की स्त्री हूं, जो भक्ति की विधि ही नहीं जानती। मेरा कल्याण करें प्रभो!"

"हे माता! मैं तो केवल भक्ति को ही मानता हूं। कुल, धर्म, जाति, वर्ग या धन, बल आदि भी मुझे नहीं सुहाते। मैं तुम्हें अपनी नवधा भक्ति का ज्ञान देता हूं, जो श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण सेवा, अर्चना, वंदना, दास्य भाव, सखा भाव और आत्म-निवेदन आदि नौ प्रकार से मेरी भक्ति करता है, वह अवश्य ही मुझे प्राप्त होता है।"

शबरी जैसे ध्यानमग्न हो गई। राम ने उसे विशुद्ध ज्ञान प्रदान किया तो यह देखकर लक्ष्मण भी धन्य हो गए। राम के मुख से भक्ति के भेद सुनना सौभाग्य की बात थी।

"हे सरलमना! मेरी नवधा भक्ति को दूसरे सरल ढंग से भी समझा जा सकता है, जो इस प्रकार है—मेरी पहली भक्ति है संतों का सत्संग। जो व्यक्ति संतों, मुनियों और ज्ञानियों की संगति करता है, वह मेरा प्रिय होता है। दूसरी भक्ति मेरी कथा में रुचि रखना है। श्रीहरि की कथा का प्रेमपूर्वक श्रवण करने वाला भी मेरा प्रिय है। जो अभिमान नहीं करता, वह भी मेरा भक्त है और निराभिमान होना मेरी तीसरी भक्ति है—ऐसा व्यक्ति मुझे सदा प्रिय होता है।"

शबरी श्रद्धा भाव से श्रीराम की मनोहार वाणी सुन रही थी।

"मेरी चौथी भक्ति कपटहीन रहकर मुझमें ही निमग्न रहना है। राम नाम का जाप मेरी पांचवीं भक्ति है। जो इंद्रियों को वश में करके शील स्वभाव वाला होता है, वह मेरी छठी प्रकार की भक्ति करता है।" राम ने मधुर स्वर में कहा—"मेरी सातवीं भक्ति है समभाव होकर अर्थात् किसी भी प्रकार के भेद को न मानकर मुझमें ही सबको और सबमें ही मुझको देखने वाला होता है। मेरी आठवीं भक्ति वह करता है, जो संतोष रखता है अर्थात् जो मिल जाए उसी में प्रसन्न रहता है। मेरी नवीं भक्ति है सरल, सहज व्यवहार जिसमें न किसी के दोष देखे जाते हैं और न कटुता रखी जाती है। हे सरलबुद्धि वाली निष्कपट शबरी! तुझमें तो सभी प्रकार की भक्तियां दृढ़ हैं। अतः आज तुझे योगी-तपस्वी के लिए भी दुर्लभ गति प्राप्त हो गई है।"

शबरी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसे उसके भाव का पुण्य-फल प्राप्त हो गया था। वह दिव्य ज्ञान से ओत-प्रोत हो गई थी।

"हे शबरी! अब तुम मेरे हित की कोई बात कहकर मुझे सुखी करो।"

"हे सुखनिधान! समस्त सुख आप ही में बसते हैं। मैं मंदबुद्धि आपका हित कैसे करूं? देवर्षि नारद ने एक बार मुझे कहा था कि मुझे आपके सहज दर्शन होंगे तो मैं इसी प्रतीक्षा में थी। उनकी यह बात सत्य सिद्ध हुई। उन्होंने ही मुझे यह भी बताया था कि प्रभु श्रीराम को अपनी लीला संपन्न करने हेतु जिन सहायकों की आवश्यकता होगी, वे पंपा नाम के सरोवर के निकट मिलेंगे। वह सरोवर यहां से अधिक दूर नहीं है नाथ! अतः देवर्षि की इस वाणी को भी सत्य करें।"

"देवर्षि ने हम पर बड़ी कृपा की। अब हमें आज्ञा दो शबरी!"

भाव-विह्वल शबरी ने बार-बार श्रीहरि की स्तुति करके उन्हें विदा किया।

34

महाबली हनुमान से भेंट

"हे प्रभो, हे मेरे स्वामी! आपके दर्शन पाकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है। आपके दर्शन की आकांक्षा में ही मेरा श्वास चल रहा था। हे नाथ, मैं वानर योनि में जन्म लेकर चंचल और मूढ़प्रवृत्ति का हो गया हूं। अतः आपको पहचानकर भी न पहचानने की धृष्टता की। हे स्वामी! अपने इस दास हनुमान पर कृपा करें।"

हनुमान उनके चरणों में नत हो गए तो राम ने उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिया। भक्त और भगवान का यह मिलन अद्‌भुत था। हनुमान के नेत्रों से प्रेम और आनंद के अश्रु बह रहे थे।

ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव अपने कुछ विशेष साथियों के साथ निवास करता था जिनमें अंजनीपुत्र महाबली हनुमान भी थे। जब बालि से बचकर सुग्रीव इस पर्वत पर आ गया, तो भी उसका भय न मिटा था, क्योंकि बालि ही तो वहां नहीं आ सकता था?, उसके सुभट अनुचर तो आ सकते थे। तब उसने अपनी विनती माता अंजनी तक पहुंचाई जिन्होंने हनुमान को उसकी सेवा और सुरक्षा में भेज दिया, तब से सुग्रीव कुछ निर्भय हुआ, परंतु फिर भी अनेक चिंताओं से घिरा रहता था। क्या अब उसे सदा निर्वासित जीवन ही जीना होगा? क्या उस अहंकारी बालि से वह कभी भी अपने अधिकार को प्राप्त नहीं कर सकेगा? हनुमान उसे

प्रायः समझाते रहते कि ईश्वर में विश्वास रखना चाहिए, समय आने पर उनकी कृपादृष्टि अवश्य ही होगी।

सुग्रीव आश्वस्त तो हो जाता था, पर निःशंक कभी न हो पाया। उस दिन भी वह शंका से भर उठा, जब उसने पर्वत की तलहटी में दो धनुर्धारी तपस्वियों को उसी पगडंडी पर आगे बढ़ते देखा, जो पर्वत के ऊपर की ओर आ रहे थे।

"हे वीरवर हनुमान!" सुग्रीव ने आशंकित स्वर में कहा–"वह देखो, वहां दो तपस्वी वेश में धनुर्धर योद्धा इधर ही आते दिखाई दे रहे हैं। इनके रूप और देहयष्टि को देखकर मुझे ये बड़े बलवान योद्धा प्रतीत होते हैं। संभवतः बालि ने ही तो इन्हें कहीं से बुलाकर मेरा वध करने हेतु यहां नहीं भेजा है। इनके प्रचंड धनुष देखकर तो मेरा भी हृदय कंपित हो रहा है। तुम चतुराई के साथ जाकर पता लगाओ कि ये कौन हैं और किस उद्देश्य से आए हैं। यदि अहंकारी बालि ने ही इन्हें भेजा है तो मुझे यह स्थान भी छोड़कर अन्यत्र कहीं जाना होगा।"

"महाराज! आप भय के कारण शंकित रहते हैं।" हनुमान बोले–"मैं अभी जाकर इन मनोहर तपस्वियों का परिचय जान लेता हूं। इनकी आभा देखकर तो ये मुझे सज्जनों के मित्र व हितैषी प्रतीत होते हैं और इनके सारंग समान धनुष इन्हें दुष्टों के शत्रु बता रहे हैं। मुनिवेश में भी इनका क्षत्रित्व स्पष्ट दिखाई दे रहा है। मैं अभी जाकर सारा भेद जान लेता हूं।"

हनुमान ने ब्राह्मण का वेश बनाया और उस पगडंडी पर आ गए जिधर से दोनों तपस्वी आ रहे थे। हनुमान का हृदय अज्ञात प्रसन्नता के आवेग से आंदोलित था। तपस्वियों के समीप आने पर उनके नेत्र मिले और अनायास ही उनके नेत्रों में परस्पर स्नेह के भाव उभरे।

"हे वीर सुकुमारो! यह श्याम व गौर वर्ण वाले युगल स्वरूप आप दोनों कौन हैं? अपने तेज से तो आप क्षत्रिय प्रतीत होते हैं, फिर यह मुनिवेश धारण कर इन वनखंडों में घूमने का क्या उद्देश्य है? आपकी मनोहर मूर्ति देखकर मन मुग्ध हो रहा है, जैसे आप स्वयं ही नारायण हैं।" हनुमान ने कहा।

राम मुस्कराए–हनुमान की लीला भी मनोहारी थी।

"हे ब्राह्मण, हम अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं। राम और लक्ष्मण हमारे नाम हैं। माता-पिता की आज्ञा से हम वन को आए थे।" राम ने बताया–"हमारे साथ मेरी अर्धांगिनी जनकनंदिनी सीता भी थीं जिन्हें कपटपूर्वक लंकापति रावण हरण कर ले गया है। हम यहां वानरराज सुग्रीव से सहायता की इच्छा से आए हैं। क्या आप हमें उनसे मिलने का उपाय बताएंगे और हे ब्राह्मण! आपने हमारा परिचय तो जान लिया, अब अपना परिचय भी देने की कृपा करें।"

"हे प्रभो, हे मेरे स्वामी! आपके दर्शन पाकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है। आपके दर्शन की आकांक्षा में ही मेरा श्वास चल रहा था। हे नाथ, मैं वानर योनि में जन्म लेकर चंचल और मूढ़प्रवृत्ति का हो गया हूं। अत: आपको पहचानकर भी न पहचानने की धृष्टता की। हे स्वामी! अपने इस दास हनुमान पर कृपा करें।"

हनुमान उनके चरणों में नत हो गए तो राम ने उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिया। भक्त और भगवान का यह मिलन अद्‌भुत था। हनुमान के नेत्रों से प्रेम और आनंद के अश्रु बह रहे थे।

"हे हनुमान! जिसकी भक्ति का सदा गुणगान होता है, ऐसे परम भक्त हनुमान को समीप पाकर मेरा हृदय पुलकित हो रहा है। इस वनखंड में एक विकट संकट में तुम्हारे समान सहायक पाकर मेरा आधा विषाद मिट गया है। अब यदि वानरराज सुग्रीव भी मेरी मित्रता स्वीकार करें तो मैं विषादमुक्त हो जाऊं!"

"प्रभु, आपकी कृपा और मित्रता पाने के लिए तो देवता आदि भी तरसते हैं तो फिर वानरराज सुग्रीव का तो यह अहोभाग्य है कि आप उनसे मित्रता के इच्छुक हैं। आप मेरे साथ चलें प्रभु! वानरराज सुग्रीव यहां ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हैं। उनके साथ मुझ सहित कुछ ही सहायक हैं। अपने अग्रज किष्किंधानरेश बालि के कोप के कारण वे निर्वासित जीवन जीने को विवश है।"

"वानराज सुग्रीव ने ऐसा क्या अपराध कर दिया प्रिय हनुमान, जिससे उनके अग्रज कुपित हो गए?" लक्ष्मण ने प्रश्न किया।

इस प्रश्न के उत्तर में हनुमान ने सारी बात विस्तार से बताई कि किस प्रकार बालि ने बल के अहंकार में निरपराध सुग्रीव को प्रताड़ित व निर्वासित किया है।

"यह तो अन्याय है हनुमान! बल के अहंकार में किसी को इतना कष्ट देने वाला अक्षम्य होता है।" राम सरोष बोले–"अनुज वधु को बलात् छीनने वाला घोर नरक का भागी होता है। ऐसे पापी का मुख देखना भी अनिष्ट है।"

"प्रभो! उसे यह वरदान मिला हुआ कि जो योद्धा उसके सामने आकर युद्ध की चुनौती देगा, उसका आधा बल बालि में आ जाएगा। इसी कारण पराक्रमी सुग्रीव कभी उसके समक्ष ठहर नहीं पाए।"

"हम बालि को दंडित करके वानरराज सुग्रीव को उनके अधिकार दिलाएंगे। क्षत्रिय का यही धर्म है कि वे दुष्टों से पीड़ित की रक्षा करें।"

हनुमान उन्हें कंधे पर बिठाकर पर्वत शिखर पर ले आए, जहां सुग्रीव ने उन्हें प्रणाम करते हुए हर्षपूर्वक स्वागत किया। हनुमान किसी शत्रु को तो वहां लाये न होंगे। वैसे भी उनकी मनोहर मूरत देखकर सुग्रीव का मन नि:शंक और प्रफुल्लित हो गया था।

"हे वानरराज सुग्रीव!" हनुमान ने परिचय देते हुए कहा—"ये अयोध्या के प्रतापी सम्राट महाराज दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण हैं जिन्होंने विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करते हुए ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों का वध किया, जगप्रसिद्ध शिव-धनुष भंग किया और दंडक वन को राक्षसों से शून्य कर दिया। इनकी पत्नी जनकसुता सीता को दुष्ट दशानन हर ले गया है और उसे दंडित करने के लिए आपकी सहायता चाहते हैं। हे वानरराज, प्रभु श्रीराम आपको मित्रता व सहायता के बदले बालि से निर्भय करने का आश्वासन देते हैं। ये आपके परम हितैषी और सबका कल्याण करने वाले हैं। अत: इनसे मित्रता करके परस्पर सहायता से इस मित्रता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।"

"हे रघुनाथ, आपके बल और महिमा को कौन नहीं जानता।" सुग्रीव विनयपूर्वक बोला—"मुझे बिना प्रयास आपके दर्शन व मित्रता का सौभाग्य मिल रहा है, यह मेरे लिए किसी वरदान से कम नहीं है, परंतु हे रघुवीर, परस्पर सहायता की पूर्ति में मुझे संदेह होता है, क्योंकि बालि के पास अतुलनीय बल है। उसे वही मार सकता है, जो राक्षस दुंदुभि की विशाल अस्थियों को यहां से हिला सके और एक ही बाण से ताड़ के उन सात वृक्षों को धराशायी कर सके। हे कृपासिंधु! यदि आप मेरा यह संदेह दूर कर सकें तो मुझे सुख होगा।"

राम ने आगे बढ़कर सामने पड़े दुंदुभि राक्षस के पर्वत समान कंकाल को एक हल्की-सी ठोकर में ही पर्वत से नीचे फेंक दिया तो सुग्रीव के नेत्रों में चमक आ गई। इसके बाद राम ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और सामने खड़े सात ताड़वृक्षों को लक्ष्य करके चला दिया जिसने एक ही बार में सातों वृक्षों को धराशायी कर दिया। सुग्रीव का मन मयूर नाच उठा और वह राम के चरणों में नत हो गया। राम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया।

"वानरराज, मित्रता में समानता का भाव होना चाहिए।" राम बोले—"आप मेरे हृदय में स्थित हों। मित्र से जो अपेक्षा होती है, उसे हम परस्पर पूरा करेंगे।"

"हे नाथ! कुछ दिन पूर्व मैं इसी स्थान पर बैठा था, जब मैंने आकाशमार्ग से पुष्पक विमान को जाते देखा था, जो केवल राक्षसराज दशानन के पास है। उस विमान से कुछ आभूषण यहां भी गिरे थे जिन्हें मैंने सुरक्षित रखा हुआ है। आप उन्हें देखकर जानिए कि क्या वे जानकीजी के ही हैं।"

राम विकल हो उठे। प्राणप्रिया का कोई स्मृतिचिह्न देखकर जो भाव उठता है, वही इस समय राम के हृदय में उठ रहा था। जब सुग्रीव ने एक पोटली उन्हें लाकर दी तो राम ने उसे खोला जिसमें रखे आभूषण देखकर राम के नेत्र सजल हो उठे। वे सीता के ही आभूषण थे। राम की अधीरता से सब विकल हुए।

"हे प्रभु, आप निश्चिंत रहें। सीताजी अवश्य ही मिल जाएंगी। यदि आप मुझे बालि से निर्भय कर दें तो मैं अनेक रीछ-वानरों को जानकीजी की खोज में भेज दूंगा, क्योंकि दुष्ट दशानन अनेक द्वीपों का स्वामी है। हमें पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उसने सीताजी को कहां रखा है, फिर उसी के अनुसार युद्धनीति का निर्धारण करना श्रेयस्कर होगा।"

"मित्र शुभ कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए।" राम ने गंभीरता से कहा-"दुष्ट को अधिक समय तक जीवित नहीं रहने देना चाहिए। अतः तुम अभी जाकर बालि को युद्ध के लिए ललकारो। मैं उचित स्थान पर रहकर तुम्हारा हित-साधन कर दूंगा।"

"प्रभो! आपके आदेश को मानकर मैं अभी बालि का ललकारता हूं, परंतु हे नाथ, आप सहायता में विलंब न करना, अन्यथा वह दुष्ट मेरे प्राण ले लेगा।" सुग्रीव ने ससंकोच कहा।

"तुम निश्चिंत हो जाओ मित्र!" राम हंसकर बोले-"भय को हृदय से निकाल दो।"

सुग्रीव राम का आलंबन लेकर चल पड़ा। राम भी लक्ष्मण सहित अपने धनुष बाण लेकर उसके साथ किष्किंधा पर्वत पर आए और ताड़वृक्षों का झुरमुट देखकर उसमें चले गए। सुग्रीव शंका से महल की ओर बढ़ा जा रहा था। बालि के क्रोध और प्रहारों का स्मरण करके वह कंपित हो रहा था, परंतु राम का पराक्रम देखकर कुछ आशा भी बनती थी। वह बालि के महल के सामने पहुंचा।

"ओ महाभिमानी बालि! तूने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, आज उन सबका हिसाब होगा। मैं तुझे तेरी करनी का दंड देने आया हूं। यदि अपने में कुछ बल समझता है तो आकर मुझसे द्वंद्व कर और निर्णय कर।"

सुग्रीव उच्च स्वर में गरज रहा था।

बालि ने उसका स्वर सुना तो क्रोध में भरकर तत्काल बाहर आया।

"अरे मतिमूढ़, कायर सुग्रीव! क्या तू आज मेरे हाथों से अपने प्राणों की मुक्ति चाहता है, जो ऐसे गरज रहा है।" बालि भी गरजा-"लगता है, तुझे किसी ने बहका दिया है कि तुझमें बालि का सामना करने की शक्ति आ गई है।"

"यह तो द्वंद्व से निर्णय होगा कपटी! आ, आज निर्णय करते हैं।"

बालि दांत पीसकर उसकी ओर दौड़ा तो सुग्रीव उसे वहां तक ले आया, जहां झुरमुटों में मित्र राम सहायक के रूप में खड़े थे। बालि ने उसे जाकर पकड़ लिया। दोनों में घोर द्वंद्व युद्ध होने लगा। यद्यपि बल में सुग्रीव कम न था, परंतु बालि का वरदान उसे प्रतिद्वंद्वी से डेढ़ गुना शक्तिशाली कर देता था। अतः कुछ

ही क्षण में सुग्रीव बेदम होने लगा था। सहायता न मिलने के कारण वह विचलित हो उठा और तुरंत वहां से भागकर ऋष्यमूक पर जाकर ही वह सुरक्षित हुआ। बालि विजेता होकर वहां से महल की ओर लौट गया।

राम और लक्ष्मण उसके पास पहुंचे तो वह पीड़ा से कराह रहा था।

"प्रभु, यदि मेरी देह पिसवाने का आनंद ही लेना था तो क्यों मुझे ऐसा स्वप्न दिखाया। आपने भली मित्रता की जिसमें शत्रुता का-सा व्यवहार किया।" सुग्रीव ने कहा।

"मित्र! इसमें हमारा कोई दोष नहीं है।" राम बोले–"तुम दोनों भाई दिखने में एक समान हो, अतः मुझे लक्ष्य साधने में शंका हो रही थी। भूल से बाण तुम्हें लग जाता तो अनर्थ हो जाता। तुम इस बार अपने गले में पुष्पहार पहनकर जाओ जिससे मुझे बालि को पहचानने में सरलता रहे–इस बार संदेह ही न करना।"

"स्वामी सत्य कह रहे हैं वानरराज!" हनुमान ने समर्थन किया–"मैं स्वयं भी भ्रमित हो गया था। आकार और मुखाकृति आदि में आप और बालि एक समान हैं। प्रभु ने अच्छी युक्ति बताई है–इसका अनुसरण करो।"

सुग्रीव ने बड़ी कठिनाई से साहस जुटाया। राम ने उसके गले में पुष्पहार डाल दिया। श्रीराम का बल पाकर वह पुनः बालि के महल के सामने जाकर गरज उठा।

35

वानरराज बालि का प्रलाप

"आह! तो ये तुम हो राम?" वानराज बालि ने राम को तत्काल पहचानकर प्रलाप किया–"मुझे आशा न थी कि तुम न्याय, नीति और धर्म को जानने वाले होकर भी मुझे इस प्रकार बहेलिये की तरह धोखे से मारोगे? मेरा-तुम्हारा तो कोई बैर भी नहीं था। यह सुग्रीव तुम्हें क्यों प्रिय हो गया रघुनंदन! यह तुम्हारा ऐसा क्या हित कर सकता है, जो बालि न कर पाता? मुझे अपने गुप्तचरों से तुम्हारे बारे में सब कुछ ज्ञात हो चुका है और यह भी कि दुष्ट दशानन जानकीजी का हरण करके लंका ले गया है। इसमें सुग्रीव तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता, जबकि मैं दशानन की दशा बिगाड़ देता। हे दशरथनंदन! मुझे एक अवसर तो दिया होता। मैं दशानन को लंका से घसीटकर तुम्हारे समक्ष डाल देता।"
"बालि, जो अधर्म के मार्ग पर चलते हों, उनकी मित्रता भी अनिष्टकारी होती है। तूने कब धर्म व नीति का पालन किया? क्या भाई की पत्नी को बलात् अपनी अंकशायिनी बना लेना धर्म है...?"

बालि विजय मद में चूर झूमता हुआ अपने महल में पहुंचा, जहां उसकी पत्नी तारा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह कुछ चिंतित और आशंकित थी।

"हे स्वामी! आप उस कायर सुग्रीव के ललकारने पर बिना सोचे ही दौड़ पड़े। जो इतने दिन तक गीदड़ की भांति ऋष्यमूक पर्वत पर छुपा पड़ा था, आज उसमें इतना बल कहां से आ गया कि सीधा ललकारता हुआ चला आया?" तारा चिंतित होकर बोली।

"प्रिये! कुछ लोगों की मंदबुद्धि ऐसी होती है कि कुछ समय पश्चात् उनकी देह में अकारण खुजली होती है। सुग्रीव तो वैसे भी जला-भुना बैठा है। आज फिर उसकी देह को मेरे भीषण मुष्ठि प्रहारों से शांति मिल गई होगी। कायर प्राणों पर बनती देख, भाग लेता है और ऋष्यमूक पर्वत पर जा छुपता है।" बालि ने वर्णित स्वर में कहा।

"स्वामी! अकारण ही कोई प्रबल शत्रु को नहीं ललकारता। अवश्य ही उसे कहीं से बाह्य बल या आश्वासन मिला होता है। गुप्तचर कह रहे थे कि आज ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिलने दो धनुर्धर तपस्वी आए थे।"

"तारा, वह मुनिजनों का स्थान है। कोई-न-कोई आता ही रहता है। साधुओं के श्राप या वरदान से तो बालि को परास्त करना कठिन है। तू इस विषय में सोचकर क्यों शंकित होती है। बालि का सामना तो स्वयं इंद्र भी नहीं कर सकता।"

तारा मौन हो गई थी, परंतु आश्वस्त न हुई थी। अभी बालि कुछ कहना ही चाहता था कि फिर सुग्रीव की ललकार सुनाई देने लगी।

"अरे हो मतिभ्रष्ट बालि! कोई निर्णय लेने से पूर्व ही स्वयं को विजेता घोषित करके तू यहां स्त्री से अपने पराक्रम का बखान कर रहा है। अरे, अभी तो मैंने अपने वह श्रेष्ठ पराक्रमी हाथ दिखाई भी न थे। अभी मेरे हृदय में उमंग शेष है। या तो आज तू जीवित रहेगा या मैं—चल, बाहर आ।"

बालि का अंग-प्रत्यंग क्रोध से कांपने लगा था और वह मुड़ा ही था कि तारा उसके पैरों से लिपट गई।

"हे नाथ! क्रोध को त्यागकर विवेक से विचार करें। जो अभी-अभी पिटकर गया था, वह फिर आकर ललकार रहा है तो इसमें अवश्य ही कोई भेद है। शत्रु के दुस्साहस का कारण जाने बिना लड़ने जाना उचित नहीं होगा। मेरी बात सुनिए स्वामी, बकरी सिंह से बचकर एक बार भाग जाए तो वह कभी उधर भूल से भी नहीं लौटती। आज सुग्रीव के स्वर में आशा और विजय का बल है—आप बाहर न जाइए।"

"चल हट मूर्ख! शत्रु द्वार पर ललकारे और बालि स्त्री के अंकपाश में सो जाए, यह कदापि नहीं हो सकता। तू स्त्री है, तुझमें तेज कहां होगा? योद्धा कभी

मृत्यु से भय नहीं मानता। आज सुग्रीव के पक्ष में सभी देवता भी आए हों तो भी वह दुर्बुद्धि मेरे प्रचंड क्रोध की अग्नि में भस्म होकर ही रहेगा—मेरे पैर छोड़ तारा!"

"नाथ! स्त्री मूर्ख हो सकती है, परंतु उसका हृदय मूर्ख नहीं होता। मेरा हृदय आशंका से ग्रस्त है। आज मेरा निवेदन स्वीकार करें और सुग्रीव के इस दुस्साहस का कारण जानकर नीतिपूर्वक उसको संतुष्ट करें।"

बालि ने झटका देकर उसे दूर फेंक दिया और बाहर चला आया।

"मूढ़ सुग्रीव! मृत्यु से बचने का अवसर बड़े भाग्य से मिलता है। तुझे यह अवसर मिला भी, परंतु दुर्बुद्धि कब मानते हैं! यह पुष्पहार पहनने से तू अपराजेय नहीं हो गया होगा।" बालि दांत किटकिटाकर बोला—"यदि किसी ने तुझे भ्रमित करके भेजा है तो समझ कि वह तेरा कोई शत्रु ही है, जो बार-बार तुझे मरने के लिए उकसाता है।"

"बढ़-चढ़कर बातें मत कर और रंगभूमि में आकर अपना बल दिखा।" सुग्रीव ने कहा और पुनः आगे बढ़कर ताल ठोकने लगा।

क्रोध के आवेश में बालि के विवेक ने यह भी विचारना उचित न समझा कि वह ललकारता यहां था और लड़ता वहां था।

सत्य ही है कि क्रोध में व्यक्ति अविवेकी होकर अपनी ही हानि कर लेता है। उसने जाकर सुग्रीव को पकड़ लिया और दोनों भाई बड़े भीषण रूप में मल्लयुद्ध करने लगे। अब सुग्रीव भी जानता था कि यदि इस बार भी राम ने सहायता न की तो उसके प्राण निश्चित रूप से चले जाएंगे। वह अपना पूरा जोर लगा रहा था, परंतु बालि का ड्यौढ़ा बल साधना सरल नहीं था और अब तो सीमा भी पार हो रही थी।

बालि ने उसे भुजाओं में भरकर भूमि से ऊपर उठा लिया था और गेंद की भांति घुमा रहा था, जैसे वह उसे किसी शिला पर पटकेगा...।

उसी समय 'सांय-सांय' की आवाज करता हुआ तेज गति से एक तीर आकर बालि के सिर के पृष्ठ भाग में धंसा और ललाट से पार निकल आया। वह लड़खड़ाया और सुग्रीव को पटककर अपना सिर पकड़कर पहले तो घुटनों के बल बैठा, फिर निश्चेष्ट-सा भूमि पर लेट गया।

"यह घात...यह घात किसने किया? किसने नियम के विरुद्ध कायरों की भांति मुझ पर यह घातक बाण चलाया! वह शूरवीर मेरे सामने तो आए।" बालि पीड़ा से बोला।

राम ताड़वृक्षों के झुरमुट से बाहर आए—मुस्कराते हुए।

"आह! तो ये तुम हो राम?" वानराज बालि ने राम को तत्काल पहचानकर प्रलाप किया–"मुझे आशा न थी कि तुम न्याय, नीति और धर्म को जानने वाले होकर भी मुझे इस प्रकार बहेलिये की तरह धोखे से मारोगे? मेरा-तुम्हारा तो कोई बैर भी नहीं था। यह सुग्रीव तुम्हें क्यों प्रिय हो गया रघुनंदन! यह तुम्हारा ऐसा क्या हित कर सकता है, जो बालि न कर पाता? मुझे अपने गुप्तचरों से तुम्हारे बारे में सब कुछ ज्ञात हो चुका है और यह भी कि दुष्ट दशानन जानकी जी का हरण करके लंका ले गया है। इसमें सुग्रीव तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता, जबकि मैं दशानन की दशा बिगाड़ देता। हे दशरथनंदन! मुझे एक अवसर तो दिया होता। मैं दशानन को लंका से घसीटकर तुम्हारे समक्ष डाल देता।"

"बालि, जो अधर्म के मार्ग पर चलते हों, उनकी मित्रता भी अनिष्टकारी होती है। तूने कब धर्म व नीति का पालन किया? क्या भाई की पत्नी को बलात् अपनी अंकशायिनी बना लेना धर्म है? क्या भाई के अधिकारों का हनन करना नीति है? हे अभिमानी बालि, तुझे मैंने नहीं मारा, तुझे 'मैं' ने मारा है। बल का अहंकार ही तेरे पतन का कारण है। जिसने कभी न्याय और नीति का पालन न किया हो, उसे कभी इनका उदाहरण न देना चाहिए। तुमने वही फल पाया है, जैसे बीज रोपे थे। दशानन जैसे दुष्ट को दंडित करने के लिए मैं किसी दूसरे दुष्ट का आश्रय लेकर अपने कुल को कलंकित क्यों करता? अपने पराक्रम को शंकित क्यों करता? दशानन मेरे लिए भुनगे से अधिक नहीं है। मैं यहां से बाण छोड़ूं तो दशानन लंका से उसमें बंधा चला आए, इसमें तनिक संदेह न मानना, परंतु यह लौकिक मर्यादाओं की स्थापना के लिए सज्जित रणांगण है, जहां दैवीय प्रभावों का आश्रय रघुकुल के राजकुमार नहीं ले सकते। हम जो हैं, वही रहकर संसार को दिखा देंगे कि दुष्ट कितना भी शक्तिशाली हो, परंतु विजय सदैव सत्य की होती है। तुम समझते हो कि मैंने तुम्हारे किसी भय से छुपकर बाण चलाया है। नहीं बालि, यह सब संसार में पीडितों, निर्बलों के लिए एक सीख है कि यदि दुष्ट शत्रु प्रबल है तो उसे छुपकर मारने में भी कोई पाप नहीं लगता।"

"हे रघुवीर! यह काल की अर्थात् आपकी यह कैसी गति है, जो आपके द्वारा मारे जाने पर भी मैं पापमुक्त नहीं हो सकता।" बालि अपराध भाव से बोला–"निःसंदेह मैंने अहंकार में मर्यादाओं का उल्लंघन करके अनाचार किया, परंतु हे कमलापति, आपके दर्शन से घोरतम पापी भी मोक्ष को प्राप्त होते हैं। मैंने पापकर्म किए हैं तो उनका दंड मैंने प्राण गंवाकर पा लिया है। हे करुणानिधान, मुझ पर इतनी दया तो करें कि मैं इस योनि से छूटकर जिस भी

योनि में पड़ूं, मुझे आपका स्मरण सदैव रहे। अनुज सुग्रीव! बल के अहंकार में मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिए, मुझे क्षमा करना और मेरे पुत्र अंगद को अपना बालक जानकर संभालना।"

सुग्रीव के नेत्र छलक उठे। संसार में सहोदर भाई से बड़ी पूंजी और क्या होगी! परिस्थितियां अवश्य उनमें मतभेद कर सकती हैं, परंतु उनका आत्मिक संबंध सदैव बना रहता है और ऐसे अवसर पर व्यथित करता है। सुग्रीव का हृदय भी फटा जा रहा था। वातावरण बड़ा दु:खद हो गया था।

"हे स्वामी! आपने मुझे दुष्ट, पापी जानकर मेरी सेवा तो नहीं ली, परंतु मेरे पुत्र अंगद को अपनी सेवा में स्वीकार करें तो मेरी आत्मा को शांति मिले।"

मरणासन्न प्राणी की इच्छा पूरी करना शस्त्र निहित है। राम ने बड़े स्नेह से बालि के सिर पर हाथ रखा। उसके नेत्रों में संतुष्टि की झलक उभरी और उसने प्राण त्याग दिए।

बालि का प्राणांत होते ही रनिवास में रुदन मच गया। तारा रोती-बिलखती वहां आकर पछाड़ खाने लगी।

"हा स्वामी! मैंने कहा था कि सुग्रीव के लौट-लौटकर आने और ललकारने में उसका अपना कोई बल नहीं है, बल्कि उसका कोई गुप्त रक्षक है। ऐसा ही हुआ भी, गुप्त रक्षक अन्य कोई नहीं, बल्कि स्वयं रघुवीर हैं। आपने मेरी एक न सुनी।" तारा विलाप करती हुई बोली।

"हे तारा, पंचमहाभूतों से बना यह शरीर एक दिन इन्हीं में मिल जाना होता है।" श्रीराम तारा को समझाते हुए बोले–"जीव देह पाकर नाना कर्म करता है और उसी के अनुसार फल भी प्राप्त करता है। इसका शोक क्यों करती हो! तुम्हारे पुण्य के प्रभाव से इसे मोक्ष मिल गया है जिसका यह अधिकारी भी नहीं था, अत: तुम शोकमुक्त हो जाओ।" श्रीराम ने उसे समझाया तो उसे ज्ञान हुआ।

इसके बाद राम ने सुग्रीव को बालि के सभी मृतक-संस्कार करने का आदेश दिया और विधिवत सभी संस्कार पूरे कराए।

किष्किंधा का सिंहासन रिक्त हो गया था, अत: राम ने लक्ष्मण और हनुमान को सुग्रीव का राजतिलक करने का निर्देश दिया।

राम स्वयं वनवास नियम के अनुसार नगर में नहीं जा सकते थे, अत: लक्ष्मण ने ही विधिवत् सभी कार्य संपन्न कराए और अंगद को युवराज का पद दे दिया गया।

सुग्रीव ने विनय करके राम से नगर में चलने का अनुरोध किया। युवराज अंगद ने भी यही इच्छा रखी।

"हे वानरश्रेष्ठ, मैं चौदह वर्ष की अवधि में किसी ग्राम या नगर में नहीं जा सकता। अभी चातुर्मास आ गया है, अत: इतने समय हम यहीं पर्वत पर निवास करते हैं और तुम यथोचित राज्य का संचालन करो। मेरे कार्य को स्मरण रखना और वर्षा ऋतु समाप्त होने पर हमें सुखी करना।" राम ने कहा।

"भगवन! सेवक आपकी सेवा में समय पर उपस्थित होगा।" सुग्रीव ने कहा।

राम-लक्ष्मण ने वहीं प्रवर्षण नाम की पर्वत चोटी पर एक सुंदर गुफा देखकर उसे ही अपना निवास स्थान बना लिया। अनेक सिद्ध मुनिगण भी वहीं आकर रहने लगे थे। नाना प्रकार के सुंदर पक्षी वहां कलरव करते थे।

वर्षा-ऋतु आरंभ हो गई थी और प्रकृति अपने रंग में रंगने लगी थी। चारों ओर हरियाली छाने लगी थी। ऋषि-मुनियों के संग ज्ञान का आदान-प्रदान करते चातुर्मास भी व्यतीत हो गया, परंतु सुग्रीव ने सुधि नहीं ली तो एक दिन राम ने लक्ष्मण से इस बारे में विमर्श किया।

"हे अनुज! वर्षा ऋतु समाप्त हो गई है, अत: मार्ग की प्रकृतिजन्य बाधाओं की सभी शंकाएं दूर हो गई हैं, लेकिन अभी तक जनकदुलारी की कोई खोज नहीं मिली है। सुग्रीव भी राज्य, कोष और परिवार पाने के बाद हमारी सुधि लेना भूल गया लगता है। ऐसे कृतघ्न पर क्रोध आता है, परंतु मित्रता की मर्यादा रोके हुए है। अत: तुम एक बार किष्किंधा जाकर उस जड़ को चैतन्य करो। भय के बिना प्रीति नहीं होती, अत: उसे थोड़ा भय भी अवश्य दिखाना।"

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण क्रोध में भरकर नगर की ओर चले। उनकी क्रोध भरी चाल से पृथ्वी प्रकंपित हो रही थी। हनुमान को आभास हो गया कि प्रभु श्रीराम ने रोष में भरकर लक्ष्मण को भेजा है।

"हे वानरराज, आपने बड़ी त्रुटि की, जो श्रीरामचंद्र को वचन देकर विस्मृत कर दिया। वर्षा ऋतु को व्यतीत हुए बहुत समय हो गया है और आप उनकी सेवा में नहीं पहुंचे। हे कपिराज, इससे प्रभु अवश्य रोष में आ गए हैं, क्योंकि वचन का मूल्य ही उनकी दृष्टि में बड़ा है। जो वचन का पालन नहीं करते, वे दंडनीय होते हैं। यह भीषण गर्जन सुन रहे हो। यह शेषावतार लक्ष्मण की हुंकार-भर है, जो नगर की ओर आ रहे हैं। यदि उन्हें संतुष्ट न किया गया तो वे अपनी क्रोधाग्नि में सब विनष्ट कर देंगे।"

सुग्रीव भय व ग्लानि से भर उठा। उसे सुख-सुविधाओं में यह ध्यान ही न रहा कि उसने प्रभु को क्या वचन दिया था। उनका क्रोध उचित था, परंतु अब क्या हो? भूल को कैसे सुधारा जाए?

हनुमान के परामर्श पर तत्काल अंगद को लक्ष्मण के पास समझाकर

भेजा गया कि कैसे भी पहले उनका क्रोध शांत किया जाए। युवराज अंगद नीति-निपुण था, अतः वह महल से बाहर वहां आया, जहां लक्ष्मण क्रोध से गरज रहे थे।

"अरे सुग्रीव, वास्तव में तू तो कपटी निकला।" लक्ष्मण ने कहा–"जो राजपाट पाकर प्रभु को भूल गया। तुझे स्मरण ही नहीं रहा कि तूने किसके आश्रय यह सब राजसुख प्राप्त किया है। आज तू रनिवास में जाकर निश्चिंत बैठ गया कि वे राम-लक्ष्मण हमारा क्या बिगाड़ेंगे। अरे नराधम, लक्ष्मण को यदि श्रीराम की आज्ञा हो तो एक ही बार में इस नगर को पर्वत सहित सागर में डुबो दूं।"

अंगद हाथ जोड़कर लक्ष्मण के पैरों में बैठ गया।

"हे सौमित्र! क्षमा करें! हमसे भूल हो गई। अपने क्रोध को शांत करें। आप ही तो पृथ्वी का भार संभालने वाले अनंत धैर्यशाली शेषजी हैं, क्रोध आपको शोभित नहीं होता। हे नाथ, हम शीघ्र ही माता सीता की खोज में वानर दलों को सभी दिशाओं में भेजेंगे। हम अपने श्रेष्ठ कपियों को दक्षिण दिशा में भेजेंगे। संसार-भर में फैले सभी रीछ-वानरों को यहां आने के लिए दूत भेजे जा रहे हैं। बस आप क्रोध न करें।"

लक्ष्मण थोड़े शांत हो गए, क्योंकि राम की भी ऐसी ही आज्ञा थी, फिर सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, जामवंत आदि सभी वरिष्ठ जनों ने लक्ष्मण से शांत होने की विनती की और उन्हें लेकर वे श्रीराम के सामने पहुंचे। श्रीराम ने मित्र का स्वागत किया। अपनी भूल की क्षमा मांगते हुए सुग्रीव ने तत्काल कार्य पर जुट जाने हेतु हनुमान को नियुक्त किया।

हनुमानजी ने किष्किंधा के सभी वानरों को दलों में बांटा और उन्हें विभिन्न दिशाओं में भेज दिया।

सुग्रीव ने हनुमान व जामवंत सहित अंगद, नल, नील आदि को अपने पास बुलाया और बड़ी गंभीर वाणी में उन सबसे कहा।

"हे कपिश्रेष्ठो, तुम दक्षिण दिशा में जाओ, क्योंकि संकेत मिले हैं कि लंका इसी दिशा में है। प्रभु श्रीराम नियम और नीति के अनुसार ही शत्रु को दंडित करना चाहते हैं। अतः हमें पहले सीताजी की खोज करके यह निश्चित कर लेना होगा कि हमारा शत्रु वही है, प्रभु का दोषी वही है, तब जो भी प्रभु आदेश देंगे, वही किया जाएगा। हे महाभट हनुमान, हे जामवंत! आप सभी प्रकार से सक्षम और नीति-निपुण हैं। मार्ग में किसी प्रकार का उपद्रव न हो जिससे हमारा नाम कलंकित हो और बिना कार्य संपन्न किए लौटने की आवश्यकता नहीं।"

सुग्रीव के इन कठोर वचनों ने सभी को ऊर्जा से भर दिया।

वहां से प्रस्थान करने से पूर्व राम ने हनुमान को अपने पास बुलाकर कहा–"हे हनुमान, यह कारज तुमसे ही सधेगा, ऐसी मेरी आशा है। अतः तुम मेरी यह मुद्रिका ले जाओ जिससे जानकी से भेंट हो तो उन्हें विश्वास हो सके कि राम उनकी ओर से निश्चिंत नहीं हैं–कहना कि शीघ्र ही भेंट होगी।"

हनुमान ने मुद्रिका ले ली–प्रभु का ऐसा विश्वास किसी उपहार से कम न था।

36

महावीर हनुमान का निश्चय

वानरदल द्वारा बार-बार स्तुति किए जाने पर हनुमान चैतन्य हुए और आश्चर्य में भरकर सबको देखने लगे।
"हे रीछराज जामवंत, हे युवराज! यह मुझे क्या हो गया था। मैं ऐसा आवश्यक कार्य भूलकर कैसे निष्क्रिय हो गया! हे युवराज अंगद, मुझे आदेश करो कि मैं अभी जाकर माता जानकी की खोज करूं और उस दुर्बुद्धि दशानन को प्रभु श्रीराम के कोप से परिचित कराऊं। यह सौ योजन मेरे लिए कोई विशेष नहीं है। प्रभु की कृपा से मैं इसे शीघ्र ही लांघकर प्रभु-कार्य संपन्न करके लौट आऊंगा।"
महाबली हनुमान का दृढ़ निश्चय सुनकर सभी के हृदय विषाद से विमुक्त हो गए।

वानरदल समूह-के-समूह विभिन्न दिशाओं में फैल गए थे। यद्यपि सुग्रीव ने सभी को आवश्यक निर्देश दिए थे, परंतु स्वभावत: वानर शांत रहकर कार्य करने वाले जीव नहीं थे। वे जिस वन-उपवन में जाते, वहीं विध्वंस मचा देते। हनुमान और जामवंत के नेतृत्व में जो वानरदल दक्षिण दिशा में आया था, वह संयमी और समझदार था। ऐसे ही वन-उपवनों में घूमते एक दिन उन्हें प्यास लगी। आसपास कहीं पीने योग्य जल नहीं था। सरोवर भी थे, झीलें भी थीं, परंतु सबमें पानी खारा था, क्योंकि वह

महासागरीय सीमा में था। प्यास से व्याकुल वानरदल जब अकुला गया तो हनुमान पानी की खोज में चले। वहां उन्होंने एक मणियों से जड़ी कंदरा देखी तो कौतूहलवश उसमें प्रवेश कर गए। कंदरा के दूसरी ओर एक भव्य उपवन था और अत्यंत स्वच्छ जल के सरोवर थे जिनमें हंस आदि पक्षी किलोल कर रहे थे। बहुत प्यास लगी होने पर भी हनुमान ने उपवन के स्वामी की आज्ञा लिए बिना जलपान करना उचित न समझा। सामने ही एक सुंदर मंदिर पर उन्हें एक दिव्य वृद्धा स्त्री दिखाई दी तो हनुमान उसके समीप पहुंचे और उसे प्रणाम करके आशीष पाया।

"हे कपिराज, तुम्हारे आगमन से मेरा कौतूहल बढ़ गया है और राम-दर्शन की आशा प्रबल हो उठी है। मेरा नाम प्रभावती है और मैं अनंतकाल से राम-दर्शन की इच्छा लिए यहां तपस्यारत हूं। तुम अपना परिचय देकर मुझे सुखी करो।" वृद्धा बोली।

"माते! मैं उन्हीं परम पावन प्रभु श्रीराम का भक्त हूं, जो इस समय प्रवर्षण पर्वत पर निवास कर रहे हैं। मैं उन्हीं भक्त-वत्सल श्रीराम के कार्य से आया हूं। मेरे साथियों को भूख-प्यास ने विकल कर दिया है, अत: मैं जल की खोज करते-करते यहां तक आ गया हूं।" हनुमान ने बताया।

"पुत्र हनुमान! यह स्थान देवताओं द्वारा निर्मित एक अत्यंत गुप्त है जिसे कोई नहीं खोज सकता था, परंतु तुमने खोज लिया, अत: तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तुम प्रभु राम के सभी कार्य सफल करोगे। हे पुत्र, मेरे हृदय में राम-दर्शन की प्रबल उत्कंठा हो रही है, अत: मैं उनके दर्शन हेतु जाती हूं। तुम अपने साथियों सहित इस उपवन में आनंद करके इस मंदिर के समीप वाले सरोवर में स्नान करना। प्रभु की कृपा से तुम अपने लक्ष्य के और भी समीप पहुंच जाओगे।"

हनुमान को बड़ी प्रसन्नता हुई। वृद्धा वहां से चली गई तो हनुमान हर्ष से भरे, अपने साथियों के पास पहुंचे और सब वृत्तांत कह सुनाया। जल और फल मिलने के नाम पर सभी वहां से चलकर उस उपवन में आए और पेट भरकर खाया-पीया, फिर हनुमान के निर्देशानुसार सबने उस सरोवर में स्नान किया तो आश्चर्य में पड़ गए। उतरे थे सरोवर में स्नान करने और पहुंच गए थे अथाह समुद्र के किनारे की रेत पर।

उस विशाल ठाठें मारते समुद्र को देखकर सभी वानर आश्चर्य में पड़ गए। वहां से आगे कोई मार्ग नहीं था। अनंत जलराशि थी। जन-वृक्ष शून्य स्थान था। यहां से सीताजी की खोज का क्या सूत्र मिल पाएगा? निराशा बढ़ती गई। पीछे सपाट और ऊंचा पर्वत था अत: पीछे जाने का भी मार्ग नहीं दिखाई दे रहा था। सभी निराश होकर वहीं बैठ गए और आपस में बातें करने लगे।

"अब क्या मुख लेकर प्रभु श्रीराम और महाराज सुग्रीव के सम्मुख जा पाएंगे। जो समय निर्धारित किया था, वह भी पूरा होने को है और हम जाने किसकी माया

से ऐसे स्थान पर आ पड़े जहां आगे-पीछे जाने का कोई रास्ता नहीं है।" अंगद ने निराश स्वर में कहा–"अच्छा हो कि यहीं हमें कोई अपना आहार बना ले।"

उसी समय पर्वत की चोटी से एक अट्टहास गूंजा तो सभी भयभीत हो गए। एक विशालकाय पंखहीन गिद्ध वहां बैठा कह रहा था–"अहा, आज ईश्वर ने कितने समय के पश्चात् घर बैठे इतना आहार भेज दिया है। वानरो, तुम निश्चिंत रहो, मैं तुम सबको सभी कष्टों से मुक्त कर दूंगा। मैं बहुत समय से भूखा हूं।"

"हे गिद्धराज!" चतुर हनुमान बोले–"प्रभु श्रीराम की लीला का कोई पार नहीं पा सका। उनकी बनाई सृष्टि में कैसी विविधता है? गिद्धराज जटायु तो प्रभु श्रीराम की सहायता के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे देते हैं और एक आप हैं, जो उनके सेवकों को अपना आहार बनाने का भय दे रहे हैं।"

"जटायु!" गिद्ध चौंककर बोला–"तुमने जटायु कहा? तुम उसके विषय में क्या जानते हो? वह तो मेरा भाई है। मैं संपाती हूं। बहुत समय पूर्व हम दोनों भाई अपने बल का प्रदर्शन करने की होड़ में आकाश की ओर उड़ रहे थे। हम सूर्य को स्पर्श करने की शर्त लगाकर गए थे। जटायु तो सूर्यताप से घबराकर लौट आया, परंतु मैं अभिमानवश उनके समीप पहुंच गया जिससे मेरे पंख जल गए और मैं यहां आ गिरा। चंद्रमा नाम के एक मुनि को मुझ पर दया आई और उन्होंने ही मुझे ज्ञान दिया। बताया कि त्रेतायुग में प्रभु श्रीराम के कार्य से इस स्थान पर उनके दूत आएंगे। उनसे भेंट होने पर मेरे पंख उग आएंगे। क्या तुम वही सब हो कपियो?"

"तुम्हारे पंख उग रहे हैं गिद्धराज! अत: इसमें कोई संदेह ही कहां रह गया?" हनुमान ने हर्षित स्वर में कहा–"मुनि चंद्रमा की वाणी सत्य सिद्ध हुई।"

संपाती ने अपने उगते पंख देखे तो उसने प्रभु को धन्यवाद दिया।

"हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारे दर्शन से मैं पवित्र हो गया। मुझे मेरी वह तीक्ष्ण दृष्टि भी पुन: प्राप्त हो गई जिससे मैं दूर तक स्पष्ट देख सकता हूं। मुझे लवणसागर में सौ योजन दूरी पर लंका द्वीप दिखाई दे रहा है, परंतु मेरा बल और समय क्षीण हो जाने से मैं तुम्हें वहां ले जाने में असमर्थ हूं। प्रभु श्रीराम की कृपा अनंत है, अत: वही तुम्हें मार्ग दिखाएंगे और निश्चित ही तुम उनका कार्य करने में सफल होओगे।" संपाती ने कहा और वहां से प्रभु-दर्शन हेतु चला गया।

वानरदल प्रभु श्रीराम की स्तुति करने लगा कि उनके स्मरण-मात्र से ही आज उनके प्राण बच सके हैं, अन्यथा संपाती उन्हें अपना आहार बना ही लेता। प्रभु की महिमा ऐसी ही थी। संपाती ने यह भी बता दिया था कि वहां से सौ योजन दूर लवण सागर में लंकाद्वीप उन्हें दिखाई दे रहा है। सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस! कौन इतनी सामर्थ्य रखता है कि इस समुद्र को लांघकर लंका तक पहुंचे।

"हे तात!" अंगद ने जामवंत से कहा–"मैं इस ओर से उस ओर पार जाने का साहस तो रखता हूं, पर लौटने में संदेह हो रहा है।"

"युवराज, अब मेरी वृद्धावस्था है और देह में पहले जैसा बल नहीं रहा है, फिर भी तुम और हनुमान हमारे नेता हो और जो भी कहोगे, हम करेंगे। यदि तुम मुझे आज्ञा दो तो मैं प्रयास करूं, लेकिन सफलता के प्रति मैं आशान्वित नहीं हूं।"

"तात! अब तो महावीर हनुमान ही हमारे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा हम अब जीवित किष्किंधा नहीं जाएंगे। हमें पवनपुत्र की ही स्तुति करनी चाहिए।"

"उत्तम विचार है युवराज! हनुमान...अरे महाबली हनुमान कहां हैं?"

"महावीर तो समाधिस्थ हो गए लगते हैं युवराज!" नल ने बताया–"वह देखो, वे तो समुद्र की रेत में ध्यानमग्न बैठे हैं।"

वानरदल हनुमान की स्तुति करने लगा। इतने अनिवार्य कार्य को भूलकर वे कैसे समाधिस्थ हो गए थे? अवश्य ही वे अपना बल विस्मृत कर चुके थे।

"हे वायुपुत्र, हे रुद्रांश महाबली हनुमान, जगत में ऐसा कौन-सा कार्य है, जो तुम्हारे लिए कठिन है! तुम्हारा पृथ्वी पर अवतरण प्रभु श्रीराम के कार्य सिद्ध करने हेतु हुआ है। अपने बल व पराक्रम को स्मरण करके हम सबका संताप दूर करो।" जामवंत ने कहा।

हनुमान अभी भी समाधिस्थ ही थे।

"हे वायुनंदन! स्मरण करो कि तुमने खेल-खेल में ही मुष्टिक प्रहार से बड़े-बड़े पर्वतों को विदीर्ण करके मुनियों के लिए सुगम मार्ग बनाए हैं। हे अंजनीकुमार! वे तुम ही थे जिन्होंने सूर्यदेव को फल समझकर मुख में रख लिया था और उनके प्रचंड तेज को संतुष्ट कर दिया था। हे रामभक्त, अपने प्रताप का स्मरण करो।"

वानरदल द्वारा बार-बार स्तुति किए जाने पर हनुमान चैतन्य हुए और आश्चर्य में भरकर सबको देखने लगे।

"हे रीछराज जामवंत, हे युवराज! यह मुझे क्या हो गया था? मैं ऐसा आवश्यक कार्य भूलकर कैसे निष्क्रिय हो गया! हे युवराज अंगद, मुझे आदेश करो कि मैं अभी जाकर माता जानकी की खोज करूं और उस दुर्बुद्धि दशानन को प्रभु श्रीराम के कोप से परिचित कराऊं। यह सौ योजन मेरे लिए कोई विशेष नहीं है। प्रभु की कृपा से मैं इसे शीघ्र ही लांघकर प्रभु-कार्य संपन्न करके लौट आऊंगा।"

महाबली हनुमान का दृढ़ निश्चय सुनकर सभी के हृदय विषाद से विमुक्त हो गए।

37

हनुमानजी का लंका में प्रवेश

हनुमान जान गए कि अब थोड़ा बल प्रयोग करना ही होगा, अतः उन्होंने लंकिनी पर वज्र समान मुष्ठिक प्रहार किया जिससे लंकिनी के दांत टूट गए। वह रक्तवमन करती और थर-थर कांपती हुई हाथ जोड़कर हनुमान के सामने खड़ी हो गई। "हे कपिराज! अब मैंने जान लिया कि आप कौन हैं और भविष्य में क्या होने वाला है। मुझे ब्रह्माजी ने सूक्ष्म दृष्टि का वरदान देते हुए कहा था कि जिस दिन किसी वानर के प्रहार से तू व्याकुल हो जाए तो समझ लेना कि राक्षसों के विनाश का समय आ गया है। इसी कारण अब मैं तो यहां से जाती हूं।" लंकिनी यह कहकर लंका से बाहर की ओर उड़ गई।

अपने बल और प्रभु श्रीराम के कार्य का स्मरण होते ही महावीर हनुमान मेघ के समान गर्जन करके उठे। उन्होंने विराट रूप धारण कर लिया।

सभी रीछ-वानर महावीर हनुमान के इस रूप की स्तुति करने लगे।

"हे मेरे प्रिय साथियो!" हनुमान ने दृढ़ स्वर में कहा—"मैं अभी आप सभी को सुख पहुंचाने वाले मार्ग पर जा रहा हूं। जब तक मैं सीताजी की कुशल-क्षेम नहीं ले आता, तब तक आप सभी यहीं रहना और प्रभु श्रीराम के गुणगाना करना। यद्यपि यहां तुम्हें बहुत कष्ट सहन करने होंगे, परंतु

प्रभु की दया से वे तुम्हें व्यापेंगे नहीं अर्थात् उनमें भी तुम आनंद का ही अनुभव करोगे। मैं अभी प्रस्थान करता हूं।"

हनुमान क्षण-भर में छलांग लगाकर जय श्रीराम का उद्‌घोष करते हुए पर्वत शिखर पर चढ़ गए। वहां से अनंत जलराशि को देखकर उन्होंने कृपासिंधु श्रीराम का स्मरण किया और वायुवेग से आकाश मार्ग से उड़ चले। उनकी अपार शक्ति को देखकर इंद्रादि देवता बड़े प्रसन्न हुए। वे सोच रहे थे कि अब शीघ्र ही दुष्ट रावण का राक्षसों सहित विनाश हो जाएगा।

हृदय में श्रीराम की मोहिनी मूर्ति विराजमान करके हनुमानजी समुद्र के ऊपर से उड़ चले। उनके हृदय में बड़ा उत्साह है कि अपने स्वामी का कार्य सिद्ध हो जाने पर निश्चय ही उन्हें स्वामी की प्रशंसा मिलेगी। सेवक के लिए तो यही प्रसाद होता है, जो उसके हृदय को आनंदित करता है। उन्होंने मन में निश्चय धारण कर लिया है कि उस कार्य को सफल करना ही है।

अभी हनुमान इन्हीं विचारों में मग्न थे कि चौंक पड़े। समुद्र के जल में एक भयंकर राक्षसी आकृति उनका मार्ग रोके खड़ी थी। यह सर्पों की माता सुरसा थी, जो देवों की प्रेरणा से हनुमान के बल और चातुर्य की परीक्षा लेने आई थी। वह इतना विशाल मुख खोलकर भयंकर अट्टहास कर रही थी।

"अहा, आज देवताओं ने मेरे लिए पर्याप्त आकार का आहार भेजा है। रे वानर, तू यहां से बचकर तो नहीं जा सकता, अत: अपनी मृत्यु को पीड़ादायक न बनाते हुए मेरे मुख में प्रवेश कर। मैं तुझे अपने उदर में खींच लूंगी और तू सरलता से मेरे उदर में पच जाएगा।" सुरसा ने कहा।

"माते, मेरी विनती सुनें।" हनुमान विनयपूर्वक बोले–"मैं अभी प्रभु श्रीराम के कार्य हेतु जा रहा हूं। इस समय आप मुझ पर दया करें और मुझे इस समय जाने दें। मैं वचन देता हूं कि प्रभु का कार्य संपन्न होने पर मैं आपका आहार बनने के लिए उपस्थित हो जाऊंगा।"

"अरे वानर! तू मुझे मूर्ख समझता है, जो हाथ आए हुए आहार को ऐसे ही जाने दूं। मैं सर्पों की माता सुरसा हूं और देवता भी मुझसे भय मानते हैं। तू कपटपूर्ण बातें न बनाकर मेरे निर्देश का पालन कर, अन्यथा फिर मैं तुझे चबा-चबाकर खाऊंगी तो तुझे अत्यधिक पीड़ा होगी।"

"माते! मैं प्रभु श्रीराम का सेवक हूं और उनके सेवक कपट नहीं करते। आप चाहें तो देवताओं से ही पूछ लीजिए कि मैं अपने वचन का सदा पालन करता हूं।"

"मुझे क्या आवश्यकता पड़ी है, जो मैं किसी से साक्ष्य लेती फिरूं? मेरा

आहार मेरे सामने है तो मैं उसे खाऊंगी। तू चपल वानर है और बातें बनाने में निपुण है। मैं तेरे किसी झांसे में नहीं आऊंगी।" सुरसा उस पर झपटी।

"ठहरो माते! तुम मानोगी नहीं, अतः पीड़ा भरी मृत्यु क्यों सहूं! अब तुम अपना मुख इतना तो फैलाओ कि मैं इसमें प्रवेश कर सकूं।" हनुमान ने अपने शरीर का विस्तार किया तो सुरसा ने भी मुंह का विस्तार किया। हनुमान ने और भी आकार बढ़ाया तो सुरसा ने भी वैसा ही किया। तत्काल हनुमान ने अपना आकार सूक्ष्म किया और उसके मुख में प्रवेश करके उसके कान से बाहर आ गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

"माते! मैंने तुम्हारी आज्ञा के अनुसार तुम्हारे मुख में प्रवेश कर लिया, परंतु तुम्हारे उदर ने मुझे स्वीकार ही नहीं किया।" हनुमान ने कहा–"अब आप मुझे आशीर्वाद देकर प्रभु-कार्य हेतु जाने की आज्ञा दें।"

"हनुमान, तुम्हारे बुद्धि-चातुर्य को देखकर मैं संतुष्ट हुई। तुम अपने कार्य में सफल हो जाओ, ऐसा मेरा आशीर्वाद है। वत्स, यह मार्ग अत्यंत जोखिम भरा है और इस महासागर में अनेक मायावी राक्षसी जीव रहते हैं, जो भिन्न-भिन्न मायावी शक्तियों से आहार पकड़ते हैं, अतः तुम सावधान रहना।"

सुरसा से आशीर्वाद पाकर हनुमान सावधानीपूर्वक आगे बढ़ चले। लवणसागर विचित्र जीवों का जलनिवास था जिनमें अनेक तो बहुत ही विशाल और शक्तिशाली थे। सावधानी बहुत आवश्यक थी, अन्यथा तनिक-सी भूल पर प्राण संकट में आ सकते थे। अंततः वह क्षण भी आ ही गया, जब एक संकट उनकी ओर बढ़ा चला आ रहा था।

समुद्र में उस स्थान पर सिंहिका नाम की एक राक्षसी रहती थी, जो बड़ी मायावी और रावण की प्रहरी थी। वह जल के भीतर रहकर जल के ऊपर उड़ने वाले पक्षी आदि की परछाईं को पकड़ लेती थी और फिर उसे अपनी ओर खींचकर उसे अपना आहार बना लेती थी। हनुमान सजग थे। वे जल को ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे। एकाएक उन्हें अपनी परछाईं के आसपास दो भयानक हाथ दिखाई पड़े। तत्काल उन्होंने अपना आकार बढ़ाया और बड़ी तीव्रता से जल में हाथ डालकर उस राक्षसी सिंहिका के केश पकड़कर बाहर खींच लिया। राक्षसी घबरा गई। जल के बाहर श्वास लेना उसे कठिन हो रहा था और हनुमान उसे बड़े वेग से चारों ओर घुमाए जा रहे थे।

जिस प्रकार जल के बिना मछली का दम घुटने लगता है, उसी प्रकार सिंहिका का भी दम घुटने लगा था। जब हनुमान ने समझ लिया कि उसके प्राण पखेरू उड़ने वाले हैं तो उन्होंने और भी तेजी से उसे चक्र की भांति घुमाकर कई

योजन दूर फेंक दिया और प्रभु का नाम लेकर आगे बढ़ चले। अब उन्हें लंका नगरी दिखाई देने लगी थी। हनुमानजी पहले उसका निरीक्षण करना आवश्यक जानकर समीप के पर्वत पर जा चढ़े। लंका नगरी वास्तव में एक विशाल और अभेद्य किला था। सोने के परकोटे का वह किला चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ था। परकोटे से बाहर कई खाइयां थीं जिनमें बड़े भयावह जलचर घूमते रहते थे। परकोटे के ऊपर स्थान-स्थान पर भयंकर आकृति वाले राक्षस खड़े थे। ऐसा सुरक्षित किला तो देवता भी नहीं जीत सकते, परंतु प्रभु श्रीराम के लिए क्या अजेय है। हनुमानजी ने विचार किया कि दिन के समय लंका में प्रवेश कर पाना कठिन प्रतीत होता है। अभी बलप्रयोग उचित नहीं होगा, क्योंकि इससे शत्रु सजग हो जाएगा। अभी पहला कार्य सीताजी की कुशल-क्षेम ज्ञात करना है।

हनुमान सूक्ष्म रूप धारण करके वहां की सभी गतिविधियों को देखते रहे और जब अंधेरा हो गया तो उसी सूक्ष्म रूप में लंका के भव्य द्वार पर पहुंचे। वहां अनेक राक्षस प्रहरी थे, परंतु सूक्ष्म हनुमान किसी को न दिखाई दिए। उनसे छुपकर वे कुछ अंदर की ओर गए तो एक राक्षसी लंकिनी ने उन्हें देख लिया। वह सूक्ष्मपार्शिकी लंकिनी थी।

"अरे मूर्ख! तू कौन है, जो अत्यंत सुरक्षित किले में भी घुस आया।" लंकिनी ने चिल्लाकर कहा-"तू क्या समझा कि लंकापति रावण सुरक्षा के विषय में ऐसे यंत्रों को नहीं जानते। तभी तो यहां मुझे अर्थात् सूक्ष्मदर्शिका लंकिनी को रखा गया है। तू मेरे यहां होते अंदर नहीं जा सकता।"

हनुमान जान गए कि अब थोड़ा बल प्रयोग करना ही होगा, अत: उन्होंने लंकिनी पर वज्र समान मुष्टिक प्रहार किया जिससे लंकिनी के दांत टूट गए। वह रक्तवमन करती और थर-थर कांपती हुई हाथ जोड़कर हनुमान के सामने खड़ी हो गई।

"हे कपिराज! अब मैंने जान लिया कि आप कौन हैं और भविष्य में क्या होने वाला है। मुझे ब्रह्माजी ने सूक्ष्म दृष्टि का वरदान देते हुए कहा था कि जिस दिन किसी वानर के प्रहार से तू व्याकुल हो जाए तो समझ लेना कि राक्षसों के विनाश का समय आ गया है। इसी कारण अब मैं तो यहां से जाती हूं।" लंकिनी यह कहकर लंका से बाहर की ओर उड़ गई।

हनुमान फिर आगे बढ़ चले। वे सूक्ष्म रूप में लंका के सभी महलों में सीताजी की खोज करने लगे, परंतु सीताजी कहीं दिखाई न दीं। इसी क्रम में वह रावण के महल में भी गए, जो अपने विशाल शयनकक्ष में खर्राटे ले रहा था। मूर्ख, मृत्यु सिर पर खड़ी थी और वह निश्ंचित होकर सो रहा था। हनुमान का मन तो

कर रहा था कि उसके पैर पकड़कर भूमि पर दे मारे, परंतु रुक गए। जो प्रभु राम का शिकार था, उसे मारकर स्वामी की अवज्ञा न करना चाहते थे। अतः वहां से चले तो सहसा चौंक पड़े। समीप के महल से राम-राम की ध्वनि सुनाई दे रही थी। लंका में राम नाम का सुमिरन करने वाला कौन था! हनुमान उस महल में घुस गए तो उन्होंने वहां रामभक्त विभीषण को राम-भजन में मग्न देखा। वह हर्षित हो गए और उनके पास बैठकर उसी स्वर में रामधुन गाने लगे। अपने स्वर में स्वर मिलता देख विभीषण ने नेत्र खोले और हनुमान को देखकर प्रसन्न हुए।

"हे कपि! इस नगरी में अभी तीन लोग ही ऐसे थे जो निरंतर राम-राम करते रहते हैं। एक तो लंकापति दशानन, दूसरा मैं उनका अनुज विभीषण और तीसरी परम पावन जानकीजी। तीनों के राम नाम जप के पृथक कारण हैं। लंकापति भविष्य को लेकर चिंतित हैं, मैं उनके दर्शन को व्याकुल हूं और माता जानकी तो उनसे विलग हैं ही नहीं। अब आप चौथे कौन हैं और इस नगरी में आगमन कैसे हुआ?" विभीषण ने पूछा।

"हे रामभक्त विभीषण, मैं प्रभु श्रीराम का सेवक अंजनीपुत्र हनुमान हूं, जो प्रभु की आज्ञा से माता जानकी की खोज में यहां आया हूं। आपकी बातों से मुझे बड़ा सुख मिला कि माता जानकी यहां हैं और सुरक्षित हैं।। आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। धर्म के अंश के रूप में आपका यहां निवास उचित ही है, क्योंकि जहां का क्षेत्र धर्मशून्य होता है, वहां कुछ भी शेष नहीं रहता। प्रभु की लीला संपन्न होने के जितने भी कारण हैं, वे सभी यहां आपके प्रभाव से उपस्थित हैं। हे रामभक्त! अब मुझे माता जानकी के दर्शन की तीव्र इच्छा हो रही है। आप मुझे दिशाज्ञान कराकर कृतार्थ करें।"

"पवनपुत्र! नगर के उत्तर में राजकीय अशोक वाटिका है, जहां सीताजी सुरक्षित तो हैं, परंतु व्यथित होकर रहती हैं। उनका चित्त प्रभु में ही डूबा रहता है। वहां दशानन ने अनेक अनुचरों को उनकी सेवा व सुरक्षा में लगा रखा है। महाव्रत धारण किए हुए परम सती सीता नित्य उपवास के द्वारा स्वयं को निर्मल रखती है अर्थात् इस नगर का एक तृण भी उनके कंठ से नहीं उतरा।" विभीषण सजल नेत्रों से बोले–"प्रभु श्रीराम धन्य हैं, जो इसके उद्धार हेतु स्वयं भगवान श्रीहरि नर तन लेकर वनों के कष्ट भोग रहे हैं और जगतजननी माता लक्ष्मी यहां वियोग की पीड़ा सह रही हैं। यह अद्भुत नरलीला है कपिवर और आप धन्य हैं जो इसके साक्षी हैं। क्या कभी मुझ पर भी प्रभु कृपा करेंगे।

"हे परम भक्त! जो करुणानिधान हैं, वे करुणा ही करते हैं। अपने भक्त के हृदय की बात वे कभी अनसुनी नहीं करते। उनके पावन चरित्र अद्भुत हैं।"

हनुमान बड़े भाव-विभोर होकर उन्हें श्रीराम के पावन चरित्रों की कथाएं सुनाए जा रहे थे और विभीषण बड़े मनोयोग से सुन रहे थे। दोनों भक्त ऐसे राममग्न हुए कि कब रात्रि व्यतीत हो गई, पता ही नहीं चला। जब सूर्य की लालिमा आकाशमंडल में व्याप्त होने लगी तो विभीषण सचेत हुए।

"प्रिय पवनपुत्र! हम दोनों को प्रभु प्रेरणा से समय का भान नहीं रहा और प्रभात होने ही वाला है।" विभीषण बोले-"अत: आप अपने कार्य को जाइए।"

"हे तात, कार्य भी प्रभु की इच्छा से ही संपन्न होते हैं। उनकी इच्छा के बिना तो तृण भी नहीं उड़ता। अब मुझे आज्ञा दीजिए।" हनुमान बोले।

इसके बाद विभीषण ने उन्हें सीता-दर्शन के सभी उपाय बताए और नगरी के सभी महलों, गलियों और घरों के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाया। वहां कैसी और कितनी सुरक्षा व्यवस्था है, इसके विषय में भी बताया, फिर दोनों रामभक्त स्नेह से गले मिले और हनुमान ने वहां से विदा ली।

38

सीताजी को सांत्वना

"माते! आपकी जैसी प्रीति प्रभु श्रीराम में है, उससे कहीं अधिक उनकी प्रीति आपमें है। उनका शरीर अवश्य वहां है, परंतु उनका मन आपके ही पास रहता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि प्रभु की आज्ञा होती तो मैं अकेला ही इस निशाचर दशानन का उसके योद्धाओं सहित संहार करके आपको सकुशल यहां से ले जाता, परंतु यह स्वामी के प्रताप की अवज्ञा होगी।" हनुमान सीताजी को सांत्वना देते हुए बोले—"अतः आप कुछ दिन धैर्य धारण करें और प्रभु श्रीराम की प्रभुताई पर विश्वास रखें।"
सीता के मन को बड़ा संबल मिला और उन्होंने प्रभु की मुद्रिका को हृदय से लगाया।

हनुमान सूर्योदय से पूर्व ही अशोक वाटिका आ गए थे और सूक्ष्म रूप में ही उस वृक्ष के पत्तों में छुपे बैठे थे जिसके नीचे सीताजी बैठी थीं। हनुमान ने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। सीताजी का ध्यान अपने स्वामी में है, यह तो स्पष्ट था, क्योंकि वे किधर भी दृष्टि नहीं उठा रही थीं। उनकी काया दुर्बल हो गई थी, परंतु तेज अभी भी दमक रहा था। उनके चारों ओर भयानक राक्षसियां बैठी थीं। ऐसे में भेंट तो संभव ही नहीं। जब सूर्य का प्रकाश धरा पर फैला तो हनुमान को सीता के स्पष्ट दर्शन हुए। हनुमान ने देखा कि एकाएक सभी राक्षसी सतर्क खड़ी हो गईं

और सीताजी ने एक तृण उठा लिया, जैसे वह नियमित क्रिया थी। तब हनुमान ने वहां दशानन को मंदोदरी और अन्य स्त्रियों के साथ आते देखा। अवश्य दशानन नित्य इसी समय आकर जानकीजी को भयभीत करता होगा।

"हे सुमुखी सीते! मैं नित्य की भांति तुम्हारे दर्शन करने आया हूं, परंतु तुम मेरी ओर दृष्टिपात न करके मुझे विकल करती हो।" दशानन ने कहा–"यह देखो, इन सभी परम सुंदरियों को देखो, जो कोई यक्षकन्या है तो कोई देवकन्या, सभी लंकाधीश का वरण करने के लिए व्यग्र हैं, परंतु हमने तुम्हारे कारण इन सभी को अस्वीकार कर दिया है। अत: हे सीते, तुम क्यों मुझे और स्वयं को कष्ट देती हो। छह माह होने को आए हैं, परंतु अभी तक किसी ने तुम्हारी सुधि नहीं ली। तुम वनवासी राजकुमारों की सब आशाएं त्यागकर मेरे प्रस्ताव को मानकर मेरी पटरानी बनना स्वीकार करो।"

हनुमान को अत्यंत क्रोध तो आया, परंतु क्या करते? यह क्रोध का समय नहीं था। इस समय बड़े धैर्य से कार्य सिद्ध करना था।

"हे दुर्बुद्धि दशानन!" सीता तृण की ओट से बोलीं–"तू क्यों मुझे अपने वाग्बाणों से पीड़ित करने चला आता है? अपने बल-पराक्रम का बखान अपने अनुचरों से कर और प्रसन्न हो ले, क्योंकि मैंने तो तेरी कायरता और निर्लज्जता अपनी आंखों से देखी है, जब तूने छल से मेरा हरण किया। अरे अधम, तुझे रघुनाथ के बाणों की तीक्ष्णता का भान नहीं है तो अपने मरे हुए भाई खर से पूछ, ताड़का और सुबाहु से पूछ। तू कौआ होकर हंसिनी की इच्छा रखता है।"

रावण सबके सामने इस अपमान को सहन न कर सका और अपनी तलवार निकालकर रक्तिम नेत्रों से घूरते हुए बोला–"सीते! मैं चंद्रहास से तेरा शीश उड़ाकर उस राम के पास भेज दूंगा जिसके बल पर तुझे अभिमान है। एक माह में या तो तू मेरी बात मान लेना, अन्यथा अपने जीवन का अंत समझ लेना। अब मैं नित्य यहां आकर तेरी कटु बातें नहीं सुनूं।"

"इतना समय तो तेरे संपूर्ण कुल का जीवन भी शेष नहीं है अधम! मेरे स्वामी को तू मात्र तपस्वी समझता है, लेकिन उनके पराक्रम का सामना करने में भय मानता है, तभी तो चोरों की भांति पंचवटी गया, दीनों की भांति भिक्षा मांगी और लुटेरे की भांति मेरा हरण कर लाया। अपनी कायरता का परिचय देते हुए तूने अपने अनुचरों को यह भी न बताया होगा कि तुझे एक पक्षी गिद्ध ने ही कितना पीड़ित कर दिया था।"

दशानन क्रोध से भरकर चंद्रहास निकालते हुए सीता की ओर दौड़ा, किंतु मंदोदरी ने तत्काल ही उसे रोक लिया।

"हे स्वामी! आप परम नीतिज्ञ हैं। जानते हैं कि स्त्री संकट व त्रास के समय केवल कटु वचन ही बोलती है। इसमें इसका क्या दोष है! स्त्री को जब तक अपने स्वामी की आशा रहती है, तब तक वह परपुरुष की ओर निहारती भी नहीं है। अब इसकी आशा क्षीण होती जा रही है, अत: आप अपने क्रोध को वश में कीजिए।" मंदोदरी ने कहा।

"मंदोदरे, भय के बिना प्रीति नहीं होती।" दशानन बोला–"आज तेरी बात मान लेता हूं।" फिर वह सीताजी के पहरे पर बैठी राक्षसी त्रिजटा से बोला–"हे त्रिजटे, तू अपनी सभी सखियों सहित इस सीता को भय देती रहना। यदि एक माह में यह अपनी हठ नहीं छोड़ती तो फिर इसके जीवन का कोई प्रयोजन नहीं।"

दशानन वहां से चला गया तो सीता विलाप करने लगीं।

हनुमान का हृदय फटा जा रहा था और क्रोध के कारण उनका अंग-प्रत्यंग कांप रहा था। यदि प्रभु की आज्ञा होती तो आज इसी समय दशानन के जीवन का समापन हो जाता।

दशानन के आदेश से कई राक्षसियां सीता को भय दिखाने लगीं तो त्रिजटा नाम की राक्षसी ने सबको डांटकर चुप कराया। वह सीता पर पुत्रीवत् स्नेह रखती थी और प्राय: उन्हें सुंदर वचनों से आश्वासन देती थी।

"हे सखियो!" त्रिजटा गंभीर स्वर में बोली–"हम राक्षसी देह की स्त्रियां हैं, अत: धर्म-अधर्म का विचार नहीं करतीं। सीता बड़ी पुण्यशीला, पतिव्रता व धर्म-अधर्म को जानने वाली है। इसके सतीत्व का प्रभाव हम सबको भस्म कर देगा। कल रात ही मैंने एक स्वप्न देखा है कि एक वानर ने सोने की लंका जला दी है और अनेक राक्षसों को मार दिया है। चारों ओर हाहाकार मच रहा है। मैंने यह स्वप्न भोर भए देखा है और भोर का स्वप्न सत्य ही होता है। अत: सत्य ही मानो कि कोई विपत्ति आने वाली है। तुम सब सीता को त्रास देकर क्यों कष्ट भोगने के कार्य करती हो?"

त्रिजटा की बात सुनकर सभी राक्षसियां वहां से हटकर इधर-उधर हो गईं।

"हे माता! इस पापनगरी में, जहां चहुं ओर अधर्म है, त्रास है, भय है, वहां एक तुम ही हो जिसने मुझे साहस दिया है। आज तुम मेरी एक इच्छा पूरी कर दो।"

"पुत्री, क्यों मन मलिन करती हो? अपने विश्वास को बनाए रखो। जो प्रभु श्रीराम दया के सागर हैं, वे अपने शत्रु की पीड़ा नहीं देख सकते तो तुम तो उनकी प्राणप्रिया हो! तुम्हारे हेतु तो वे इस ब्रह्मांड को भी नष्ट करके नई सृष्टि रच देंगे। फिर भी तू मुझसे क्या चाहती है, वह मुझे बता।" त्रिजटा ने कहा।

"माते, तुम मुझे कहीं से अग्नि लो दो और मैं सूखी लकड़ियां चुनकर अपनी चिता तैयार करती हूं। अब यह वियोग असह्य हो चला है।" सीता ने याचना की।

"हे क्षत्रियकन्या, हे रघुकुल की पुत्रवधु, हे परम पुरुष रघुवीर की अर्द्धांगिनी, यदि तुम ही ऐसी विकलता रखोगी तो संसार की साधारण स्त्रियां कहां जाएंगी? उन्हें धैर्य और साहस कौन देगा! हे देवी, तुम इस जगत के कल्याण की निमित्त हो। तुम ही तो श्रीरघुवीर का वह अमोघ बाण हो, जो संसार को कष्ट देने वाले दशग्रीव के दसों शीश काटेगा। हे जनकनंदिनी, तुम्हारे ही प्रताप से तो यहां सत्य-असत्य का आमना-सामना होगा और सत्य की महत्ता सिद्ध होगी।"

त्रिजटा सभी प्रकार के नीतियुक्त वचनों से सीता को समझाकर वहां से चली गई और सीता सिसक-सिसककर विलाप करने लगी।

हनुमान को अब धैर्य न रहा और उन्होंने श्रीराम की दी हुई मुद्रिका नीचे सीता के समीप डाल दी।

सीता ने आश्चर्य से उसे देखा और संदेहपूर्वक उठाकर हाथ में लिया। अंगूठी तो वह श्रीराम की थी, परंतु यहां कैसे? हर्ष के साथ उन्हें आशंकाओं ने भी घेर लिया।

हनुमान उनकी दुविधा समझ गए और मधुर स्वर में रामकथा सुनाने लगे। सीता भाव-विह्वल होकर सुन रही थीं। हनुमान ने राम-जन्म से लेकर सीता खोज तक का सब वृत्तांत सुना दिया।

"हे मेरे कानों को परम सुख देने वाले! तुम कौन हो और कहां हो?" सीता विकल स्वर में बोलीं–"तुम मेरे सामने आकर क्यों नहीं मुझे दर्शन देते?"

तत्काल अपने उसी सूक्ष्म रूप में हनुमान सीता के सामने आ गए।

"प्रणाम माते! मैं प्रभु श्रीराम का सेवक और पवनपुत्र आंजनेय हनुमान हूं। प्रभु श्रीराम ने मुझे आपकी खोज में भेजा था और उनकी कृपा से मैं इस कार्य में सफल हो गया हूं। हे माते! अब आप निश्चिंत रहें। इस दुष्ट दशाननन का कुल सहित नाश होने का समय आ गया है। आप विकल न हों।"

"हे कपिराज, यह मुद्रिका तो मेरे ही प्राणनाथ की है, परंतु मेरे मन में एक संदेह उठता है कि नर और वानर का संग कैसे हुआ?"

"माते, आप सर्वज्ञ साक्षात् रमा हैं, अतः आपसे क्या छुपा है। आप और प्रभु की यह नरलीला कितनी मनोहर है, फिर भी हे माते, आपके संदेह को दूर करने के लिए मैं वह कारण बतता हूं जिससे कृपानिधान ने हम वानरों को भी अपनी सेवा का अवसर दिया है। जो हम पशु समान वानरों पर इतना स्नेह करते हैं, उन प्रभु श्रीराम की गाथा निराली है।" हनुमान ने भक्तिपूर्वक सब कथा कह सुनाई।

सीता प्रेम-विह्वल होकर प्रभु की सुंदर मूर्ति नेत्रों में स्थिर करके अश्रु बहाने लगीं कि आज प्रभु ने उनकी सुधि ली है।

"हे रामदूत, आज आपने मुझे इस प्रकार सुख दिया है, जैसे रेत पर तड़पती मीन के मुख में अनायास ही जल की बूंदें टपका दी गई हों। अब तुम मेरे स्वामी के विषय में बताओ—क्या वे भी मुझे ऐसे ही स्मरण करते हैं, जैसे मैं उनका नाम हर सांस के साथ जपती हूं? क्या उन्हें अपनी जानकी की सुधि है?"

"हे माते! कहीं सीप के बिना मोती का अस्तित्व होता है! प्राण के बिना देह कैसे रह सकती है। प्रभु के हृदय में आप ऐसे ही विद्यमान हैं, जैसे चंद्रमा में शीतलता! प्रभु का ऐसा कोई भी क्षण नहीं होता जिसमें आपका नाम न आता हो। दिन-रात आपके ही नाम को रटने वाले करुणासागर ने मुझसे कहा था कि हे हनुमान, जब सीता से भेंट हो तो उनसे कहना कि हे सीते, तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं। सभी रस रसहीन हो गए हैं।"

सीता के छलकते अश्रु और भी तेज बरसने लगे थे।

"माते! आपकी जैसी प्रीति प्रभु श्रीराम में है, उससे कहीं अधिक उनकी प्रीति उनकी आपमें है। उनका शरीर अवश्य वहां है, परंतु उनका मन आपके ही पास रहता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि प्रभु की आज्ञा होती तो मैं अकेला ही इस निशाचर दशानन का उसके योद्धाओं सहित संहार करके आपको सकुशल यहां से ले जाता, परंतु यह स्वामी के प्रताप की अवज्ञा होगी।" हनुमान सीताजी को सांत्वना देते हुए बोले—"अतः आप कुछ दिन धैर्य धारण करें और प्रभु श्रीराम की प्रभुताई पर विश्वास रखें।"

सीता के मन को बड़ा संबल मिला और उन्होंने प्रभु की मुद्रिका को हृदय से लगाया।

"माते! बहुत लंबी यात्रा करके आया हूं और भूख से विकल हो रहा हूं। इस वाटिका के रसीले फल देखकर स्वभाववश मन ललचा रहा है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं कुछ फल खाकर अपनी क्षुधा शांत कर लूं!" हनुमान बोले।

"पुत्र! यहां रावण के अनुचर प्रहरी हैं, जो बड़े विकट योद्धा हैं।"

"माते, जिस पर प्रभु श्रीराम की कृपा हो, माता का आशीर्वाद हो, उसे किसी का भय क्योंकर होगा! आप बस आज्ञा दें।"

"अच्छा पुत्र! तुम अपनी भूख शांत करो।" सीता ने आज्ञा दी।

फिर क्या था! हनुमान ने उस उद्यान को थोड़ी ही देर में अस्त-व्यस्त कर दिया। उद्यान के प्रहरी दौड़े आए और हनुमान को पकड़ने के लिए इधर-से-उधर भागने लगे। हनुमान अपनी वानर-सुलभ चंचलता से सबको परेशान करने लगे।

वे फल तोड़कर किसी की नाक पर दे मारते और किसी को चिढ़ाकर आनंद लेते। कभी कपि-सुलभ चीख से रोंगटे खड़े कर देते। हनुमान देखते-ही-देखते अशोक वाटिका उजाड़ने लगे। इसी कारण उनके ऊपर चारों ओर से राक्षसों का आक्रमण होने लगा, तब हनुमान अपने रौद्र रूप में आ गए और एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़कर राक्षसों के प्राण लेने लगे।

सीता हनुमान के इस अतुल पराक्रम पर हर्षित थीं। हनुमान ने बताया था कि उनके जैसे असंख्य वानर वीर श्रीराम की सेवा में प्राण देने को तत्पर थे। कैसा तेज और बल था हनुमान में कि वे राक्षसों को अपनी पूंछ से लपेटते और घुमाकर वृक्ष पर दे मारते। कितने ही राक्षस मृत्यु को प्राप्त हुए, कुछ प्राण बचाकर रावण को इस अनोखी विपत्ति का समाचार देने दौड़े।

हनुमान द्वारा यह खिलवाड़ जारी था। सीता एक बार तो अपने सभी कष्ट ही भूल गई थी। हनुमान की इस लीला ने उनके संतप्त हृदय को बड़ी शांति प्रदान की।

39

हनुमान को अमरता का वरदान

हनुमान पुनः अशोक वाटिका पहुंचे और चिंताग्रस्त सीता को प्रणाम किया।
"वत्स हनुमान! तुम सुरक्षित लौट आए–प्रभु की बड़ी कृपा हुई। मेरा तो हृदय ही बैठा जा रहा था कि ब्रह्मपाश में बंधे पवनकुमार के साथ निर्दयी दशानन न जाने किस प्रकार का व्यवहार करेगा।" सीता ने भाव-विह्वल होकर कहा–"पुत्र! यह भीषण आग कहां लगी है?"
हनुमान ने लंका दहन की सारी बात हंस-हंसकर बताई तो सीता बड़ी हर्षित हुईं।
"हे पुत्र! तुम अजर, अमर और सर्वगुण संपन्न हो जाओ। तुम सदैव प्रभु श्रीराम के कृपापात्र रहो, मेरा यही आशीर्वाद है।" सीता भाव-विभोर होकर बोलीं।

लंकापति रावण अपने भव्य दरबार में बैठा नृत्यगान का आनंद ले रहा था। गंधर्व वाद्य बजा रहे थे और देव-कन्याएं नृत्य कर रही थीं। दरबारी प्रतिदिन की तरह ही मद्यपान करते हुए उस कार्यक्रम का आनंद ले रहे थे। अचानक उसमें व्यवधान पड़ा।

अशोक वाटिका से प्राण बचाकर भागे कई घायल कराहते-तड़पते दरबार में आ गए।

"राक्षसराज की दुहाई हो! रक्षा करो, रक्षा करो!" सबने पुकार की।

रावण ने क्रोध से सिंहासन छोड़ा और खड़ा हो गया।

"रक्षा करो! किससे रक्षा करो? देव, गंधर्व, यक्ष, किन्नर तो सब दशानन के अधीन हैं।" रावण ने अहंकार भरी वाणी से कहा—"तुम लोगों की यह दशा किसने की? क्या आपस में ही लड़ मरे मूर्खों?"

"महाराज, अशोक वाटिका में एक उत्पाती वानर न जाने कहां से आ घुसा है! उसने वाटिका के सभी फल और वृक्षों को तहस-नहस कर दिया। जब हमने उसे पकड़ने का प्रयास किया तो उसने कितनों को ही मार दिया। हम आपको सूचना देने प्राण बचाकर यहां भागे चले आए।"

"वानर! लवणसागर के बीच में बसी लंका में वानर कहां से आ गया? हमारे द्वार रक्षक क्या निद्रामग्न थे?" रावण ने दांत किटकिटाते हुए गरजकर कहा—"और एक वानर इतना शक्तिशाली कैसे हो सकता है? मूर्खो! कहीं कोई स्वप्न तो नहीं देखा है?"

"नहीं महाराज, हम सत्य कह रहे हैं। आप स्वयं चलकर देख लीजिए। वह अभी भी वहां विध्वंस मचा रहा है।" राक्षस ने कहा।

"हूं।" रावण के नेत्र दहक उठे—"महाबलवान दशानन की लंका में एक वानर ने प्रवेश करने का दुस्साहस किया! अशोक वाटिका को उजाड़ दिया? मूर्ख को उसकी करनी का ऐसा कठोर दंड दिया जाएगा कि वह आजीवन स्मरण करेगा। पुत्र अक्षय कुमार, तुम शीघ्र ही अपने साथ कुछ बलशाली योद्धाओं को लेकर जाओ और उस वानर को जीवित ही पकड़कर लाओ।"

"जो आज्ञा पिताश्री! मैं उस दुष्ट वानर को ऐसे पकड़ लाऊंगा जैसे बिल्ली चूहे को दबोच लेती है।" अक्षय कुमार नाम का दशानन का पुत्र बोला—"आप निश्चिंत रहें, आपके बल को चुनौती देने वाला दुष्ट शीघ्र ही आपके समक्ष होगा।"

अक्षय कुमार ने अपने साथ कई बलवान राक्षस लिये और क्रोध में भरकर अशोक वाटिका की ओर चला गया।

"सेनापति!" रावण ने कहा—"सुरक्षा के इतने साधनों के होते हुए भी कोई वानर लंका में प्रवेश कैसे कर गया? यह सुरक्षा के प्रति उदासीनता का प्रतीक है। आज एक वानर आया, कल को चार और परसों चार सौ आ जाएंगे। दोषियों को चिह्नित करके कठोर दंड दो जिससे अन्य प्रहरी सजग रहें।"

"आज्ञा का पालन होगा महाराज!" सेनापति सुमाली ने कहा—"इतनी उत्कृष्ट सुरक्षा व्यवस्था के होते हुए भी यदि ऐसा होता है तो यह निश्चित रूप से अच्छा संकेत नहीं। उस वानर को आ जाने दीजिए, हम उससे ही पूछेंगे कि उसने किस

प्रकार यह असंभव कार्य कर दिखाया और वह किसके द्वारा भेजा हुआ यहां आया है।"

दशानन ने सहमति में सिर हिलाया। उसके मस्तिष्क में गहन विचार चल रहा था। वानर का लंका में प्रवेश करना शुभ संकेत नहीं था। अभी वह कुछ और सोचता, उससे पहले ही उसकी तंद्रा को एक झटका लगा।

"अक्षय कुमार मारा गया। वानर ने राजकुमार अक्षय को मार दिया। कई राक्षस आर्तनाद व आतंकित स्वर में कहते हुए दौड़ते आए।"

दशानन का हृदय जैसे सन्निपात हो गया। उसकी मुट्ठियां सिंहासन के हत्थों पर कस गईं और एक हिचकी-सी आई। पुत्र के वध की सूचना किस पिता को हिलाकर न रख देगी! परंतु अहंकार दशानन जैसे पिता को अधिक सोचने नहीं देता।

"अक्षय कुमार मारा गया? वह पराक्रमी अक्षय जिसने गंधर्वों को पराजित किया, उसे एक वानर ने मार दिया! आश्चर्य! पुत्र मेघनाद, तुमने सुना? क्या तुम्हारा भाई तुमसे कम पराक्रमी था। जाओ, शीघ्र जाओ और उस वानर को बंदी बनाकर हमारे समक्ष प्रस्तुत करो।" दशानन ने गरजकर आदेश दिया।

इंद्रजीत मेघनाद क्रोध में उठकर वहां से चला ही था कि रावण ने उसे रोका।

"पुत्र, तुम्हारे पराक्रम पर संदेह करना दिन में सूर्य के अस्तित्व को न मानने की भांति है। तुमने इंद्र को भी युद्ध में भागने पर विवश किया है।" दशानन ने मेघनाद से कहा-"किंतु अपने भाई के वधिक को वहीं मत मारना, बल्कि किसी भी प्रकार जीवित ही यहां लाओ।"

मेघनाद ने अपने साथ कई बलवान योद्धा लिये और अशोक वाटिका में आया। वाटिका की दशा देखकर वह क्रोध से उन्मत हो गया। अनेक राक्षसों के शव इधर-उधर पड़े थे। वृक्ष, फल, फूल एवं लताएं आदि सब ध्वस्त थे और वानर का उत्पात अभी भी जारी था। वह विशालकाय वानर, वाटिका में जो शेष था, उसे भी ध्वंस कर देना चाहता था।

"अरे, अरे वानर! तूने ब्रह्मांड के सबसे शक्तिशाली सम्राट लंकाधीश दशानन की राजधानी में अनधिकृत प्रवेश करने का अपराध तो किया ही है, साथ ही यहां ऐसा उत्पात करके अपनी मृत्यु को निश्चित कर लिया है। तूने हमारे प्रिय अनुज को भी मार दिया। अब तू लंकाधीश की क्रोधाग्नि से कदापि नहीं बच सकता।"

"अहंकार से भरे इस कुल में क्या कोई भी विवेकवान नहीं है, जो लक्षण देखकर भी परिणाम के विषय में नहीं सोचता। ऐसे ही अहंकार भरे वचन तेरे

भाई ने भी कहे थे जिसकी अब मृत देह भूमि पर लोट रही है। क्या आज मेरे ही हाथों से अहंकारी दशानन पुत्रहीन होगा?" हनुमान ने कहा–"इंद्र को जीतकर स्वयं को अपराजेय समझने की भूल न कर मेघनाद! यह इंद्र नहीं साक्षात् रुद्र है। जीवन चाहता है तो यहां से लौट जा।"

मेघनाद ने क्रोध में भरकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर दी, परंतु हनुमान की चपलता के कारण सभी बाण उनकी गदा से टकराकर नष्ट हो गए। फिर हनुमान ने बड़े वेग से गदा का प्रचंड प्रहार मेघनाद पर किया। मेघनाद उस वज्रसमान प्रहार से बाल-बाल तब बचा, जब वह रथ से कूद गया और रथ चकनाचूर हो गया। अब मेघनाद को प्रतिद्वंद्वी की शक्ति का आभास हो गया था और उसने अंतिम उपाय के रूप में ब्रह्मपाश का प्रयोग किया। हनुमान असमंजस में पड़ गए। ब्रह्मपाश की काट वे जानते थे, परंतु ऐसा करके वे परमपिता का निरादर नहीं करना चाहते थे, अतः हाथ जोड़कर खड़े हो गए। पाश ने उन्हें बांध लिया और मेघनाद ने विजयी उत्साह से उन्हें पकड़ लिया। हनुमान ने कोई विरोध न किया और मेघनाद उन्हें लेकर दरबार आ गया।

दशानन हनुमान को देखते ही क्रोध से भरकर उठ खड़ा हुआ। सर्वप्रथम उसने अपने पुत्र मेघनाद के पराक्रम की प्रशंसा की, जो उसके अहंकार और निर्लज्जता का प्रतीक था।

"अरे वानर, तू कौन है और कहां से आया है, जो हमारे बल और पराक्रम का भय न मानकर यहां उत्पादत कर रहा है? तेरा स्वामी कौन है?" दशानन गरजकर बोला–"तू नहीं जानता कि हम तेरा आहार करते हैं।"

"निर्लज्ज दशानन!" हनुमान ने गर्वपूर्ण स्वर में कहा–"मेरे स्वामी का तो नाम सुनकर भी बड़े-बड़े अधम मोक्ष पा जाते हैं। मेरे स्वामी वे हैं जिनकी प्रेरणा पाकर ही माया अनेक ब्रह्मांडों का सृजन करती है। मेरे स्वामी के ही बल से त्रिदेवों द्वारा सृष्टि त्रिगति (सृजन, पालन व संहार) को प्राप्त होती है। हे दशग्रीव, मैं उन सदा स्मरणीय प्रभु श्रीराम का सेवक हूं जिन्होंने शिव के उस कठोर धनुष को तृण की भांति तोड़ डाला था, जो तुझसे सूत-भर भी न हिला था। जिन्होंने खर-दूषण त्रिशिरा और बालि को क्षण-भर में मार गिराया, वही रघुवीर मेरे स्वामी हैं।"

दशानन हनुमान को एकटक देखता रह गया।

"मैं अपने स्वामी की आज्ञा से जानकीजी की खोज में आया था। वाटिका में मुझे भूख लगी तो वृक्षों से तोड़कर फल खाने लगा। स्वभाववश कुछ खाए और कुछ फेंके। जब तुम्हारे रक्षकों ने मुझ पर आक्रमण किया तो मैंने प्रतिकार

किया। वे जितने बलवान दिखाई देते थे, उतने थे नहीं। सब मारे गए। तुम्हारा पुत्र भी अपने पराक्रम का गुण गाता गया था, परंतु मेरे दो वार भी न सह सका तो श्रीरघुवीर के बाणों पर तो काल स्वयं जिह्वा लपलपाता है। उनके क्रोध से इस कुल को कौन बचाएगा? अतः हे दशानन! अभिमान त्यागकर और अपने कुल का हित सोचकर प्रभु श्रीराम की शरण में आ जाओ। वे दयानिधि श्रीराम तुम्हारे अपराधों को भी क्षमा कर देंगे, क्योंकि वे शरणागत के रक्षक हैं। यशस्वी मुनि पुलस्त्य के इस पवित्र कुल के यश को कलंकित न करो। श्रीराम से बैर करना महान मूर्खता है। जो रामद्रोही है, उसकी रक्षा हजारों शिव भी नहीं कर सकते।"

दशानन क्रोध के कारण भन्ना गया और चंद्रहास निकालकर हनुमान की ओर बढ़ा। कुछ तो पुत्र के वध का क्रोध और कुछ राम की महिमा से अप्रसन्नता ने उसके विवेक को नष्ट कर दिया था। यदि विभीषण बीच में न आ गए होते तो वह प्रहार कर ही बैठता।

"हे राक्षसराज! आप यह क्या अनर्थ करने जा रहे हैं। सभी नीतियों का ज्ञान रखने वाले लंकाधीश क्या क्रोध में यह भी भूल गए कि दूत का वध नहीं करना चाहिए। इससे पाप और अपयश दोनों लगते हैं। हे नीति-निधान, यदि इसने कोई अपराध ही किया है तो इसे कोई दूसरा दंड दिया जाना उचित है।" विभीषण ने विनयपूर्वक कहा–"आप अपने न्याय पर दृढ़ रहिए।"

"तुम ठीक कहते हो अनुज! इस दुष्ट वानर ने कार्य तो मृत्युदंड का किया है, परंतु यह दूत बनकर आया है तो बच गया। अब इसे दंड तो अवश्य मिलेगा। यह वानर है और वानर को अपनी पूंछ बड़ी प्रिय होती है। बिना पूंछ के बंदर की कोई शोभा नहीं होती है। अतः इस दुष्ट वानर की पूंछ पर तेल से भीगा कपड़ा आदि लपेटकर उसमें आग लगा दो। जब यह बिना पूंछ का अपने स्वामी के पास पहुंचेगा तो इसे हमारे बल और सामर्थ्य का अनुभव हो जाएगा।" दशानन ने कहा।

हनुमान मन-ही-मन हंसे। कैसी मूर्खता कर रहा था दशानन, अब उस भली राक्षसी त्रिजटा का स्वप्न सत्य ही होकर रहेगा–लंकादहन अवश्य ही होगा।

अग्निदाहक रसायन व कपड़ों का ढेर लगाया गया और कई राक्षस हनुमान की पूंछ पर कपड़ा लपेटने लगे। हनुमान विनोदी हो गए और अपनी पूंछ का विस्तार करने लगे। कपड़ा कम पड़ गया तो और कपड़ा लाया गया। अंततः वहां पड़ा समस्त कपड़ा लपेट दिया गया और तेल छिड़क दिया गया। दशानन के आदेश पर हनुमान को नगर-भ्रमण कराया गया। नगर के नर-नारी और बालक उस विचित्र वानर को देखकर उपहास कर रहे थे। तालियां बजा रहे थे।, उन्हें कंकड़ मार रहे

थे। हनुमान भी अपनी वानर-सुलभ मुद्राओं से उनका मनोरंजन कर रहे थे। सबको बड़ा आनंद आ रहा था, किंतु वे मूर्ख नहीं जानते थे कि क्या होने वाला है।

इसके बाद हनुमान की पूंछ में आग लगा दी गई और राक्षस तालियां बजाकर हंसने लगे। हनुमान कूदकर एक महल पर चढ़ गए और अपनी पूंछ से सोने की गुंबद को जला दिया जिसने क्षण-भर में आग पकड़ ली। अब तो कोलाहल मच गया। हनुमान अब इस अट्टालिका से दूसरी अट्टालिका पर कूदते और आग लगा देते। विभीषण के महल को छोड़कर सारी लंका धूं-धूं करके जलने लगी। सोना पिघलकर बहने लगा था और चारों ओर हाहाकार मच गया था। लोग दशानन की बुद्धि को कोस रहे थे कि उसे ऐसा ही दंड क्यों सूझा। स्त्रियां-बच्चे विलाप कर रहे थे और राक्षसगण प्राण बचाते हुए इधर-से-उधर भागे फिर रहे थे।

दशानन का महल भी उस दहन से बच न सका और अंत:पुर में भगदड़ मच गई। जिसके केश खुले थे, वह खुले केशों से ही भाग खड़ी हुई। जो स्नान कर रही थी, वह अधूरा छोड़कर ही भाग खड़ी हुई। वृद्ध, अपाहिज ऐसे अग्निकांड में भी कैसे सुरक्षित थे, यह वे स्वयं नहीं जान पाए। निर्बल, नि:शक्तों की रक्षा करने वाले प्रभु श्रीराम निपराधों की रक्षा तो करते हैं।

धूं-धूं जलते दरबार के बाहर खड़े रावण और सभी दरबारी हत्प्रभ थे और किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था कि उस भीषण दहन कांड को कैसे रोका जाए। आश्चर्य तो इस बात का था कि आज जैसे उनचासों प्रकार की पवन बह रही थी। विभीषण ही जानते थे कि प्रभु की प्रेरणा से हनुमान के प्रताप को यशस्वी बनाने के लिए आज सब उनके अनुकूल हो रहा था। दशानन सहित अनेक योद्धा दिव्यास्त्रों का प्रयोग जानते थे और वरुणास्त्र से वर्षा कराई जा सकती थी, परंतु जब संकट आता है तो मति पहले ही हर लेता है। दावानल में भस्म होती लंका को देखकर रावण भी विवेकशून्य हो गया था।

हनुमान अपना पराक्रम दिखा चुके थे और अब उन्होंने समुद्र में कूदकर अपनी पूंछ में लगी आग बुझाई। जिन पर प्रभु श्रीराम की कृपा थी और अग्नि जिनके लिए सहोदर समान थी, उस महाबली हनुमान की पूंछ वैसे ही सुरक्षित थी।

हनुमान पुन: अशोक वाटिका पहुंचे और चिंताग्रस्त सीता को प्रणाम किया।

"वत्स हनुमान! तुम सुरक्षित लौट आए–प्रभु की बड़ी कृपा हुई। मेरा तो हृदय ही बैठा जा रहा था कि ब्रह्मपाश में बंधे पवनकुमार के साथ निर्दयी दशानन न जाने किस प्रकार का व्यवहार करेगा।" सीता ने भाव-विह्वल होकर कहा–"पुत्र! यह भीषण आग कहां लगी है?"

हनुमान ने लंका दहन की सारी बात हंस-हंसकर बताई तो सीता बड़ी हर्षित हुईं।

"हे पुत्र! तुम अजर, अमर और सर्वगुण संपन्न हो जाओ। तुम सदैव प्रभु श्रीराम के कृपापात्र रहो, मेरा यही आशीर्वाद है।" सीता भाव-विभोर होकर बोलीं।

"माते! आपका आशीष अमोघ है। अब आप मुझे जाने की आज्ञा दें जिससे मैं प्रभु को आपका समाचार दे सकूं और कृपया अपना कोई प्रतीक चिह्न भी दीजिए माता!"

"मेरी यह चूड़ामणि ले जाओ पुत्र! प्रभु श्रीराम से निवेदन करना कि वे मुझ विरहिनी पर दया करें और मुझे इस संताप से विमुक्त कराएं। उन्हें उनके बल व बाण के पराक्रम का स्मरण कराकर कहना कि दशानन उनकी सीता को वाग्बाणों से पीड़ित करता है। कहना कि इस माह में यदि वे नहीं आ सके और विलंब से आए तो फिर मुझे जीवित न पाएंगे। अब तक इसी आशा पर प्राणों को कंठ में स्थिर किए जी रही हूं कि रघुनंदन एक दिन अवश्य ही मुझे संतापमुक्त करने आएंगे।"

"माते! करुणानिधान प्रभु श्रीराम के आश्रय रहने वालों को अवश्य ही सुख प्राप्त होता है। शबरी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी तो उसका उद्धार हुआ। सुग्रीव ने उनका आश्रय लिया तो राजपाट पा लिया। हे माते, आप तो उनकी प्राणप्रिया हैं और वे आपके प्रेम के आश्रय हैं। प्रभु शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे।"

सीता ने आशीर्वाद देकर हनुमान को विदा किया, तथापि उन्हें बड़ा क्षोभ-सा हो रहा था। हनुमान से मिलकर सीताजी को जिस प्रसन्नता का अनुभव हुआ था, अब वह क्षीण हो रहा था। पुन: वही राक्षसियों और उनके भयानक कौतुक देखने को मिलेंगे, परंतु समय से पूर्व शांति मिले भी तो कैसे?

अंगद सहित सभी वानरदल लवणसागर के तट पर बैठे हनुमान की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें जब भूख लगती तो कंद-मूल व फल खा लेते और फिर बैठ जाते। वानर स्वभाव से चंचल तो होते ही हैं, अत: एक स्थान पर टिककर बैठ भी नहीं सकते तो बच्चों के से कौतुक करते हैं। कोई रेत में घरोंदे बनाकर तोड़ता है तो कोई समुद्र की फेन को दूसरे के शरीर पर मल देता है। कभी वे आपस में बालूमार होली शुरू कर देते हैं।

जामवंत उन सबमें अनुभवी और वृद्ध थे और वही सबको शांत रखने के प्रयास करते थे। वे वानरदल को प्राचीन इतिहास, सृष्टि का विस्तार, दिति-अदिति, वामनावतार, नरसिंह अवतार, मत्स्यावतार आदि के सुंदर वृत्तांत सुनाते हैं। सदा शंकालु इंद्रदेव के विषय में रोचक प्रसंग सुनाते हैं, फिर रामकथा भी सुनाते हैं।

रात्रि के समय तो सब बड़े चाव से सुनते हैं, परंतु दिन में पुनः उनके मन पर चंचलता छा जाती है। कई दिन गुजर गए, तब अंगद की चिंता बढ़ी, क्योंकि सारा भार उसे ही सौंपा गया था।

"हे तात! क्या महाबली अपना कार्य सफल करके आएंगे? मुझे बहुत चिंता हो रही है। महाराज सुग्रीव के दिए हुए समय में कुछ ही दिन शेष हैं। उन्होंने कठोर शब्दों में कहा था कि निश्चित अवधि में जो शुभ समाचार न लाये तो अपने हाथों से मेरे प्राण ले लेंगे।"

"युवराज!" जामवंत स्नेह भरे स्वर में बोले–"वीरवर हनुमान को साधारण वानर न समझो। वे रुद्र के अंश से अवतरित हुए हैं और प्रभु श्रीराम के श्रेष्ठ सहायक की भूमिका में हैं, अतः तुम निश्चिंत रहो। वे अपना लक्ष्य समझते हैं कि प्रभु के कार्य उन्हें संपन्न करने हैं।"

40

हनुमान की प्रशंसा

"हे रघुनाथजी, आपकी कृपा से वह कार्य सफल हुआ, जो आपने आदेश किया था। पवनपुत्र हनुमान ने अपार बल और साहस का प्रदर्शन करते हुए माता जानकी के दर्शन किए हैं।" सुग्रीव ने सहर्ष बताया।

"हे हनुमान, तुम्हारी कहां तक प्रशंसा करूं!" राम भाव-विह्वल होकर बोले-"तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो। तुमने मेरे संताप दूर कर दिए हैं।"

"प्रभु, मेरी ऐसी सामर्थ्य कहां? यह तो आपकी ही कृपा का फल है। कोई भी कार्य आपकी प्रेरणा के बिना न आरंभ होता है और न उसका समापन होता है।"

युवराज अंगद निराश स्वर में बोले-"तात! जब समय विपरीत होता है तो शुभ भी अशुभ होने लगता है। राजसुख में बड़े स्वार्थ होते हैं। कहीं इस बहाने महाराज मुझे अपने मार्ग से न हटा दें।"

"ऐसे कुविचार न सोचो युवराज!" जामवंत ने कहा-"महाराज सुग्रीव के हृदय में ऐसी कोई भावना नहीं है। मैं उन्हें निकट से जानता हूं। वे कदापि भी इतने कुटिल नहीं हैं। यह तुम्हारा कोई भ्रम हो सकता है। प्रभु श्रीराम के संग से तो अधमों के हृदय भी निर्मल हो जाते हैं, महाराज सुग्रीव तो फिर भी नीति, न्याय और धर्म को जानने वाले हैं। उन्होंने

प्रभु के कार्य को सहज संपन्न करने के संदर्भ में यह कठोर आदेश दिया है, जो एक कुशल राजा द्वारा दिया जाता है। प्रायः शुभ परिणाम में भय की भी भूमिका होती है।"

जामवंत के इन सारपूर्ण वचनों से अंगद को आश्वासन मिला, तभी तट पर खेल रहे वानरों में हर्ष भरा कोलाहल उठा।

"महाबली आ गए! हनुमान आ गए! प्रभु श्रीराम की जय!"

अंगद ने हर्षित होकर समुद्र की ओर देखा कि वीरवर हनुमान उसी ओर तीव्र वेग से उड़े चले आ रहे थे। वानरदल नृत्य करने लगा था। जामवंत के नेत्र भी चमक उठे। कुछ ही क्षणों में महावीर हनुमान उनके समीप आकर खड़े हो गए। उन्होंने जामवंत को सादर प्रणाम किया तो उनके नेत्रों में सफलता की चमक थी। अंगद आदि सभी युवा वानरों ने हनुमान के चरणों में शीश झुकाकार प्रणाम किया तो हनुमान ने सबको स्नेह के साथ हृदय से लगाया।

"रघुकुल शिरोमणि प्रभु श्रीराम की–जय।" सबने जयनाद किया।

"हे महाबली, हमारे प्राण कंठ में अटके थे।" अंगद ने करबद्ध होकर विनयपूर्वक कहा–"महाराज की कठोर चेतावनी बार-बार स्मरण हो आती थी। हृदय कंपित हो जाता था कि क्या हम इस कार्य को सफल कर सकेंगे, परंतु हे महाबली! आपके आने से हमारी चिंता दूर हो गई। आप अवश्य ही कार्य सफल करके आए होंगे?"

"प्रभु की जिस पर कृपा रहे, वह किसी भी कार्य में असफल नहीं होता युवराज! जो उन करुणाकर श्रीराम के आश्रय होते हैं, वे असाध्य को भी साध्य कर देते हैं। बाधाएं अवश्य आती हैं, परंतु सब दूर हो जाती हैं।" हनुमान ने कहा।

"अर्थात् आप माता जानकी की खोज कर आए हैं?" जामवंत हर्षित हुए।

"हां मित्रो! अब हमें शीघ्र ही शुभ समाचार प्रभु को सुनाना चाहिए जिससे भविष्य की योजना बनाई जा सके। समय का बहुत अभाव है।"

सभी प्रसन्नतापूर्वक किष्किंधा की ओर लौट पड़े। मन में भारी उत्साह था। मृत्यु का भय दूर हो गया था। हंसते-खेलते प्रभु श्रीराम की जय-जयकार करते सभी कभी दौड़कर दूर तक चले जाते थे और फिर रुककर पीछे आने वालों की प्रतीक्षा करते थे। कोई वन, उपवन मिल जाता था तो निर्भय होकर फल खाने लगते। कुछ ही दिनों में सभी किष्किंधा पहुंच गए, जहां सुग्रीव ने उनकी भाव-भंगिमाओं से ही जान लिया था कि वे प्रभु के कार्य में सफल होकर लौटे हैं। अंगद ने सुग्रीव के चरण स्पर्श किए तो उसने उसे अनुराग के साथ हृदय से लगा लिया। अंगद के मन की सभी शंकाएं समाप्त हो गईं। उसने सोचा कि

अकारण ही अपने पितातुल्य चाचा पर संदेह किया। हनुमान को भी सुग्रीव ने हृदय से लगाकर कुशल-क्षेम पूछी।

"महाराज, जिस पर श्री रघुनाथ की कृपा होती है, उस पर सभी कृपा करते हैं–उसके लिए सभी पदार्थ अनुकूल हो जाते हैं।" हनुमान भक्ति भाव से बोले।

"हे महावीर, यद्यपि आपके मुख और नेत्रों का तेज कह रहा था कि आप अपने कार्य में सफल होकर लौटे हैं। सभी साथियों का उत्साह इसकी पुष्टि करता है, फिर भी हे सखा, तुम मेरे हृदय की विकलता को समझते हुए अपने श्रीमुख से मुझे संतुष्ट करने की कृपा करो।" सुग्रीव ने कहा।

"महाराज, प्रभु श्रीराम की कृपा से मैं अपने कार्य में पूर्ण रूप से सफल हुआ हूं। मुझे माता जानकी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और उनसे विशेष वर भी मिला है। इसके साथ ही उस दुष्ट दशानन के अहंकार को तोड़ने का अवसर मुझे मिला। यदि उसमें अब जरा भी विवेक होगा तो वह शीघ्र ही प्रभु श्रीराम का शरणागत होगा।" हनुमान ने बताया।

"तुम धन्य हो पवनपुत्र! तुम संकटमोचक हो। मित्रों के रक्षक हो।" सुग्रीव ने भाव-विभोर होकर उन्हें गले से लगाया–"जगत में ऐसा कौन काम है, जो तुम्हारे किए संपन्न न होगा। प्रभु की तुम पर असीम कृपा है, क्योंकि असंभव को संभव वही करता है, जो प्रभु के बल पर आश्रित हो। हे मारुतनंदन, तुम्हारे पराक्रम और भक्ति की कोई तुलना नहीं हो सकती।"

"महाराज, अब मेरा हृदय प्रभु श्रीराम के दर्शनों को व्याकुल हो रहा है। वह मेरी राह देखते होंगे। भक्त को कभी अपने भगवान को प्रतीक्षा नहीं करानी चाहिए और न ही शुभ कार्य में विलंब करना चाहिए।" हनुमान ने नीतिपूर्ण वचन कहे।

"तुम्हारा कथन सत्य है पवनपुत्र! हम नित्य उनके दर्शन को जाते हैं और वे नित्य आपके विषय में पूछते हैं। उनके मनोहर मुख की आभा से ब्रह्मांड तो आभायुक्त रहता है, परंतु उनके नेत्रों की विकलता से मन व्याकुल हो जाता है। वे जब यह समाचार सुनेंगे तो निश्चय ही उनके हृदय में उत्पन्न प्रसन्नता उनके नेत्रों में आकर सर्वत्र शीतलता कर देगी। आओ, हम सब उन दयानिधान के दर्शन करने चलते हैं।" सुग्रीव ने कहा।

सभी हर्षित होकर नृत्य-गान और श्रीराम का जयघोष करते हुए प्रवर्षण पर्वत की ओर चल दिए। उनके जयघोष से वह वन पर्वतीय क्षेत्र गूंज उठा था। इस जयघोष को सुनकर उस कंदरा से लक्ष्मण भी निकल आए और हर्ष से भर उठे। सुग्रीव आदि का यह उत्साह अपने आप में पूर्ण व्याख्या था।

जब सभी कंदरा के सामने पहुंचे तो राम भी वहां आ गए। हनुमान सहित सभी वानर वीर उनके चरणों में नत हो गए। राम ने सभी को हृदय से लगाया, फिर राम और लक्ष्मण अपने आसनों पर बैठ गए।

"हे रघुनाथजी, आपकी कृपा से वह कार्य सफल हुआ, जो आपने आदेश किया था। पवनपुत्र हनुमान ने अपार बल और साहस का प्रदर्शन करते हुए माता जानकी के दर्शन किए हैं।" सुग्रीव ने सहर्ष बताया।

"हे हनुमान, तुम्हारी कहां तक प्रशंसा करूं!" राम भाव-विह्वल होकर बोले–"तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो। तुमने मेरे संताप दूर कर दिए हैं।"

"प्रभु, मेरी ऐसी सामर्थ्य कहां? यह तो आपकी ही कृपा का फल है। कोई भी कार्य आपकी प्रेरणा के बिना न आरंभ होता है और न उसका समापन होता है।"

"अब तुम शीघ्र जनकदुलारी के विषय में बताओ।" राम व्यग्रता से बोले।

तब हनुमान ने सुरसा से हुई भेंट से लेकर लंका में हुए वृत्तांत तक सारी बात बताई। राम के नेत्रों से आंसू बरसने लगे। इसके साथ ही हनुमान के पराक्रम को सुनकर उनकी छाती गर्व से फूल गई। जब हनुमान ने सीता जी की चूड़ामणि प्रभु के हाथों में दी तो वे सजल नेत्रों से उसे देखकर हृदय से लगाने लगे। हनुमान ने सीता का संदेश भी सुनाया।

"हे मित्र सुग्रीव, शठे शाठ्यम समाचरेत्।" राम ने दृढ़ स्वर में कहा–"अब हमें समय न गंवाते हुए सैन्य संग्रह कर लेना चाहिए।"

"जो आज्ञा प्रभु!" सुग्रीव ने कहा और अपने दूतों को विभिन्न दिशाओं में गए वानर दलों को शीघ्र वापस बुलाने का आदेश दिया।

हनुमान श्रीराम के चरणों में बैठे माता सीता के विषय में बताते रहे।

41

विभीषण पर पाद-प्रहार

रावण सिंहासन से उतरा और विभीषण के समीप आया। उसने बड़े वेग से विभीषण पर पाद-प्रहार करके दूर फेंक दिया।
"कुलद्रोही, भ्रातृद्रोही, जा उसी तपस्वी की शरण में, जो तुझे परम पद देगा। मेरा अन्न खाकर मेरे ही विरुद्ध बोलता है! शत्रु का गुणगान करता है और मेरा अपमान। तू ही उनकी शरण में जाकर उनके पैर पकड़ और क्षमा-याचना कर, क्योंकि कायरों की यही गति है। दशानन अपने बाहुबल से उसके ईश्वर होने की भ्रामकता का खंडन कर देगा।"
विभीषण अपमान की पीड़ा हृदय में लिये वहां से चल दिए।

दशानन अपने रनिवास में पलंग पर लेटा विचारमग्न था। आज रामदूत हनुमान ने लंका में जैसा तांडव किया था उससे लंकावासियों में भय व्याप्त हो गया था। सोने की लंका राख कर दी गई थी। वह तो दशानन को ही चेत हुआ और उसने वरुणास्त्र का संधान करके घनघोर मेघवर्षा द्वारा अग्नि को शांत किया और फिर अपने श्वसुर शिल्पकार मयासुर से कहकर लंका का यथास्थिति पुनर्निर्माण कराया। मायावी मयासुर के लिए यह कठिन काम न था। लंका तो पूर्वस्थिति में हो गई थी, परंतु जो भय व्याप्त था, वह दशानन को विचलित कर रहा था। एक पुत्र सहित बहुत से राक्षसों के मारे जाने का भी उसे बहुत दुख हो रहा था। वह वानर इतना शक्तिशाली कैसे था?

उसी समय वहां पुत्रशोक से व्याकुल मंदोदरी आ गई। वह रावण के पैरों के समीप बैठ गई और एकटक उसके मुख को देखने लगी।

"स्वामी! आप क्या सोच रहे हैं?" मंदोदरी ने पूछा।

"मंदोदरे, मैं आश्चर्य में हूं कि कोई वानर इतना निर्भय और शक्तिशाली कैसे हो सकता है? जो राक्षसों का आहार है, वह इतना विध्वंस कर गया!" रावण विचार करते हुए बोला।

"नाथ, यह क्या आश्चर्य की बात है! कोई तप के प्रभाव से, कोई ज्ञान के प्रभाव से और कोई ईश्वर की कृपा से ऐसा हो जाता है। आपने क्या पहली बार कोई इतना शक्तिशाली वानर देखा है, इससे पूर्व आप वानरराज बालि से मिल चुके हैं।"

रावण ने हड़बड़ाकर मंदोदरी को देखा, जो भावहीन नेत्रों से उसे देख रही थी।

"मंदोदरे, वह दूत था और दूत का वध करना नीतिविरुद्ध था, अन्यथा वह वानर यहां से जीवित नहीं जा सकता था—मेरी खड्‌ग उसका शीश धड़ से अलग करके उसकी करनी का दंड देती, उसका स्वामी भी उसे बचा नहीं पाता।" रावण बोला।

"नाथ! आप यह क्यों नहीं मान लेते कि न तो राम और न हनुमान साधारण सांसारिक जन हैं। शिव के कठोर धनुष को जो स्वघोषित महाबलियों से जौ-भर भूमि से न छूट सका, उसे राम ने एक साधारण धनुष की भांति उठाकर तोड़ डाला था। सुबाहु, ताड़का, त्रिशरा, विराध व खर-दूषण क्या पराक्रम में आपसे कम थे जिन्हें राम ने सहज ही मार डाला और मारीच ने भी तो यही कहा था।"

"मंदोदरे!" रावण तिलमिला गया—"तू स्त्री है, जो स्वभाव से ही भय मानती है। क्या किसी आखेट द्वारा जंगल के भेड़ियों को मार देने पर सिंह को भय मानना चाहिए। भय सिंह का स्वभाव ही नहीं होता। तुम स्त्रियों में तो यह साधारण-सी बात है। कोई साधु कह दे कि वटवृक्ष की पूजा करो, पति दीर्घायु होगा तो सब काम छोड़कर वही करने लगो। तुम्हें पत्थर में भगवान दिखते हैं तो राम ने तो उसकी अपेक्षा कुछ चमत्कारी कार्य किए हैं। उसके पास कोई विद्या हो सकती है, जैसे मेरे पास इंद्रजाल की विद्या है। अब क्या मैं भी भगवान हूं! यदि वह है तो मैं भी हूं और समान विपरीत बलों में प्रायः प्रतिद्वंद्विता होती ही है।"

"नाथ, यह सत्य को स्वीकार न करने की हठ के लिए कुतर्क है।" मंदोदरी ने व्यग्र भाव से कहा—"आप समझ क्यों नहीं रहे हैं कि जिन श्रीराम की श्रेष्ठ मुनि स्तुति करते हैं, वे साधारण जन नहीं हो सकते। आप अपनी हठ छोड़ क्यों नहीं देते और बैर को समाप्त करके कुल को अचल सुरक्षित क्यों नहीं करते?"

"अपना ज्ञान अपने पास रख मूर्ख! तू रावण की भार्या है जिसे सदा निर्भय व निःशंक होना चाहिए। तू कैसी स्त्री है, जो अपने पति के सामने किसी अन्य पुरुष की गुणगाथा गाती है। एक वह सीता है, जो ऐसे विपन्न संकट में होकर भी अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य को शक्तिशाली नहीं मानती। तू सभी दोष मेरे बता रही है मूर्ख, जबकि बैर का आरंभ राम ने किया था। यदि वह भगवान ही था तो क्या इतना निर्दयी और निर्लज्ज था कि एक स्त्री के नाक-कान काट लेता। हम तो जन्म से राक्षस और तामसी हैं, परंतु क्या ईश्वर ऐसा होता है? क्षत्रिय स्त्रियों की रक्षा करते हैं, उनका अपमान नहीं और यही मैं राम को सीख देना चाहता हूं।"

"नाथ! यही तो उन्हें ईश्वर सिद्ध करता है कि वे राक्षसों का नाश करने के लिए अकारण बैर साध रहे हैं। काल कभी भी हाथ में दंड लेकर किसी को नहीं मारता—वह धर्म, बुद्धि आदि का हरण कर लेता है। इस समय ऐसी ही स्थिति आपकी भी है। श्रीराम ने कारण उत्पन्न करते हुए आपके विवेक का हरण करके अहंकार को जाग्रत कर दिया है।"

"मंदोदरे, अब तू व्यर्थ की बकवास बंद कर।" दशानन झुंझलाकर बोला—"तू जिसे अहंकार कह रही है, वह मेरा और मेरे कुल का आत्म-सम्मान है। तेरे और तेरे जैसे कायरों के कहे यदि मैं संधि कर भी लूं तो क्या इतिहास मेरा उपहास न करेगा कि जिसने लोक-दिग्पालों को जीता, कैलाश को भुजाओं में भरकर उठा लिया, देवताओं का पराभव किया, वह महापराक्रमी दशानन पराजय और मृत्यु के भय से अपनी बहन का घोर अपमान करके भी शत्रु से संधि कर बैठा। मूर्ख, जीवन आत्म-सम्मान से जिया जाता है। अपमानित होकर हजार साल का जीवन जीने की अपेक्षा सम्मान से चार दिन जीकर मर जाना अच्छा है।"

मंदोदरी मौन हो गई। पुरुषार्थ की दृष्टि से रावण के तर्क अनुचित नहीं थे। हाय विधाता! यह कैसा असमंजस है! कभी वह अहंकारी लगता है तो कभी एक विद्वान योद्धा, जो अपने आत्म-सम्मान की रक्षा में सर्वस्व भी लुटाने को तैयार है। तार्किक दृष्टि से वह सुमार्गी था, परंतु हृदय में कुलनाश का भय उसे उसकी शठता मानता था। अब तो सब प्रभु की प्रेरणा व इच्छा से ही होना है। प्रभु किसी का अहित नहीं करते, कष्ट भी देते हैं तो भी अहित नहीं करते। अतः इस विषय में कुछ और सोचना या करना उचित नहीं था।

प्रातः होने पर लंकापति रावण सज-धजकर अहंकारी भाव से दरबार में पहुंचा, जहां सभी दरबारी आ चुके थे। रावण की भाव-भंगिमा से किसी को भी ऐसा न लगा कि पिछले दिन हुए भयानक कांड से उसके विचारों में तनिक भी परिवर्तन या भय हुआ हो। सभी ने उसका अभिवादन किया।

"आप सभी मेरे हितैषी व ज्ञानकुशल हैं।" रावण ने कहा—"कल जो हुआ, उसे हम लापरवाही से उत्पन्न आकस्मिक घटना ही कह सकते हैं। वास्तव में जब कोई जाति अनेक विजय प्राप्त कर लेती है तो नि:शंक हो जाती है कि अब हमें कोई परास्त नहीं कर सकता। इससे लापरवाही उत्पन्न हो जाती है। अभ्यास छूट जाता है। वही हमारे साथ भी हुआ। अभेद्य नगर में किसी के प्रवेश की कल्पना भी किसने की होगी! अत: प्रहरी मद्यपान करके लापरवाह रहे और वह वानर नगर में प्रवेश कर गया। अभ्यास छूट जाने से हमारे योद्धा भली-भांति शत्रु का सामना न कर सके। यह सब हमारे लिए एक सीख की भांति है और अब हम शत्रु के स्वभाव से परिचित हो गए हैं। अब आप सभी विचारकर बताइए कि हमें क्या करना चाहिए?"

"महाराज।" नरांतक नाम का रावण का पुत्र बोला—"इसमें विचार क्या करना है। हमने अपने बल से देवताओं को भी जीता है तो उन दो तपस्वियों और पशुवानरों की क्या हस्ती! वे हमारे आहार हैं। संख्या में वे कितने भी हों, फिर भी हमारे तातश्री कुंभकर्ण के एक दिन के आहार की पूर्ति नहीं होगी। इस पर हम सभी भी शत्रु का आहार करने को व्याकुल हैं।"

"राजकुमार नरांतक की जय हो!" कई मंत्री एक साथ बोले।

"तातश्री!" विभीषण ने तत्काल सिर नवाकर कहा—"कुमार नरांतक का यह विचार उनकी अपरिपक्वता और मंत्रियों द्वारा समर्थन उनकी चाटुकारिता-मात्र है। हे नीतिज्ञ, जब मंत्री, वैद्य और गुरु भय या लाभ की आशा से प्रिय बोलने लगें तो निश्चय ही राज्य, शरीर और धर्म का नाश हो जाता है। प्रत्यक्ष देखकर भी जो प्रमाण चाहते हैं, उन्हें मूर्ख समझना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि चार नरक के द्वार हैं और अभिमान इन चारों को पुष्ट करता है। अत: अभिमान त्याग देने से इन दोषों को दूर किया जा सकता है।"

"अनुज, तुम सभी नीतियों में निपुण व तामसिक होकर भी भक्तिमार्गी हो तो तुमसे परामर्श लेना भी उचित ही होगा।" रावण गंभीरता से बोला—"तुम अपने कुल के सम्मान, भाई के पराक्रम और बहन के अपमान को स्मरण रखते हुए जो भी उचित हो, वही परामर्श हमें दो। निश्चय ही तुम हमें करणीय तथ्य बताओगे।"

"तातश्री, सिंह यदि सिंह से और राजा यदि राजा से प्रतिद्वंद्विता करे तो इसे उचित माना जाता है, परंतु मनुष्य और ईश्वर की प्रतिद्वंद्विता का बैर तो ऐसे है, जैसे तृण ने अग्नि से बैर किया, क्योंकि वह क्षण-मात्र में भस्म हो जाएगा। हे सर्वज्ञानी, राम केवल मनुष्यों के राजा नहीं हैं, वे समस्त लोकों के स्वामी हैं और काल को भी कवलित करने वाले हैं। वे ही श्रीहरि का नरावतार हैं।"

रावण बड़े धैर्य से उन नीति वचनों को सुन रहा था।

"हे तात! जिनकी शरण में जाने से जन्म-जन्मांतर के बंधन कट जाते हैं। जिस भव से पार होने के लिए योगी-तपस्वी उनकी करोड़ों वर्ष कठिन आराधना करते हैं और फिर भी वे वंचित रह जाते हैं, वही महाप्रभु आज नर रूप धरकर उन्हें भी दर्शन और मोक्ष लाभ दे रहे हैं जिन्होंने जीवन में कभी कोई पुण्यकार्य नहीं किया है। उन्हें शत्रु रूप में देखने वाले खर-दूषण, बालि, सुबाहु व मारीच आदि सहज में ही मोक्ष को प्राप्त हुए हैं तो जो उनकी शरण में चला जाए, उन्हें तो परमपद ही प्राप्त हो जाना है। इसलिए हे तात! सद्‌बुद्धि का प्रयोग करें—बैर त्यागकर प्रभु श्रीराम की शरण में जाकर उन्हें मस्तक नवाइए और इस ऐश्वर्य को अचल कीजिए। प्रभु श्रीराम से द्रोह करने पर तो स्वयं शिव भी सहायक नहीं होते। हे दशानन, मैं आपसे बार-बार विनती करता हूं कि अभिमान को त्यागकर उन प्रभु की शरण लीजिए, जो दया के सागर हैं और शरणागत की रक्षा करने वाले हैं।"

"हूं! परामर्श तो अति सुंदर है।" रावण बोला—"क्या आप सभी में कोई और भी अनुज विभीषण की बातों से सहमत है?"

यह सुनकर रावण के नाना माल्यवान ने हाथ उठा दिया तो रावण ने उसे बोलने की आज्ञा दी।

माल्यवान उठ खड़ा हुआ।

"हे नीति-निपुण दशानन! प्रिय विभीषण की बातें सुनकर मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है। इन्होंने जो भी कहा है, वह नीति-संगत है। जो विवेकवान होते हैं, वे परस्त्री को ललाट पर चतुर्थी के चंद्रमा की भांति विचारकर उसका मोह त्याग देते हैं।" माल्यवान ने बड़े ही दार्शनिक स्वर में कहा—"कुल की रक्षा और वृद्धि ही कुल के प्रमुख का दायित्व है। अपने अभिमान से इसे नष्ट करना अपयश का कारण बनता है।"

रावण ने अपने ललाट को दो बार ठकठकाया।

"अरे कोई है, जो इन कायर और शत्रु का गुणगान करने वाले मूर्खों को इस सभा ही नहीं, नगर से भी निकाल बाहर करे।" रावण गरजकर बोला—"मेरी कृपा पर जीवित रहने वाले ये परजीवी मुझे कायरता का पाठ पढ़ा रहे हैं। नानाश्री, आप वृद्ध हैं, अत: आपका अधिक अपमान मैं उचित नहीं समझता, इसलिए आप तो इसी समय लंका से चले जाइए, अन्यथा मुझे क्रोध आ जाएगा।"

"विनाशकाले विपरीत बुद्धि!" माल्यवान यह कहकर चला गया।

रावण सिंहासन से उतरा और विभीषण के समीप आया। उसने बड़े वेग से विभीषण पर पाद-प्रहार करके दूर फेंक दिया।

"कुलद्रोही, भ्रातृद्रोही, जा उसी तपस्वी की शरण में, जो तुझे परम पद देगा। मेरा अन्न खाकर मेरे ही विरुद्ध बोलता है! शत्रु का गुणगान करता है और मेरा अपमान। तू ही उनकी शरण में जाकर उनके पैर पकड़ और क्षमा-याचना कर, क्योंकि कायरों की यही गति है। दशानन अपने बाहुबल से उसके ईश्वर होने की भ्रामकता का खंडन कर देगा।"

विभीषण अपमान की पीड़ा हृदय में लिये वहां से चल दिए।

42

श्रीराम सेतु का निर्माण

"प्रिय नल-नील! यह दुर्लभ गुण मुझमें नहीं है। यह तो तुम्हें ही करना होगा।" राम ने हंसकर कहा–"देखो, हमने समुद्र में पत्थर डाला तो डूब गया।"
"हे लीलाधर, हे करुणामय!" विभीषण लीलाधर की लीला समझकर भक्तिभाव से बोले–"आपको बारंबार प्रणाम है। प्रभु, जिसे आपने छोड़ दिया, वह भला कैसे न डूबेगा? संसार में भवसागर से पार होने के लिए आपका आलंब चाहिए ही। आपने जिसे त्याग दिया, वह तो उभर ही नहीं सकता, उसे डूबना ही है।"
नल-नील शंकित थे। जब प्रभु के हाथ से समुद्र में डाला गया पत्थर नहीं तैरा तो वे तो कपि थे, जिनमें न भक्ति थी, न भाव थे, न विशेष बुद्धि थी। श्रीराम को श्रद्धा से देखते हुए दोनों भाइयों ने एक छोटा पत्थर पानी में डाला तो वह तैर गया। वानरदल उत्साह से जय श्रीराम का घोष करके एक-दूसरे से लिपट गया। देवगण हर्षित हुए, फिर तो सेतु-निर्माण का कार्य गति पकड़ने लगा।

राम-लक्ष्मण एक शिला पर बैठे थे और असंख्य वानर उनके आस-पास समुद्र तट की बालू पर बैठे थे। हनुमान हाथ जोड़े प्रभु के सामने खड़े थे और विभीषण आंखों से अश्रु बहाते हुए प्रभु के समक्ष अपनी व्यथा व्यक्त कर रहे थे।

"हे दीनबंधु दीनानाथ! जीव आपकी ही इच्छा से विभिन्न कुल, जाति और योनि में जन्म लेता है। यद्यपि यह उसके प्रारब्ध के अनुसार ही आप निर्धारित करते हैं। हे कृपासिंधु, अवश्य ही मेरे प्रारब्ध में कुछ ऐसा होगा जिससे मुझे राक्षसकुल में जन्म मिला।" विभीषण भक्ति भाव से कह रहे थे—"हे दयासिंधु, आज आपके दर्शन से मेरे सब पाप कट गए। मुझे अपनी शरण में ले लो नाथ! मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो।"

"निर्भय हो जाओ लंकेश! जो मेरी शरण में आ गया, उसे काल भी स्पर्श नहीं कर सकता।" राम स्नेहपूर्वक बोले—"किसी निम्न या उच्च कुल में जन्म लेने से ही जीव की गति निर्धारित नहीं होती, उसके भाव और कर्मों से होती है। इसी दैत्यकुल में हिरण्यकश्यपु ने जन्म लिया और इसी में प्रह्लाद ने। एक की मुझमें प्रीति थी और एक मुझसे बैर रखता था। प्रह्लाद की प्रीति से मुझे द्रोही को भी सद्गति देने के लिए अवतरित होना पड़ा। इसलिए हे भक्त शिरोमणि, मन में किसी प्रकार का संताप न रखो, क्योंकि जो होना है, उसे कोई नहीं टाल सकता।"

"हे नाथ! मैंने उस अभिमानी दशानन को बहुत समझाया। नित्यप्रति आपकी प्रभुता से परिचित कराया, परंतु वह हठी अभिमान और बैर नहीं त्यागना चाहता। आज उसने भरी सभा में मुझ पर पाद-प्रहार करके लंका से बाहर निकाल दिया। हे दीनों के सखा! मैं अब पूर्णतया आपकी शरण में आ गया हूं।"

"लंकेश, यह तुम नहीं आए, अपितु लंका में जो धर्म था, वह आया है। अभी तक अभिमानी रावण का जो भी त्रैलोक्य में वर्चस्व था, वह मूर्ख नहीं जानता, उसके बल से नहीं, तुम्हारे धर्म और भक्ति से था।" राम ने विभीषण को समझाते हुए कहा—"जब काल किसी के केश पकड़ लेता है तो उसे आलंबहीन कर देता है। यही दशानन के साथ हो रहा है। तुम मेरी शरण में आए हो, इसका प्रतिफल तुम्हें तत्काल मिलेगा। अनुज लक्ष्मण! सभी विधि-विधान से प्रिय विभीषण को लंका का अधिपति घोषित करके इनका राजतिलक करो। आज से यही लंकापति हैं।"

राम की दृढ़ वाणी ने विभीषण के कानों में जैसे रस घोल दिया। कृपासिंधु श्री भगवान की दयालुता के विषय में सुना था, आज देख भी लिया। शरण में आने मात्र से एक वैभवशाली राज्य का आधिपत्य प्रदान हो गया था।

"बोलो...सियावर रामचंद्र की जय!" हनुमान जी ने हर्षित होकर जयघोष किया।

इसके बाद विधिपूर्वक विभीषण का राजतिलक करके उसे लंका का राजा स्वीकार किया गया और सुग्रीव ने उसे अपना सेनापति नियुक्त किया।

सर्वत्र उत्साह था। वानरदल नाना प्रकार की गतिविधियों से अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था। नर और वानर का यह कैसा अद्‌भुत गठबंधन था! देवतागण भी यह सब देखकर हर्षित हो रहे थे कि राक्षसों के विनाश हेतु नररूपी नारायण ने कैसी अद्‌भुत सेना एकत्र की है। विशाल और विकराल रीछों की असंख्य टोलियां और ऐसे ही वानरदल की मीलों तक समुद्र तट पर विचित्र रामसेना दिखाई दे रही है। राम इसे स्नेहिल दृष्टि से देख रहे हैं।

"हे लंकेश, हे सुग्रीव, हे जांबवंत!" राम मधुर स्वर में बोले–"अब हमारे बीच यह गहरे समुद्र की बाधा है जिसे पार करके ही शत्रु के सिर पर पहुंचा जा सकता है। इस अथाह जलराशि में अनेक प्रकार के भयानक जलचर हैं। अब वह विधि सुझाइए जिससे हम इस जलधि को पार कर सकें।"

"हे दशानन!" विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा–"आपकी अपरिमित शक्ति का वर्णन कौन कर सकता है! आपका तो एक बाण सातों महासागरों को शुष्क कर डालने की सामर्थ्य रखता है, परंतु नीति कहती है कि पहले समुद्रदेव से विनय करके उनसे मार्ग देने की अनुमति प्राप्त की जाए।"

"हे प्रभु! वरुणदेव आपके कुल के पूर्वज हैं, वे विचारकर उपाय बता देंगे। आप उनका आह्वान करें।" जांबवान ने कहा।

"हे स्वामी, देवों के अधिपति!" लक्ष्मण तनिक क्रोध से बोले–"आप अपने मन में क्रोध कीजिए और एक ही बाण से समुद्र को सुखा डालिए। किसी से विनय करने की आवश्यकता असमर्थों को होती है।"

"अनुज! धैर्य धरो। अभी सब हुआ जाता है।" राम हंसकर बोले और कुश का आसन लेकर उस पर बैठकर समुद्रदेव की स्तुति करने लगे। बहुत समय बीत जाने पर भी राम की विनती का उस पर कोई प्रभाव न हुआ। इससे राम को क्रोध आ गया। उनके क्रोध को देखकर सभी सहम गए।

"अनुज लक्ष्मण! तुम सत्य ही कहते हो कि शठ कभी विनय नहीं सुनता है। उसे भय देना ही श्रेष्ठ होता है। अब इस मूढ़ समुद्र को सुखा डालना ही श्रेष्ठ है।"

राम ने धनुष पर बाण चढ़ाकर समुद्र के जल में संधान करना ही चाहा था कि भय से प्रकंपित हुए समुद्रदेव 'त्राहिमाम-त्राहिमाम' की पुकार करते हुए श्रीराम के चरणों में आकर नत हो गए।

"हे जगताधार, हे दयानिधान, मुझ अधम को क्षमा कर दीजिए, परंतु हे नाथ! आप मर्यादा के रक्षक हैं और मेरी मर्यादा भी आपने ही बांधी है। अब मैं इसका उल्लंघन कैसे करूं? आप ही मेरा मार्गदर्शन करें, जिससे मेरी मर्यादा भी बनी रहे और आपका कार्य भी सिद्ध हो जाए।"

"हे वरुणदेव, हम अकारण ही किसी को कष्ट नहीं देते हैं। हम तो विनयपूर्वक सहायता चाहते हैं।" राम ने कहा–"वही हमने किया भी, परंतु आपने हमारी विनय को हमारी असमर्थता समझ लिया।"

"प्रभु, आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल, पंचभूत स्वभाव से ही जड़ होते हैं। आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हीं से सृष्टि का सृजन किया है। अत: आपकी आज्ञा का तो उल्लंघन नहीं हो सकता, परंतु हे नाथ, आपकी प्रेरणा से ही संसार का जड़-चेतन मर्यादा के वश में है।"

"हे देव! हम आपको आपकी मर्यादा भंग करने का आदेश नहीं दे सकते।" दशरथनंदन ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया–"हम तो आपकी किसी भी ऐसी सहायता के आकांक्षी हैं जिससे हमारा हित हो।"

"प्रभु, आपकी सेवा में नल और नील नाम के दो वानरबंधु हैं जिन्हें बालपन में यह शाप मिला था कि वे जल के ऊपर कितना भी बड़ा भार डाल दें, वह उसमें डूबेगा नहीं। उन्हें मिला यह शाप ही आज प्रभु की सेवा में वरदान बन जाएगा। आप उनके द्वारा स्पर्श करके छोटी-बड़ी प्रस्तर शिलाओं को समुद्र में प्रवाहित करा दें। वे डूबेंगी नहीं और इस प्रकार आप उनसे सेतु का निर्माण कराएं। इससे संसार में आपकी कीर्ति भी बढ़ेगी और शत्रु भी भयभीत होगा।"

तत्काल नल और नील हाथ जोड़े राम के सामने आ खड़े हुए।

"वीरवर बंधुओ! तुम्हारे अंदर ऐसी विशेषता है और तुमने हमें बताया भी नहीं, फिर हम क्यों समुद्रदेव को कष्ट देते।" राम हंसकर बोले।

"हे नाथ, जो सर्वव्यापी सर्वज्ञ हैं, उनसे किसका गुण या अवगुण छिपा है।" नल ने हाथ जोड़कर कहा–"प्रभु, निश्चय ही समुद्रदेव के श्रीमुख से हमारे अवगुण को गुण में बदलकर वर्णित करवाकर हमारा जीवन धन्य किया है। हे नाथ, आपकी महिमा कोई नहीं जानता। आप कब किसे किस प्रकार क्या दे दें, कोई नहीं जानता।"

सुखराशि श्रीराम अनुराग से मुस्कराए।

"प्रिय वानरो!" राम ने कहा–"हमें एक अद्भुत, अकल्पनीय और महान कार्य करना है। यह केवल तात्कालिक प्रयोजन हेतु नहीं, अपितु यह दीर्घकाल तक तुम्हारे सुयश को भूमंडल पर वर्णित करने वाला कार्य होगा। आज भले ही यह सेतु युद्ध के उद्देश्य से निर्मित किया जाएगा, परंतु भविष्य में यह दो संस्कृतियों, दो सभ्यताओं के स्नेहपूर्ण संबंधों का महासेतु बनेगा, इसलिए हे मेरे वानरवीरो! इस महाकाज को पूर्ण मनोयोग से शीघ्र पूरा करो।"

सभी वानर एवं रीछों ने उच्च स्वर में 'जय श्रीराम' का जयघोष किया।

समुद्र का सेतु बनाने का कार्य आरंभ होने जा रहा था। हनुमान आदि बलवान वीर वानर अपनी गदाओं के प्रचंड प्रहारों से पर्वतों को तोड़ने लगे और अन्य वानर उन्हें ढो-ढोकर तट पर लाने लगे।

यह कौतुक देखकर देवतागण आकाश में विराजमान हो गए और हर्षित होकर पुष्प वर्षा करने लगे।

प्रभु कैसे लीलाधर हैं! असंभव को संभव करने में उन्हें क्षण-भर लगता है। जहां युक्ति थक जाती है, वहां भक्ति कार्य को सफल करती है। प्रभु ने एक बार समुद्र का मंथन करके देवताओं का कल्याण किया था और अब समुद्र पर सेतु बनाकर जगत का कल्याण करने जा रहे थे।

नल-नील ने पहला पत्थर उठाने से पूर्व श्रीराम की स्तुति की।

"हे नाथों के नाथ! सृजन और विध्वंस आपकी ही प्रेरणा से संभव होते हैं। संसार का समस्त शिल्प आपकी ही कला से उत्पन्न हुआ है। आपकी कृपा से ही हमें यह गुण प्राप्त हुआ है, परंतु हे नाथ, हमने बालपन में अवश्य छोटे-छोटे कंकड़ पानी पर तैराए थे, इन विशाल चट्टानों को लेकर हमारे हृदय में शंका है। अत: आप हमें आज्ञा दें कि प्रत्येक पत्थर पर आपका नाम अंकित करें, क्योंकि आपके नाम के आश्रय से बड़े-बड़े पापी तर जाते हैं तो निश्चय ही ये पत्थर भी तैर जाएंगे।"

"वीरो! जैसी तुम्हारी श्रद्धा और इच्छा हो, वैसा करो।" राम ने आज्ञा दे दी।

नल-नील ने एक पत्थर पर श्रद्धापूर्वक 'राम' लिखा और फिर राम से विनय की कि वे पहले पत्थर को अपने हाथ से जल में प्रवाहित करें। राम ने उठकर उस पत्थर को समुद्र में डाला तो वह डूब गया। यह देखकर सब सन्न रह गए।

"प्रिय नल-नील! यह दुर्लभ गुण मुझमें नहीं है। यह तो तुम्हें ही करना होगा।" राम ने हंसकर कहा–"देखो, हमने समुद्र में पत्थर डाला तो डूब गया।"

"हे लीलाधर, हे करुणामय!" विभीषण लीलाधर की लीला समझकर भक्तिभाव से बोले–"आपको बारंबार प्रणाम है। प्रभु, जिसे आपने छोड़ दिया, वह भला कैसे न डूबेगा? संसार में भवसागर से पार होने के लिए आपका आलंब चाहिए ही। आपने जिसे त्याग दिया, वह तो उभर ही नहीं सकता, उसे डूबना ही है।"

नल-नील शंकित थे। जब प्रभु के हाथ से समुद्र में डाला गया पत्थर नहीं तैरा तो वे तो कपि थे, जिनमें न भक्ति थी, न भाव थे, न विशेष बुद्धि थी। श्रीराम को श्रद्धा से देखते हुए दोनों भाइयों ने एक छोटा पत्थर पानी में डाला तो वह तैर गया।

वानरदल उत्साह से जय श्रीराम का घोष करके एक-दूसरे से लिपट गया। देवगण हर्षित हुए, फिर तो सेतु-निर्माण का कार्य गति पकड़ने लगा। वानर और

भालुओं के दल-के-दल पर्वतों को तोड़ रहे हैं। उनसे अधिक उन शिलाओं को ढोकर ला रहे हैं।

अनेक वानर उन शिलाओं पर राम नाम अंकित कर रहे हैं, फिर उन्हें उठा-उठाकर नल-नील को दिया जा रहा है, जो बड़े सुंदर शिल्पशास्त्र के अनुसार उन्हें आपस में जोड़ते हुए सेतु के आकार में ढाल रहे हैं।

दशानन के कुछ गुप्तचर अदृश्य रूप से इस अद्भुत कार्य को देखकर अचंभित होकर लंका की ओर दौड़ पड़ते हैं।

43

दशानन का भीषण अट्टहास

"लंका का राजा!" दशानन भीषण अट्टहास कर उठा—"क्या लंका का सिंहासन अब रिक्त हो गया है? क्या उस मूर्ख तपस्वी ने बिना युद्ध हुए ही अपनी विजय मान ली है? क्या उसने दशानन को परास्त कर लंका जीती है, जो उस कुलघाती को उसका राजा भी घोषित कर दिया। इसे कहते हैं दिन में स्वप्न देखना। सिंह के जबड़े से शिकार छीनना सरल हो सकता है, परंतु महाबली दशानन से लंका को दूर, लंका की भूमि से मुट्ठी-भर रेत भी छीन पाना असंभव है। राम और विभीषण दोनों ही मृगमरीचिका में फंसे हैं। न राम को कभी सीता मिलेगी और न विभीषण को कभी लंका।"

लंकाधीश दशानन का दरबार पूर्ववत् सजा हुआ था। अभिमान से युक्त मुख अपने पराक्रमी पुत्रों और पौत्रों को देखकर और भी दर्प से दप-दप कर रहा था। बस एक अभाव अवश्य खल रहा था। दरबार में तीन आसन रिक्त थे। पहला तो पुत्र अक्षय कुमार का था जिसे हनुमान ने निर्दयता से मसल दिया था। उसे याद करते ही रावण के विशाल मस्तक पर सलवटें पड़ जाती थीं। दूसरा आसन सभा के संरक्षक नाना माल्यवान का था जिन्होंने कितने ही अवसरों पर रणभूमि में लंका की विजय निश्चित की थी। आज शत्रु का पक्ष लेने के कारण माल्यवान को लंका से जाना

पड़ा था और तीसरा आसन, जो उसके अभिमान को अधिक ही कचोट रहा था, वह विभीषण का था। सारे लंकावासी जिस विभीषण के गुण गाते न थकते थे, वह अपने एक अवगुण को न सुधार सका।

सभी दरबारी रावण की ओर देख रहे थे कि वह कुछ कहे।

"मूर्ख विभीषण!" अंततः रावण के हृदय की बात होंठों पर आ ही गई–"कैसी निपट अज्ञानता दिखाई है। लंका का अपार वैभव भोग रहा था। इंद्र भी क्या रहता होगा जैसे वह रहता था। ऐसा कौन-सा सुख या अधिकार नहीं था, जो उसे प्राप्त न था, परंतु कायर निकला। मृत्यु से डर गया और कीड़ों की भांति मुनियों के समक्ष जा नतमस्तक हुआ। त्रैलोक्य विजेता दशानन के सम्मान और कीर्ति को धूमिल किया।"

"राक्षसराज!" एक मंत्री ने कहा–"महराज विभीषण तो जन्म से ही साधु थे। सदैव ही मनके फेरते रहते थे, परंतु पूज्य माल्यवानजी से ऐसी आशा न थी।"

"जब वृद्धावस्था पूर्ण प्रभाव दिखाती है, तब व्यक्ति का जीवन के प्रति अधिक मोह उत्पन्न होता है और वह बचाव के ही उपाय करता है। नानाश्री को भी अब यही लगा कि यदि युद्ध हुआ तो प्राण न बचें तो निकल गए।"

सभी दरबारियों ने अट्टहास किया तो दशानन भी हंस पड़ा।

"मूर्ख विभीषण! राजा से रंक बनने की उसकी मूर्खता को संसार सदैव स्मरण रखेगा। वह उस मूर्ख सियार की भांति है, जो सिंह की चाकरी छोड़कर वानरों का सेवक बना। इस भव्य स्वर्ण जड़ित सिंहासन पर बैठने को देवता भी तरसते हैं और वह इंद्र की भांति इस पर विराजता था। अब उन तपस्वियों के सामने घुटनों पर बैठकर उनकी वंदना करेगा और प्राणों की भिक्षा मांगेगा। यहां षटरस व्यंजन बिना किसी श्रम के खाने को मिलते थे, अब कंद-मूल खाकर पशुओं की भांति पेट भरेगा।"

"महाराज की जय हो। गुप्तचर शुक अपने साथी सहित आया है।" द्वारपाल ने आकर बताया–"उसके नेत्र आश्चर्य से भरे हैं।"

"उसे हमने कुलघाती विभीषण के पीछे भेजा था। उसे तुरंत दरबार में भेज दो।" दशानन ने आदेश दिया–"देखें, क्या समाचार लाया है।"

अब से पहले दशानन का खुला दरबार था और वहां आने के लिए किसी को आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। दशानन की ऐसी ही आज्ञा थी, परंतु अब सुरक्षा के नियमों का पालन करते हुए ऐसा प्रावधान किया गया था।

कुछ ही क्षण पश्चात् सहमा और आश्चर्य से भरे गुप्तचर शुक ने अपने साथी के साथ दरबार में आकर लंकाधीश को शीश झुकाया।

"अरे शुक, तू तो हमारे श्रेष्ठ गुप्तचरों में से है, जो समुद्र की तलहटी से भी हमारे हित के समाचार ले आता है।" दशानन ने कहा–"आज तेरे नेत्रों में भय भरा आश्चर्य क्यों है? ऐसा तूने क्या देख लिया शुक?"

"महाराज, आपके अतिरिक्त संसार में अन्य कौन वायु को बांध सकता है, कौन जल का प्रवाह रोक सकता है, कौन अग्नि को बुझा सकता है, परंतु हे नाथ! आज हमने एक महान आश्चर्य देखा। वानर समुद्र पर पुल बना रहे हैं। पत्थर पानी पर तैर रहे हैं, जैसे उनमें तनिक भी भार न हो। वानरों ने पर्वत-शिलाओं से ही अद्‌भुत सेतु का निर्माण आरंभ कर दिया है।" शुक ने बताया।

"सेतु निर्माण!" रावण के विशाल नेत्र सिकुड़ गए–"बात तो आश्चर्य की ही है। पत्थर पानी पर तैर रहे हैं, विश्वास नहीं होता, परंतु इससे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। संसार में असंभव तो कुछ भी नहीं होता और जब व्यक्ति पर संकट आता है तो वह कुछ-न-कुछ उपाय करता ही है। कुछ मंत्र प्रभाव भी ऐसे होते हैं। यह अच्छा ही है कि हमारा आहार हमारे समीप आने की मूर्खता स्वयं ही कर रहा है। अतः अपनी-अपनी क्षुधा को और भी बढ़ा लो।"

"महाराज, दोनों तपस्वी देखने में बड़े ही सुंदर और पराक्रमी लगते हैं। उनके धनुष भी बड़े प्रचंड हैं। हमने देखा है कि उन्होंने पहले तो समुद्र से विनय करके मार्ग देने की याचना की और फिर जब बड़े तपस्वी ने क्रोध करके धनुष पर बाण चढ़ाया तो स्वयं वरुणदेव भय से प्रकंपित होते हुए उसके समक्ष नत हो गए। उन्होंने ही बताया कि राम की सेना में दो वानरों को यह अभिशाप प्राप्त है कि उनके हाथ से स्पर्श की गई कोई भी वस्तु जल में तैरने लगेगी और वास्तव में उनके हाथ से स्पर्श की गई पाषाण-शिलाएं जल में तैरने लगी।"

"वरुण सदैव हमसे ईर्ष्या करता रहा है तो वह शत्रु से क्यों न जा मिले!" दशानन क्रोध भरे स्वर में बोला–"वैसे भी कायरों की यही गति है कि वे तनिक-से भय के कारण ही नत हो जाते हैं, परंतु इससे अपराजेय दशानन पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। शुक, तू मुझे उस कुलद्रोही विभीषण के विषय में बता। उसने किस प्रकार तपस्वियों की चाटुकारिता कर अपनी व्यथा सुनाई और किस प्रकार रोया?"

"महाराज, आपकी आज्ञा से हम अदृश्य रूप से उनके पीछे थे। हमने बहुत चतुराई से उनका पीछा किया, क्योंकि उनकी दृष्टि से बचना कठिन है।" शुक ने कहा–"वे जब समुद्र तट पर उतरे तो पहले तो सभी वानरों ने शंकित होकर उन्हें आपका भाई जानकर शंका प्रकट की, परंतु तपस्वी राम ने ऐसे मुस्कराकर उनका स्वागत किया, जैसे उसे पहले ही उनके आगमन की पूर्व सूचना थी। उसने उन्हें

अपने हृदय से लगाया और अपने समीप बिठाकर बड़े ही स्नेह से आपकी और सभी लंकावासियों की कुशल-क्षेम पूछी।"

दशानन दूसरी ओर देखने लगा था। शत्रु की ऐसी सहृदयता उसे विचलित कर गई थी।

"शत्रु को सदैव ही शत्रु की कमजोरियों को जानने के प्रयास करने चाहिए।" प्रत्यक्ष में वह बोला–"यह राम का सौभाग्य है कि एक कुलद्रोही उसे बिना किसी प्रयास के ही प्राप्त हो गया, जो उसे हमारी सेना, बल और सुरक्षा संबंधी सभी गुप्त जानकारी प्रदान कर देगा। परिणाम चाहे जो भी हो, परंतु कुलघाती विभीषण सृष्टिपर्यंत निंदा का पात्र होगा। जब भी कोई भाई अपने भाई के विरुद्ध जाकर शत्रुओं का सेवक बनेगा, उसे विभीषण की निंदित उपाधि प्राप्त होगी। मूर्ख को शत्रु ने हृदय से लगा लिया, दो मीठे बोल बोल दिए तो वह प्रसन्न हो गया। वह नहीं जानता कि उसने क्या खो दिया है। शुक, उस कुलघाती ने क्या उत्तर दिया?"

"महाराज! उसने सबकी कुशल-क्षेम बताई। आपके विषय में भी कहा कि भले ही आप अभिमान के कारण उनसे बैर मानते हैं, परंतु इसी बैर के कारण ही आप हर समय राम के विषय में चिंतन करते हैं, जो एक प्रकार की भक्ति है।"

"कुलघाती विभीषण!" दशानन क्रोध से गरजा–"स्वयं तो कायरता की सभी सीमा पार कर चुका है और अब शत्रु के समक्ष हमें भी कायर सिद्ध कर रहा है। शिव की सौगंध, युद्धभूमि में उस दुष्ट का वध मेरे ही हाथों होगा।"

सभासद भी आपस में विभीषण के इस कृत्य की निंदा कर रहे थे।

"महाराज, तपस्वी राम श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ है। किसे कैसे पूर्ण वश में किया जाता है, वह भली-भांति जानता है।" गुप्तचर शुक बोला–"उसने महाराज विभीषण...।"

"सावधान शुक! उस निकृष्ट विभीषण को महाराज कहकर संबोधित न करना। जब वह लंका में था तो अवश्य उसे यह संबोधन शोभा देता था। आज वह शत्रु का सेवक है, अत: उसे केवल कुलद्रोही विभीषण कहकर संबोधित कर।"

"जो आज्ञा महाराज!" शुक ने कहा–"बड़े तपस्वी राम ने कूटनीति का आश्रय लेते हुए कुलद्रोही विभीषण का राजतिलक कर दिया।"

"राजतिलक कर दिया? कहां का राजा बना दिया उस तपस्वी भिक्षुक और कंद-मूल, फल खाने वाले ने! जिसके पास स्वयं कुछ नहीं है, वह राज्य दान कर रहा है। इससे तो प्रतीत होता है कि उसने विभीषण को वानर-भालुओं का राजा ही बनाया होगा, जो सभी उसकी आज्ञा मानते हैं।"

"नहीं महाराज, वानर सेना का तो सेनापति बना है वह कुलघाती विभीषण।

राम ने उसे राजा तो...इस लंका नगरी का घोषित किया है। विभीषण भी बहुत ही प्रसन्न था कि वह लंका का राजा बन गया।"

"लंका का राजा!" दशानन भीषण अट्टहास कर उठा—"क्या लंका का सिंहासन अब रिक्त हो गया है? क्या उस मूर्ख तपस्वी ने बिना युद्ध हुए ही अपनी विजय मान ली है? क्या उसने दशानन को परास्त कर लंका जीती है, जो उस कुलघाती को उसका राजा भी घोषित कर दिया। इसे कहते हैं दिन में स्वप्न देखना। सिंह के जबड़े से शिकार छीनना सरल हो सकता है, परंतु महाबली दशानन से लंका तो दूर, लंका की भूमि से मुट्ठी-भर रेत भी छीन पाना असंभव है। राम और विभीषण दोनों ही मृगमरीचिका में फंसे हैं। न राम को कभी सीता मिलेगी और न विभीषण को कभी लंका।"

"महाराज!" संघर्षक नाम का मंत्री गंभीरता से बोला—"इन सब बातों से हमें कोई लाभ या हानि नहीं होने वाली। स्वप्न देखने से किसी को नहीं रोका जा सकता है। जब दो मूर्ख आपस में मिलते हैं, जो अपनों के द्वारा ठुकरा दिए जाते हैं तो वे एक-दूसरे को असंभव सपने दिखाकर अपने मन को बहलाते हैं। वे एक-दूसरे को ऐसे उपहार प्रदान करते हैं, जो उनके पास भी नहीं होते और वश में भी नहीं होते।"

"तुमने सत्य कहा संघर्षक! हमें इन बातों से कोई लाभ-हानि नहीं है।" दशानन ने गंभीर स्वर में कहा—"शुक, अब तुम हमें शत्रु की सेना के विषय में बताओ। रीछ-वानरों की संख्या कितनी है? क्या उनमें सभी हनुमान की ही भांति हैं?"

"महाराज! सेना की तो हम थाह नहीं पा सके, क्योंकि उनकी गिनती करना तो संभव ही नहीं था। समुद्र तट के सैकड़ों मील लंबे और चौड़े तट पर रेत तो नजर ही नहीं आती थी। असंख्य वानर और भालू ही नजर आते थे। इसके अतिरिक्त वे असंख्य भालू और वानर ही पर्वत चोटियों पर उछल-कूद कर रहे थे।" शुक ने बताया।

"बहुत अच्छा! इसका अर्थ यह है कि कुछ दिनों के पश्चात् हमारे पास इतना आहार हो जाएगा कि हम भरपेट खाएंगे।" संघर्षक ने दांत किटकिटाकर कहा।

"महाराज! जो वानर लंका जलाकर गया था, वह तो आकार में कुछ भी नहीं था। उससे भी कई गुना आकार वाले वानर वहां थे, जो पर्वत को जड़ से उखाड़कर अधर में लटका देते थे और फिर बड़े वेग से भूमि पर पटककर खंड-खंड कर देते थे। कुछ तो ऐसे थे, जो भुजाओं में भरकर चट्टानों को पीस देते थे। ऐसे ही भयानक दांतों वाले भालू थे। ऐसे-ऐसे विकराल शरीर कि देखते ही भय लगता था।"

"मूर्ख, पशुओं के आश्रय कहीं ऐसे कठिन संग्राम जीते जाते हैं? वह भी लंका की दुर्लभ और अपराजेय सेना के विरुद्ध जिसने रण में देवताओं को भी परास्त कर दिया—वह भी तब जब उनका स्वामी स्त्री-वियोग से पीड़ित हो, जिसका उपस्वामी अपने भाई के दुख से दुखी हो और जिनका मंत्री कायरों में भी निम्नता को प्राप्त हो। जब ऐसे संयोग मिलकर लंका की कालजयी सेना के समक्ष आएंगे तो क्या यह युद्ध अधिक दिन तक चलेगा।" दशानन भीषण अट्टहास करता हुआ अहंकार भरी वाणी में बोला—"वहां सुग्रीव और विभीषण जैसे भ्रातृद्रोही विजय का स्वप्न दिखाते हैं—कैसा प्रहसन है...हा...हा...हा...।"

सभी सभासद अपने महाराज के अहंकारी अट्टहास में सम्मिलित हुए।

"केवल दो धनुष और कुछ गदाओं के भरोसे दशानन को जीतना चाहते हैं जिसके पास अनेक दिव्यास्त्र हैं। जिसकी माया देवताओं को मोहित कर लेती है। जिसका रथ जल-थल और आकाश में एक समान विचरण करता है। नंगे पैर वे तपस्वी हमारा क्या बिगाड़ेंगे?"

दशानन के अहंकारयुक्त वचनों से राक्षस समूह हर्षित होता रहा।

44

दशानन का अहंकारी पांडित्य

"मूर्ख स्त्री, जब सर्वदाता सामने हो तो मेरे जैसा ज्ञानी पंडित कभी मांगने में त्रुटि नहीं करता।" दशानन अहंकारी पांडित्य के वशीभूत हंसकर बोला–"परंतु जब सबसे ही अभय मांग लेता तो इस भुजबल और रण-कौशल का क्या करता? जिन भुजाओं में भरकर कैलाश पर्वत को शिव सहित उठा लिया था, क्या वह बल ब्रह्मा के वरदान से प्राप्त हुआ है–नहीं, कदापि नहीं मंदोदरे! यह मेरी माता के दूध व पिता के रक्त से प्राप्त बाहुबल है। सुमुखे! जीवन के साथ मृत्यु भी निश्चित है। यदि राम ही ईश्वर है तो उससे जय हो या पराजय, दशानन को कोई हानि नहीं है। जय में यश और पराजय में परम मुक्ति! तू साधारण स्त्री की भांति विलाप करती है और अपने पति को संधि व शरण की सलाह देती है, दूसरी ओर सीता विलाप भी चंडी की भांति करती है और अपने पति को रण में आने को उत्तेजित करती है। यदि मेरी पराजय हुई तो इसका एक कारण तेरा और सीता का स्वभाव होगा–तेरा भय और सीता की अद्‌भुत निर्भयता होगा।"

लगन, उत्साह व परिश्रम से क्या संभव नहीं होता–यह श्रीराम की सेना ने कर दिखाया था। जब श्रीरामसेतु अपने अंतिम चरण में था–लंका की ऊंची अट्टालिकाओं से कई बार रावण व अन्य लंकावासी

भी उस कौतुक को देखकर विस्मित हो जाते थे। इतने लंबे और तैरते शिला सेतु की कल्पना करना भी कठिन था, लेकिन दूसरे तट से लंका द्वीप के तट तक आ चुका श्रीराम सेतु इस कल्पना को सत्य में बदल रहा था। वानर-भालुओं का सतत् परिश्रम अवर्णनीय था। यह श्रीराम का ही प्रताप था कि अत्यधिक श्रम के पश्चात् भी रामसेना को थकान नहीं व्यापती थी। दिन-रात जय श्रीराम का उद्घोष करते हुए रामभक्त अपने काम में जुटे रहते थे। सेतु की ऐसी सुंदर और सुदृढ़ रचना देखकर राम-लक्ष्मण हर्षित होते थे और नल-नील को आशीर्वाद देते थे।

"हे अनुज! मित्र सुग्रीव और हनुमान ने अपना वचन निभा दिया।" राम भावुक स्वर में लक्ष्मण से बोले—"कौन कह सकता था कि हम लंका तक पहुंच सकते हैं, परंतु मित्रता के आलंब ने सब कितना सरल कर दिया है! सच्चा मित्र सदैव ही वह आलंब होता है, जो विपन्न संकट में भी शांति प्रदान करता है।"

"आप सत्य कह रहे हैं प्रभु! जीवन में मित्रों का होना भी आवश्यक है।" लक्ष्मण गंभीरता से बोले।

"अनुज, हमारी इच्छा है कि हम यहां रुद्रादिदेव भगवान शिव की स्थापना कर इस स्थान को पुण्य तीर्थ के रूप में स्थापित करें।" राम भावपूर्ण स्वर में बोले—"उन्हीं की कृपा से यह कार्य संभव हो सका है। इस तीर्थ को पावन बनाकर आने वाले समय में जन-कल्याण के केंद्र के रूप में स्थापित करना उचित होगा।"

"आप आदेश करें प्रभु!" लक्ष्मण ने कहा।

"मित्र सुग्रीव व अन्य सभी साथियों को हमारी इस इच्छा से अवगत कराओ।"

लक्ष्मण ने बड़े उत्साह से सुग्रीव आदि से प्रभु की इच्छा का वर्णन किया तो सभी हर्ष से भर उठे। रामसेतु पर शिव स्थापना की तैयारियां होने लगीं। सुग्रीव के आदेश पर श्रेष्ठ मुनियों को शिव की प्राण-प्रतिष्ठा हेतु आमंत्रण भेजा गया तो अनेक ऋषिगण अपने सभी कार्य छोड़कर उधर चले आए।

रामसेतु पर शिवलिंग की स्थापना हेतु परम विद्वान दशानन को ही मुख्य अग्निहोत्र के रूप में आमंत्रित किया गया था और वह वहां आया भी—दशानन ने ब्राह्मण धर्म का पालन करते हुए अपने विशेष पांडित्य का प्रदर्शन किया और शिव स्थापना को विधि-विधान से संपन्न कराया। दशानन ने एक सच्चे ब्राह्मण की भांति श्रीराम को सर्वदा विजय का आशीर्वाद भी दिया।

वास्तव में दशानन केवल अहंकारी ही नहीं था, वह समस्त विद्याओं और नीतियों का ज्ञाता भी था।

पुण्यतीर्थ रामेश्वरम की स्थापना में देवताओं ने भी सहर्ष भाग लिया था।

बड़े हर्ष भरे वातावरण में यह यज्ञोत्सव चला और संपन्न हुआ। अब तक सेतु भी तैयार हो गया था और अब सेतु पार कर लंका तक पहुंचने के लिए केवल श्रीराम की आज्ञा शेष थी।

राम ने अपने सभी सहयोगियों से परामर्श किया और फिर एक दिन शुभ मुहूर्त देखकर श्रीराम सेना ने सेतुमार्ग से लंका की ओर प्रस्थान किया। जय श्रीराम के उद्घोष से गगनमंडल गूंज उठा। सबसे आगे अपने दिव्य धनुषों को कंधे पर धारण करके राम-लक्ष्मण चल रहे थे। दोनों ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे भोर और संध्या के दो सूर्य साथ-साथ चल रहे हों। सिंह समान प्रतीत हो रहे रघुकुलवंशी अब महाकाल के अंतिम रणांगण में प्रवेश कर चुके थे। इंद्रादि देवता मन में मोद मना रहे थे कि अंततः वह समय आ ही गया, जब उनको त्रास देने वाले राक्षसों का सर्वनाश होगा।

राम-लक्ष्मण के पीछे वीरवर हनुमान अपनी प्रचंड गदा को लेकर चल रहे थे। सुग्रीव, जामवंत, नल-नील, अंगद आदि मुख्य वीर वानर भी उत्साह से भरे रणोन्मत्त हो रहे थे। पीछे कतारबद्ध भालू एवं वानरों की असंख्य सेना जयघोष करती चली आ रही थी। समुद्र के जल-जीव इस भीषण कोलाहल से विचलित होकर जल की सतह पर आते और तत्काल जल में जा छुपते। वानर तो स्वभाव से ही चंचल होते हैं। घुड़की देना उनका स्वभाव है। जब कोई जलचर जल-सतह पर आता तो उसे घुड़कते, डराते और दांत किटकिटा रहे थे।

लंका के प्रहरी ऊंची अट्टालिकाओं से इस दृश्य को देख रहे थे और क्षण-क्षण अपने महाराज को सूचित कर रहे थे।

त्रिजटा के माध्यम से यह सूचना सीता को भी मिली तो उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

"हे त्रिजटे! अब लंका का नाश निश्चित है।" सीता दृढ़ स्वर में बोलीं–"अब रघुवीर के प्रचंड बाण उस अभिमानी दशानन के बल की परीक्षा लेंगे। अब उन महाक्रोधी लखन का पराक्रम अपने चरम पर होगा। त्रिजटे, रघुनाथजी तो फिर भी दया के सागर हैं, परंतु लक्ष्मण जब क्रोध में आ जाते हैं तो पृथ्वी डोलने लगती है। अब इस लंका में वही जीवित बचेगा जिसके हृदय में श्रीराम होंगे। मेरी प्रतीक्षा केवल मेरा दारुण कष्ट नहीं था त्रिजटे, यह वह दावानल था जिसमें श्रीरघुवीर और भैया लक्ष्मण के बाण भभक रहे थे। मैं जानती थी कि मेरे स्वामी आएंगे और इस सोने की लंका को बंजर कर देंगे।"

"पुत्री! निश्चय ही श्रीराम और लक्ष्मण का पराक्रम साधना कठिन है, परंतु दशानन को कमजोर समझना भी भूल होगी। वह अनेक मायावी विद्याओं का ज्ञाता

व दिव्यास्त्रों का धारक है। उसके मेघनाद सरीखे पुत्र भी उसी की भांति मायावी व पराक्रमी हैं। यह युद्ध अति कठिन होगा।"

"जिनके नेत्र खुलने पर सृष्टि का सृजन और बंद होने पर संहार हो जाता है, ऐसे सहज सुखराशि श्रीरघुवीर के लिए न कुछ कठिन है और न असंभव है त्रिजटे! जिस शिव के कठोर धनुष को कैलाश उठाने का अभिमान करने वाला लंकेश जौ-भर न उठा सका था, उसे श्रीरघुनाथजी ने तिनके की भांति उठाकर तोड़ दिया था। श्रीरघुनाथ के पराक्रम की बात ही क्या! उनकी तनिक-सी ललकार से भृगुनंदन महर्षि परशुराम, जिन्होंने भूमि को इक्कीस बार क्षत्रियविहीन किया, वे भी अपना दर्प भूलकर नतमस्तक हो गए थे। त्रिजटे! उनके लिए क्या कठिन है?"

"पुत्री! मैं तो चाहती हूं कि सब सहज ही हो जिससे तुझे इस वियोग की पीड़ा से मुक्ति मिले। मुझसे तेरा दुख देखा नहीं जाता। भले ही मैंने तुझे जन्म नहीं दिया, परंतु जब से तुझसे मिली हूं, तब से स्वयं ही ममता का अनुभव किया है। उससे पहले तो मेरा राक्षसी जीवन अधर्म व हिंसा में ही व्यतीत होता था। मैं लंकेश की जिस राक्षसी टुकड़ी की नेता थी, वे सब युद्ध के समय शत्रुपक्ष को सुंदर रूप से रिझाकर और एकांत में बुलाकर मार खा जाने वाली राक्षसनियां थीं। हमने कितने ही युद्धों में ऐसे छल-कपट और हिंसा की है। हमारे हृदय में दया व ममता के लिए स्थान ही कहां था, परंतु तुमसे मिलने पर मैंने स्त्री होने का मूल्य जाना। राक्षसी भी थी तो भी किसी की पत्नी, माता या बहन तो हमें होना चाहिए था, परंतु लंकेश ने हमें न यह जन्म भोगने दिया और न अगला जन्म संवारने दिया।"

"त्रिजटे! जब स्त्री किसी अपनेपन के रिश्ते से नहीं बंधी होती तो वह कुछ भी नहीं होती। पुरुषवाद ने न स्त्री को कभी समझा है और न समझेगा। स्त्री पुरुष के लिए भोग्या से अधिक कुछ नहीं और जो स्त्री किसी पुरुष के प्राण बन जाए तो उससे अधिक सौभाग्यवती इस जगत में कौन होगी?" सीता भाव-विभोर होकर बोलीं-"मेरे स्वामी ने मुझे यह सौभाग्य दिया है त्रिजटे! उन करुणानिधान ने मेरे वियोग की जो पीड़ा सही है, उसे मेरा हृदय ही जानता है। सुख-दुख जिनकी प्रेरणा से ही होते हैं, उन्होंने भी अर्धांगिनी का ऐसा मान रखा है कि संसार स्मरण रखेगा।"

सीता की आधी पीड़ा तो इसी समाचार से दूर हो गई थी कि श्रीराम की विशाल सेना सेतु मार्ग से लंका की ओर बढ़ी आ रही है।

इसके विपरीत जब मंदोदरी ने यह समाचार सुना तो उसकी विकलता बढ़ गई।

"स्वामी! सुना है रामसेना लंका की ओर बढ़ी आ रही है। उन्होंने समुद्र को बांधने का अविश्वसनीय कार्य कर दिया है।" मंदोदरी ने अवसर मिलते ही

व्याकुल भाव से रावण से कहा–"पहले आप कहते थे कि मैंने जिस छल से सीताहरण किया है, उससे राम कभी पता न कर सकेगा कि सीता कहां गई, किंतु हनुमान यहां आ पहुंचा। उसने मेरे पुत्र का वध कर दिया तो आपने कहा कि यह असावधानीवश हो गया और अब कोई लंका में प्रवेश नहीं कर सकता, परंतु अब तो असंख्य वानर यहां आ रहे हैं। एक हनुमान ने ऐसा तांडव किया तो असंख्य वानर क्या करेंगे?"

"मंदोदरे! मैंने केवल एक भूल की है जिसका सदैव मुझे पश्चाताप रहेगा।" दशानन उसे घूरकर बोला–"मैंने एक भयभीत स्त्री को अपनी पटरानी बनाया, जो अपने पति के प्रताप और बल से विश्वास खो बैठी है। जब मैंने कुबेर को अपने पराक्रम से पराजित किया था तो तुमने ही कहा था कि आप सर्वदा विजयी होंगे। आज इतनी भयातुर है कि अभी शत्रु से रण में नेत्र भी नहीं मिले और तू हमारी निश्चित मृत्यु को अटल मान बैठी है। अभी रण शेष है और योद्धा के लिए रण क्रीड़ा होता है। राम जैसे साधारण तपस्वी ने पत्नी वियोग में भालू-वानरों को साथ लेकर लंका पर चढ़ाई करने की भूल कर दी है–यह उसे बहुत निंदित करेगी। युद्ध में शत्रु के लिए आहारी सेना लाने वाले को कौन समझदार कहेगा?"

"नाथ! वे साधारण संसारी नहीं हैं। वे स्वयं श्रीनारायण हैं। सीता स्वयं श्रीलक्ष्मी हैं। सब जानते हुए भी आप मानते ही नहीं।" मंदोदरी ने विलाप करते हुए कहा।

"मंदोदरे! यदि राम ही वह छली विष्णु है तो भी क्यों भयातुर हो। यदि रण में रावण जीता तो राक्षसकुल की कल्पों पुरानी साध पूरी हो जाएगी। जब भी हम राक्षस यशस्वी हुए, तभी विष्णु ने छल से हमारा पराभव किया है। अब कोई भी छल नहीं चलेगा। अब वह यदि विष्णु है भी तो नृसिंह, वामन या मत्स्य, वराह जैसे विचित्र रूप में नहीं, नररूप में है।"

"नाथ! ब्रह्माजी के वरदान में नर व वानर से अभय न मिला था।"

"मूर्ख स्त्री, जब सर्वदाता सामने हो तो मेरे जैसा ज्ञानी पंडित कभी मांगने में त्रुटि नहीं करता।" दशानन अहंकारी पांडित्य के वशीभूत हंसकर बोला–"परंतु जब सबसे ही अभय मांग लेता तो इस भुजबल और रण-कौशल का क्या करता? जिन भुजाओं में भरकर कैलाश पर्वत को शिव सहित उठा लिया था, क्या वह बल ब्रह्मा के वरदान से प्राप्त हुआ है–नहीं, कदापि नहीं मंदोदरे! यह मेरी माता के दूध व पिता के रक्त से प्राप्त बाहुबल है। सुमुखे! जीवन के साथ मृत्यु भी निश्चित है। यदि राम ही ईश्वर है तो उससे जय हो या पराजय, दशानन को कोई हानि नहीं है। जय में यश और पराजय में परम मुक्ति! तू साधारण स्त्री की भांति

विलाप करती है और अपने पति को संधि व शरण की सलाह देती है, दूसरी ओर सीता विलाप भी चंडी की भांति करती है और अपने पति को रण में आने को उत्तेजित करती है। यदि मेरी पराजय हुई तो इसका एक कारण तेरा और सीता का स्वभाव होगा—तेरा भय और सीता की अद्‌भुत निर्भयता होगा।"

मंदोदरी मौन हो गई। वह समझ ही न पा रही थी कि उसका पति किस नीति व उद्‌देश्य से इतना हठी था। कभी लग रहा था कि वह जो भी कह रहा था, वही सत्य था और कभी वह उसे अभिमान में डूबा हुआ लगता था। अब तो ईश्वर ही निर्णय करेंगे कि क्या होना था।

45

अंगद दशानन के दरबार में

"मैं अपने स्वामी की शपथ लेता हूं अभिमानी दशानन!" अंगद ने दशानन के दरबार में बड़े जोर से 'जय श्रीराम' कहते हुए अपना दायां पैर भूमि पर जमा दिया। रावण के संकेत पर एक बलवान राक्षस उठा और अंगद के पैर को उठाने लगा। पहले तो वह अपने बल के मद में चूर था, परंतु शीघ्र ही समझ गया कि यह उसके वश का कार्य नहीं है। अपनी सारी शक्ति लगाकर भी वह अंगद का पैर उठाना तो दूर हिला भी न सका। वह लज्जित होकर अपने स्थान पर वापस जा बैठा, फिर दूसरा योद्धा आया। वह भी अपना बल आजमाकर सिर झुकाए वापस चला गया। अब दशानन ने दांत किटकिटाए।

लंकाद्वीप के तट पर सुबेल पर्वत पर श्रीराम सेना ने अपना पड़ाव डाल दिया था। लंका नगरी का परकोटा वहां से सात मील दूर विशाल मैदान के दूसरे सिरे पर था। उस मैदान में जिधर भी दृष्टि जाती थी, भालू और वानर ही दिखाई दे रहे थे। इसके अतिरिक्त सेतु पर भी असंख्य सेना थी। जय श्रीराम के गगनभेदी जयघोषों से लंकावासियों की नींद उड़ चुकी थी। राम-लक्ष्मण स्फटिक शिलाओं पर शोभायमान हो रहे थे।

"मित्र सुग्रीव! अब हमें क्या करना चाहिए?" राम ने पूछा।

"प्रभो! अब आप केवल आदेश करें जिससे युद्ध का बिगुल बजाया

जा सके। अब शत्रु से संधि की संभावना तो रही नहीं है, क्योंकि अभिमानग्रस्त दशानन किसी की भी सलाह नहीं मानना चाहता।" सुग्रीव ने कहा।

"आपका क्या विचार है प्रिय जामवंत? आप अनुभवी और नीतिवान हैं।"

"प्रभो! आप घट-घट का रहस्य जानने वाले हैं। तीनों काल आपकी प्रेरणा से ही गति करते हैं। क्या होने वाला है, यह आप ही जानते हैं, फिर भी हे प्रभु! नीति कहती है कि युद्ध अंतिम विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।" जामवंत ने गंभीरता से कहा–"अभी तक दशानन को आशा नहीं थी कि हम उसके किले तक आ भी सकेंगे, इसलिए वह संधि के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता था, परंतु अब संभवतः उसका विचार बदल जाए, अतः हे करुणानिधान! उसे एक अवसर और दें। हमें दूत भेजकर अंतिम प्रयास करके देखना चाहिए, इसी में प्रभु की महानता है।"

"अति उत्तम!" राम ने गंभीरता से कहा–"तात जामवंत ने सत्य ही कहा है। जब तक काल सिर पर ही न आ बैठे, तब तक हठी लोग उससे भय नहीं मानते। अभी तक रावण को यही लगता था कि वह अजेय, अभेद्य और अभय किले में सुरक्षित है, परंतु अब संभवतः उसे कुछ भय लगा हो। युवराज अंगद, हमारा यह कार्य तुम संपन्न करोगे। तुम दूत बनकर रावण के पास जाओ और उसे अपने ढंग से समझाओ।"

"जो आज्ञा प्रभु!" अंगद प्रसन्नता से बोला–"मुझे यह अवसर देकर आपने कृतार्थ कर दिया है। मैं अभी जाता हूं–आशीर्वाद दीजिए।"

राम सहित सभी ने उसे आशीर्वाद दिया और वह युवा पराक्रमी बालिपुत्र लंका के मुख्य द्वार की ओर ऐसे चल दिया, जैसे सिंह अपनी गुफा में निश्चिंत होकर जा रहा हो। तनी हुई गरदन, बलिष्ठ शरीर, आंखों में दृढ़ता–अंगद जब मुख्य द्वार पर पहुंचा तो अनेक राक्षसों ने उसे घेर लिया। अंगद जानता था कि ऐसे समय क्या करना चाहिए। उसने गदा उठाकर अपने सामने मार्ग रोके खड़े दो राक्षसों पर भीषण प्रहार किया, जो गेंद की भांति उड़कर बहुत दूर जा गिरे। यह देखकर अन्य राक्षस सहमकर पीछे हट गए। अब किसी का साहस न हुआ कि उसका मार्ग रोक सके और वह निर्भय होकर आगे बढ़ा। जब वह अंदर प्रवेश कर गया तो लंका के वासी भी भयभीत हुए। आज फिर एक वानर आ गया था। हनुमान के द्वारा लंकादहन का इतना भय व्याप्त था कि अंगद जिससे भी दरबार का रास्ता पूछता, वह या तो भागकर छुप जाता या उंगली उठाकर मार्ग बता देता। अंगद अकड़ता हुआ आगे बढ़ता ही जा रहा था।

"ठहर वानर!" तभी पीछे से कठोर स्वर उभरा–"ऐसे कहां भागा जा रहा है, जैसे कि भ्रमण पर निकला हो। यह लंकाधीश दशानन की राजधानी है, जहां अनधिकृत प्रवेश करने वाले को मृत्युदंड दिया जाता है। संभवतः आज तेरी मृत्यु नरांतक के हाथों लिखी है।"

"लंकेशनंदन नरांतक!" अंगद ने व्यंग्यपूर्वक कहा–"अभी तो तेरे दूध के दांत भी नहीं निकले हैं और तू मृत्यु को ललकारने आ गया। अभी मैं तेरे घमंडी पिता से वार्ता करने जा रहा हूं। यदि उसकी बुद्धि में कुछ आ जाए तो तेरे पक्के दांत आने का समय सकुशल आ जाएगा, अन्यथा मृत्यु तो लंका के द्वार पर खड़ी ही है।"

"रे शठ वानर! तू हमारा आहार होकर भी ऐसी निर्भय वाणी बोलता है। अभी ठहर, मैं तुझे यही ढेर करके युद्ध का आरंभ करता हूं।" नरांतक दांत किटकिटाकर अपना भयानक दुधारा लेकर अंगद की ओर दौड़ा तो अंगद ने उसके वार को बचाते हुए उसके घुटनों पर गदा का ऐसा प्रहार किया कि पत्थर टूटने जैसी आवाज आई और नरांतक भैंसे के भांति डकराकर भूमि पर गिर पड़ा। अंगद ने एक और भीषण प्रहार उसके कंधे पर किया तो उसकी हड्डियां कड़कड़ा उठीं।

"अभी तुझे जीवित छोड़ता हूं नरांतक, क्योंकि मेरे स्वामी ने मुझे संधि के लिए भेजा है। संधि हो गई तो वैद्य तुझे ठीक कर ही देगा, अन्यथा मैं लौटकर तुझे इस पीड़ा से मुक्त करता जाऊंगा।" अंगद ने कठोर स्वर में कहा। नरांतक भूमि पर पड़ा पीड़ा से कराहता रह गया और अंगद आगे बढ़ चला। अब किसी का साहस न हुआ कि उसके सामने भी आए। निर्भय बालिपुत्र दशानन के दरबार के प्रवेश द्वार पर पहुंचा तो द्वारपालों का भी साहस न हुआ कि उसका मार्ग रोकें। वह निःशंक दरबार में जा पहुंचा और उसे वहां अनायास पहुंचा देख सभी दरबारी हड़बड़ाकर उठ बैठे। दशानन अपने सिंहासन पर बैठा उसे घूरता ही रहा गया। अंगद ने 'जय श्रीराम' का नारा लगाया।

"तू कौन है रे अशिष्ट असभ्य वानर?" दशानन गरजकर बोला–"जो इतना भी नहीं जानता कि किसी यशस्वी राजा के दरबार में आकर राजा का अभिवादन करना चाहिए–और तू यहां तक आ कैसे गया? क्या किसी ने भी तुझे न रोका?"

"लंकेश!" अंगद निर्भीक स्वर में बोला–"हमारे स्वामी, जगत के स्वामी प्रभु श्रीराम ने इस सिंहासन का अधिकारी महाराज विभीषण को घोषित कर दिया है। अतः हम तो तुम्हें राजा मानते ही नहीं। रही बात हमारा मार्ग रोकने की तो तुम्हारे पुत्र नरांतक ने प्रयास किया था, जो अब वैद्य की प्रतीक्षा में कराह रहा है। वह मेरे दो प्रहार भी न सह सका। उसका परिणाम देखकर किसी और ने साहस भी न किया।"

दशानन क्रोध से कसमसाकर रह गया।

"हे दशानन! मेरा नाम अंगद है और तुम्हें स्मरण करा दूं कि मैं उसी बालि का पुत्र हूं जिससे तुम्हारी मित्रता हुई थी। मैं कोसलपति श्रीराम का तुच्छ-सा सेवक हूं और उनकी आज्ञा से तुम्हें सद्बुद्धि देने का प्रयास करने आया हूं।" अंगद ने कहा।

"बालि का पुत्र! रे कलंकी! पिता का परिचय न देता तो अच्छा रहता। तूने

उस वीर वानर के हत्यारे की सेवकाई स्वीकार की, तुझे धिक्कार है।" दशानन ने कहा—"तेरे जैसे कुलकलंक को तो गर्भ में ही नष्ट कर दिया जाना चाहिए था। संसार तेरे जैसे कुलघातकों की निंदा करेगा, तूने तो आत्म-सम्मान का अर्थ ही नहीं जाना।"

"अरे...रे.....रे...।" अंगद व्यंग्य से बोला—"कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले दशानन का तो उसी समय देवताओं ने भी वंदन किया था, जब वह भिक्षुक का वेश बनाकर एक स्त्री का हरण कर लाया था। उस समय भी कुल की कीर्ति बढ़ी थी, जब सहस्त्रार्जुन के यहां बालकों ने तुम्हें घुड़साल में बांध लिया था।"

"अपनी निर्लज्जता को छुपाने के लिए कुतर्क न कर।" दशानन तिलमिलाकर बोला—"तू मंदबुद्धि बालक है, वानर है। अत: इन बातों को नहीं जानता। तेरे पिता को कपट से व्याध की भांति मार डाला गया और तेरे युवा रक्त में प्रतिशोध की ज्वाला भी न प्रज्वलित हुई। यदि असहाय था तो मेरे पास आता। आ गया है तो अब सहायता मांग, मैं यहीं तेरा राजतिलक करके किष्किंधा का राज्य तुझे दे दूंगा।"

"रहने दो पराक्रमी! अभिमान की सीमा से पार न जाओ। मेरे पिता ने भी तुम्हारी ही तरह अभिमान की सीमा पार कर दी थी और परस्त्री का बलात् हरण किया था। ऐसे अभिमानी की यही गति होती है। यह तो प्रभु श्रीराम की दयालुता है कि तुम्हारे अक्षम्य और घोर नरकगामी कुकर्मों के बदले भी तुम्हारा उद्धार करने हेतु स्वयं पधारे हैं। अब मेरी बात सुनो दशानन!" अंगद ने गंभीर स्वर में कहा—"व्यर्थ की बातों में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। पहले भी तुम्हें बहुत से ज्ञानी, विद्वानों ने समझाया होगा कि जल, अग्नि, वायु और काल के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए। प्रभु श्रीराम कालों के भी काल हैं और उनके एक बाण में इतनी शक्ति है कि स्वयं वरुणदेव भी उनके सामने नतमस्तक हो जाते हैं, जो संसार को जलमग्न करने की सामर्थ्य रखते हैं।।"

"मूर्ख वानर! उस तपस्वी का गुणगान न कर, जो वन-वन पत्नी-वियोग में पशु-पक्षी और वृक्षों के सामने विलाप करता फिरता था। क्या कभी मनुष्य का साथ वानर देते सुने हैं। जो मनुष्यों से तिरस्कृत हैं, वे पशुओं से भी मित्रता करेंगे। क्या अयोध्या का सैन्य बल क्षीण हो गया है, जो वह वानरों के आश्रय हुआ।"

"दशानन! तेरी सभा में सभी निशाचर पशु समान हैं। प्रभु श्रीराम का पराक्रम इन सबसे न सहा जाएगा। उन्हें न सेना की आवश्यकता है, न शस्त्रों की। उनकी तो हम पर कृपा हुई है, जो हमें अपना बल दिखाने और सेवा करने का अवसर दिया है।"

"पशु बुद्धि इससे अधिक क्या सोच सकती है मूर्ख! मनुष्य बुद्धिमान होते हैं और राम भी ऐसा ही है। उसे ज्ञात था कि महाबली दशानन से जीत पाना असंभव है और युद्ध विवशता है। कोई राजा तो उसके साथ आता नहीं, अत: जानवरों को ही बहका लिया। पराजित भी होगा तो भी मान तो बना रहेगा कि प्रयास तो किया।"

"हे दशानन! श्रीराम को साधारण मनुष्य मानने की तेरी भूल इस कुल का नाश कर देगी। यहां बैठे जो दुर्बुद्धि सभासद तेरे अभिमान को सींच रहे हैं, वे खोजे न मिलेंगे। अपने पितामह मुनि पुलस्त्य के यश और मान का स्मरण करके विचार करो कि उन्होंने जब अपने मन में विकार देखे तो स्वयं से उनको विलग कर दिया अर्थात् त्याग दिया और प्रभुप्रेमी बन गए। तुम्हारे लिए ऐसा शुभ अवसर संभवतः उन्हीं के पुण्य प्रभावों से आया है, जो स्वयं प्रभु तुम्हें शरण में लेने तुम्हारे द्वार पर पधारे हैं। अतः अभिमान त्यगाकर मेरे साथ चलकर उन दयानिधान से अपने अपराधों की क्षमा करके शरणागत हो जाओ।"

"अपनी जिह्वा को लगाम दे कुलद्रोही!" दशानन गरजा–"उस तपस्वी के चरणों में मोक्ष मानने वाले तुम मंदबुद्धि वानरों को स्वयं सरस्वती भी नहीं समझा सकती। मोक्ष किसी की सेवाकर्य से नहीं मिलता। मोक्ष केवल ऐश्वर्य भोगने, कीर्ति अर्जित करने और वर्चस्व स्थापित करने में है–दशानन यही करता है और यही करेगा। तू बंदर है और बंदर का स्वभाव ही अपने स्वामी को प्रसन्न रखना होता है, भले ही इसके लिए नाचना पड़े। तू इसी स्वभाववश मेरे प्रताप को नहीं जानता। मैं वही जगत्प्रसिद्ध रावण हूं जिसने अपने सिर रूपी कमलों को अपने हाथों से उतार-उतारकर कई बार त्रिपुरारि शिव को समर्पित किया। मेरा पराक्रम देवता जानते हैं जिन्हें आज भी मेरा भय है।"

"अहा! तुम ही वह जगत्प्रसिद्ध दशानन हो जिसे सहस्त्रार्जुन ने जंतु की भांति बांधकर तमाशा कराया था और बच्चे जिससे कंकड मारकर खेलते थे। तुम वही महाबली भी हो जो मेरे पिता की कांख में दबे 'त्राहिमाम-त्राहिमाम' कर रहे थे। तुम्हारी प्रभुताई कौन नहीं जानता!"

अंगद के वचन सुनकर रावण क्रोध से उठ खड़ा हुआ–"तू निश्चय ही अपनी मृत्यु के वशीभूत होकर यहां आया है। तुझसे पहले भी एक वानर यहां आया था जिसे दूत जानकर मैंने जीवित छोड़ दिया था। अब तू भी दूत ही बनकर आया है। तेरा वह स्वामी युद्ध से इतना भयभीत क्यों है, जो बार-बार संधि की याचना करने तेरे जैसे जड़-जंतुओं को भेजकर मेरे क्रोध को बढ़ाता है। यदि कुछ पुरुषार्थ है तो रणभूमि में दिखाए। अकेला मेरा भाई कुंभकर्ण उसकी सेना का आहार करने के लिए पर्याप्त है।"

"अरे निर्लज्ज, मुझसे पहले जो आया था, उसकी अधूरी बात क्यों करता है?" अंगद ने भी गरजकर कहा–"यह बताने में तेरी जीभ टेढ़ी होती है कि उस अकेले ने कैसे तेरा मान-मर्दन किया। तेरे अनेक योद्धाओं और पिताघोषित पराक्रमी पुत्र अक्षय को उसने कीड़ों की भांति मसल दिया–तेरे नगर में हाहाकार मचा दिया। सोने की लंका को भस्मीभूत कर दिया, फिर भी तेरा अभिमान न गया। मुझे मेरे स्वामी ने ऐसा तमाशा

करने की अनुमति दी होती तो मैं अभी तेरे पैर पकड़कर भूमि पर पटक देता और तुझे मरे हुए हिरन की भांति कंधे पर डालकर ले जाता। मन में डर है कि प्रभु रुष्ट हो जाएंगे, अन्यथा कल के लिए तो यहां कुछ शेष बचता ही नहीं। तेरे ये सभासद, जो निठल्ले भोजन करके फूले पड़े हैं, मेरे एक प्रहार से हाय-हाय करते दिखेंगे।"

दशानन सहित सभी सभासद क्रोध के मारे कांपने लगे।

"तू श्रीरामचंद्र जी को जीतने की बात करता है! मैं उनका एक तुच्छ सेवक हूं। तुझमें और तेरे इन योद्धाओं में कितना बल है, यह मैं तौलता हूं। यदि इस लंका नगरी में कोई अपने बल का घमंड रखता है तो मैं अपना पैर जमाए देता हूं और कोई मेरे पैर को जमीन से तृण-भर भी हटा दे तो आज माता सीता को मैं हार जाऊंगा। फिर रामजी की सेना वापस चली जाएगी। यह मेरा वचन है।" अंगद ने दृढ़ता से कहा।

दशानन ने अंगद को ऐसे देखा, जैसे उसने घोर मूर्खता की बात कह दी हो।

"अपने वचन से तो पीछे न हटेगा मूर्ख वानर!" दशानन ने कहा।

"मैं अपने स्वामी की शपथ लेता हूं अभिमानी दशानन!" अंगद ने दशानन के दरबार में बड़े जोर से 'जय श्रीराम' कहते हुए अपना दायां पैर भूमि पर जमा दिया। रावण के संकेत पर एक बलवान राक्षस उठा और अंगद के पैर को उठाने लगा। पहले तो वह अपने बल के मद में चूर था, परंतु शीघ्र ही समझ गया कि यह उसके वश का कार्य नहीं है। अपनी सारी शक्ति लगाकर भी वह अंगद का पैर उठाना तो दूर हिला भी न सका। वह लज्जित होकर अपने स्थान पर वापस जा बैठा, फिर दूसरा योद्धा आया। वह भी अपना बल आजमाकर सिर झुकाए वापस चला गया। अब दशानन ने दांत किटकिटाए।

एक-एक करके सभी बड़े बलवान योद्धाओं ने अंगद के पैर पर अपना बल आजमाया और पसीने से तर होकर सिर झुकाए अपने आसन पर जा बैठे।

"समझ गया! तुम सभी अपना बल भूल गए हो।" दशानन क्रोध से गरजा-"पर मैं नहीं भूला। इन्हीं भुजाओं से मैंने शिव सहित कैलाश पर्वत को उठाया है-वानर संभल जा।"

दशानन सिंहासन से नीचे उतरकर अंगद के पैर की ओर झुका।

"लंकेश!" अंगद पीछे हटकर बोला-"तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, जो अपने आत्म-सम्मान को भूलकर मेरे पैरों में पड़ रहा है। यदि ऐसा अभिमान त्यागकर तू प्रभु श्रीराम के चरणों को पकड़ता तो तेरा उद्धार हो जाता मूर्ख!"

रावण लज्जा के मारे क्रोध से कांपता हुआ अपने सिंहासन पर जा बैठा।

अंगद विजेता भाव से दशानन के दरबार से चल पड़ा।

46

धर्महीन दशानन की गति

चारों ओर स्तब्धता छा गई थी। बाण लौटकर तूणीर में समा गया था। कोई समझ ही न पाया कि क्या हुआ था, तभी आकाश से गिरते चार चमकीले पिंड रामदल की ओर लपके आ रहे थे, जो एक-एक करके राम के सामने गिर गए। ये दशानन के चार मुकुट थे जिन्हें विभीषण ने पहचानकर बड़ी सुंदर व्याख्या की। "हे प्रभु, हे रघुनंदन! ये रावण के चार मुकुट केवल मुकुट नहीं हैं, अपितु नीति-धर्म के वेद-वर्णित साम, दाम, दंड और भेद नामक चार चरण हैं, जो धर्महीन दशानन को त्यागकर दशरथनंदन रघुपति राघव राजा राम की शरण में चले आए हैं। काल के वश हो गए दशानन को इन संकेतों से भी भविष्य का ध्यान नहीं हो रहा है।"

संध्या का समय हुआ जा रहा था और अंगद अभी तक लौटकर नहीं आया था। वानर दल बड़ी व्यग्रता से लंका की ओर देख रहे थे कि कब अंगद लौटे और वे उसका अभिनंदन करें। राम की आंखों में भी चिंता के भाव थे। सुग्रीव भी चिंतित था।

"मित्र! अंगद ने बहुत समय लगा दिया।" राम चिंतित स्वर में बोले—"अब तो सूर्यास्त भी होने जा रहा है। कहीं अभिमानी रावण ने उसके साथ दुर्व्यवहार तो नहीं किया? इस समय रावण बौखलाया हुआ है और नीति-अनीति विचारने योग्य नहीं रहा।"

"प्रभु! जिस पर आपकी कृपा हो, उसका कोई क्या अहित कर सकता है?" सुग्रीव ने कहा, परंतु उसके स्वर में भी चिंता थी–"फिर भी शत्रु के घर में गए अंगद की चिंता होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि शत्रु अभिमानी और अत्याचारी है। हनुमान उसकी नगरी जला आए, आपने समुद्र पर सेतु बनाकर सेना सहित उसे आ घेरा तो निश्चय ही वह बौखला तो गया ही होगा। अभिमानी की आशा के विपरीत जब कुछ होने लगे तो वह अनीति पर ही उतर आता है। रावण तो वैसे भी कपटी है।"

"नाथ!" जामवंत ने हाथ जोड़कर कहा–"आप तो करुणानिधान हैं और अपने भक्तों की चिंता आपके स्वभाव में है, परंतु प्रभो! युवराज अंगद पर आपका विशेष स्नेह और कृपा है। अत: उसका कोई अहित नहीं हो सकता। दशानन यदि स्वयं भी अनीति पर उतर आए तो भी आपके कृपापात्र का अहित नहीं कर सकेगा। युवराज अंगद का विलंब करना संभवत: इस कारण हो सकता है कि दशानन ने युवराज की बातें गंभीरता से सुनी हों और कोई सकारात्मक विचार बनाया हो।"

एकाएक तभी वानरदल का उत्साह भरा शोरगुल उभरा।

"जय श्रीराम! युवराज अंगद आ रहे हैं।"

राम सहित सभी ने हर्ष से लंका के मुख्य द्वार की ओर देखा तो अंगद बड़ी शान से चला आ रहा था। उसकी चाल सिंह समान थी। अनेक वानर उसकी ओर दौड़ पड़े और उसे कंधों पर उठा लिया। उसके ऊपर प्रश्नों की झड़ी लगा दी–क्या हुआ? कैसे हुआ? दशानन ने क्या कहा? दशानन दिखने में कैसा था? उसके योद्धा कैसे-कैसे थे इत्यादि-इत्यादि। अंगद सबकी उत्सुकता समझ रहा था, परंतु वह सभी प्रश्नों के उत्तर प्रभु श्रीराम के सामने ही देना चाहता था। वानरदल ने उसे राम के समक्ष लाकर कंधों से उतारा और जय श्रीराम का गगनभेदी उद्‌घोष किया।

अंगद ने आदरसहित राम-लक्ष्मण को शीश झुकाया तो राम ने उसे हृदय से लगाकर स्नेहपूर्वक आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् सभी पूज्यजनों के चरण स्पर्श करके अंगद श्रीराम के समक्ष घुटनों के बल बैठ गया।

"हे वीरवर अंगद!" राम ने प्रीतिपूर्वक कहा–"तुम्हारी वीरता की बड़ाई कौन कर सकता है! हे धीरबुद्धि, तुम्हारा समर्पण और बुद्धि भी अद्वितीय है। तुमने अवश्य ही दशानन को नीतियुक्त परामर्श देकर उसे हमारे संधि-प्रस्ताव से अवगत कराया होगा। यद्यपि विद्वता में दशानन का कोई सानी नहीं है, परंतु जब अभिमान सिर पर सवार हो तो विद्वता काम नहीं आती और विवेक कार्य नहीं करता। निश्चय ही उस हठी ने संधि प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया होगा, क्योंकि तुम अकेले आए हो और न लंका के दुर्ग पर संधि ध्वज दिखाई दिया है, फिर भी हे वानरश्रेष्ठ! वहां हुए वार्तालाप का विस्तार तो वर्णन करो।"

"प्रभो! आप सर्वव्यापी हैं। जगत का कण-कण आपकी दृष्टि में है, अतः आपसे क्या छुपा रह सकता है?" अंगद विनयपूर्वक बोला—"आप जानते हैं कि दशानन केवल अभिमानी ही नहीं, अपितु दुस्साहसी भी है। अपने बल पर उसे ऐसा घमंड है कि वह बार-बार आपकी दयालुता को अपना बल ही मानता है। हे नाथ! मैंने उसे सभी नीतियों से समझाया, परंतु वह शठता नहीं छोड़ता। वह आपको निर्बल और क्षत्रियों में त्याज्य कहता है...।"

अंगद ने अक्षरशः दशानन के दरबार का वार्तालाप कह सुनाया, जिसे सुनकर सभी ने घोर उत्साह से जय श्रीराम और युवराज अंगद के नाम का जयघोष किया।

"प्रभो! जब महावीर हनुमान और युवराज अंगद का पराक्रम उस शठ रावण से अपने घर में नहीं सधा तो वह रणभूमि में क्या करेगा?" जामवंत ने उत्साहित स्वर में कहा—"हे त्रिगति के दाता, युद्ध अवश्यंभावी हो गया है, अतः अब अपने हृदय में पुरुषार्थ को स्थान दें और हमें भक्ति और सेवकाई को आजमाने का शीघ्र अवसर दें। जो निश्चित है, उसे टालना उचित नहीं है।"

"हे नीतिनिधान जामवंत! संसार की गति ही ऐसी है कि शत्रुता स्वयं अपने विनाश को पुकार लेती है। इस समय त्रैलोक्य में दशानन के समान मेरा कोई भी प्रिय नहीं है। उसका उद्धार मेरे लिए सर्वोपरि है। जिस हृदय में शत्रुतावश ही सही, मैं विराजता हूं, वहां कल्याण के सब मार्ग खुल जाते हैं।" राम ने गंभीर स्वर में कहा—"यह युद्ध नहीं है, यह केवल मोक्ष का द्वार है।"

"नाथ! आपकी कृपा का कोई पार नहीं।" विभीषण ने कहा—"यह केवल आपके लिए ही हो सकता है कि परमशत्रु को भी अपने लोक का अधिकार दे दिया। हे दयासिंधु! आपकी महिमा को कौन बखान करे!"

"अब संध्यावंदन का समय हो रहा है कपिराज! तत्पश्चात् हमें आगे की रणनीति पर विचार-विमर्श करना है।" लक्ष्मण ने कहा—"युवराज अंगद के कथनानुसार अब युद्ध अवश्यंभावी है, अतः अब क्षत्रियोचित यही है कि रणांगण में जाकर शत्रु को अपने पराक्रम से साधा जाए, उसे संतुष्ट किया जाए। जब बार-बार जीवित रहने के अवसर दिए जाने पर भी शठ पशु समान शत्रु सम्मुख रहकर अभिमानी वाणी बोले तो उसका संहार करना उचित है।"

लक्ष्मण के उत्तेजित विचारों ने रणोन्मत्त वानरों में अद्भुत-सी ऊर्जा भर दी थी और वे बड़े उत्साह में जय श्रीराम का जयघोष करने लगे। राम ने स्नेहपूर्वक मुस्कराते हुए हाथ उठाकर सबको शांत रहने का संकेत किया और फिर सभी संध्यावंदन को चल पड़े। सुबेल पर्वत के शिखर से सूर्यास्त का दृश्य बड़ा मनोहर लग रहा था। उस सूर्यास्त में सोने की लंका ऐसे दमक रही थी, जैसे दहकता हुआ बड़ा अंगार हो।

संध्यावंदन के पश्चात् सभी ने कंद-मूल, फल का भोजन किया। अब अंधेरा हो गया था। वानरदल ने सुरक्षा व्यूह बना लिया था। राम-लक्ष्मण को व्यूह के केंद्र में रखकर सभी बड़े मनोयोग से पहरा देते थे। राम-लक्ष्मण देर रात्रि तक हनुमान, सुग्रीव, विभीषण और जामवंत आदि से मंत्रणा करते रहते थे। अचानक तभी आकाश ऐसे प्रकाश से जगमगा उठा, जैसे उल्कापात हो रहा हो। सारा द्वीप प्रकाशमय हो गया था, फिर तेज स्वर में वाद्ययंत्रों की ध्वनि सुनाई देने लगी। सबने प्रकाशस्त्रोत की दिशा में देखा तो दूर एक पर्वत शिखर पर जैसे धवल सूर्य उदय हुआ हो।

"लंकापति विभीषण, यह कैसा अद्‌भुत दृश्य है, जैसे साक्षात् इंद्र ने ही पर्वत शिखर पर नृत्य-गान का भव्य आयोजन किया हो?" राम ने विस्मय से पूछा।

"प्रभो! उस पर्वत पर रावण का एक अति मनोरम विलासभवन है, जो इंद्र के वैभव को भी लज्जित करता है।" विभीषण ने बताया—"जब दशानन प्रसन्न होता है तो वह इस विलासगृह में भव्य नृत्य-गान का आयोजन करता है। इंद्र को भी जीत चुके रावण के आदेश पर स्वर्ग की अप्सराएं व गंधर्व इस आयोजन में नृत्य-गान करते हैं। यह जो धवल प्रकाश है, वह रावण के रजतछत्र का है और जो बार-बार जलते-बुझते दीपक की भांति तेज प्रकाश में टिमटिमाते हैं, वे महारानी मंदोदरी के कर्णफूल हैं।"

"आश्चर्य है! कैसी शठता और निश्‍चिंतता है कि काल द्वार घेरे खड़ा है और वह मोद मना रहा है?"

राम ने मुस्कराकर अपना धनुष उठाया और एक बाण संधान करके उस दिशा में छोड़ दिया, जिधर रावण का नृत्य-गान चल रहा था। कुछ ही क्षण बीते थे कि चारों ओर अंधकार व्याप्त हो गया। बाण ने जाकर रावण के रजतछत्र और दसों मुकुटों को बेंधकर मंदोदरी के कर्णफूल भी काट फेंके थे। चारों ओर स्तब्धता छा गई थी। बाण लौटकर तूणीर में समा गया था। कोई समझ ही न पाया कि क्या हुआ था, तभी आकाश से गिरते चार चमकीले पिंड रामदल की ओर लपके आ रहे थे, जो एक-एक करके राम के सामने गिर गए। ये दशानन के चार मुकुट थे जिन्हें विभीषण ने पहचानकर बड़ी सुंदर व्याख्या की।

"हे प्रभु, हे रघुनंदन! ये रावण के चार मुकुट केवल मुकुट नहीं हैं, अपितु नीति-धर्म के वेद-वर्णित साम, दाम, दंड और भेद नामक चार चरण हैं, जो धर्महीन दशानन को त्यागकर दशरथनंदन रघुपति राघव राजा राम की शरण में चले आए हैं। काल के वश हो गए दशानन को इन संकेतों से भी भविष्य का ध्यान नहीं हो रहा है।"

47

हनुमान-मेघनाद का भीषण युद्ध

मेघनाद ने भीषण बाण-वर्षा कर दी, परंतु हनुमान की चपलता और गदा-संचालन ऐसा था कि एक भी बाण उन्हें स्पर्श न कर सका। उन्होंने एक भीषण प्रहार से मेघनाद को गेंद की भांति उछालकर दूर फेंक दिया। अभी वे कूदकर उस पर दूसरा प्रहार करने ही वाले थे कि सूर्यास्त हो गया।

"देखा युवराज इंद्रजीत! आज सूर्यदेव को तुम पर दया आ गई। जाओ, अपनी माता से विनती करके स्तनपान करना जिससे और बल प्राप्त हो सके।"

लज्जित मेघनाद महलों की ओर चल दिया—दोनों सेनाएं अपने शिविरों में लौटने लगीं।

रण की भेरी सुनकर दशानन निद्रा से जागा ही था कि एक बाण आकर उसके पलंग में धंस गया जिस पर एक ताम्रपत्र बंधा था। मंदोदरी भय से हत्प्रभ ही रह गई। जिसने भी यह ताम्रपत्र भेजा था, वह कैसा अद्‌भुत धनुर्धर होगा, जो चाहता तो वह बाण दशानन की छाती को भी बेध सकता था। कैसे बुरे अपशकुन हो रहे थे और उसका अभिमानी व हठी पति विवेकहीन हो रहा था। पिछली रात्रि जाने किस विधि से मानो भूकंप आया, रजतछत्र ढह गया, शीशमुकुट गिर गए, कर्णफूल कट गए और रंग में भंग पड़ गया था। वह किसी साधारण मनुष्य का कार्य तो नहीं था! अब यह बाण!

रावण ने उस ताम्रपत्र को बाण से निकालकर उस पर लिखा संदेश पढ़ा, फिर उसे मुट्ठी में भींचकर मसल दिया और क्रोध से कांपने लगा।

"नाथ!" मंदोदरी ने हाथ जोड़कर कहा—"यद्यपि मैंने आपसे अधिक कुछ न कहने का व्रत लिया था, क्योंकि मेरी बात को आप कायर स्त्री का प्रलाप-भर कहते हैं, परंतु स्वामी! मैं आपकी अर्धांगिनी हूं और स्वभाव से ही आपकी दीर्घायु की कामना करती हूं। नाथ, इस ताम्रपत्र को मैंने नहीं पढ़ा, परंतु इसका प्रत्येक शब्द आपके ललाट पर अंकित हो गया है। यह रघुवीर का बाण है स्वामी, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं। निश्चय ही उन दयालु श्रीराम ने अंतिम चेतावनी दी है। रण की भेरी बज रही है नाथ! काल प्रसन्न होकर रणभूमि में नृत्य करता होगा। मसानी अदृश्य रूप से खप्पर लिये घूमती होगी। हे देव! इस पत्र पर विचार करके प्राचीर पर संधि ध्वज फहरा दो।"

"मंदोदरे!" रावण क्रोध से चीख उठा—"अपनी जिह्वा को वश में कर, अन्यथा युद्ध का शुभारंभ मैं तेरे शीश की आहुति देकर करूंगा। वह तपस्वी राम मनोवैज्ञानिक ढंग से मेरा पराभव करना चाहता है। वह संदेश भेजता है कि सुख की निद्रा सोकर जागने का समय समाप्त हो गया है और अब अखंड निद्रा में जाने का समय समीप आ रहा है। मूर्ख यह नहीं जानता कि दशानन ने काल को भी अपने पलंग के पाए से बांध रखा है। असंख्य देवता दशानन के बंदीगृह में मुक्ति के लिए तरस रहे हैं। क्या यह साधारण बल से संभव हुआ है मयनंदिनी? क्या मेरे द्वारा शिव सहित कैलाश पर्वत उठाना साधारण बल से संभव हुआ था? क्या देवताओं से रक्षित कुबेर को बिना पराक्रम के जीतना संभव था?"

"नाथ! आयु, बल और धन समय के साथ क्षीण हो जाते हैं। जो बल युवावस्था में होता है, वह वृद्धावस्था में नहीं रहता। युवावस्था की उपलब्धियों को स्मरण करके उन्हें वृद्धावस्था में पुनः उपलब्ध कर पाना असंभव होता है। आपके चित्त पर वही उपलब्धियां अभिमान बनकर चढ़ी हुई हैं।" मंदोदरी ने कहा—"आप उन बातों का विचार क्यों नहीं करते, जब आपका पराक्रम किसी काम न आया था। आपने शिव सहित कैलाश पर्वत तो उठा लिया था, परंतु सीता स्वयंवर में शिव का धनुष न उठा सके। उठा लिया होता तो आज यह दिन देखना ही न पड़ता। आप सीता को प्राप्त करने की इच्छा से कुल का विनाश करने पर तुले हुए हैं।"

दशानन क्रोध भरे नेत्रों से उसे घूरता रहा।

"वह पराक्रम बालि से द्वंद्व के समय कहां सो गया था? सहस्त्रार्जुन से युद्ध करने पहुंचे थे, तब कहां गया था? इस पराक्रम को स्थायी क्यों मानते हो? एक

वानर पहले आया जिसने लंका में विध्वंस किया। एक कल आया जिसने भरी सभा में आपके और आपके योद्धाओं के बल की पोल खोल दी। वे एक-एक करके आए थे, जबकि रामदल में तो ऐसे असंख्य योद्धा बताए गए हैं।" मंदोदरी ने कह दिया।

"वे दोनों दूत बनकर आए थे और दूत को मारना नीति-विरुद्ध होता है। इसी कारण वे जीवित लौट गए। अब युद्धभूमि में उनके बल को देखूंगा। अब तू अधिक बातें न बना। शत्रु ने युद्ध का नगाड़ा बजा दिया है। यदि मैं यहां तेरी बकवास सुनता रहा तो अपने ही लोगों में उपहास का पात्र बन जाऊंगा।" दशानन ने पलंग छोड़ दिया और अपने वस्त्रादि पहनकर शीघ्रता से सेनापतियों के पास पहुंचा।

सभी रक्षक अपने अस्त्र-शस्त्र धारण करके तैयार थे, केवल दशानन के आदेश की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। यह देखकर दशानन हर्षित हुआ।

"योद्धाओ!" दशानन ने गर्व भरे स्वर में कहा–"वह समय आ ही गया जिसकी प्रतीक्षा थी। काल की प्रेरणा से वानरदल हमारा आहार बनने स्वयं आ पहुंचे हैं। आप सभी मांस-भक्षण में निपुण और आनंद लेने वाले हैं। आज जी भरकर वानरों का भक्षण करना। चारों दिशाओं से उन्हें घेरकर चुन-चुनकर भक्षण करो। निर्भय, निःशंक होकर अपने बल का प्रदर्शन करो। यदि मैंने किसी को भी रण से पीठ दिखाकर भागते देखा या सुना तो उसका वध मैं अपने हाथों से करूंगा।"

दशानन ने अंतिम शब्द बड़ी कठोरता से कहे थे।

"मैंने अभी तक तुम सबका पालन इंद्र की भांति किया है। वे समस्त सुख-साधन दिए हैं, जो इंद्र अपने अनुचरों को देता होगा। आज युद्धभूमि में तुम सबकी राजनिष्ठा, पराक्रम और स्वामिभक्ति देखी जाएगी। भूल मत जाना कि तुम वे हो जिन्होंने अपने पराक्रम से देव, गंधर्व, यक्ष आदि को पराजित किया। हमारे शत्रुओं में दो मनुष्य, एक राक्षस और वानर-भालू असंख्य हैं–कुलद्रोही विभीषण को तो हम स्वयं मृत्युदंड देंगे। अब युद्ध का भयानक नाद करो। वह तुमुल बजाओ, जो इंद्र को भयभीत करके भागने पर विवश कर देता है।"

दशानन के आदेश पर भयंकर नाद वाला तुमुलघोष किया गया जिससे सभी दिशाएं कंपायमान हो उठीं। इसी के साथ लंका की विशाल राक्षसी सेना रणभूमि की ओर चल पड़ी और लंका के विशाल परकोटों पर व्यवस्थित हो गई। विशाल शरीरों और भयानक आकृतियों वाले राक्षस तरह-तरह के हथियार लेकर दांत किटकिटाने लगे। दशानन सभी अस्त्र-शस्त्र धारण करके अपने दिव्य रथ पर

सवार होकर शत्रुसेना का निरीक्षण करने लगा था। लंका के चारों ओर असंख्य वानर-भालू थे।

दशानन ने पश्चिमी द्वार पर वानरों का नेतृत्व करते विभीषण को देखा, जो अपने कठोर धनुष को लिये युद्ध हेतु तत्पर खड़ा था। यह देखकर दशानन के नेत्र सुलग उठे।

"अरे ओ निर्लज्ज कुलघाती विभीषण!" रावण ने उच्च स्वर में गरजकर कहा—"कैसा रामभक्त है तू! युद्ध के समय तो तू माला लेकर जाप करने लगता था और अब माला जपने के समय धनुष-बाण उठा लिये। अरे कायर, स्मरण करके बता कि तूने कब इस धनुष से कोई बाण छोड़ा था। संसार तेरा यश गाएगा कि तूने कैसे भाई के विरुद्ध शत्रु का साथ दिया।"

"दशानन! श्रीरघुनाथ की कृपा से बढ़कर संसार में दूसरा लाभ क्या होगा और तुम्हारे जैसे हठी, अभिमानी इसे कैसे जानेंगे?" विभीषण ने कहा—"मेरे हाथों में यह धनुष भी माला ही है और इसके बाण इसके मनके हैं। इस धर्मयुद्ध में प्रभु श्रीराम ने मुझे यह पुण्य अवसर दिया है कि मैं उनके महान कार्य के निमित्त हो सकूं और अपने तामसी स्वभाव से मुक्त होकर प्रभु-चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे।"

"अरे मूर्ख, इस यशस्वी राक्षसकुल में जन्म भोगने के लिए मिलता है और तू मुनियों का दास हो गया। यह काल का कोप है और आज ही तेरा अंत होगा। राक्षस वीरो! आक्रमण! रक्त का सागर बहा दो। भालुओं-वानरों के मुंह, हाथ, पैरों के ढेर लगा दो—अपने राक्षस होने का प्रमाण दो।"

इसी के साथ भयंकर युद्ध छिड़ गया। असंख्य राक्षस दांत किटकिटाते हुए वानर सेना के बीच कूद पड़े। देवताओं, यक्षों से लड़ने का तो उन राक्षसों को पूर्ण अभ्यास था, परंतु वे भालू-वानरों से कभी नहीं लड़े थे। ऊपर से हनुमान और अंगद के कौतुकों से मन में भय भी था। यहां तो उनके जैसे असंख्य वानर थे। वानरों ने भी विलंब नहीं किया और एक-एक राक्षस से कई-कई वानर लिपट गए थे। एक वानरदल ने तो एक राक्षस योद्धा को गेंद ही बना लिया था और प्रचंड ठोकरों के प्रहार से उसे यहां से वहां फेंककर खेल रहे थे। भालू सेना के भयंकर जबड़े और तीखे नाखून राक्षसों के लिए काल सिद्ध हो रहे थे। जो उनके पंजे में फंस गया, उसकी ही बोटी-बोटी छितर गई। थोड़ी ही देर में रामसेना का प्रभाव और प्रकोप दिखाई देने लगा था। वानरों की प्राणघातक चीत्कारें, भालुओं की हृदय कंपा देने वाली गुर्राहट से राक्षसों में भगदड़ ही मच गई, परंतु भागने का भी कोई रास्ता न था। हर तरफ तो वानर-भालू थे। एक से बचकर भागे तो दस घेर लेते थे।

दशानन ने अपनी सेना को भागते देखा तो क्रोध से भर गया।

"राक्षस योद्धाओ! रणभूमि से भागकर भी कहां जाओगे, क्योंकि लंकेश काल बनकर तुम सबका शीश अपनी खड्ग से उतार देगा।" दशानन ने चेतावनी दी।

राक्षसवीरों ने अपने क्रोधी राजा की चेतावनी सुनी तो ठहरे। मृत्यु तो दोनों ही तरफ थी। युद्धभूमि से भागने का अपयश कमाकर फिर दशानन के हाथों प्राण गंवाने में क्या कल्याण था। अच्छा तो यही था कि मरना ही है तो वीरगति प्राप्त करें। इस विचार से भागते हुए राक्षसों में नई ऊर्जा का संचार हो गया और उन्होंने प्राणों की चिंता छोड़कर अपना समस्त बल-झोंक दिया। जब कोई मृत्यु का भय त्यागकर लड़ता है तो उसमें विचित्र-सी शक्ति आ जाती है। यही राक्षसदल के साथ भी हुआ। कुछ ही देर में स्थिति पलट गई। अब वानर भाग रहे थे। राक्षस अपने हिंसक रूप में आ गए थे और वानरों पर टूट पड़े थे। जब रक्त मुंह लग गया तो फिर वीभत्स हो जाना स्वाभविक ही था। वानरदल 'हे हनुमान, हे अंगद, हे रघुवीर' करते हुए रक्षा की पुकार करने लगे थे जिससे राक्षसों का उत्साह बढ़ रहा था।

हनुमान ने यह पुकार सुनी तो भारी क्रोध में आकर वानरदल के रक्षक बनकर दौड़े चले आए और राक्षसों पर काल की भांति टूट पड़े। वे राक्षसों के बीच बड़े विकट लग रहे थे। उन्हें आया देखकर वानरदल का मनोबल बढ़ गया और उनका पलड़ा भारी होने लगा। अंगद तो पूर्वी द्वार तोड़कर लंका में ही घुस गए और बड़ा भारी उत्पात मचा रहे थे–महलों को ढहा रहे थे।

मेघनाद ने हनुमान का प्रचंड रूप देखा तो वह गरजकर उनके सामने आ गया। हनुमान ने एक ही प्रहार में उसका रथ नष्ट कर दिया।

"शठ वानर!" मेघनाद क्रोध में भरकर बोला–"तुझ पर मेरा बड़ा क्रोध है, क्योंकि तू उस दिन दूत होने का लाभ पाकर बच गया था। आज तुझे मेरे प्रचंड बाण छलनी कर देंगे और तेरे भरोसे बैठे वे तपस्वी भाग खड़े होंगे। मैं इंद्रजीत हूं। मेरे रण-कौशल के सामने इंद्र को भी भागना पड़ गया था।"

"अरे ओ बड़बोले! वृत्रासुर जैसे अनेक बलवान राक्षसों को काल के गाल में पहुंचाने वाले इंद्र को तू समझता क्या है? वे तुझे क्षण-भर में मसल सकते थे, परंतु तेरी मृत्यु तो प्रभु श्रीराम के क्रोध से लिखी है, यही जानकर तुझे छोड़ दिया होगा। आज तेरा बल आजमाता हूं। तुम पिता-पुत्र अपनी बड़ाई आप ही कर लेते हो।"

मेघनाद ने भीषण बाण-वर्षा कर दी, परंतु हनुमान की चपलता और गदा-संचालन ऐसा था कि एक भी बाण उन्हें स्पर्श न कर सका। उन्होंने एक

भीषण प्रहार से मेघनाद को गेंद की भांति उछालकर दूर फेंक दिया। अभी वे कूदकर उस पर दूसरा प्रहार करने ही वाले थे कि सूर्यास्त हो गया।

"देखा युवराज इंद्रजीत! आज सूर्यदेव को तुम पर दया आ गई। जाओ, अपनी माता से विनती करके स्तनपान करना जिससे और बल प्राप्त हो सके।"

लज्जित मेघनाद महलों की ओर चल दिया–दोनों सेनाएं अपने शिविरों में लौटने लगीं।

48

दशानन का दार्शनिक स्वरूप

"मंदोदरे! कुछ विषय बड़े विकट और कटु होते हैं—त्याग और प्राप्ति प्रेम के दो विशेषण हैं।" दशानन दार्शनिक प्रेमी की भांति बोला—"दशरथनंदन यदि विष्णु है, जैसा तुम सब मानते हो तो निश्चय ही जानकी भी लक्ष्मी होगी। मैं वह कृपण हूं, जो लक्ष्मी का सब तरह से दास हूं। विद्वान कहते हैं कि ईश्वर ही स्त्री-पुरुष के दो रूपों में प्रकट होते हैं अर्थात् वही विष्णु है और वही लक्ष्मी। सदाशिव महादेव का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप इसकी पुष्टि करता है। यदि दशरथनंदन और जानकी वही हैं तो दशानन ने क्या गलत किया? सब दशरथनंदन के दास हुए और मैं जानकी का। अंतर क्या है मंदोदरे! गति तो दोनों ही दशाओं में है, क्योंकि दोनों का धाम तो एक है।"

दशरथनंदन ने बाण द्वारा दशानन को जो ताम्रपत्र था, वह अब सत्य सिद्ध हो रहा था। आधी रात बीत गई थी और दशानन बहुत समय के पश्चात् आज मंत्रणा-परिषद के सामने था। वह पहले दिन के युद्ध का आकलन कर रहा था जिसमें निश्चित रूप से उसे हानि उठानी पड़ी थी। राक्षसों के एक चौथाई सैनिक वानरों के हाथों मारे गए थे।

"सम्मानित मंत्रियो!" दशानन गंभीर स्वर में बोला—"युद्ध का पहला दिन

किसी भी सेना के बल-परीक्षण का दिन होता है, जो आज हो गया। सिद्ध हो गया कि वर्षों से पिछली विजयों का आश्रय लेकर हमारे वीर योद्धा निष्क्रिय-से हो गए हैं और उनमें वैसी आक्रामकता नहीं रही, जो कभी पहले थी। वानरों का स्वभाव से ही अभ्यास बना रहता है और वे नित्य आपस में भी बल-परीक्षण करते रहते हैं। अब हमें अपनी युद्धनीति में आक्रामकता का प्रयोग करना होगा। अत: आप सभी अपनी बुद्धि के अनुसार विजय के सभी उपायों पर ध्यान केंद्रित करके परामर्श दें।"

मंत्रणा-परिषद में कुछ समय के लिए मौन छा गया। दशानन एक-एक चेहरे को देखता रहा और उनके मनोभाव जानने के प्रयास करता रहा, तब वृद्ध मंत्री प्रघर्षण ने अपना कंठ साफ किया।

"हे निशाचरों के सम्राट! नीति कहती है कि राजा को या तो अपने ही बाहुबल को आश्रय प्रबल शत्रुता लेनी चाहिए या फिर सेना के बल पर। आपकी सेना का बल तो आज सब पता चल गया और आप युद्ध में निरीक्षक की भूमिका में रहे थे। युवराज ने अवश्य कुछ बढ़त बनाई, परंतु अंतिम क्षणों में क्या हुआ, यह हम सभी जानते हैं। यदि सूर्यास्त न होता तो हमें संभवत: बड़ी क्षति...।"

"माननीय प्रघर्षण!" मेघनाद गरज उठा–"अपनी जिह्वा को वश में रखो। मेरे बल और पराक्रम के विषय में कुछ न कहो। तुम्हारा बल भी मैंने देखा था। अंगद ने तुम्हें गेंद की भांति उठाकर भूमि पर दे मारा था। आज जो भी हुआ, वह केवल शक्ति परीक्षण था। युद्ध तो कल आरंभ होगा और इंद्रजीत का रौद्र रूप भी कल ही देखने को मिलेगा–कल का युद्ध निर्णयक होगा।"

"युवराज, क्रोध करने से सत्य नहीं बदल जाता।" प्रघर्षण ने गंभीर स्वर में कहा–"जब युद्ध में जाना होता है तो सब उपाय व साधन करने पड़ते हैं और युद्ध में विजय के अतिरिक्त और सब कुछ नगण्य है। सत्य यह है कि शत्रु हमसे सभी क्षेत्रों में आगे है। आज एक चौथाई सेना का विध्वंस हो गया तो यह युद्ध अब चार दिन में लंका को सैन्यशून्य कर देगा। जिस विधि से जीवन सुरिक्षत रहे, वह विधि अपनाने का वेदों ने भी समर्थन किया है। राम लंका का राज्य नहीं चाहते, उन्हें शांति प्रिय है। वे आज भी इस संहार को रोकने में सामर्थ्यवान हैं, यदि उन्हें संधि के साथ सीता वापस कर दी जाए। जनशून्य लंका से अच्छा है कि प्रभु श्रीराम की शरण में जाकर युद्ध समाप्ति की घोषणा कर दी जाए।"

"प्रघर्षण!" दशानन ने अत्यंत क्रोध में कहा–"यदि हमें तुम्हारी सेवा और अनुभव का मान न होता तो यह कक्ष ही तुम्हारी अंतिम वाक्यस्थली होता। तुम्हारा बुढ़ापा तुम्हें मृत्यु से भयभीत कर रहा है। दशानन तुम्हें कुछ वर्ष और जीने का अवसर देता है। तुम अपने घर में रहो और जिस दिन लंका की विजय हो जाए, आ जाना।"

प्रघर्षण उठकर चला गया। इसके बाद सभा में सन्नाटा छा गया।

"यदि कोई और भी ऐसा ही सोचता और समझता है कि लंकाधीश दशानन का बल थक गया है या उसने अपने आत्म-सम्मान के लिए ईश्वर से ही शत्रुता लेकर गलती की है तो वह इसी समय सभा से उठकर जा सकता है।" दशानन ने गंभीरता से कहा–"यह युद्ध सैन्य-बल पर ही निर्भर नहीं है–यह दशानन के पराक्रम की परीक्षा भी है–यह इंद्रजीत की भी परीक्षा है, यह महान मुनि विश्रवा के क्रोध का परिणाम है। मृत्यु क्या है? शाश्वत सत्य है, परंतु मरना भी तो यश के साथ होना चाहिए। पुत्र मेघनाद! यदि तुम्हें भी अपने पिता के निर्णय व विचार ठीक नहीं लग रहे हों तो तुम भी इस युद्ध से अलग हो सकते हो।"

"पिताश्री!" मेघनाद आहत स्वर में बोला–"आज पहली बार मुझे अपने पिता के व्यवहार पर शंका हुई है। संभवत: यह आज के मेरे रण-प्रदर्शन से धारणा बनी हो, परंतु आपका यह पुत्र अपने सभी भाइयों और पुत्रों सहित आपके गर्व को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने प्राण भी दे देने में अपना सौभाग्य समझेगा। आज का युद्ध केवल परीक्षण-भर था। युद्ध तो अब होगा, निर्णायक! कल रण में वह महातांडव होगा कि काल भी प्राण हरते हुए थक जाएगा। आप निश्चिंत रहें और चैन की निद्रा लें, आपका यह पुत्र ही इस विजय के लिए पर्याप्त होगा।"

रावण का सीना गर्व से तन गया। अपने पराक्रमी पुत्र के वचनों की दृढ़ता और संकल्प ने जैसे उसे आधी रात में ही युद्ध जिता दिया था। उसने सभा निरस्त कर दी और अपने अंत:पुर चला आया, जहां मंदोदरी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

"नाथ, आज वर्षों बाद आप इस समय शयन को आए हैं।" वह बोली।

"मंदोदरे! तू अकारण ही चिंतित रहती है। शत्रु द्वार पर है तो परिस्थितियां विशेष हो गई हैं। कल परिणाम बदलेगा। तुम आज अशोक वाटिका गई थीं, क्या हुआ?"

"नाथ! आज वह हुआ जो पहले कभी न हुआ।" मंदोदरी बोली–"आज सीता वह सीता न थी, जो मृत्यु की याचना करती थी। कभी विष मांगती थी और कभी अग्निदाह की प्रार्थना करती थी। आज तो वह साक्षात् यमी का रूप लिए थी। कहती थी कि मयनंदिनी, सभी सुहाग सूचक चिह्न मिटा दो, क्योंकि कालरूपी रघुवीर की भृकुटी टेढ़ी हो गई है। कहती थी कि अश्रुओं का भंडार एकत्रित कर लो, क्योंकि दिन-रात भी बिलखोगी तो भी सबके लिए न रो पाओगी। कहती थी कि अब विधवा के रूप में अपनी कल्पना करो, क्योंकि कालरूपी राम की यही इच्छा है।"

दशानन ने आश्चर्य व क्रोध से मंदोदरी को देखा, जो निर्भय थी।

"नाथ! यदि मुझ पर क्रोध करने से सत्य बदलता है तो आप मेरा शीश काट दीजिए। निश्चय ही परिस्थितियां आपके विपरीत हैं। जब से सीता ने लंका में चरण

धरे, तब से कितने ही अपशकुन हो रहे हैं। मैं स्त्री हूं और स्वभाववश ही उस स्त्री से ईर्ष्या करती हूं, जो मेरे स्वामी के चित्त पर ऐसी छाई है कि यदि कुल का भी नाश हो जाए तो भी चिंता नहीं। आज से पूर्व जब वह भय से रोती-बिलखती थी, तो उसकी पीड़ा मुझे आनंदित करती थी, परंतु आज उसका व्यवहार मुझे ही पीड़ा दे गया। भय उसके समीप ही नहीं फटकता। आंसू जैसे अब उसके नेत्रों में ही नहीं रहे। कहती है कि यह जो श्रीराम का विपुल जयघोष होता है, वह मुझे काल का अट्टहास लगता है जिसने लंका को घेरा है। नाथ, यह सब विपरीत समय के लक्षण हैं।"

"मंदोदरे, जब सागर की प्रचंड लहरों में कोई चींटी डूबती-उबरती है तो उसे किसी तृण को देखकर भी जीवन की आशा हो जाती है, परंतु वह नहीं जानती कि सागर की निर्दयता व स्वभाव बड़ा कठिन है। सीता भी आज उन जयघोषों से ही अपने हृदय को सांत्वना दे रही है। वह जयघोष सुन सकती है, लेकिन जयघोष करने वालों का मुख नहीं देख सकती। अब दशरथनंदन उसके लिए स्वप्न है। यदि दशानन तिरस्कृत है तो दशरथनंदन अप्राप्य है। परिणाम जो भी हो, परंतु विजय दशानन की ही होगी।"

"नाथ! जिस विजय में अपने पुत्र-पौत्रों का रक्त बहे, वह किस काम की?"

"मूर्ख स्त्री! यश केवल दान से प्राप्त होता है और यह प्राणदान यज्ञ है। यहां वीरों को सद्गति प्राप्त होगी और कायर पशु योनियों में जाएंगे। कल तू पुनः सीता के पास जाना और देखना कि उसकी आशा कितनी क्षीण हो गई-यह निरंतर ही क्षीण होगी-प्रतिदिन क्षीण होगी। एक दिन उसके सामने दो ही विकल्प होंगे-दशानन की खड्ग से उसका सुंदर मुख धड़ से अलग होगा या वह इस अंतःपुर में समस्त श्रृंगार करके मेरे हृदय की स्वामिनी होगी।"

"और...और मैं क्या हो जाऊंगी नाथ?" मंदोदरी के नेत्र छलक उठे।

"मंदोदरे! कुछ विषय बड़े विकट और कटु होते हैं-त्याग और प्राप्ति प्रेम के दो विशेषण हैं।" दशानन दार्शनिक प्रेमी की भांति बोला-"दशरथनंदन यदि विष्णु है, जैसा तुम सब मानते हो तो निश्चय ही जानकी भी लक्ष्मी होगी। मैं वह कृपण हूं, जो लक्ष्मी का सब तरह से दास हूं। विद्वान कहते हैं कि ईश्वर ही स्त्री-पुरुष के दो रूपों में प्रकट होते हैं अर्थात् वही विष्णु है और वही लक्ष्मी। सदाशिव महादेव का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप इसकी पुष्टि करता है। यदि दशरथनंदन और जानकी वही हैं तो दशानन ने क्या गलत किया? सब दशरथनंदन के दास हुए और मैं जानकी का। अंतर क्या है मंदोदरे! गति तो दोनों ही दशाओं में है, क्योंकि दोनों का धाम तो एक है।"

मंदोदरी इतने गूढ़ ज्ञान को नहीं समझती थी, अतः मौन रह गई।

49

लक्ष्मण पर वीरघातिनी का प्रहार

लक्ष्मण को लगा, जैसे उनकी ओर कोई उल्कापिंड चला आ रहा हो। वे जान गए कि वह शिवशक्ति थी। उसे काटना वीरवर लक्ष्मण के लिए असंभव नहीं था। लक्ष्मण उसे क्षण-भर में शांत कर देते, परंतु इससे शिव के वरदान की अवमानना होती। उन्होंने अपने वज्रसमान सीने को वीरघातिनी के समक्ष तानकर शिवस्तुति करते हुए नेत्र बंद कर लिये। प्रचंड कालशक्ति उनके सीने से टकराई तो शेषावतार उस भीषण आघात को सह न सके और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

मेघनाद हर्षित भाव से मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाकर अपने रथ में डालने का प्रयास करने लगा, परंतु वह उन्हें सूत-भर भी न हिला सका। मेघनाद ने अपनी समूची शक्ति लगा दी, उसकी पिंडलियां फट जाने को हुईं, तब वह लक्ष्मण को युद्धभूमि में ही छोड़कर वहां से चला गया।

आज मेघनाद ने युद्ध की विशेष तैयारी की थी। उसने ब्रह्म मुहूर्त में ही शिव को प्रसन्न करने के लिए पूजा-अर्चना आरंभ कर दी और अपने सभी दिव्यास्त्रों का शस्त्र-पूजन किया। उसकी पतिव्रता पत्नी सुलोचना ने अपने सुहाग की अमरता के लिए कठोर व्रत धारण किया था और निरंतर 'ॐ नम शिवाय' के मंत्र का जाप कर रही थी। मेघनाद को अपने बल,

पराक्रम और दिव्यास्त्रों की भांति ही अपनी पत्नी के संकल्प व्रत पर भी बड़ा विश्वास था। वह मानता था कि जब तक सुलोचना के हृदय में उसकी कुशलता का भाव स्थिर है, तब तक स्वयं काल भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आज उसने सोच लिया था कि वह निश्चय ही युद्ध का परिणाम बदल देगा।

वह महल से निकला तो शगुन होने लगे। विजय-लक्षण सामने आने से उसका उत्साह बढ़ गया था। वह दशानन के पास पहुंचा और चरण स्पर्श कर विजय का आशीर्वाद लिया।

दशानन ने उसे हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया।

"पुत्र इंद्रजीत, यदि इंद्र स्वयं ब्रह्मा को साथ लेकर भी तुमसे युद्ध करने आ जाए तो भी मुझे नहीं लगता कि वे तुम्हें परास्त कर सकें।" दशानन गद्‌गद स्वर में बोला-"आज हम दोनों शत्रु का समूल विनाश कर देंगे।"

"पिताश्री! पिता को पुत्र के होते युद्ध करने की क्या आवश्यकता है?" मेघनाद सगर्व बोला-"आपके इस पुत्र की भुजाओं में ही इतना बल है कि शत्रु दल का कोई भी योद्धा इसे संभाल न सकेगा। कल की बात और थी। आज मुझे ज्ञात है कि किस शत्रु के प्राण किस विधि से हरने हैं, अत: आप निश्चिंत होकर रहें और मेरे विजयी होकर लौटने की प्रतीक्षा-भर करें।"

"पुत्र! मुझे तुम पर सदैव गर्व रहा है और इसी गर्व के आश्रय मैंने ऐसा कठिन युद्ध छेड़ दिया है। मैं जानता हूं कि तुम अपराजेय हो। जाओ, शत्रु को बता दो कि दशानन ने किस बल पर त्रिलोक को भयभीत किया था-विजयी भव!"

मेघनाद विशाल सेना के साथ रणभूमि की ओर चल पड़ा। बड़े ही कर्कश स्वर में ढोल-नगाड़े बज रहे थे, जो सभी दिशाओं को गुंजा रहे थे। जब राक्षस सेना रणभूमि में पहुंच गई तो मेघनाद को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि वानर सेना तो पहले से ही उसके स्वागत में खड़ी थी। पलक भी न झपका था कि वानर वीरों ने प्रबल आक्रमण कर दिया। यद्यपि राक्षस भी तैयार ही थे, परंतु उसने इतने त्वरित आक्रमण की कल्पना भी नहीं की थी। विशाल शरीर वाले वानरों ने एक-एक राक्षस को बगल में दबाया और पलक झपकते ही पर्वत शिखर पर जा चढ़े और वहां से राक्षसों को गेंद की भांति लुढ़का दिया। क्षण-भर में ही सैकड़ों राक्षस योद्धा शव बने पड़े थे।

मेघनाद को यह देखकर भारी क्रोध आया और उसने बड़े वेग से वानरों पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर दी।

मेघनाद के भीषण प्रहारों से वारनरदल में खलबली मच गई। वह मायावी शक्तियों का प्रयोग कर रहा था जिससे वानरदल के बहुत से योद्धा मारे जा चुके थे।

उसका पराक्रम असहनीय हो रहा था। वानर 'जय श्रीराम' का उद्घोष करते हुए उस आक्रमण का यथोचित सामना कर रहे थे, परंतु लग रहा था कि वह बराबरी का युद्ध नहीं था। वानरदल के पास बड़े वृक्ष, शिलाएं, गदा आदि साधारण अस्त्र थे, जबकि मेघनाद के पास अभिमंत्रित दिव्यास्त्र थे। वह एक बाण छोड़ता था, जो हजारों में विभक्त होकर बाणवर्षा बन जाता। उस बाण-प्रलय से वानरों में भगदड़ मच गई थी, परंतु भागते भी कहां!

"हे रघुनाथ! रक्षा करो! हे महावीर हनुमान! तुम कहां हो?"

हनुमान ने वह आर्तपुकार सुनी और सिंह समान गर्जना करके उधर दौड़े चले आए तो मेघनाद ने उन पर भी तीक्ष्ण बाण छोड़े, परंतु वे हनुमान थे।

"रे शठ राक्षस! ऐसे ही अपने बल की प्रशंसा करता है। युद्धभूमि में आकर तुझे कोई अपनी बराबरी का योद्धा नहीं मिला? सेनापति होकर सैनिकों पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर अपनी निर्लजता का परिचय दे रहा है। लगता है, कल सूर्यास्त होने से बचने पर शपथ ली होगी कि अब हनुमान के समक्ष ही नहीं जाना।" हनुमान मेघनाद को धिक्कारते हुए बोले।

"अरे मूर्ख वानर! जब सारी सेना ही वानरों की है तो मेरे लिए तो सभी समान हैं, फिर कौन हनुमान और कौन सुग्रीव! बराबरी वाले योद्धा तो तुम मूर्ख वानरों को मृत्यु के मुख में धकेलकर अपने शिविरों में बैठे हैं। उनके धनुष की डोरियां सूत की बनी होंगी, जो वे उन्हें लेकर बाहर नहीं आते।" मेघनाद व्यंग्य से बोला।

"निर्लज्ज मेघनाद! सदा अपने बल की आप ही बड़ाई करने वाला तेरा पिता कहां है? क्या कल का युद्ध देखकर उसे ताप आ गया?"

"मेरे पिता की रणभूमि में आवश्यकता ही क्या है वानर! उनका यह पुत्र अकेला ही ऐसे जीव-जंतुओं की सौ सेनाओं को नष्ट कर देने में सक्षम है। लंकापति दशानन क्या तुम कीटभक्षियों पर अपना बल व्यर्थ करेंगे?"

"इसी प्रकार श्रीरघुवीर भी तेरे जैसे तुच्छ बालक के साथ युद्ध करें, उन्हें शोभा नहीं देगा। तेरी इस पके गूलर जैसी लंका, जिसमें तुम कीड़ों की भांति रहते हो, मेरे लिए कुछ भी नहीं है। मैं इसे अग्नि में भस्म कर दूं, पाताल में धंसा दूं या वायु में उड़ाकर कहीं अंतरिक्ष में फेंक दूं? अब तू अपना पराक्रम दिखा। अपने तूणीर में झांककर देख कि कौन-कौन से दिव्यास्त्र पड़े हैं, क्योंकि तेरे जैसे कपटी को बाहुबल पर तो भरोसा है नहीं।"

"व्यर्थ की बकवास मत कर वानर! युद्ध में सभी नीतियां वैध होती हैं। जिस भी नीति से शत्रु का पराभव हो, रणकुशल योद्धा, उसे ही अपनाते हैं, फिर भी आज मैं तेरे बाहुबल को अवश्य ही संतुष्ट करूंगा।"

मेघनाद ने धनुष-बाण रखकर नेत्र बंद किए तो एक भारी गदा उसके हाथों में प्रकट हुई। अब हनुमान और मेघनाद आमने-सामने थे। दोनों ही गदायुद्ध में बहुत प्रवीण थे। गदाएं आपस में टकराईं तो जैसे उल्कापात-सा हुआ। गदाओं की रगड़ से आग का गोला-सा उठा था। दोनों महाबली भिड़ गए। कभी हनुमान भारी पड़ते लगते तो कभी मेघनाद! इस युद्ध को देखने के लिए दोनों सेनाएं जैसे युद्ध भूलकर ठहर गईं। देवता भी आकाश से इस द्वंद्व को देख रहे थे। दोनों पक्षों के सैनिक अपने-अपने योद्धा का जयघोष कर रहे थे। बहुत समय व्यतीत होने पर भी जब कोई निर्णय न हो सका तो मेघनाद ने विचार किया कि वह यहां पूरा दिन हनुमान से ही उलझा रहा तो अन्य मोर्चों पर अंगद आदि वानर राक्षसों का विध्वंस कर देंगे। ऐसा विचारकर वह वहां से अदृश्य हो गया। चारों ओर महाबली हनुमान की जय का गगनभेदी नारा गूंजा। हनुमान अब राक्षसों पर टूट पड़े।

मेघनाद हनुमान के सामने से भागकर मुख्य शिविर की ओर आ गया, जहां राम-लक्ष्मण शिलाओं पर बैठे थे।

"अरे ओ कायर तपस्वियो!" मेघनाद धिक्कारने वाले स्वर में बोला—"क्या इन्हीं वानरों के आश्रय त्रिलोक विजेता दशानन को इतनी कठिन चुनौती दी थी? क्या धनुष-बाण केवल शोभा बढ़ाने के लिए कंधे पर टांग रखे हैं। सुना है, तुमने सहज में ही ताड़का, सुबाहु और खर-दूषण आदि को मार डाला था। अवश्य वे सभी अत्यधिक मद्यपान करके आए होंगे। आज इस रण का अंतिम निर्णय हुआ जाता है। अकारण ही सैनिकों का रक्त बहाने से क्या लाभ? क्यों न युद्ध का कारण ही समाप्त कर दिया जाए।" इतना कहकर मेघनाद ने एक साथ ही कई बाण चलाए।

प्रभु श्रीराम ने सहज ही एक बाण चलाकर उसके सभी बाण नष्ट कर दिए और उसके धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर उसका घमंड चूर किया, परंतु मेघनाद भी सहज ही मानने वाला नहीं था। क्षण-भर में ही दूसरा धनुष उसके हाथों में था।

"प्रभो!" लक्ष्मण रोष में भरकर बोले—"मुझे आज्ञा दें। मैं इस दुष्ट की वीरता का परीक्षण करता हूं। बड़ा धनुर्धर बन रहा है।"

"अनुज, आज इसके ग्रह-नक्षत्र सभी सीधी चाल में हैं, अतः सावधानी से इसे संतुष्ट करना। यह अपने कौशल से अधिक अपने दिव्यास्त्रों पर भरोसा करता है। इसके पास कुछ अमोघ शक्तियां हैं। सबसे बड़ी शक्ति इसकी पत्नी का महाव्रत है। उसके चित्त में इसका ध्यान स्थिर होने तक यह अजेय है।" राम ने कहा।

"हे नाथ! यह क्या, यदि इसके साथ ऐसे ही हजारों धनुर्धर भी मेरे समक्ष अहंकार करते हुए आ जाएं तो भी आपकी कृपा से मेरा कुछ अहित न होगा।"

लक्ष्मण ने धनुष-बाण उठाए और मेघनाद को ललकारा–"अरे ओ अभिमानी मेघनाद, अभी हनुमान के सामने से कायरों की भांति भागकर आया है और यहां प्रताप दिखा रहा है। ठहर, आज तेरा सब बल संतुष्ट कर देता हूं।"

लक्ष्मण राम से आज्ञा लेकर क्रोध में भरकर मेघनाद के सम्मुख आ गए थे। दोनों ही धनुर्विद्या में पूर्ण पारंगत थे। दोनों के ही तूणीर अक्षय थे और दोनों के पास प्रचंड अभिमंत्रित दिव्यास्त्र भी थे।

"छोटे तपस्वी!" मेघनाद ने व्यंग्य से कहा–"अभी तो तुम्हारे दूध के दांत भी न टूटे होंगे। तुम क्यों चले आए? उस राम को क्या भय लगता है?"

"तू काल के वश में है इंद्रजीत! इसलिए तेरी जिह्वा विषवमन कर रही है।" लक्ष्मण ने कठोर स्वर में कहा–"रणभूमि में योद्धा की आयु नहीं देखते। इस धर्मयुद्ध में श्रीरघुवर का धनुष उस पाप के मूल तेरे पिता दशानन का काल है। तेरे जैसे बड़बोले राक्षसों के लिए तो उनकी सेना का एक वानर भी पर्याप्त है।"

मेघनाद ने तमककर बाण-वर्षा आरंभ कर दी तो लक्ष्मण ने भी उसकी गति को मात देते हुए उसके सभी बाणों को काट डाला। अब मेघनाद भांति-भांति के बाण संधान कर रहा था, परंतु लक्ष्मण के सामने उसकी कोई विद्या काम नहीं आ रही थी। वह मायावी अस्त्र चलाकर घनघोर अंधेरा कर देता तो लक्ष्मण क्षण-भर में उस माया को काटकर प्रकाश कर देते थे। वह आग्नेयास्त्र का प्रयोग करता तो लक्ष्मण वरुणास्त्र से मेघवर्षा कर देते। चारों ओर लक्ष्मण की जय-जयकार हो रही थी और उसी अनुपात में मेघनाद का क्रोध व विचलन दोनों बढ़ रहे थे। दोपहर से संध्या होने को आई और लक्ष्मण उसे पीछे ही धकेलते रहे। वानरदल उस पर हंस रहा था, ताली बजा रहा था। मेघनाद को मन-ही-मन यह तो स्वीकार करना पड़ा कि लक्ष्मण किसी भी प्रकार उससे कम नहीं है।

मेघनाद ने विचार किया कि अब कुछ विशेष करना ही होगा, अन्यथा लौटकर पिता को क्या उत्तर दूंगा? मेघनाद ने अपने तूणीर से अंतिम विकल्प के रूप में वीरघातिनी नाम की अमोघ शक्ति निकालकर धनुष पर चढ़ाई और अपने इष्ट का स्मरण करके लक्ष्मण को लक्ष्य करके छोड़ दी।

लक्ष्मण को लगा, जैसे उनकी ओर कोई उल्कापिंड चला आ रहा हो। वे जान गए कि वह शिवशक्ति थी। उसे काटना वीरवर लक्ष्मण के लिए असंभव नहीं था। लक्ष्मण उसे क्षण-भर में शांत कर देते, परंतु इससे शिव के वरदान की अवमानना होती। उन्होंने अपने वज्र समान सीने को वीरघातिनी के समक्ष तानकर शिवस्तुति करते हुए नेत्र बंद कर लिये। प्रचंड कालशक्ति उनके सीने से टकराई तो शेषावतार उस भीषण आघात को सह न सके और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

मेघनाद हर्षित भाव से मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाकर अपने रथ में डालने का प्रयास करने लगा, परंतु वह उन्हें सूत-भर भी न हिला सका। मेघनाद ने अपनी समूची शक्ति लगा दी, उसकी पिंडलियां फट जाने को हुईं, तब वह लक्ष्मण को युद्धभूमि में ही छोड़कर वहां से चला गया। युद्ध का दूसरा दिन उसके लिए उपलब्धि भरा रहा।

सूर्यास्त हो चला था और लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर रामदल में स्तब्धता छा गई थी।

50

सुषेण को नीति-धर्म का ज्ञान

"हे सुषेण वैद्य! सेवक देह होती है, कला नहीं। सभी सोलह कलाएं और चौंसठ विद्याएं जगत के कल्याण हेतु होती हैं और इन पर किसी एक का स्वामित्व नहीं होता। ईश्वर के पश्चात् वैद्य की ही मान्यता है और वैद्य का कार्य चिकित्सा करना होना चाहिए, न कि शत्रु-मित्र के भाव से रोगी का वर्गीकरण करना।" राम ने गंभीर वाणी से सुषेण वैद्य को नीति-धर्म का ज्ञान देते हुए कहा—"हे वैद्यराज! सेवकाई भी धर्म है, परंतु सेवाभाव सीमित या व्यक्ति विशेष के प्रति हो तो दासता कही जाती है। यदि तुम्हारा दास धर्म है तो मैं कदापि तुम्हें तुम्हारा धर्म छोड़ने के लिए नहीं कहूंगा। लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त होता है तो हो जाए, परंतु हमारे कारण किसी का धर्म न छूटे। हे हनुमान! वैद्यराज को उसी कुशलता के साथ उनके घर पहुंचा दो, जैसे लेकर आए थे।"

मेघनाद के प्रबल आघात से लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर वानरदल सन्न रह गया था। जिसने भी सुना, वही स्तब्ध रह गया। हनुमान को भी समाचार मिला तो वे दौड़े-दौड़े वहां आए, जहां लक्ष्मण अचेत पड़े थे और शोकाकुल वानर-भालू उन्हें घेरे हुए खड़े थे। हनुमान उनके समीप बैठ गए। क्षण-भर में पहचान लिया कि यह शिव की अमोघ वीरघातिनी शक्ति का प्रहार था, जो समुद्र-मंथन में निकले उस हलाहल विष से भी

अधिक प्राणघातक थी जिसने शिव को नीलकंठ बना दिया था। हनुमान ने विकल होकर मूर्च्छित लक्ष्मण को सहज ही भुजाओं में उठा लिया और शिविर की ओर ले चले। पीछे-पीछे वानर-भालू मौन चले आ रहे थे।

हनुमान ने दुखी मन से राम के सामने लक्ष्मण को भूमि पर लिटा दिया।

"लक्ष्मण को क्या हुआ हनुमत्?" राम शिला से उतरकर लक्ष्मण के समीप बैठते हुए व्याकुल स्वर में बोले–"अनुज! तुम्हें क्या हुआ है? तुम इस प्रकार नेत्र बंद करके मेरे हृदय को कंपित न करो सौमित्र! देखो...मेघनाद तुम्हारे भय से भाग गया है। कल पुनः आएगा और कल तुम्हें उसका अंत करना है। उठो हे परम पराक्रमी लक्ष्मण! यह धरा तुम्हारे शीश पर शोभित होती है और तुम आज इस पर अपना भार रख रहे हो। अनुज! पृथ्वी रसातल में धंस जाएगी।"

राम के करुण स्वर ने सभी को द्रवित कर दिया था।

"प्रभु! जब उस दुष्ट दशानन के कपटी पुत्र मेघनाद को लक्ष्मणजी के सामने अपने प्राणों का भय सताने लगा तो उस दुष्ट ने शिव की अमोघ वीरघातिनी शक्ति का प्रयोग किया।" हनुमान दुखी स्वर में बोले–"यद्यपि लक्ष्मणजी चाहते तो उस शक्ति को काट सकते थे, परंतु शिव का निरादर न करते हुए सच्चे क्षत्रिय की भांति उसे अपने वज्र समान हृदय पर स्थान दिया।"

"हाय भैया लक्ष्मण! यह तुमने क्या किया! तुमने यह भी विचार न किया कि तुम्हारी इस दशा पर तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता का हृदय शोक से फट जाएगा। हे सौमित्र, यह अमोघ वीरघातिनी तो तुम्हें मुझसे विलग कर देगी। मैं शून्य हो जाऊंगा प्रिय भ्राता, क्योंकि मेरा सारा बल तो तुम्हीं हो। हे धरा को धारण करने वाले, महाप्रतापी! मैंने तो तुम्हारे ही आश्रय राक्षसों के विनाश का कठिन संकल्प लिया था और तुम पहले ही चरण में मुझे निराश्रय किए जा रहे हो। भैया, अभी तो असंख्य राक्षस इस धरा पर मुनिजनों को पीड़ित करने के लिए शेष हैं। तुम उठो सौमित्र! अपने धनुष की टंकार से दशानन का हृदय प्रकंपित कर दो और उस कपटी इंद्रजीत को सचेत कर दो कि कल उसके जीवन की अंतिम बेला है। हे लखन! ऐसा कौन काल है, जो तुम्हारी ओर कुटिल दृष्टि भी डाल सके।"

राम का करुण विलाप सुनकर विभीषण, जामवंत आदि सभी प्रमुख सेनापति उनके पास शोकाकुल होकर आ बैठे। जो जगत के सुख-दुख का संचालन करते हैं, आज वे कैसे साधारण मनुष्य की भांति शोकाकुल हैं। यही तो राम की अद्भुत लीला है। श्रीहरि ने राम की भूमिका के साथ न्याय किया है। वे मनुष्य जाति को जीवन के सहज स्वाभाविक मूल्यों का पालन और भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति का संदेश दे रहे हैं।

"हे नाथ!" विभीषण ने आर्द्र स्वर में कहा–"यह समय शोकाकुल होने का नहीं है। जो अमोघ शक्ति लक्ष्मणजी को लगी है, वह अपना प्रभाव बढ़ाती रहेगी और एक निश्चित अवधि में इनके लिए प्राणघातक हो जाएगी। हमें समय रहते उपचार के विषय में सोचना चाहिए।"

"लंकेश! शिव के कोप का क्या उपचार होगा? जो संहारक हैं, वे क्योंकर किसी की आशा का विकल्प रखेंगे?" राम विलाप करते हुए बोले–"आज मेरा वनवास अंतहीन हो गया, क्योंकि अब मैं किस मुख से अयोध्या जा सकूंगा? माता सुमित्रा को क्या उत्तर दूंगा जिन्हें मैंने अनुज लक्ष्मण की रक्षा का वचन दिया था?"

"नाथ! शिव बड़े कृपालु हैं। अपने भक्तों के लिए उनके पास असंख्य विकल्प रहते हैं। लंका में सुषेण नाम का एक प्रकांड वैद्य निवास करता है। इस जगत में ऐसा कोई असाध्य रोग नहीं जिसका उपचार वह न कर सके। यदि वह किसी प्रकार यहां आ सके तो भैया लक्ष्मण के जीवन की आशा हो सकती है।"

"हे विभीषण! शत्रु का राजवैद्य क्यों हमारा हित करने लगा और यदि वह चाहे भी तो रावण उसे ऐसा क्यों करने देगा? यदि वह लंका के अतिरिक्त कहीं और होता तो हम उससे विनती भी करते, परंतु शत्रु के घर में तो यह भी असंभव है।"

"हे रघुनाथ!" हनुमान तमककर खड़े हो गए–"आप मुझे आज्ञा दें। विनय करना निर्बलों का काम है। समर्थ तो इच्छा से कार्य कराते हैं। यदि वह वैद्य स्वयं रावण के पैर-से-पैर बांधकर भी बैठा होगा तो भी आपका यह सेवक उसे बलात् यहां लेकर आएगा। आप आज्ञा दें प्रभु!"

"हे पवनसुत! मैं तुम्हारा यह उपकार कभी न भूलूंगा। यद्यपि विधि को जो स्वीकार हो, वह होकर रहता है, परंतु पुरुषार्थ तो प्रयास करने में है। हे हनुमत्, तुम शीघ्र ही जाकर उस वैद्य ले आओ।" राम ने विनम्रता से कहा।

हनुमान विभीषण से सुषेण वैद्य के घर का पता व स्थिति जानकर जय श्रीराम का उद्घोष करके दृढ़ निश्चय के साथ चल पड़े। लंका के प्रहरी आज विजयोत्सव मना रहे थे, क्योंकि मेघनाद ने एक तपस्वी को मृत्युनिद्रा में सुला दिया था और रावण ने सबको आनंद मनाने की खुली छूट दे दी थी। यही कारण था कि हनुमान सूक्ष्म रूप से निर्विघ्न नगर में प्रवेश कर गए।

सारा नगर जगमग कर रहा था। स्थान-स्थान पर नृत्य-गान हो रहे थे। गलियों में मद्यपान किए हुए राक्षस भौंडे नृत्य में मग्न थे। हनुमान अपने लक्ष्य की ओर बढ़ चले। विभीषण ने वैद्य के घर की दिशा, स्थिति और पहचान बता दी थी तो

हनुमान को अधिक समस्या न हुई। वे वैद्य के घर में प्रवेश कर गए तो देखा कि वैद्य पलंग पर गहरी निद्रा में सो रहा था। हनुमान ने उसे जगाना उचित न समझा और धीरे से पलंग सहित ही उठा लिया। आमोद में डूबे लंका के प्रहरी न आते समय बाधा बने और न लौटते समय।

हनुमान शीघ्र ही अपने शिविर में पहुंच गए और पलंग नीचे रख दिया। सबने महावीर हनुमान का जयघोष किया तो गहरी निद्रा में सोया सुषेण वैद्य हड़बड़ाकर उठ बैठा। भयभीत और चकित होकर उसने अपने आसपास देखा। विभीषण को देखकर वह तनिक सहज हुआ।

"हे राजवैद्य!" विभीषण ने विनयपूर्वक कहा–"आप इस समय प्रभु श्रीराम के शिविर में हैं। आपने सुना ही होगा कि आज युद्ध में इंद्रजीत ने वीरघातिनी शक्ति के प्रहार से लक्ष्मणजी को मूर्च्छित कर दिया है। आप उसका प्रभाव जानते हैं और आशा है कि कोई उपचार भी अवश्य जानते होंगे, इसलिए आपको यहां लाया गया है।"

सुषेण वैद्य ने व्याकुल राम की ओर देखकर उन्हें प्रणाम किया।

"हे वैद्यराज!" राम ने हाथ जोड़कर विनय की–"जब हृदयविदारक परिस्थिति आती है तो व्यक्ति नीति न सोचकर उसका उपाय करता है। मेरे अनुज की यह दशा देखकर आप मेरी व्यथा समझ सकते हैं। एक मृत्यु को छोड़कर ऐसा कोई रोग नहीं, जो कुशल वैद्य की उपचार नीति में न हो। हे सुषेण जी, कृपा करके मेरे भैया लक्ष्मण के प्राण बचाने का कोई उपाय करें।"

"हे दीनदयाल!" सुषेण ने कहा–"आप सभी नीतियों को जानने वाले हैं। मैं निपट अज्ञानी जड़ी-बूटियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता। हे नाथ! मेरा एक संशय दूर करें। मैं लंकाधीश दशानन का सेवक हूं और उन्हीं के दिए अन्नादि से परिवार का भरण-पोषण करता हूं। क्या सेवक को स्वामी की आज्ञा के बिना कोई कार्य करना चाहिए, वह भी ऐसा जिससे स्वामी को घोर अप्रसन्नता हो?"

"हे सुषेण वैद्य! सेवक देह होती है, कला नहीं। सभी सोलह कलाएं और चौंसठ विद्याएं जगत के कल्याण हेतु होती हैं और इन पर किसी एक का स्वामित्व नहीं होता। ईश्वर के पश्चात् वैद्य की ही मान्यता है और वैद्य का कार्य चिकित्सा करना होना चाहिए न कि शत्रु-मित्र के भाव से रोगी का वर्गीकरण करना।" राम ने गंभीर वाणी से सुषेण वैद्य को नीति-धर्म का ज्ञान देते हुए कहा–"हे वैद्यराज! सेवकाई भी धर्म है, परंतु सेवाभाव सीमित या व्यक्ति विशेष के प्रति हो तो दासता कही जाती है। यदि तुम्हारा दास धर्म है तो मैं कदापि तुम्हें तुम्हारा धर्म छोड़ने के

लिए नहीं कहूंगा। लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त होता है तो हो जाए, परंतु हमारे कारण किसी का धर्म न छूटे। हे हनुमान! वैद्यराज को उसी कुशलता के साथ उनके घर पहुंचा दो, जैसे लेकर आए थे।"

"हे प्रभो!" सुषेण ने राम के चरण पकड़ लिये–"मेरा ऐसा आशय नहीं था। मैं तो अपने संशय को दूर करना चाहता था, जो आपने कर दिया। मैं सेवक और दास के अंतर को समझ गया। मैं उद्यम और कला का भेद जान गया। निश्चय ही कला ईश्वर का वरदान है और यह किसी की दास नहीं हो सकती। जो अपनी कला का उपयोग अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि के लिए करता है, वह आपकी कृपा का पात्र नहीं होता है। हे नाथ! आप धैर्य रखें। मैं अभी भैया लक्ष्मण की दशा का निरीक्षण करता हूं और जो भी संभव उपाय हो, वह बताता हूं।"

वैद्यराज सुषेण ने अचेत लक्ष्मण की नाड़ी देखी और नेत्रों को खोलकर निरीक्षण किया तो जीवन के लक्षण पहचान लिए।

"हे करुणानिधान श्रीराम! स्थिति विकट अवश्य है, परंतु आशारहित नहीं है। इस महाविष का प्रभाव चंद्रमा की शीतलता के साथ बढ़ता है। रात्रि के अंतिम प्रहर के अंतिम क्षण में चंद्रमा विष का अभिन्न मित्र होता है, अतः इतना ही समय हमारे पास है। उपचार दुर्लभ और कठिन है। उत्तर दिशा में हिमालय की पर्वत शृंखला में द्रोणगिरि नाम का एक पर्वत है जिस पर एक विशेष जड़ी-बूटी का पौधा पाया जाता है। उसकी पहचान यह है कि वह रात्रि के समय झिलमिलाता रहता है। उसी पौधे से संजीवनी बूटी बनाई जाती है। हे नाथ! यदि समय रहते संजीवनी बूटी से लक्ष्मणजी का उपचार किया जा सके तो इनके प्राण बच सकते हैं।"

सुषेण के उपाय को सुनकर सब मौन हो गए। पृथ्वी के दूसरे छोर पर वह हिमालय की पर्वत शृंखला में स्थित द्रोणगिरि नामक पर्वत था और समय का सर्वथा अभाव था। कहीं वैद्य ने जान-बूझकर ही तो ऐसी दुर्लभ औषधि तो नहीं बता दी?

"हे हनुमत्! वैद्यराज ने जो कहा, वह तुमने सुना। 'उपचार हो सकता है' सुनकर जो आशा जागी थी, वह उसकी दुर्लभता से क्षीण हो रही है।" राम आर्द्र स्वर में बोले–"हे वीर बजरंग बली! संसार में ऐसा कौन कठिन काज है, जो तुम्हारे किए नहीं हो सकता। हे पवनसुत! आज अयोध्या के इस सूर्य का अस्त, चंद्रमा के अस्त से होगा तो इस असहाय राम को तुम्हारे अतिरिक्त कोई सहाई नहीं दिखाई दे रहा है। हे वायुपुत्र! आज फिर अपनी प्रभुताई दिखाकर इस राम पर उपकार कर दो।"

"हे नाथ, हे रघुनंदन! यह हनुमान तो सदा आपका दास है। मेरा तो जन्म ही आपकी सेवा के हितार्थ हुआ है।" हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा–"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है नाथ! आप उस जड़ी की कहते हैं, मैं समूचे हिमालय को उखाड़कर आपको भेंट कर दूंगा। स्वयं काल भी आपके इस दास का मार्ग नहीं रोक सकेगा। मैं जाता हूं प्रभो! सफलता का आशीर्वाद दें।"

राम ने हनुमान को हृदय से लगाकर उन्हें सजल नेत्रों से विदा किया।

दशानन आज अति प्रसन्न था। उसे प्रसन्नता का यह अवसर उसके पुत्र मेघनाद ने दिया था। उसने छोटे तपस्वी को मृत्यु के मुख में धकेल दिया था, जहां शनैः शनैः वह निश्चेष्ट और परम शांत हो जाने वाला था। अकारण ही मंदोदरी कायरता भरे वचन बोलती थी। अपने पति और पुत्र-पौत्रों के पराक्रम पर संदेह करती थी। आज मेघनाद ने अपने अपराजेय होने को ही सिद्ध नहीं किया था, बल्कि शत्रु के ईश्वर होने की धारणा को भी निर्मूल सिद्ध कर दिया था।

दशानन ने इस अवसर पर भव्य विजयोत्सव का आयोजन किया और उसका आनंद उठाने लगा। प्रथम प्रहर से ही नृत्य-गान चल रहा था और सभी मदिरा के प्रभाव में झूम रहे थे।

51

कालनेमि का अंत

कालनेमि समझ गया कि भेद खुल गया है। वह अपने वास्तविक रूप में आ गया और उसने हनुमान पर सम्मोहन मंत्र का प्रयोग किया।

"व्यर्थ में प्रयास न कर कपटी राक्षस!" हनुमान ने गदा उठाकर उसके सिर पर प्रहार किया तो वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ—"दुष्ट दशानन! मुझे सुन रहा है तो सुन, तेरा कपट तो काल कवलित हो गया। अब अपना कुछ बल आजमा ले। आज तो स्वयं शिव भी तुझ पर प्रसन्न होकर मेरा मार्ग अवरुद्ध करें तो भी संभव नहीं।"

रात्रि का प्रथम प्रहर ही बीता था कि एक गुप्तचर ने दशानन के पास आकर उसे प्रणाम किया तो दशानन उसे शोरगुल से अलग ले गया।

"गुप्तचर, शत्रु शिविर के क्या समाचार हैं? बड़ा तपस्वी तो सिर धुन-धुनकर विलाप करता होगा कि क्यों लंकापति से बैर मोल लिया? निर्जीव छोटे तपस्वी से लिपटकर रोता वह अपने दुर्भाग्य और मूर्खता को कोसता होगा?" दशानन अट्टहास करते हुए बोला।

"महाराज, दशा तो उसकी वही है, जो आप कह रहे हैं। वह करुण विलाप करता हुआ स्वयं को कोस रहा है, परंतु एक बड़ी गड़बड़ हो गई है।" गुप्तचर बोला।

"कैसी गड़बड़?" दशानन के नेत्र सिकुड़े।

"महाराज! छोटे तपस्वी के मृतप्राय शरीर पर बिलखते बड़े तपस्वी को देखकर महाराज विभीषण द्रवित हो गए और उन्होंने उसके उपचार के लिए सुषेण वैद्य का नाम सुझा दिया। जिस वानर ने लंका जलाई थी, वह वैद्य को उठाकर ले गया।"

"वैद्य को ले गया!" दशानन चौंक पड़ा–"हमारे प्रहरी क्या कर रहे थे?"

"कोई अपने पैरों पर खड़ा हो, ऐसा मुझे एक भी प्रहरी न दिखाई दिया महाराज! घायल शत्रु द्वार पर खड़ा है और यदि इसी समय आक्रमण कर दें तो कोई सामना करने वाला भी न मिले–यह विजयोत्सव का परिणाम है।"

"हूं। इस कुलद्रोही विभीषण को तो कल समाप्त करना ही होगा। तू आगे बता कि वहां पहुंचकर सुषेण ने क्या किया?" दशानन ने पूछा।

"उसने पहले तो अपने सेवक धर्म का निर्वाह करते हुए उपचार करने से मना ही कर दिया था। उसने कहा कि मैं जिनका अन्न खाता हूं, उनकी आज्ञा के बिना शत्रु का उपचार कैसे करूं, परंतु महाराज! बड़े तपस्वी ने उसे अपने करुण क्रंदन से द्रवित कर दिया और उसने उपचार करना स्वीकार किया।"

"तो उसने क्या उपचार किया? क्या मेघनाद का पराक्रम व्यर्थ हो गया? क्या वह छोटा तपस्वी कुलद्रोही विभीषण और मूर्ख सुषेण के कारण जीवित हो गया?"

"जीवित तो नहीं हुआ, परंतु यदि सुषेण की बताई औषधि आ गई तो संभवतः वह जीवित होकर कल पुनः रणभूमि में आ गरजे।"

"मूर्ख! सारी बात एक ही बार में बता कि क्या हुआ?"

"महाराज! सुषेण वैद्य ने हिमालय पर्वत पर एक विशेष बूटी के विषय में बताया है, जो सूर्योदय से पूर्व आ गई तो लक्ष्मण के प्रण बच जाएंगे। वह झिलमिलाती हुई बूटी ही वह एकमात्र विकल्प है जिससे मृतप्राय शत्रु जीवित हो जाएगा। उसका समय भी निर्धारित है। हनुमान उसे लेने गया है। सभी का मानना है कि जगत में ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हनुमान न कर सके।"

दशानन चिंतित हो गया। हनुमान उसके लिए जटिल सिद्ध हो रहा था, जो राम का सब प्रकार से बिगड़ा हुआ कार्य बना देता था। हिमालय समीप तो नहीं था, परंतु उस अतुलित बलशाली वानर के लिए दूर भी क्या था! कुछ ऐसा तो करना ही होगा, जिससे वह समय पर न लौट सके। एकाएक दशानन को कालनेमि की सुधि आई। सभी कुटिलताओं में निपुण मायावी कालनेमि हिमालयी क्षेत्र में ही कहीं रहता था। वृद्धावस्था को पार कर चुका वह यद्यपि सभी कुटिल कर्मों से विरक्त हो गया था, परंतु दशानन को विश्वास था कि वह उसके आदेश को नहीं टाल सकता।

दशानन उसी क्षण अपने पुष्पक विमान पर सवार होकर चल दिया। वायु के समान गति वाला विमान आकाशमार्ग से उड़ता हुआ तीसरा प्रहर आरंभ होते ही कालनेमि के आश्रम में जा पहुंचा था, जो शिव-साधना में लीन था। दशानन ने अपने अहंकार का परिचय देते हुए उच्च स्वर में 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण किया।

"लंकेश! आप इस समय यहां?" कालनेमि आशंकित होकर बोला।

"पूज्य कालनेमि! समय की गति बड़ी विचित्र होती है। लंकाधीश दशानन की सामर्थ्य ऐसी है कि इंद्र के पास भी संदेश-भर भेज दे तो वह भी अमरावती छोड़कर मेरे दरबार में उपस्थित हो जाएगा, परंतु आज परिस्थिति ऐसी है कि हमें स्वयं तुम्हारे पास आना पड़ा।" दशानन ने कहा–"हम यहां एक विशेष कार्य से आए हैं और कार्य भी ऐसा है कि जिसे हम स्वयं भी कर सकते थे, परंतु इससे हमारी कीर्ति कलंकित होगी। साधारण कार्य है न!"

"लंकेश! साधारण कार्य के लिए लंका के भव्य अंतःपुर को छोड़कर रात्रि के इस प्रहर यहां आने वाला राक्षसराज क्या मेरे अनुभव को भी भूल रहे हैं।"

"बात ऐसी नहीं है कालनेमि! कार्य साधारण है करने में, लेकिन उसका परिणाम असाधारण है। मैं तुम्हें सारी बात समझाता हूं, तब तुम समझ पाओगे।"

दशानन ने पंचवटी में शूर्पणखा के साथ हुए दुर्व्यवहार से लेकर उस क्षण तक का सविस्तार वर्णन किया जिसे कालनेमि ने ध्यान से सुना।

"अब प्रश्न यह है कि हनुमान को कैसे रोका जाए? बलपूर्वक उसे रोकना कम-से-कम तुम्हारे लिए तो संभव नहीं है। अतः किसी कपट कला से उसे एक प्रहर रोकने का उपाय-भर करना है जिनमें तुम अत्यंत निपुण हो।"

"अति सुंदर लंकेश! बैर भी किया तो नारायण से! तुमने निश्चय ही हिरण्यकश्यपु की परिपाटी का निर्वाह किया है, जो सीधे काल से हाथ मिला लिया। जब जीवन की अवधि पूरी हो जाती है तो काल स्वयं चलकर आता है, परंतु तुमने तो उसे पहले ही नगरद्वार पर बिठा दिया। तुम्हारा जो भी उद्देश्य हो, वह तुम जानो, परंतु इसे बुद्धिमानी तो नहीं कह सकते। अपनी हठ और इच्छापूर्ति के लिए कुल के ही काल को आमंत्रित कर लिया।" कालनेमि गंभीरता से बोला।

"मैं यहां उपदेश सुनने नहीं आया कालनेमि!" दशानन गरज उठा–"सामर्थ्य होते हुए भी किसी का भय मानने वाला कायर कहा जाता है। अब वह नर हो या नारायण, इससे क्या अंतर पड़ता है? जहां बल होगा, विजय वहां होगी। हो सकता है कि राम देवों और मनुष्यों का नारायण हो, परंतु मैं भी राक्षसों का ईश्वर हूं। यह प्रभुत्व सिद्ध करने की लड़ाई है, परिणाम चाहे जो भी हो। मैं जिस कार्य के लिए यहां आया हूं, तुम उसे करो और अपना भजन करते रहना।"

"लंकेश! जीवन इन्हीं कुटिलताओं में व्यतीत हो गया। शारीरिक क्षीणता न होती तो आज भी वैसा ही कुटिल होता। विवशता से विरक्त हो गया हूं और जीवन के सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहा हूं। अब कोई कुटिल कर्म करने का आदेश न दो।"

"जीवन से इतने ऊब गए हो तो तुम्हें इससे मुक्त ही कर दूं कालनेमि, क्योंकि केवल सांसें लेने के लिए जीवित रहने का क्या प्रयोजन?" दशानन कठोरता से बोला।

"लंकेश, हनुमान बहुत पराक्रमी वानर है। उसने बचपन में खिलवाड़ करते हुए ही सूर्य को फल समझकर मुख में रख लिया था। मैं अत्यंत वृद्ध उसका सामना नहीं कर सकता। अतः इस कार्य के लिए मुझे अयोग्य ही मानो।"

"तुम्हें उससे युद्ध नहीं करना, अपितु कपट से मोहित करके उसका समय नष्ट करना है। वह जितनी देर यहां विलंब करेगा, उतना ही अच्छा है। तुम मुनिवेश में यहां राम-राम का जाप भी करो तो भी वह रामभक्त बहुत समय तक मुग्ध रहेगा। उसे राम महिमा की चर्चा सुनाओगे तो भी वह अपना लक्ष्य भूल जाएगा, क्योंकि राम नाम में उसकी ऐसी ही मूर्खता भरी प्रीति है।"

"जो सबसे कठिन कार्य करने में सर्वश्रेष्ठ है, वह मूर्ख कैसे हो सकता है लंकेश! केवल बल से ही तो सब संभव नहीं, विवेक भी आवश्यक है।"

"कालनेमि! उसके यहां पहुंचने का समय हो रहा है।" दशानन ने दांत पीसे–"व्यर्थ की बकवास में समय नष्ट न कर। या तो मेरा काम कर अन्यथा मरने के लिए तैयार हो जा, क्योंकि जो मेरी अवज्ञा करता है, वह जीवित नहीं रह सकता।"

"तुम्हारे हाथों से मरने से तो अच्छा है कि राम-भक्त के हाथों मरकर सद्‌गति पाऊं, परंतु इससे तुम्हारा कोई हित नहीं होने वाला लंकेश! यह सब श्रीहरि की नरलीला है जिसमें वे तुम्हें निरीह नर प्रतीत होते हैं। उनके वास्तविक दर्शन तुम्हें नहीं होंगे।"

"मैं यहीं-कहीं अदृश्य होकर तुम पर दृष्टि रखूंगा।" दशानन ने कहा और अंधकार में विलीन हो गया।

कालनेमि ने ईश्वर का स्मरण किया और अपना कुटिल जाल बिछाने लगा। उसने एक सुंदर मायावी कुटिया बनाई और स्वयं शांत मुनि के वेश में राम-राम करता हुआ बैठ गया। अब हनुमान की प्रतीक्षा थी। तीसरा प्रहर बीत गया था। एक ही प्रहर की बात थी, परिणाम तो जो भी होगा, देखा जाएगा। उसने उच्च स्वर में जाप शुरू कर दिया।

जहां राम-नाम का पावन उच्चारण हो रहा हो, वहां से यदि हनुमान गुजर रहे हैं तो निश्चय ही वे उस रामभक्त के दर्शन करना चाहेंगे। रावण का यह विचार सत्य ही था, क्योंकि हनुमान वहां पधार चुके थे और बड़ी श्रद्धा से

मुनि रूपी कालनेमि के सामने नत होकर रामधुन को सस्वर गाने लगे थे। कुछ क्षण ऐसे ही व्यतीत हुए।

"हे मुनिवर, इस पुण्य हिमपर्वत के सुरम्य शिखर पर आप जैसे रामभक्त के दर्शन सौभाग्य की बात है। इस मुनियों की तपोस्थली में यह सुंदर वाणी मन को मोहने वाली है। हे ऋषिवर! क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूं?" हनुमान ने कहा।

"प्रिय हनुमान, हमारा-तुम्हारा व्यक्तिगत क्या परिचय होगा? क्यों होगा? उसकी आवश्यकता ही क्या है? हम तो उन प्रभु श्रीराम के सेवक हैं, जो लंका के द्वार पर अद्‌भुत नरलीला कर रहे हैं। अहा, जगत के स्वामी का यह नरव्यवहार कितना निश्छल और स्वाभाविक है। उनकी विकल अश्रुपूरित आंखें तुम्हारी प्रतीक्षा में आकाश को निहार रही हैं पवनपुत्र! अंतिम प्रहर शेष है।" मुनि रूपी कालनेमि ने सजल नेत्रों से कहा।

"हे मुनिश्रेष्ठ, आप तो दूरद्रष्टा हैं। यहां बैठे हुए इतनी दूर का हाल जान गए हैं। हे नाथ, आप पर प्रभु की अति कृपा है। मैं धन्य हुआ।"

"उनकी कृपा किस पर नहीं है पवनकुमार! वे तो मित्र के भी प्रिय हैं और शत्रु के भी। देखो न, उनके दर्शन के लिए जोगी-भोगी तप-व्रत करते हैं और घोर पापी दशानन उनसे बैर करके भी उनके नित्य दर्शन प्राप्त करता है। ऐसे दीनदयालु प्रभु श्रीराम का वर्णन क्या कोई कर सकेगा? तुम धन्यभागी हो, जो उनकी सेवा का अवसर मिल रहा है। तुम बहुत लंबी यात्रा करके आए हो और अभी वापस भी जाना है, यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताओ।"

"मुनिवर, प्रभुकृपा से शारीरिक थकान तो नहीं होती, परंतु प्राकृत रूप से प्यास लगी है। यदि जल मिल जाए तो अति कृपा होगी।" हनुमान ने कहा–"साथ ही मुनिश्रेष्ठ मुझे द्रोण शिखर की दिशा भी बताएं जिससे मेरा समय नष्ट न हो।"

"हे पवनपुत्र! मेरी कुटिया के पीछे दिव्य सरोवर बहता है। तुम उसमें स्नान करो और मेरे पास आओ। मैं तुम्हें प्रभु श्रीराम के पवित्र नाम से अभिमंत्रित जल का आचमन कराऊंगा जिससे तुम्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी और प्रत्येक उस वस्तु को देख सकोगे, जो तुम्हें प्रिय और आवश्यक हो। इससे तुम्हारे वेग में भी अद्‌भुत वृद्धि होगी और तुम समय से प्रभुकाज संपन्न कर पाओगे।"

हनुमान बड़े ही उत्साह से भरकर कुटिया के पीछे बने सरोवर के पास पहुंचे। बड़ा ही निर्मल और स्वच्छ शीतल जल था। हनुमान ने समय का अभाव देखते हुए तत्काल सरोवर में प्रवेश किया कि किसी ने उनका पैर पकड़ लिया। वह कोई मकर था। हनुमान ने बहुत झटके दिए, परंतु उसकी पकड़ मजबूत थी, तब हनुमान ने हाथों से उसके जबड़े पकड़कर अपना पैर छुड़ाया और उसे जल

के ऊपर लाकर बीच में से चीर दिया। वह मकर तत्काल ही एक सुंदर स्त्री के रूप में बदल गया।

"हे रामभक्त! आज मेरा उद्धार हुआ। मैं गंधर्व कन्या एक मुनि के श्राप के कारण मकर योनि में इस सरोवर में पड़ी थी। उन्हीं मुनि ने मुझे बताया था कि त्रेतायुग में प्रभु श्रीराम के परम स्नेही हनुमान यहां आएंगे और उन्हीं के हाथों से मुझे मुक्ति मिलेगी। हे नाथ! आज मैं मुक्त हुई। हे प्रभो, यह मुनि रूपी राक्षस हैं, जो दशानन के कहने पर आपका समय नष्ट कर रहा है। अत: इससे सजग रहना। द्रोण पर्वत इस शिखर के पीछे ही है।"

गंधर्व कन्या इतना कहकर आकाश मार्ग से अदृश्य हो गई।

हनुमान सरोवर से बाहर आए और मुनिवर के पास पहुंचे। मुनिवर तिरछी नजर से देख रहे थे और अपने कमंडल को हथेली पर रखे हुए थे।

"मुनिवर, जल तो बहुत ही स्वच्छ, शीतल और दिव्य था। जैसे ही मैंने मुख पर जल के छींटे मारे, मेरे ज्ञानचक्षु खुल गए।" हनुमान ने कहा–"मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई मुनिवर! अब मुझे सब स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आपसे भी अधिक। मैं एक कंदरा में गीदड़ की भांति छुपे हुए दुष्ट दशानन को देख पा रहा हूं। क्या वह कायर, अनीति का वाहक आपको भी दिखाई दे रहा है, जो बात तो पराक्रम की करता है, परंतु कार्य कुटिल और नीति-विरुद्ध करता है।"

कालनेमि समझ गया कि भेद खुल गया है। वह अपने वास्तविक रूप में आ गया और उसने हनुमान पर सम्मोहन मंत्र का प्रयोग किया।

"व्यर्थ में प्रयास न कर कपटी राक्षस!" हनुमान ने गदा उठाकर उसके सिर पर प्रहार किया तो वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ–"दुष्ट दशानन! मुझे सुन रहा है तो सुन, तेरा कपट तो काल-कवलित हो गया। अब अपना कुछ बल आजमा ले। आज तो स्वयं शिव भी तुझ पर प्रसन्न होकर मेरा मार्ग अवरुद्ध करें तो भी संभव नहीं।"

कहीं से कोई स्वर न उभरा, अत: हनुमान समय नष्ट न करते हुए पर्वत शिखर पर चढ़ गए, परंतु अनेक झिलमिलाती औषधि, बूटियां दिखाई दे रही थीं। हनुमान असमंजस में पड़ गए। अवश्य ही यह दशानन की कोई कुटिल माया थी जिससे समूचा पर्वत ही झिलमिला रहा था। उस विशेष बूटी को पहचानने में समय ही नष्ट होता, अत: महाबली हनुमान ने प्रभु श्रीराम का स्मरण किया और उस पर्वत खंड को जड़ से उखाड़ लिया। द्रोणगिरि के उस पर्वत खंड को अपने दाहिने हाथ की हथेली पर रखकर हनुमान वहां से पवनवेग से उड़ चले।

52

सीता का करुण विलाप

"त्रिजटे, जो जगत के स्वामी हैं, आज वे साधारण मनुष्य की भांति विलाप कर रहे हैं। जो समस्त शंकाओं से परे हैं, आज वे आशंकित हैं। यह सब मेरे कारण हुआ है। मुझ अभागिन ने उन श्रीनाथ को अपार कष्ट दिया है। मेरे ही कारण आज उनका हृदय शोकाकुल है। मुझे मृत्यु क्यों नहीं आती?" सीता करुण विलाप करते हुए बोलीं—"हे त्रिजटा, तू कोई ऐसा साधन कर जिससे मैं यह शरीर त्याग सकूं, क्योंकि इसी के कारण सब दोष हुए हैं। दशानन की आसक्ति और प्रभु की प्रीत ने ही इसमें विषाद उत्पन्न किया है। जब मैं ही न रहूंगी तो कारण समाप्त हो जाएगा।"

कैसा करुण दृश्य था! एक ओर श्रीराम के शिविर में राम का विलाप तो दूसरी ओर अशोक वाटिका में सीता का करुण क्रंदन। उन्हें एक राक्षसी ने बता दिया था कि क्या हो गया था। सीताजी ने तो सहज भाव से ही पूछा था।

"कर्षणा, आज लंका में बड़ी सजावट है। चारों ओर राक्षस प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। यहां के प्रहरी भी संध्या होते ही मदिरापान किए जा रहे हैं। दिन-भर कठिन युद्ध हुआ है। इसके उपरांत भी इनकी प्रसन्नता विचित्र है।" सीता ने आशंकित स्वर में पूछा था।

"सीते! आज का युद्ध तेरी आशाओं पर वज्रपात है सुंदरी!" कर्षणा नाम की राक्षसी ने बताया–"जिन राम-लक्ष्मण के आश्रय तूने लंकापति का सुंदर प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, उनमें से आज एक को तो इंद्रजीत मेघनाद ने मृत्यु की शैया पर डाल दिया।"

"क्या कहती है दुर्मुखे!" सीता गरजकर बोलीं–"जो स्वयं कालों के काल हैं, उन्हें किस मेघनाद का भय! तू अपने स्वामी के कहने पर मेरा मनोबल क्षीण करने के लिए नित्य ही ऐसी मनगढ़ंत कहानियां सुनाती है। कैसी स्त्री है तू?"

"सीते, आज मैं असत्य नहीं कह रही हूं। त्रिजटा आती ही होगी। उससे पूछ लेना। आज युद्ध में मेघनाद ने वीरघातिनी नाम की अमोघ शक्ति से लक्ष्मण को प्राणशून्य कर दिया है। लंका में आज उसी का उत्सव है। नित्य की भांति आज तुझे वे जयघोष सुनाई दे रहे हैं, जो वानरदल उत्साह में करते थे? नहीं न! क्यों? क्योंकि वहां तो शोक छाया हुआ है। लक्ष्मण क्षण-क्षण मृत्यु के समीप जा रहे हैं।"

"ऐसा...ऐसा नहीं हो सकता।" सीता के नेत्र पथरा गए–"जो समस्त धरा का भार अविचल होकर संभालते हैं, वे शक्तिबाण को क्या समझेंगे। यह अवश्य ही कुछ और हुआ है। दशानन का क्या है, वह तो एक साधारण वानर की वीरगति को भी अपना भारी पराक्रम मानकर उत्सव कर लेगा। राम ऐसे नहीं हैं। उन्हें सभी बड़े प्रिय हैं और यह मौन भी किसी प्रिय वानर की वीरगति से ही व्याप्त है।"

"मिथिलेश कुमारी, तुम न मानो पर सत्य यही है। लंकापति की हठ से अधिक तो तुम्हारी हठ ने यह दिन दिखाया है।" राक्षसराज की पटरानी होना सौभाग्य की बात थी! विधाता ने मुझे तुम्हारे स्थान पर यह अवसर दिया होता तो मैं सहर्ष स्वीकार कर लेती।" कर्षणा ने विषबुझे स्वर में कहा–"यह तो लंकापति को नलकूवर का श्राप लगा है कि वे किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका मान-भंग करेंगे तो उनके सिर के टुकड़े हो जाएंगे। इसी से तुम आज तक पवित्र हो।"

"हे दुर्वचने, अपना प्रलाप बंद कर।" सीता ने कानों पर हाथ रखकर कहा–"और मेरी दृष्टि से दूर हो जा।"

तभी त्रिजटा वहां आ गई तो कर्षणा उसे देखकर वहां से हट गई। त्रिजटा उदास और गंभीर थी। उसने आते ही सीता को हृदय से लगा लिया। वह समझ गई कि कुटिला कर्षणा ने उसे व्यथित किया होगा।

"पुत्री! विषाद न कर! अपने राम पर अपना अखंड विश्वास स्थिर रख। जो सब पर कृपा करते हैं, उनका कोई अहित नहीं हो सकता है! यह तो उनकी लीला-मात्र है। शत्रु को भ्रमित करने की योगमाया है। तुमसे अधिक इसे कौन जानता है।" त्रिजटा ने सांत्वना भरे स्वर में कहा।

"माते! कर्षणा दुष्टा कहती है कि आज मेघनाद ने अपराजेय लक्ष्मण को प्राणशून्य कर दिया है और वे शनैः-शनैः मृत्यु के समीप जा रहे हैं।"

"अरी पागल! जिनके संकेत पर जीवन-मृत्यु संचालित होते हैं, उन श्रीराम के सदा संगी लक्ष्मण को क्या हो सकता है? जिनके सेवक महाबली हनुमान हों, उनका तो स्वयं यम भी बाल बांका नहीं कर सकते। यह सत्य है कि आज मेघनाद ने अमोघ शक्ति का प्रयोग करके लक्ष्मण को चेतनाशून्य कर दिया है। यह भी सत्य है कि राम बड़े व्याकुल हैं, परंतु यह कालरात्रि उनकी लीला का ही अंग है। वीरवर हनुमान संजीवनी बूटी लेने गए हैं, अतः तुम मन में विषाद न करो।"

"त्रिजटे! यह मुझ अभागिन की मूर्ख बुद्धि का ही दोष है, जो आज प्रभु के नेत्रों में अश्रु की धारा बह रही है।" सीता रोते हुए बोलीं–"मैंने पंचवटी पर बुद्धिहीनता न की होती और स्वर्णमृग की कामना न की होती तो प्रभु क्यों आज विलाप करते। उस पर भी मैंने यह शठता कर दी कि अपनी रक्षा में तत्पर लक्ष्मण को भी हठपूर्वक वहां से भेज दिया। मैं बुद्धिहीन प्रभु के समझाए भी न समझ सकी कि सोने के मृग नहीं होते। मैं भैया लक्ष्मण की आन का उल्लंघन करके आप ही विपत्ति में फंसी हूं और उसकी आंच में उन दोनों को भी लपेट लिया। अरे दुष्ट दशानन, तू मेरा शीश ही धड़ से अलग कर देता, परंतु हाय! मुझ अभागिन पर तो मृत्यु को भी दया नहीं आती।"

"पुत्री सीते! हर रात्रि के पश्चात् सवेरा होता है। अब तेरी प्रतीक्षा में दिन ही कितने शेष रह गए हैं। अब रघुवीर समर में उतरेंगे सीते! अब काल स्वयं दुष्टों का दमन करेगा। लंका का विनाश राम के तूणीर में करवट बदल रहा है पुत्री! तेरी समस्त व्यथा उन बाणों का फल बन गई है, जो दशानन की मृत्यु का कारण बनेंगे। तू धैर्य रख। तू विश्वास रख। आज इस जगमगाती लंका में कल तुझे ढूंढे से कोई दीपक जलता न दिखेगा। इन लाल मृदंगों के स्वर करुण क्रंदन में बदल जाएंगे। यही काल की कालरात्रि का आयोजन है।"

"माते! अंतिम प्रहर हो चला है। क्या वीरवर हनुमान संजीवनी बूटी लेकर आ गए होंगे? क्या मेरे राम की व्याकुलता का अंत हुआ होगा, क्योंकि उनका कोमल मन किसी अन्य की पीड़ा नहीं सह सकता तो अपनी पीड़ा कैसे सहता होगा? त्रिजटे, तू किसी प्रकार वहां की खबर ला।"

"सीते! जब श्रीराम का जयघोष होगा तो दिशाएं गूंज उठेंगी।" त्रिजटा ने हंसकर कहा–"तू अपने कानों को वहीं केंद्रित कर। इन मृदंगों को न सुन, क्योंकि कल इनके स्थान पर जो सुनेगी, उससे द्रवित हो जाएगी। तुझे द्रवित नहीं होना है

पुत्री! तुझमें करुणा जागी तो प्रभु करुणामय हो जाएंगे। तेरा रोष ही उनके संहार का निमित्त होगा। वे अपनी इच्छा से नहीं तेरी इच्छा से कार्यरूप होते हैं।"

सीता ने नेत्र बंद कर लिये और स्वयं को ध्यानस्थ किया–अपनी श्रवण शक्ति एकाग्र करके उस दिशा में मोड़ दी, जिधर से प्रतिदिन 'जय श्रीराम' का जयघोष सुनाई देता था। एकाग्रता यद्यपि प्रबल है तो परिणाम भी प्राप्त होता है। सीता के कानों में वे स्वर, वे आर्त स्वर गूंजने लगे थे, जो उनका हृदय कचोट रहे थे।

यह राम का व्यथित स्वर था। अब न मृदंग का स्वर था और न स्वयं सीता की श्वासों के स्पंदन से उत्पन्न स्वर सुनाई पड़ रहा था–वहां केवल राम का विलाप था।

"हे सुग्रीव, हे जामवंत!" राम का करुण स्वर उभरा–"देखो, अंतिम प्रहर भी हो आया। चार मुहूर्त रात्रि शेष है। भैया लक्ष्मण का जीवन भी इतना ही तो नहीं है। क्या हनुमत् को समय का ध्यान नहीं रहा। हाय अनुज! तुम्हारा यह भाई आज कितना निर्बल है कि तुम्हारी दशा पर रोने के अतिरक्त कुछ नहीं कर सकता है! आज रघुकुल का राजकुमार भूमि पर शयन कर रहा है तो मेरे कारण! हे सौमित्र! जब वन को चले थे तो मैंने कहा था कि वन का जीवन अत्यंत कठिन है, परंतु मेरे स्नेह में बंधे तुमने राजसी वैभव त्याग दिया।"

"प्रभु, समय बड़ा बलवान होता है। इसने सदैव ही ऐसे समर्थ चरित्रों की परीक्षा ली है, जो धर्म पर अडिग, कर्तव्य में निपुण और व्यवहार में कुशल होते हैं।" विभीषण ने कहा–"रघुकुल की कीर्ति सदैव से ही ऐसी रही है कि विधि ने संसार-भर को इसी कुल के व्यवहार का अनुसरण करने की प्रेरणा दी है। यह कठिन समय आप पर ही नहीं आया प्रभु, आपसे पहले आपके पूर्वज राजा हरिश्चंद्र ने तो सत्य के लिए इससे भी अधिक यातनापूर्ण समय देखा था। काशी के बाजार में अपनी पतिव्रता पत्नी और प्राणप्रिय पुत्र को नीलाम होते देखा था। स्वयं एक चांडाल के दास बनकर श्मशान के रक्षक बने थे। अपने ही पुत्र का शवदाह कराने के बदले अपनी ही पत्नी से दाहकर मांगने को विवश हुए थे, क्योंकि यही उनका सेवक धर्म था। हे अंतर्यामी! इतने कष्ट सहकर भी सत्यवादी नरेश ने धैर्य धारण किया और संसार में अखंड यश पाया।"

"लंकापति विभीषण!" राम ने रोते हुए कहा–"मैं उन जैसा महान कैसे हो सकता हूं, क्योंकि उन्होंने धर्म और वचन की रक्षा के लिए कठिनाइयां सहन कीं और मैंने पत्नी के प्रेम में अपने अनुज को कठिनाइयां दीं। यह कोमल गात, जो पुष्पशैया पर शयन करता था, बिना किसी दोष के ही प्रीतवश होकर मेरे साथ वन चला आया था। मेरे ही प्रेम के वशीभूत माता सुमित्रा ने अपना हृदय कठोर

कर लिया। मेरे ही स्नेह के कारण अनुजवधु उर्मिला ने अपने स्वप्न स्मृतियों में बदल लिये। मैं इन सबका दोषी हुआ। क्या अब मैं इन सबको अपना कलंकित मुख दिखाने योग्य रह गया, जो अपने अनुज की रक्षा न कर सका?"

"हे नाथ! हनुमान आते ही होंगे।" सुग्रीव ने हाथ जोड़कर कहा–"आप ही तो कहते हैं कि इस संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो हनुमान के किए न हो सकें–कार्य कठिन अवश्य है, परंतु हनुमान के लिए असंभव नहीं है।"

"हे सुग्रीव! शत्रु बड़ा ही निष्ठुर, अधर्मी और कपटी है। वह अधम अवश्य ही हनुमान के मार्ग में बाधा उत्पन्न करेगा। उसे अब तक ज्ञात हो गया होगा कि राम के कष्ट का निवारण करने के लिए पवनपुत्र गए हैं तो क्या वह शांत बैठ जाएगा?"

"प्रभु, क्या संसार में कोई ऐसी बाधा भी है, जो हनुमान का मार्ग रोक सके? यह तो आश्चर्य का विषय होगा। जिन बजरंगबली ने खिलवाड़ करते हुए ही सूर्य को फल समझ कर ग्रस लिया, वे क्या साधारण बाधाओं से रुकेंगे। प्रभो, जो आपका दास है, वह सर्वदा सफल रहता है।"

"हे वैद्यराज, क्या उस औषधि का कोई अन्य विकल्प नहीं, जो सहज सुलभ हो? अब तो बहुत ही अल्प समय रह गया है।" राम बिलखकर बोले।

"नाथ! कल्प और विकल्प दोनों ही आपकी प्रेरणा से गति करते हैं।" वैद्य ने कहा–"न तो यह कल्प अर्थात् समय आपकी इच्छा के विपरीत जा सकता है और न कोई विकल्प आपकी इच्छा के विरुद्ध होगा। प्रभु, यह सब आपके द्वारा ही निश्चित हुआ है कि एकमात्र वही औषधि काम आएगी।"

राम पुनः विलाप करने लगे थे–एकाग्र भाव से प्राणप्रिय राम की व्याकुलता की अनुभूति कर रही सीता की एकाग्रता का बांध टूट गया।

"त्रिजटे, जो जगत के स्वामी हैं, आज वे साधारण मनुष्य की भांति विलाप कर रहे हैं। जो समस्त शंकाओं से परे हैं, आज वे आशंकित हैं। यह सब मेरे कारण हुआ है। मुझ अभागिन ने उन श्रीनाथ को अपार कष्ट दिया है। मेरे ही कारण आज उनका हृदय शोकाकुल है। मुझे मृत्यु क्यों नहीं आती?" सीता करुण विलाप करते हुए बोली–"हे त्रिजटा, तू कोई ऐसा साधन कर जिससे मैं यह शरीर त्याग सकूं, क्योंकि इसी के कारण सब दोष हुए हैं। दशानन की आसक्ति और प्रभु की प्रीत ने ही इसमें विषाद उत्पन्न किया है। जब मैं ही न रहूंगी तो कारण समाप्त हो जाएगा।"

"पुत्री! तुम केवल इस लीला का ही कारण तो नहीं हो। तुम तो इस जगत का भी कारण हो। तुम प्रभु की योगमाया हो। तुम ही उनकी प्रेरणा हो जिससे

संसार का चर-अचर संचालित होता है। कारण समाप्त करने से तो सृष्टि की गति ही रुक जाएगी। तुम धैर्य क्यों नहीं धारण करतीं?"

"धैर्य कैसे करूं माता! वहां मेरे स्वामी विलाप कर रहे हैं। मेरे पुत्र समान देवर का जीवन संकट में है। काल शनैः शनैः चंद्रमा के साथ गति कर रहा है।"

"पुत्री! गति कोई भी करे, परंतु रास तो प्रभु के हाथ में है।"

त्रिजटा प्रभु के पावन चरित्रों से सीता को सांत्वना देने लगी थी।

53

संजीवनी बूटी का प्रभाव

"हां वैद्यराज, अब सूर्योदय में कुछ ही घड़ियां शेष रह गई हैं। पवनपुत्र के असीम साहस ने असाध्य को भी साध्य कर दिया है। अब आप बिना विलंब किए अनुज लक्ष्मण को इस मूर्च्छा से बाहर लाएं जिससे हमारे संतप्त हृदय शोकरहित हों।" राम ने विनम्रता से कहा।

"जो आज्ञा प्रभो!" सुषेण वैद्य ने कहा और पर्वत खंड के पास जाकर संजीवनी बूटी की पहचान की–उसकी पत्तियां तोड़कर उनका रस निकाला और उस रस की कुछ बूंदें मूर्च्छित लक्ष्मण के मुख में डाल दीं।

"प्रभु, अभी कुछ ही देर में संजीवनी बूटी अपना प्रभाव दिखाना आरंभ कर देगी और लखनजी सचेत हो जाएंगे।"

जिस प्रकार पपीहा स्वाति नक्षत्र की बूंद की प्रतीक्षा में व्याकुल रहता है और उपलब्ध होने पर भी अन्य जल को ग्रहण नहीं करता, वैसी ही प्रतीक्षा भरत की भी थी। वे श्रीराम की चरण-पादुकाएं लेकर जब से अयोध्या लौटे थे, तब से ही वनवासी जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने श्रीराम की चरण-पादुकाएं अयोध्या के सिंहासन पर रख दीं और स्वयं नगर के बाहर नंदीग्राम में कुटी बनाकर रहने लगे थे। सभी राजसी सुखों को त्यागकर भरत साधु जीवन व्यतीत कर रहे थे। जिस

प्रकार वन में उनके पूज्य राम-लक्ष्मण और माता जानकी जीवन व्यतीत कर रहे थे, वैसा ही भरत ने अपने लिए भी चुना था। प्रतीक रूप में वे अयोध्या के राजा थे, परंतु वे स्वयं को केवल श्रीराम का सेवक और उनके द्वारा नियुक्त अयोध्या का प्रहरी मानते थे।

नंदीग्राम की उनकी कुटिया आश्रम की भांति थी, जहां दिन-भर साधुजन और नगरवासी आते थे। रामकथा का श्रवण करना ही उनका ध्येय था। भरत की रामनिष्ठा अद्वितीय थी, संभवतः इसीलिए जगत में आज भी भरत जैसा भाई पाने की कामना की जाती है। न्याय, नीति व धर्म के साथ वे राज्य का संचालन भी करते थे और अपने साधु-जीवन को भी जीते थे।

भरत बड़ी व्याकुलता से एक-एक दिन गिनते थे। चौदह वर्ष होने ही वाले थे। उन्हें एक बात बहुत व्यथित करती थी कि इस अवधि में प्रयास करने पर भी चित्रकूट से आगे का कोई समाचार उन्हें नहीं मिल सका था। संभवतः श्रीराम की यही इच्छा थी।

भरत की दिनचर्या बड़ी कठोर थी। निद्रा उन्होंने त्याग दी थी। दिन-भर राजकार्य, मंत्रियों के परामर्श, गुरु वशिष्ठ से परामर्श, साधु-सत्संग और नगरवासियों से मिलने-जुलने में ही व्यतीत हो जाता था, किंतु रात्रि में वे वीतासन मुद्रा में बैठे प्रभु का ध्यान करते रहते। भरत का त्याग श्रेष्ठतम था, क्योंकि उन्होंने सब कुछ प्राप्त करके भी भ्रातृस्नेह में त्याग दिया था।

दिन, तिथि, गृह, नक्षत्र की गणना करने के बाद गुरु वशिष्ठ ने बताया था कि अब प्रभु श्रीराम के वनवास की अवधि शीघ्र ही समाप्त होने वाली और अयोध्या पुनः उनके दर्शन का सुख प्राप्त करने वाली थी। कुछ दिन की यह प्रतीक्षा कुछ अधिक ही व्याकुल कर रही थी। अब हृदय उनका मुख देखकर ही तृप्त होगा।

रात्रि का अंतिम प्रहर चल रहा था। कुछ ही मुहूर्त के बाद सूर्योदय हो जाएगा। भरत वीतासन पर बैठे श्रीराम का सुमिरन कर रहे थे। आकाश में गहरे बादल छाए हुए थे। आज प्रकृति में भी उदासी थी, तभी भरत की दृष्टि आकाश में चमकते हुए एक पिंड पर पड़ी, जो तीव्र वेग से उड़ा जा रहा था। वह विशाल उल्कापिंड जैसा था। भरत ने सोचा कि संभवतः वह कोई राक्षस था, जो उस दहकते पिंड को ला रहा था। वह अयोध्या के ऊपर से गुजर रहा था तो आशंका थी कि वह इस अग्निपिंड को नगर के ऊपर ही न फेंक दे।

भरत ने अपना धनुष उठाया और एक प्रचंड बाण चला दिया—अचूक लक्ष्यबेधन था जिसने लक्ष्य बेध दिया और परिणाम में 'हे राम' का आर्त स्वर गूंजा और वह जलता पिंड नीचे आने लगा।

"ओह, यह तो मैंने किसी रामभक्त परा बाण चला दिया!" भरत विचलित होकर उस ओर दौड़े–"मुझसे बड़ा अपराध हुआ।"

भरत वहां पहुंचे, जहां विशाल झिलमिलाते पर्वत खंड के समीप कराहते हुए विशाल वानर को देखा।

भरत ने अपराधी भाव से हाथ जोड़कर क्षमा-याचना की।

"हे महाबली, मुझे क्षमा करें। मैंने अनजाने में आप पर बाण चला दिया। इस रात्रि में एक जलते पर्वत को ले जाते देखकर मैंने आपको कोई राक्षस समझा, क्योंकि ऐसे रात्रि में कोई विपत्ति होने पर ही सद्जन यात्रा करते हैं।" भरत ने कहा–"कपिराज! मैं, भरत हूं। अयोध्या का राजा, प्रभु श्रीराम का अनुज व सेवक भरत! आप अपना परिचय देकर मुझे कृतार्थ करें।"

"हे रघुकुलभूषण, मैं हनुमान हूं। वानरराज सुग्रीव का सेवक और प्रभु श्रीराम के चरणों का दास हूं। इन दिनों प्रभु श्रीराम का दक्षिण दिशा में स्थित लंकाद्वीप के राक्षसराज दशानन से युद्ध चल रहा है। कल युद्ध में दशानन के पुत्र मेघनाद ने प्रिय लक्ष्मण पर वीरघातिनी शक्ति का प्रहार करके उन्हें मूर्च्छित कर दिया था और प्रभु श्रीराम की आज्ञा से मैं हिमालय से वह औषधि लेकर जा रहा था जिससे लक्ष्मणजी के प्राण बचाए जा सकें।"

"मेरे...मेरे प्रभु...मेरे प्रभु इतने संकट में हैं।" भरत रो पड़े–"हे पवनपुत्र! मुझे संक्षेप में बताइए कि प्रभु श्रीराम किस प्रकार दक्षिण पहुंचे?"

हनुमान ने संक्षेप में सारा वर्णन कह सुनाया तो भरत विलाप कर उठे।

"हाय रघुकूलभूषण, जो जगत का संताप हरने वाले हैं, आज स्वयं कितना संताप भोग रहे हैं! जो माता जानकी, जगत्जननी हैं, आज वे घोर कष्ट सह रही हैं। शेषावतार भैया लक्ष्मण आज मृत्यु के वश में हैं। हे माता कैकेयी, तेरे एक दोष ने इस कुल को कष्टों के सागर में धकेल दिया। हे हनुमत्, मैं अधम तो ऐसे ही उन श्रीराम की प्रीति का प्रदर्शन करता रहा और उनके किसी भी कार्य में सहायक न बन सका। मेरा कैसे उद्धार होगा? क्या प्रभु मुझे कभी क्षमा करेंगे? क्या मैं उनके स्नेह का पात्र बन सकूंगा? कदापि नहीं। मैं संसार का सबसे बड़ा अधम हूं।"

"हे भरत! मैं आपको शत-शत नमन करता हूं, क्योंकि आपसे श्रेष्ठ तो इस संसार में कोई अन्य नहीं है। जिन्हें समस्त चराचर भजता है, उन प्रभु श्रीराम की जिह्वा पर सदा आपकी ही चर्चा रहती है। हे अनन्य रामस्नेही, मैं आपके दर्शन पाने हेतु बड़ा ही व्याकुल था और प्रभु-इच्छा से मेरी कामना पूरी हुई। मुझे समय का बड़ा अभाव है प्रिय भरत, अत: अब मुझे जाने की आज्ञा दें।"

"हे हनुमत्! मेरे कारण आप घायल हो गए हैं और यात्रा बहुत कठिन है। कृपया आप मेरे बाण पर बैठिए, जो आपको शीघ्र ही वहां पहुंचा देगा। प्रभु से कहना कि भरत को आज्ञा प्रेषित करें, जिससे अयोध्या की सेना शत्रुघ्न के नेतृत्व में उनकी सेवा में भेजी जा सके।" भरत ने हाथ जोड़कर कहा।

"हे भरतजी, क्या आपको प्रभु के बाणों पर संदेह है, जो सैन्यबल भेजने की बात कर रहे हैं? क्या हम वानर-भालुओं की सेवकाई में पराक्रम का अभाव है? हे रामानुज, आप निश्चिंत होकर प्रभु के नाम का स्मरण करें। राक्षसों के नाश हेतु किया जा रहा यह समरयज्ञ अब कुछ ही दिन चलेगा और प्रभु श्रीराम इस संसार को निर्भय करके माता जानकी सहित अयोध्या लौटेंगे।"

भरत ने हनुमान को हृदय से लगाया और अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें विदा किया।

हनुमान ने अपनी गति तीव्र कर दी थी, क्योंकि समय अपनी गति से व्यतीत हो रहा था। भोर होने में कुछ ही समय शेष था। वे अपनी पीड़ा भूल गए थे और राम-राम रटते हुए वायु वेग से उड़े चले जा रहे थे। नगर, गांव, नदी, वन आदि पार करते हुए वे जब समुद्र के किनारे आ गए तो कुछ ही घड़ी शेष थीं। हनुमान ने अपनी समस्त शक्ति समेटकर उड़ान भरी। पिछली बार उन्होंने जितने समय में समुद्र लांघा था, उतने से चौथाई समय में उन्होंने यह कार्य कर लिया। रामदल में अभी श्रीराम के विलाप का स्वर तेज हो गया था, क्योंकि अंतिम घड़ियां चल रही थीं, तब हनुमान ने उच्च स्वर में 'जय श्रीराम' का घोष किया।

हनुमान का उद्घोष सुनकर निःशब्द मौन बैठी वानर सेना ने ऐसा जयघोष किया कि लंका में सोए नर-नारी जाग गए।

राम का हर्षातिरेक में गला रुंध गया था। शब्द मौन हो गए और रोम-रोम पुलकित हो गया। हनुमान ने जब पर्वत खंड को नीचे रखकर प्रभु के चरणों में शीश झुकाया तो धैर्य का बांध टूट गया था। राम ने हनुमान को हृदय से लगा लिया।

"हे हनुमत्! आज तुमने फिर मुझे अपना ऋणी बना दिया। हे तात, यह राम तुम्हारे बिना अधूरा है।" राम हर्षित स्वर में बोले-"आज संसार देखेगा कि मन में लगन हो तो कोई भी कार्य असंभव नहीं है। मानव प्रकृति ही ऐसी है कि तनिक-सा अवरोध आते ही विचलन बढ़ जाता है। आज तुमने जगत को दिखा दिया कि संकल्प के धनी बाधाओं को कैसे परास्त करते हैं। हे वायुपुत्र! जब तक इस सृष्टि में राम का नाम रहेगा, तब तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी।"

"प्रभो, इस पर्वत खंड पर सभी पौधे झिलमिला रहे थे, अतः मैं उस बूटी को पहचान नहीं पाया। मैं इस संपूर्ण पर्वत खंड को ही उखाड़ लाया हूं। अब

आप वैद्यराज को आज्ञा दें कि वे उस औषधि को पहचानकर शीघ्र उपचार करें।" हनुमान ने कहा।

"हां वैद्यराज, अब सूर्योदय में कुछ ही घड़ियां शेष रह गई हैं। पवनपुत्र के असीम साहस ने असाध्य को भी साध्य कर दिया है। अब आप बिना विलंब किए अनुज लक्ष्मण को इस मूर्च्छा से बाहर लाएं जिससे हमारे संतप्त हृदय शोकरहित हों।" राम ने विनम्रता से कहा।

"जो आज्ञा प्रभो!" सुषेण वैद्य ने कहा और पर्वत खंड के पास जाकर संजीवनी बूटी की पहचान की–उसकी पत्तियां तोड़कर उनका रस निकाला और उस रस की कुछ बूंदें मूर्च्छित लक्ष्मण के मुख में डाल दीं।

"प्रभु, अभी कुछ ही देर में संजीवनी बूटी अपना प्रभाव दिखाना आरंभ कर देगी और लखनजी सचेत हो जाएंगे।" वैद्य ने कहा–"हे प्रभो, अब मुझे भी मार्ग दिखाएं। यदि अब मैं लंका में जाता हूं तो क्रुद्ध स्वामी के हाथों मृत्युदंड पाता हूं और नहीं जाता हूं तो मेरा परिवार चिंतित होगा। मुझे मृत्यु का भय नहीं है नाथ! यह तो शाश्वत सत्य है, परंतु अपने परिवार की चिंता मुझे खाए जा रही है।"

"वैद्यराज, आप निश्चिंत होकर अपने घर जाएं। हे हनुमान! तुम इन्हें कुशलतापूर्वक इनके निवास पर छोड़कर आओ।" राम ने सुषेण को निर्भय करते हुए कहा–"दशानन के क्रोध का समय अब गया। अब उसे क्रोध नहीं, पश्चाताप होगा। यदि मेरे कहे पर विश्वास करते हो तो निश्चिंत रहो कि तुमसे कोई प्रश्न नहीं किया जाएगा।"

"प्रभु, आपने कह दिया, मैं निश्चिंत हो गया।" सुषेण प्रसन्नता से बोला–"जिसे आपने निर्भय कर दिया, उसे फिर किसका भय हो सकता है?"

उसी समय लक्ष्मण ने कराहकर नेत्र खोले तो वानरदल में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सब एक-दूसरे के गले मिलकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे।

"अनुज!" राम ने भर्राए कंठ से कहा–"तुम सचेत हो गए तो मेरे प्राण लौट आए। आज राम ने एक ऐसा भयानक दु:स्वप्न देख लिया जिसकी स्मृति सदैव भयभीत करती रहेगी। अब बैठे जाओ अनुज! अपने प्राणरक्षकों महाराज विभीषण, वैद्यराज सुषेण, पवनपुत्र हनुमान और अन्य सभी का धन्यवाद करो, जो तुम्हारे लिए चिंतित थे।"

लक्ष्मण ने कृतज्ञता से सबके सम्मुख हाथ जोड़े और अपने भाई के हृदय से लग गए।

"अनुज! तुमने तो हम सबको व्यथित ही कर दिया।"

"मुझे क्षमा करें रघुराई!" लक्ष्मण के नेत्र भर आए—"मेरे कारण आप सभी को बहुत दुख उठाना पड़ा। हे नाथ! इतनी कृपा अवश्य करें कि कल के रण में मुझे मेघनाद से युद्ध करने की आज्ञा दें।"

"अवश्य अनुज! अपना अधूरा कार्य तुम ही पूरा करोगे।" राम ने सांत्वना देते हुए कहा।

एक बार फिर 'जय श्रीराम' के जयघोष से लंकाद्वीप का कोना-कोना कंपायमान हो उठा। हनुमान ने सुषेण वैद्य को उनके घर पहुंचा दिया।

54

मेघनाद की मृत्यु

मेघनाद ने चक्रीय बाण का संधान किया, जो असंख्य होकर चक्र की भांति वानरसेना को काटने लगा। लक्ष्मण की ओर से भी तीव्र गति से कई चक्र आए तो उन्होंने चुंबकास्त्र का संधान किया जिसने सभी चक्रों को अपनी ओर खींच लिया। उस विशाल चक्र पिंड को लक्ष्मण ने एक बाण से मेघनाद पर आरोपित कर दिया तो उसका रथ, घोड़े और सारथी मारा गया। मेघनाद भी भूमि पर आ गया। उसने क्षण-भर नेत्र बंद किए, संभवत: वह किसी दिव्यास्त्र का आह्वान कर रहा था।

लक्ष्मण ने अपने तूणीर से अर्द्धचंद्राकार बाण निकाला और धनुष पर चढ़ाकर मेघनाद को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह प्रलयंकारी बाण मेघनाद की गरदन पर जाकर लगा और गरदन को साथ लेकर लंका की ओर उड़ता चला गया। मेघनाद का धड़ कुछ क्षण तो इधर-उधर भागा फिरा और फिर गिर पड़ा।

दशानन सूर्योदय से कुछ क्षण पहले ही लंका में लौटा था तो अंत:पुर में अपने कक्ष में उसने मंदोदरी को जागते हुए अपनी प्रतीक्षा करते पाया। वह ठिठक गया।

"मयनंदिनी! प्रतीत होता है कि तुम रात-भर सोई ही नहीं।" वह तनिक क्रोध से बोला।

"नाथ, राम के बाण द्वारा भेजे गए ताम्रपत्र में जो संदेश था, वह हमारे परिवार के लिए सामूहिक था, न केवल आपके लिए। अब निद्रा कहां नाथ? अब शांति कहां? आप ही देख लीजिए कि भव्य उत्सव में भी आपका मन नहीं लगा और आप कहां गए, यह भी किसी को नहीं पता था। यह शांति भंग होने के ही संकेत हैं स्वामी!" मंदोदरी ने विकल स्वर में कहा।

"मंदोदरे! शत्रु द्वार पर खड़ा है, ऐसे में व्यस्तता होना स्वाभाविक ही है। शत्रु को किस विधि से पीड़ा दी जाए, यह सोचना मेरा काम है।"

"शत्रु को पीड़ा रणभूमि में दी जाए तो यश मिलता है और रणभूमि से बाहर युद्ध समाप्त होने के पश्चात् छल भरे प्रयास केवल कलंकित ही करते हैं।"

"मंदोदरे!" दशानन क्रोध से गरज उठा।

"मैं स्त्री हूं। भय मेरा स्वभाव है। अपने सुहाग, पुत्र और पौत्रों की चिंता में कायरता स्वाभाविक है। मेरी कायरता मुझे शोभती है लंकेश! परंतु आपकी कायरता को क्या कहूं? जब रणभूमि में इच्छित सफलता न मिली तो कपट करने निकल पड़े।"

"कपट उसने किया था–उस राम ने। उसने हमारे वैद्य का अपहरण किया और उसे डरा-धमकाकर उससे अपने अर्द्धमृत भाई के लिए औषधि जान ली और उसे जीवित कर लिया। यह कहां का धर्म है?"

"अहा, फिर तो आपका वैद्य कोई वैद्य नहीं, वरन् जीवनदाता है, फिर आप क्यों भयभीत हो रहे हैं। अब तो उसने सिद्ध भी कर दिया कि वह मृतकों को भी जीवित करने की औषधि जानता है। उसे अब अपना सैन्य-संरक्षक घोषित कर दीजिए। युद्ध में जितने भी योद्धा मारे जाएं, उन्हें रात में वह जीवित कर दिया करेगा–सैन्य-संख्या कभी कम न होगी।"

दशानन खिसियाकर दांत पीसने लगा था।

"स्वामी, हिमालय इतनी दूर है कि कोई साधारण जीव यहां से चले तो कई वर्षों में पहुंच पाए और वह हनुमान वहां पहुंचकर लौट भी आया। क्या वह साधारण है। उपाय कोई भी समय पर सूझे और सफल भी हो जाए तो उसे सुझाने वाला, उस पर कार्य करने वाला और उसे पूरा करने वाला–इनमें से कोई भी किंचित भी साधारण नहीं होता। लक्ष्मण का पुनर्जीवन इन्हीं असाधारण लोगों के प्रयासों का परिणाम है। आपका वैद्य तो निमित्त-भर बना है और वह भी इसलिए कि राम संसार को यह संदेश देना चाहते हैं कि वैद्य का कोई शत्रु नहीं होता, उसे सभी रोगियों को समान समझना चाहिए।"

"उसे हमसे आज्ञा लेनी चाहिए थी–वह हमारी प्रजा है।"

"ज्ञान और कला सांसारिक धरोहर हैं। इन्हें कोई अपने स्वामित्व में नहीं रख सकता। जो ऐसा करता है, वह अपयश ही पाता है। अब क्या आप सुषेण वैद्य को इसलिए दंडित करेंगे? बहुत सुंदर, यह अपयश भी कमा ही लीजिए।"

"मैं ऐसे तुच्छ कार्य नहीं करता। आज सुषेण ने उस छोटे तपस्वी को बचा लिया, परंतु कल कौन बचाएगा? मेरा पुत्र मेघनाद कल फिर उसे मार गिराएगा।"

"जो मृत्यु के मुख से वापस आ गया। जिसने वीरघातिनी के प्रभाव को भी शून्य कर दिया, वह भी साधारण मानव नहीं है नाथ!"

तभी 'जय श्रीराम' का ऐसा भीषण जयनाद गूंजा कि महल प्रकंपित हो गया। एक बार तो दशानन भी हड़बड़ा गया। वह समझ गया कि लक्ष्मण जीवित हो गया है। उसने स्वयं अपनी आंखों से हनुमान को वह पर्वत रामदल में उतारते देखा था, परंतु कुछ कर नहीं सकता था। जो प्रयास किया, वह असफल हो गया और बुरा यह हुआ कि उसके विषय में हनुमान और मंदोदरी जान गए थे।

"नाथ! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है।" मंदोदरी ने दशानन के चरण पकड़ लिए–"अभी भी समय है, उनसे संधि कर लीजिए। यह जयघोष नहीं है, यह लंका के समूल विनाश की हुंकार है। मेरे पुत्र-पौत्रों को अभय करो स्वामी!"

दशानन ने उसे झटककर दूर फेंक दिया और क्रोध से फुंकार उठा।

"आज के बाद यदि तूने संधि की बात की तो मुझसे बुरा कोई न होगा मंदोदरी! मेरी आधी सेना नष्ट हो गई और तू संधि की बात करती है। मैंने संधि का विचार तक नहीं किया और तू मुझे विवश कर रही है। मैं तेरे पुत्र-पौत्रों के आश्रय यह युद्ध नहीं लड़ रहा हूं। इसके लिए केवल मेरा अपना बाहुबल ही पर्याप्त है। कल युद्ध में तू अपने पुत्र-पौत्रों को जाने से रोक लेना, मैं अकेला ही शत्रु का विनाश कर दूंगा।"

मंदोदरी ने अब कुछ भी कहना उचित न समझा। काल ने कसकर उसके पति की शिखा पकड़ ली थी और अब कुछ नहीं हो सकता था! वह कैसे पुत्र-पौत्रों को युद्ध में जाने से रोक सकती थी!

मंदोदरी की बात कौन मानता! पितृसत्ता में नारी का स्थान ही क्या है? वह परामर्श नहीं कर सकती! वह अपने हृदय की पीड़ा व्यक्त नहीं कर सकती! उस पर भी हठी पिता के पितृभक्त पुत्रों से...जो युद्ध का अवसर मिलने पर हर्षित होते थे, किलकारियां मारते थे। दिन-रात शस्त्रों का अभ्यास करने लगते थे। रक्त और मांस पेट-भर मिलेगा, इस आशा से तो अत्यंत हिंसक हो जाते थे।

मंदोदरी ने यद्यपि कभी अपने पति को हिंसक होते नहीं देखा था। वह क्रोधी था, अहंकारी था, युद्ध में निष्ठुर योद्धा भी था, परंतु कभी उसने मांस-रक्त का

भक्षण न किया था। उसके पुत्र माता-पिता के सामने ही मांस-भक्षण करते थे तो उसने कई बार दशानन के ललाट पर चिंता की रेखाएं उभरती देखी थीं।

"स्वामी! आप शिवव्रती हैं और आपने मांसाहार न करने का संकल्प लिया है।" मंदोदरी ने एक बार प्रश्न किया था—"आपके पुत्र जब ऐसा करते हैं तो आपको बड़ी अरुचि होती है। जिनका भोजन ही मांस-रक्त है, वे तो खाएंगे ही।"

"मंदोदरे, पूर्व जन्मों के पापकर्मों से जीव को निकृष्ट योनियां मिलती हैं। बुद्धि, वाणी और विवेक वाली योनि मिलना बड़ा सौभाग्य है, क्योंकि जीव इसी में अपना उद्धार कर निकृष्ट योनियों से मुक्त होता है।" दशानन ने चिंतित होते हुए कहा था—"मुझे यही चिंता है कि इन सबका उद्धार कैसे होगा?"

मंदोदरी आज तक अपने पति की इस चिंता का आशय न समझ पाई थी।

सूर्योदय हो गया था। दशानन निश्चिंत होकर युद्ध की तैयारी करने चला। पहले वह मेघनाद को रात्रि के घटनाक्रम से अवगत करा देना चाहता था तो सीधा उसके महल पर पहुंचा। पुत्रवधु सुलोचना ने उसके चरण स्पर्श किए।

"सदा सौभाग्यवती रहो! अखंड सुहाग रहे।" दशानन ने आशीर्वाद दिया। मेघनाद ने भी आकर चरण छुए और आशीर्वाद पाया। उसकी आंखें रक्तिम वर्ण हो रही थीं। दशानन जानता था कि विजयमद में चूर उसके पुत्र ने सदैव की भांति मदिरापान की सीमा का उल्लंघन कर दिया होगा। उसके सभी पुत्र ऐसे ही थे, पौत्र भी!

"तातश्री! आपका मुख तो प्रसन्नता से दमकना चाहिए था। आपके पुत्र ने आधा युद्ध तो कल ही जीत लिया था और शेष आधा आज जीत लेगा।" मेघनाद प्रसन्नता से बोला।

"पुत्र! शत्रु को असहाय, निर्बल और बुद्धिहीन कभी न समझना चाहिए। तुमने कल एक भूल कर दी। तुम्हें लक्ष्मण का मूर्च्छित शरीर उठाकर यहां ले आना चाहिए था जिससे उसे कोई उपचार ही न मिलता। आज वह पुनः युद्ध में तुम्हारे सामने होगा।"

"असंभव! यह कैसे हो सकता है? अविश्वसनीय! वीरघातिनी के प्रहार से जीवित बचना असंभव है। उसका तो कोई उपचार ही नहीं है पिताश्री!" मेघनाद हतप्रभ रह गया।

दशानन ने उसे संक्षिप्त में सारी बात बताई।

"संसार में कुछ भी असंभव नहीं है पुत्र! राम के लिए तो कुछ भी नहीं। त्रुटि हमारी है, जो हमने उनकी शक्ति और साधना का आकलन अत्यंत न्यून

रूप में किया। अब हमें ऐसी कोई त्रुटि नहीं करनी है—यही कहने मैं तुम्हारे पास आया था।"

"पिताश्री! काका विभीषण और वैद्य सुषेण राजद्रोही निकले। आज मैं काका को तो रणभूमि में सदैव के लिए शीतल कर दूंगा और उस वैद्य को...!"

"उससे क्या कहना पुत्र! संसार हंसी करेगा। नृत्य-गान आदि करने वाले तो कहीं भी अपनी जीविका अर्जित कर सकते हैं। इसी प्रकार वैद्य भी ऐसा ही कर सकते हैं। हमें इन व्यर्थ बातों में समय नहीं गंवाना है पुत्र! बड़े कार्यों में छोटे अवरोध किसी गिनती में नहीं आते हैं।"

"पिताश्री! आज आपका यह पुत्र ऐसा युद्ध करेगा, जो न देखा गया होगा और न ही सुना गया होगा।" मेघनाद अहंकार भरी वाणी में बोला—"आज युद्ध का निर्णय ही हो जाएगा। संसार देखेगा कि महापराक्रमी निशाचरों के देवता त्रैलोक्य विजेता सम्राट दशानन को युद्ध में उतरने की आवश्यकता भी नहीं हुई और विजयश्री प्राप्त हो गई।"

दशानन ने प्रफुल्लित हृदय से अपने पुत्र को हृदय से लगाया और वहां से चला गया। सुलोचना ने आशंकित दृष्टि से अपने पति की ओर देखा।

"इस प्रकार क्या देख रही है सुलोचने!" मेघनाद ने हंसकर पूछा—"सोच रही है कि मेरे हाथों से मारा गया शत्रु कैसे जीवित हो गया? आश्चर्य मुझे भी है, परंतु कई बार कुछ ढीठ लोग होते हैं, जो एक बार में प्राण नहीं त्यागते।"

"नाथ! आज मेरा मन विचलित हो रहा है।" सुलोचना बोली—"रात्रि में मैंने बड़ा बुरा स्वप्न देखा था। एक विशाल पंचमुखी नाग जैसे स्वयं शेषनाग हो, आपको अपने लपेटे में लिये हुए है और आप सहायता की पुकार कर रहे हैं। मैं उस नाग से विलाप करते हुए प्रार्थना कर रही हूं, परंतु वह घोर निष्ठुरता से आपको पीसे डाल रहा है। हे स्वामी! फिर उस नाग का मुख लक्ष्मण का मुख बन गया और मैं घबराकर जाग उठी।"

"सुलोचने! यदि घबराती नहीं तो स्वप्न को पूरा देख पाती। इससे आगे का स्वप्न मैंने देखा था।" मेघनाद ने कहा—"लक्ष्मण का मुख देखते ही मुझे अत्यंत क्रोध आ गया और मैंने अपनी दिव्य खड्ग से उसका शीश धड़ से अलग कर दिया और उस शीश को तेरे महल में फेंक दिया और तेरा सब संताप मिट गया। यह स्वप्न आज सत्य हो जाएगा। सुमुखे! वह लक्ष्मण रूपी नाग आज समाप्त हो जाएगा।"

सुलोचना कुछ न बोली केवल व्याकुल भाव से अपने पति को देखती रही, जिसके मस्तक पर आज उसे काल की छाया-सी मंडराती हुई प्रतीत हो रही थी।

"नाथ! आज...आज आप युद्ध में न...।"

"सुलोचने!" मेघनाद मेघ की भांति गरज उठा–"अपनी जिह्वा से ऐसे शब्द न निकाल, जो इस कुल की कीर्ति को कलंकित करें। युद्धविमुख होना तो हमें स्वप्न में भी नहीं आया। स्त्री स्वभाव से ही कायर होती है, परंतु आश्चर्य है कि हमारी स्त्रियां भी ऐसी हैं। हमने देवलोक, यक्षलोक, गंधर्वलोक में जाकर युद्ध किए हैं, तब तो किसी ने हमें नहीं रोका और आज द्वार पर रेत में पड़े शत्रु से युद्ध को रोका जा रहा है। यह शत्रु के प्रति दया ही होगी तुम्हारी! मेरे अस्त्र-शस्त्र तैयार कर।"

सुलोचना कुछ न बोल सकी।

मेघनाद स्नानादि करने लगा। जब वह पूरी तरह तैयार होकर बाहर आया तो नित्य की भांति आज भी सुलोचना आरती का थाल सजाए खड़ी थी, परंतु उसकी आंखों में व्याकुलता थी।

"आज तेरा मन ठीक नहीं है सुलोचने! आज तू दासियों के साथ अशोक वाटिका का भ्रमण कर आना और सीता से मिलना। तेरा मन हल्का हो जाएगा।"

सुलोचना केवल मेघनाद की ओर देखती रही। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में अश्रु छलक उठे।

मेघनाद ने अधिक देर उसके सामने ठहरना उचित न समझा और वहां से चल पड़ा। वह अपनी सेना के पास आया, जो रणभूमि में उतरने के लिए तैयार थी। अपने रथ पर सवार होकर वह उत्साह में सेना सहित चला तो युद्ध के नगाड़े बज उठे। जाने कहां से एक उल्लू आकर उनका मार्ग काट गया। उल्लू को राक्षस अपने लिए शुभ मानते थे, अतः मेघनाद हर्षित हो गया।

"विजय के संकेत मिलने लगे हैं राक्षसवीरो! आज वानरों के शवों से भूमि पाट दो और मैं अपने प्रलयंकारी बाणों से उनके स्वामियों को यमराज के पास भेजता हूं।"

राक्षस सेना उत्साह से भर गई थी और भयानक गर्जना के साथ नगर के परकोटे पर चढ़कर हुंकार भरने लगी। मेघनाद अपने रथ पर खड़ा शत्रुदल का निरीक्षण करने लगा था। उसे लक्ष्मण की खोज थी। लक्ष्मण उसे दिखाई दिए, जो कालसमान नेत्रों से उसे ही एकटक घूर रहे थे। उसने सारथी को रथ उधर ही ले चलने का आदेश दिया। दोनों आमने-सामने आ गए।

"छोटे तपस्वी, बुद्धिमान उस मार्ग पर पुनः नहीं लौटते जिस पर एक बार प्राण जाते-जाते बचे हों। भाग्य ने जीवित रहने का अवसर दिया है तो इसे व्यर्थ क्यों गंवाते हो। जाओ, मैं तुम्हें भाग्य से मिले जीवन को जीने का अवसर देता हूं।" मेघनाद ने अभिमान भरे स्वर में कहा।

"शठ मेघनाद! जब मृत्यु ने भी मुझे अस्वीकार कर दिया तो सोच कि अब तेरा क्या होगा! कल तूने अवश्य कुछ विजयसुख प्राप्त किया, परंतु आज इस संसार को, अपने नगर को, बंधु-बांधवों को अंतिम बार देख ले।" लक्ष्मण दृढ़ स्वर में बोले–"आज के बाद संसार में तेरा नाम ही रह जाएगा।"

मेघनाद ने क्रोध में भरकर धनुष चढ़ाया और अपनी सेना को आक्रमण का आदेश देकर लक्ष्मण पर बाणवर्षा आरंभ कर दी, परंतु आज लक्ष्मण का कौशल चरम पर था। कल के पराभव का प्रतिशोध पराक्रम बन गया था। मेघनाद के दिव्यास्त्र अब लक्ष्मण के लिए साधारण सिद्ध हो रहे थे। वह जिन्हें अमोघ समझ रहा था, वे शक्तियां व्यर्थ सिद्ध हो रही थीं।

लक्ष्मण ने मेघनाद को इतना व्याकुल कर दिया कि वह मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उसके अनेक भाई क्रोध में भरकर लक्ष्मण के सामने आ डटे और उन्हें चारों ओर से घेर लिया। साक्षात् काल बने लक्ष्मण ने कुछ ही देर में उन सबको ढेर कर दिया तो राक्षससेना में भगदड़ मच गई।

मेघनाद पुनः अत्यंत क्रोध के साथ लक्ष्मण के सामने आ गया।

मेघनाद ने चक्रीय बाण का संधान किया, जो असंख्य होकर चक्र की भांति वानरसेना को काटने लगा। लक्ष्मण की ओर से भी तीव्र गति से कई चक्र आए तो उन्होंने चुंबकास्त्र का संधान किया जिसने सभी चक्रों को अपनी ओर खींच लिया। उस विशाल चक्र पिंड को लक्ष्मण ने एक बाण से मेघनाद पर आरोपित कर दिया तो उसका रथ, घोड़े और सारथी मारा गया। मेघनाद भी भूमि पर आ गया। उसने क्षण-भर नेत्र बंद किए, संभवतः वह किसी दिव्यास्त्र का आह्वान कर रहा था।

लक्ष्मण ने अपने तूणीर से अर्द्धचंद्राकार बाण निकाला और धनुष पर चढ़ाकर मेघनाद को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह प्रलयंकारी बाण मेघनाद की गरदन पर जाकर लगा और गरदन को साथ लेकर लंका की ओर उड़ता चला गया। मेघनाद का धड़ कुछ क्षण तो इधर-उधर भागा फिरा और फिर गिर पड़ा। राक्षसों में भगदड़ मच गई और वानरों ने 'जय श्रीराम' का जयघोष करके लक्ष्मण को कंधों पर उठा लिया।

मेघनाद की मृत्यु का समाचार क्षण-भर में चारों ओर फैल गया।

सुलोचना का चित्त अस्थिर था। वह व्याकुल बैठी थी। जब उसके पति का कटा शीश उसके समक्ष आकर गिरा तो वह पछाड़ खाकर विलाप कर उठी।

यह दशानन के अहंकार की पराकाष्ठा ही थी, जो मेघनाद सहित अनेक पुत्रों की युद्ध में मृत्यु हो जाने पर भी वह विचलित नहीं हुआ था और उन्हें शूरवीर,

पराक्रमी और अजेय आदि विशेषणों से संबोधित करके उनका अंतिम संस्कार कर रहा था। उसका हृदय पाषाण ही था।

चिता पर अपने पति मेघनाद का शीश गोद में लिये और नेत्र बंद किए बैठी पुत्रवधु सुलोचना को देखकर भी दशानन को पीड़ा न हो रही थी। वह अपने पति के साथ सती हो रही थी।

चारों ओर विलाप का करुण स्वर गूंज रहा था।

मंदोदरी बार-बार मूर्च्छित होती और बार-बार चैतन्य होकर करुण विलाप करने लगती। नगर-भर में शोक व्याप्त था। स्त्रियां जो विधवा हो गई थीं, दशानन को कोस रही थीं।

55

कुंभकर्ण का अंत

कुंभकर्ण का वह विकराल रूप देखकर आकाश में विराजते देवता भी घबरा गए। वे सोच रहे थे कि प्रभु उससे खिलवाड़ क्यों कर रहे हैं? बाणों से उसकी देह तो बिंध गई है, परंतु वह उनसे मरेगा तो नहीं। असंख्य बाणों से उसका शरीर ढक गया था, फिर भी उसकी आक्रामकता में कमी न आई थी। उसने दोनों बांहें बढ़ाकर राम को पकड़ना चाहा तो राम ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसकी दोनों भुजाएं कंधों से अलग कर दीं। रक्त की धाराएं फूट पड़ीं। अब वह पैरों से विध्वंस कर रहा था तो राम ने एक अर्द्धचंद्राकार बाण चलाकर उसके शीश को ही धड़ से अलग कर दिया। कुंभकर्ण का शीशविहीन धड़ काफी दूर तक दौड़ता चला गया और अंततः पर्वत की भांति विशालकाय धड़ पृथ्वी पर गिरकर रणभूमि को प्रकंपित कर गया।

एक दशानन ही था, जिसका हृदय धूं-धूं करके जलती चिताओं को देखकर भी मलिन नहीं हुआ था। सुलोचना जीवित ही भस्म होकर अपना पतिव्रत धर्म निभा गई। मंदोदरी तो जैसे अर्द्धविक्षिप्त ही हो गई थी और जाने क्या-क्या कहे जा रही थी।

दशानन इन सबसे निस्पृह था। उसके मन में कुछ और ही विचार चल रहे थे। वहां से निबटकर वह सीधा गहन निद्रा में सोए अपने अति

बलशाली भाई कुंभकर्ण के पास पहुंचा। कुंभकर्ण वरदान के प्रभाव से सोया पड़ा था और अभी उसके जागने में महीने-भर का समय था। इतना समय दशानन के पास कहां था! शत्रु ने तीन दिन के युद्ध में ही उसकी शक्ति क्षीण कर दी थी। अनेक पुत्र वीरगति को प्राप्त हुए जिनमें मेघनाद की मृत्यु उसकी सबसे बड़ी क्षति थी।

दशानन ने कुंभकर्ण को झकझोरा, परंतु उस पर कोई प्रभाव न हुआ।

"अनुचरो! अनुज कुंभकर्ण को जिस उपाय से हो सके, जगाओ।" दशानन ने आदेश दिया–"कल के युद्ध में इसकी भूख और पराक्रम शत्रु का समूल विनाश कर देंगे। अपने कुल की इतनी हानि होने पर यह काल समान ही हो जाएगा। इसके वज्र जैसे विशाल शरीर पर कोई अस्त्र-शस्त्र क्या प्रभाव डालेगा! इसके पैरों तले ही असंख्य वानर-भालू दबकर मर जाएंगे।"

दशानन का आदेश सुनकर अनुचर कुंभकर्ण को जगाने के उपाय करने लगे। ढोल-नगाड़े उसके कानों के पास बजाए जाने लगे, परंतु कुछ न हुआ। अंततः जब उसके शरीर पर आग जलाई गई, तब जाकर वह कुनमुनाया।

"अग्नि और तीव्र करो।" दशानन उत्साह से बोला–"यही श्रेष्ठ उपाय है। अग्नि का ताप बढ़ाओ।"

जब अग्निताप अत्यधिक हो गया तो कुंभकर्ण भयंकर चीत्कार करता हुआ उठ खड़ा हुआ और आग के ढेर को इधर-उधर फेंक दिया उसकी चपेट में आकर कई राक्षस झुलस गए। कुंभकर्ण को जाग्रत देखकर दशानन अति प्रसन्न हुआ। ज्येष्ठ भ्राता दशानन को सामने देखकर कुंभकर्ण शांत हो गया। उसने शीश झुकाकर प्रणाम किया।

"दीर्घायु भव! प्रिय अनुज, क्षमा करना, जो तुम्हें समय से पूर्व जगाना पड़ा।" दशानन गंभीरता से बोला–"इस समय परिस्थितियां ही ऐसी थीं। हमारे कुल की प्रतिष्ठा दांव पर लग गई है। हमारी बहन शूर्पणखा के नाक-कान धोखे से काटकर हमारे कुल को ललकारा गया है। हमारे बल को चुनौती दी गई और हमें प्रतिशोध लेने के लिए उत्तेजित कर दिया गया।"

"किसने किया ऐसा दुस्साहस?" कुंभकर्ण का मुख क्रोध के कारण रक्तिम हो गया–"किसकी मृत्यु ने उसे पुकारा है और क्या अभी वह जीवित भी है? आपके और अनेक योद्धाओं के होते हुए भी यदि वह जीवित है तो निश्चय ही दैव ने उसकी मृत्यु मेरे हाथों लिखी है। आप मुझे विस्तार से बताइए।"

दशानन ने एक-एक बात विस्तार से बताई तो कुंभकर्ण गंभीर हो गया।

"हे ज्येष्ठ भ्राता, हे राक्षसराज! यह सब तो अस्पष्ट रूप से मैं स्वप्न में

देखता था। दो मनोहर रूप वाले धनुर्धर, अनेक विशालकाय वानर और भालू लंका को घेरे खड़े हैं। मैंने उनसे परिचय पूछा तो वे हंसकर बोले कि हम कालों का भी काल हैं, जो इस संसार से राक्षसों का विनाश करके धर्म की पुनर्स्थापना करेंगे। हे भ्राता! वे तो साक्षात् नारायण और शेषजी हैं। उन्होंने बरबस रार ठानी है। यह तुमने क्या किया, जो अनजाने में ही उनसे शत्रुता मोल ले ली। तुमने विचार तक न किया कि देवता भी तुमसे शत्रुता करने में घबराते हैं तो साधारण मनुष्यों का ऐसा साहस क्यों हुआ? क्योंकि वे साधारण मानव हैं ही नहीं। उन्होंने सहज ही मेघनाद आदि बलवानों को काल का ग्रास बना दिया तो भी समझ में न आया।"

"अनुज! क्या मृत्यु के भय से उनके चरण पकड़ लेना हमारी कीर्ति के अनुरूप था? क्या मुनि पुलस्त्य के वंशज इतने निर्बल हो जाते कि अपनी बहन के अपमान पर मौन हो जाते? ऐसे जीवन को धिक्कार है। यदि वह नारायण भी है तो क्या उसके द्वारा किसी स्त्री का ऐसा अपमान अक्षम्य है? निर्बल, कायर ऐसा करते भी हों तो दशानन से ऐसी अपेक्षा उसे नहीं करनी चाहिए।" दशानन क्रोधित होकर बोला।

"मुझे आदेश करें लंकापति!" कुंभकर्ण सहमत होकर बोला–"आपके विचार और निर्णय पर किसी प्रकार का संदेह या उपेक्षा मैं नहीं कर सकता। आपने निश्चय ही अपना भ्रातृधर्म निभाया है। यह सब श्रीराम की प्रेरणा से ही हुआ है ज्येष्ठ भ्राता! बहुत समय से सभी सुख, यश और वैभव को भोगने वाले राक्षसकुल का जगत के नियम के अनुसार पतन होने वाला है–परिवर्तन संसार का नियम है।"

"अनुज, अपने पराक्रम का स्मरण करो। प्रयास किए बिना परिणाम को सोच लेना उचित नहीं होता। पराक्रम, प्रयास और प्रतिशोध मिलकर परिणाम लिखते हैं। क्या पता कि मुनि पुलस्त्य के वंशजों का उत्थान अपने चरम पर हो।" दशानन ने गर्वित स्वर में कहा–"अब तुम मदिरापान करो और क्षुधा को बढ़ाओ। कल तुम्हें शत्रु रूपी इतना आहार मिलेगा कि तुम्हारी पूर्ण तृप्ति हो जाएगी। कल ही युद्ध का परिणाम बदल जाएगा। अनुचरो! अनुज के लिए सर्वश्रेष्ठ मदिरा और कुछ भोजन की व्यवस्था करो।"

अनुचरों ने आदेश का पालन किया और व्यवस्था करने लगे।

प्रातः होने तक कुंभकर्ण को असंख्य घड़े मदिरा पिला दी गई जिसने उसकी बुद्धि को शून्य करके उसमें आक्रामकता का संचार कर दिया था।

दशानन की योजना और आदेश पर उसे भोजन अल्पमात्रा में ही दिया गया

था जिससे क्षुधा से व्याकुल वह महाभोजी कुंभकर्ण निश्चय ही राम की सेना का एक बड़ा भाग उदरस्थ कर लेगा और अनेक का संहार कर डालेगा।

दशानन के निर्देशन में ही उसे युद्ध के कवचादि पहनाए गए और उसके प्रिय शस्त्रास्त्र दिए गए। वह मदमस्त हाथी की भांति पैदल ही हुंकार भरता हुआ युद्धभूमि की ओर चल पड़ा। सेना उत्साह में भरकर उसके पीछे चल पड़ी। कुंभकर्ण की हुंकारों के स्वर में ढोल-नगाड़ों के स्वर भी सुनाई नहीं पड़ रहे थे। जब वह नगर से बाहर आया तो उसका पर्वताकार शरीर देखकर वानरसेना भयभीत हो गई। कुंभकर्ण क्षुधित तो था ही, अतः इतने वानर-भालू देखकर उसकी क्षुधा और भी भड़क उठी थी। वह दांत किटकिटाता हुआ आगे बढ़ा कि ठिठक गया।

कुंभकर्ण के सम्मुख उसका अनुज विभीषण विनयी मुद्रा में करबद्ध खड़ा था। स्वाभाविक रूप से कुंभकर्ण के हृदय में भ्रातृप्रेम उमड़ आया। विभीषण ने उसकी मुख-मुद्रा देखी तो दौड़कर उसके चरणों में नत हो गए।

कुंभकर्ण ने उन्हें उठाकर स्नेहपूर्वक हृदय से लगा लिया।

"अनुज! तुम्हें शत्रुदल में देखकर भी मुझे क्रोध नहीं आ रहा है, क्योंकि तुमने राक्षसकुल का मान बढ़ाया है। तुमने परम भक्त प्रह्लाद की परंपरा को जीवित किया है, जो श्रीहरि की शरण ली। दशानन तो काल के वशीभूत हो गया है—उसे कुछ भी विवेक नहीं रहा है। तुम अवश्य इस कुल का शोधन करोगे।" कुंभकर्ण गंभीरता से बोला।

"भ्राताश्री! मैंने भी राक्षसराज को नीतिपूर्वक समझाकर उनसे विनय की थी कि वे अहंकार त्यागकर प्रभु की शरण में आ जाएं, परंतु उन्होंने लात मारकर मुझे ही त्याग दिया। मैं प्रभु श्रीराम की शरण में चला आया।"

"यह तुमने उचित ही किया अनजु! जिन प्रभु की शरण में जाने को योगी-तपस्वी भी हजारों वर्ष तपस्या करके सफल नहीं हो पाते, तुमने सहज ही उनके नित्य दर्शन प्राप्त कर लिये। तुम धन्य हो! अनुज, इस समय मदिरा और भूख के प्रभाव से मुझे हिंसक भाव ही सूझ रहे हैं और मैं अपने विवेक को नियंत्रण में नहीं रख पा रहा हूं। तुम इस समय मेरे पास से जाओ और प्रभु श्रीराम से मेरी विनय कहो कि मुझे अधिक समय तक क्रूरकर्मी बने रहने का अवसर न दें। मेरी हिंसकता इन रामभक्तों पर अधिक समय न हो।"

विभीषण कुंभकर्ण का आशय समझकर प्रणाम करके वहां से चले गए।

क्षुधा से पीड़ित कुंभकर्ण दांत किटकिटाता हुआ वानर सेना पर टूट पड़ा और अपने विशाल पंजों में कई वानर दबोचकर दांतों से चबाने लगा। कई तो उसके

पैरों के नीचे दबकर ही कुचल गए। उसका वह हिंसक और विकराल रूप देखकर वानरों में भगदड़ मच गई। यह देखकर अंगद ने अपनी भारी गदा का प्रहार उसके कंधे पर किया तो वह लड़खड़ा गया।

अंगद ने उत्साह में भरकर पुन: प्रहार किया तो कुंभकर्ण ने गदा पकड़कर अंगद को गेंद की भांति घुमाकर दूर फेंक दिया। इस समय वह अपने भोजन में कोई व्यवधान नहीं चाहता था। कुछ वानर खाने पर उसकी क्षुधा और भी बढ़ गई थी। अत: उसने फिर से अपने दोनों पंजों में बहुत सारे वानर दबोच लिये और वहीं बैठ गया। अनेक साहसी वानर उस पर विशालकाय चट्टानों और बड़े-बड़े पेड़ों आदि से प्रहार कर रहे थे, परंतु वह अपने भोजन में व्यस्त था।

वानरों की यह दुर्गति सुनकर हनुमान आ गए और उस बलवान राक्षस का पैर पकड़कर दूर तक घसीटते हुए ले गए। इससे कुंभकर्ण का क्रोध और बढ़ गया। उसने तीव्र झटका देकर अपना पैर छुड़ाया और दांत किटकिटाकर हनुमान पर झपटा, परंतु हनुमान उसके पंजे से बचते हुए उसके कंधे पर चढ़ गए और उसकी नाक पर भीषण प्रहार किया।

कुंभकर्ण बिलबिलाकर खड़ा हुआ और हनुमान को पकड़ने का प्रयास किया। इसमें वह सफल भी हो गया। उन्हें दबोचकर मुख की ओर ले जाने लगा, तभी एक बाण आकर उसके दाएं कान को छेद गया। उसने तड़पकर हनुमान को छोड़ दिया और उस दिशा में देखा, जिधर से बाण आया था। श्याम वर्ण श्रीराम उसके सामने ही धनुष ताने खड़े थे।

"युद्ध में उतरना ही पड़ा राम, क्योंकि जानते थे कि बलशाली कुंभकर्ण के पराक्रम के सामने तुच्छ वानरसेना कितनी देर टिकेगी।" कुंभकर्ण ने कहा—"अब कुंभकर्ण तुम्हारे बल की परीक्षा लेगा। दिखाओ अपना पराक्रम।"

राम मुस्कराए और धनुष पर एक तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर संधान किए। कुंभकर्ण का ध्यान अपने आहार पर लगा हुआ था। राम के तीक्ष्ण बाण उसके शरीर में धंसते और वह उन्हें निकालकर फेंक देता, फिर उसने जब यह देखा कि वानर-भालू अब उसकी पकड़ से दूर हो रहे हैं तो वह दांत किटकिटाकर बांहें फैलाते हुए राम की ओर दौड़ा।

कुंभकर्ण का वह विकराल रूप देखकर आकाश में विराजते देवता भी घबरा गए। वे सोच रहे थे कि प्रभु उससे खिलवाड़ क्यों कर रहे हैं?

कुंभकर्ण की बाणों से देह तो बिंध गई है, परंतु वह उनसे मरेगा तो नहीं। असंख्य बाणों से उसका शरीर ढक गया था, फिर भी उसकी आक्रामकता में कमी न आई थी। उसने दोनों बांहें बढ़ाकर राम को पकड़ना चाहा तो राम ने तीक्ष्ण बाण

चलाकर उसकी दोनों भुजाएं कंधों से अलग कर दीं। रक्त की धाराएं फूट पड़ीं। अब वह पैरों से विध्वंस कर रहा था तो राम ने एक अर्द्धचंद्राकार बाण चलाकर उसके शीश को ही धड़ से अलग कर दिया।

कुंभकर्ण का शीशविहीन धड़ काफी दूर तक दौड़ता चला गया और अंततः पर्वत की भांति विशालकाय धड़ पृथ्वी पर गिरकर रणभूमि को प्रकंपित कर गया। इसके साथ ही राक्षस युद्धभूमि से भाग खड़े हुए। वानरसेना ने बड़े उत्साह में भरकर 'जय श्रीराम' का उद्घोष किया।

56

राम-लक्ष्मण का अपहरण

राम-लक्ष्मण बंदीगृह में नहीं थे। अहिरावण भी अपने महल में नहीं था। उन्होंने देखा कि कुछ विचित्र दोपाए जलचर एक दिशा में जा रहे थे। वे उनके पीछे चल पड़े। एक उद्यान में एक मंदिर था और उसमें काली की मूर्ति थी। काली की मूर्ति के सामने अहिरावण द्वारा अपहरण करके लाए गए उनके प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण अचेत पड़े थे। आह! दुष्ट उन त्रिलोकपति की बलि चढ़ाकर काली को प्रसन्न करना चाहता था।
हनुमान ने अपना विराट रूप धारण किया और वहां उपस्थित प्रहरियों पर गदा लेकर टूट पड़े। इस आकस्मिक आक्रमण ने सबको बौखला दिया। भीषण युद्ध छिड़ गया और हनुमान कालरूप हो गए।

आज दशानन चिंतित हुआ था। जिस कुंभकर्ण को वह अपनी विजय का निश्चित साधन समझ रहा था, वह महाभोजी तो युद्धभूमि में भोजन की लिप्सा में ही मारा गया। मंत्रणा-कक्ष में थोड़े से मंत्रिगण थे। पहले कभी वह खचाखच भरा रहता था, परंतु बहुत से योद्धा रणभूमि में ही खेत रहे।

"महाराज, स्थिति विकट हो गई है।" एक मंत्री चिंतित स्वर में बोला-"अब आपको ही रण में उतरना पड़ेगा जिससे शेष योद्धाओं का

मनोबल बढ़ा रहे। निश्चय ही आपके पराक्रम से शत्रुदल का एक ही दिन में सफाया हो जाएगा।"

"अभी दशानन इतना क्षीण नहीं हुआ है। युद्ध को जीतने के लिए क्या करना है! एक दिन में ही मैं शत्रुदल का बीजनाश कर दूंगा, परंतु यह समय अपने शुभचिंतकों की परीक्षा लेने का है। दशानन से मित्रता का दावा करने वाले बलवान योद्धाओं का बल भी परख ही लेना चाहिए और जिसकी मृत्यु आ गई है, उसे तो कौन बचाए, लेकिन तुम सब निश्चिंत हो जाओ। लंका का यश कभी क्षीण नहीं होगा। तुम सब विश्राम करो।"

मंत्रिगण वहां से चले गए तो मंत्रणा कक्ष में सन्नाटा-सा छा गया, तभी एकाएक दशानन को अहिरावण की सुधि आई, जो पाताललोक का राजा और उसका अभिन्न मित्र था। ऐसे समय में मित्र से सहायता मांगना अनुचित न था। वह अपने विमान पर सवार होकर पाताललोक की ओर चल पड़ा। दिव्य पुष्पक विमान जिस गति से हवा में उड़ता था, उसी गति से जल में भी चलता था। महासागर की अनंत गहराई में अहिरावण की राजधानी बसी थी जिसका प्रहरी मकरध्वज नाम का मत्स्यकपि था अर्थात् उसका आधा शरीर वानर का और आधा मछली का था। उसने दशानन को आया देखकर प्रणाम किया और बिना रोक-टोक उसे अंदर जाने दिया।

अहिरावण इस समय निद्रामग्न था, परंतु दशानन के पहुंचने पर उसके सेवकों ने उसे जगाया और वह तत्काल जागकर दशानन के सम्मुख उपस्थित हुआ।

"मित्र दशग्रीव! अचानक, रात्रि के इस समय?" अहिरावण उसके हृदय से लगकर बोला–"आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी–संदेश भेजकर मुझे आदेश कर देते।"

"संदेशवाहक के आने-जाने में तो बहुत विलंब हो जाता मित्र!"

"स्वयं आये हो तो निश्चय ही समस्या गंभीर है?"

"गंभीर ही नहीं मित्र, अति गंभीर कहो। इस समस्या का कोई समाधान मुझे नहीं सूझा है। सोचा कि अपने मित्र से परामर्श व सहायता लूं।"

"आपने उचित ही किया–मित्र इसी अवसर पर काम आते हैं।"

दशानन ने सविस्तार संपूर्ण घटनाक्रम का वर्णन किया तो अहिरावण गंभीर हो गया।

"मित्र! यह वही राम है न, जिसने जनकपुर में शिवधनुष भंग करके हम बलवानों का मान घटाया था और परशुराम को भी भयभीत कर दिया था!" अहिरावण गंभीर स्वर में बोला–"निश्चय ही वह साधारण मानव नहीं है। जिसने खर-दूषण, मारीच, बालि और कुंभकर्ण को सहज ही मार गिराया, वह साधारण नर कैसे हो सकता है? तुमने निश्चय ही शत्रु को पहचाने बिना शत्रुता मोल ले ली है। जिसका

परिणाम भी बहुत हानिकारक है। राजनीति कहती है कि जब शत्रु विकट सिद्ध हो तो उससे संधि करके शेष जो बचा है, उसे सुरक्षित कर लेना चाहिए।"

"मित्र! मैं ऐसे उपदेश सुनने यहां नहीं आया, क्योंकि आगे बढ़कर पीछे हटना मेरा स्वभाव नहीं। मैंने आज तक जो कीर्ति अर्जित की है, वह ऐसे उपदेशों का अनुसरण करने से सुरक्षित नहीं होगी। सिंह भूखा भी मर जाए तो भी घास नहीं खाता।"

"मुझे आदेश करो दशग्रीव, मैं तुम्हारी क्या सहायता करूं?" अहिरावण ने तत्परता से कहा–"परंतु कृपया पहले मेरी बात सुन लो। मैं किसी भी प्रकार की सैन्य सहायता नहीं दे सकूंगा, क्योंकि मेरी सेना जल युद्ध में तो निपुण है, थल युद्ध में नहीं, अत: मित्रता के नाम पर सेना को भेजने से न तुम्हें कोई लाभ होगा और न मुझे।"

"यह बात मैं भली-भांति जानता हूं मित्र! इसलिए सैन्य सहायता की मुझे आवश्यकता भी नहीं। मेरे मस्तिष्क में एक योजना है। यदि हम दोनों तपस्वियों का अपहरण कर लें और यहां लाकर उनका वध कर दें तो फिर वानर-भालुओं को तो मैं एक पहर में समाप्त कर दूंगा। उनका अपहरण करने के लिए तुमसे अधिक उपयुक्त कोई और नहीं, क्योंकि तुम किसी का भी रूप धारण कर सकते हो।"

"मित्र! मैं केवल किसी भी राक्षस का रूप धारण कर सकता हूं।"

"विभीषण भी तो राक्षस ही है मित्र! वह राम के शिविर में ही है। यदि तुम उसका रूप धरकर वहां जाओ तो तुम्हें कोई नहीं रोकेगा। तुम अपने सम्मोहन मंत्र से सभी वानर-भालुओं को भी सम्मोहित कर दोगे और निर्विघ्न उन दोनों तपस्वियों को हर लाओगे, फिर यहां लाकर उनका वध कर देना–कितना सरल कार्य होगा।"

"मित्र, लगता तो सरल ही है, परंतु क्या वास्तव में ही सरल होगा?"

"अपनी शक्ति और विद्या पर संदेह है मित्र?" दशानन व्यंग्य से बोला।

"मित्र! संदेह तो नहीं है। तुम मेरे पास सहायता की आशा से आए हो, अत: इतना तो मैं कर ही सकता हूं।" अहिरावण ने कहा–"तुम मुझे अपने साथ ले चलो।"

दोनों कपटी मित्र कपटपूर्ण योजना बनाकर प्रसन्नता से चल दिए। रास्ते-भर दोनों के बीच इसी विषय पर बातें होती रहीं। कभी दशानन उत्तेजित हो जाता, तो कभी अहिरावण। अंतत: वे अपने लक्ष्य स्थल पर पहुंच गए। आधी रात हो गई थी, अत: प्रहरियों के अतिरिक्त सभी निद्रामग्न थे, फिर भी अहिरावण ने सम्मोहन विद्या का प्रयोग करके रामदल को सम्मोहित कर दिया।

दशानन जानता था विभीषण पर उस सम्मोहन का कोई प्रभाव न होगा। अत: उसने विभीषण को शिविर से हटाने के लिए अपने मुख से पक्षियों की चहचहाहट का स्वर निकाला। उसे भोर का संकेत समझकर कुछ ही देर बाद विभीषण समुद्र तट की ओर जाते हुए दिखाई दिए तो अहिरावण ने तत्काल उनका रूप धरा और

राम शिविर की ओर राम-राम भजते हुए चल पड़ा। वहां उसने हनुमान को मुख्य प्रहरी के रूप में देखा, परंतु यह देखकर तनिक भयभीत हुआ कि हनुमान पर भी उस सम्मोहन का कोई प्रभाव न हुआ था।

"महाराज विभीषण! आप इतनी शीघ्र कैसे लौट आए?" हनुमान ने पूछा।

"पवनपुत्र! अभी तो आधी रात ही हुई है। किसी स्वर से भ्रमित होकर मैंने सूर्योदय होना समझ लिया था।" उसने कहा और अंदर शिविर में चला गया।

शिविर में आकर अहिरावण ने सम्मोहन से अचेत हुए राम-लक्ष्मण को उठाकर कंधों पर रखा और चुपके से आकाशमार्ग से उड़ गया। दशानन अहिरावण का यह कपट देख रहा था। वह बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योंकि उसकी कपट योजना सफल हो रही थी। वहां से वह अपने महल लौट गया। इधर विभीषण समुद्र तट पर पहुंचे तो उन्हें आभास हुआ कि अभी सवेरा नहीं हुआ था। उनका मन आशंका से भर गया और वे तेज कदमों से चलते हुए हनुमान के पास पहुंचे।

"लंकापति!" हनुमान चौंक पड़े–"आप बाहर कैसे? अभी तो अंदर गए थे।"

"मैं...मैं! हनुमत् छल हो गया है।" विभीषण का कंठ सूख गया–"दशानन ने हमारे साथ कपट कर दिया। अवश्य ही वह पातालनरेश अहिरावण था, जो मेरा वेश धरकर यहां आया, क्योंकि ऐसा केवल वही है, जो इस विद्या में निपुण है। शीघ्र देखो कि उसने क्या अनर्थ कर दिया! हे प्रभु, रक्षा करना।"

दोनों ने देखा कि राम और लक्ष्मण शिविर में नहीं हैं। हनुमान का हृदय तीव्रता से धड़क उठा। विभीषण तो उदास ही हो गए थे।

"हे पवनपुत्र! वह अहिरावण ही था। अभी वह अधिक दूर नहीं गया होगा।"

"वह किसी अज्ञातलोक में भी जा छुपे तो भी मेरे हाथों से जीवित न बचेगा।" हनुमान ने क्रोध से कहा–"आप इस बात को अभी किसी को न बताएं, अन्यथा सभी शोकाकुल हो जाएंगे। मैं जा रहा हूं उस दुष्ट के पीछे और उसे उसके इस कपट का दंड देता हूं। आप बिलकुल न घबराएं।"

हनुमान वायुवेग से आकाश की ओर उड़ चले। उनके जबड़े भिंचे हुए थे और नेत्रों से अंगार निकल रहे थे। कुछ दूरी तय करने पर हनुमान को लगने लगा था कि वह सागर के रास्ते अपने लोक में चला गया होगा। हनुमान भी सागर की गहराइयों में उतर गए। अनेक प्रकार के जीव-जंतुओं से बचते हुए और श्रीराम का स्मरण करते हुए वे आगे बढ़ते गए और अहिरावण की राजधानी तक पहुंच गए।

"क्या यही पातालनरेश अहिरावण की राजधानी है द्वारपाल?" उन्होंने मत्स्यकपि से पूछा।

"मेरा प्रणाम स्वीकार करें तात!" प्रहरी मकरध्वज ने सादर शीश झुकाया–"आप

सही स्थान पर आए हैं। यही पातालपुरी है। आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। आप मेरे जनक हैं और मेरी माता ने मुझे आपके विषय में बताया था।"

"क्या बक रहा है जलचर! मैं श्रीराम का शिष्य और अखंड ब्रह्मचारी हूं।"

"तात! मेरी माता ने मुझे बताया था कि जब आप लंकादहन करके अपनी पूंछ में लगी आग बुझाने समुद्र में गए थे तो आपके पसीने की बूंदें मेरी माता मत्स्या ने निगल ली थीं और परिणामस्वरूप मेरा जन्म हुआ। मेरा रूप देखकर आप स्वयं इस सत्यता का अनुभव कर सकते हैं। आप आज भी अखंड ब्रह्मचारी हैं।"

"संभव है, ऐसा ही हो! मुझे प्रसन्नता हुई। अब तुम मुझे यह बताओ कि अहिरावण कहां है?"

"वे अपने महल में होंगे—अभी कुछ क्षण पहले ही दो कुमारों को लेकर आए थे।"

"क्या लंकापति दशानन भी यहां आया था?"

"अवश्य आया था। काफी चिंतित था। उसी के साथ हमारे राजा भी गए थे।"

"हूं। तो यह उस वीर बलवान की कपटता है—तुम्हारा नाम क्या है पुत्र?"

"तात! मेरा नाम मकरध्वज है—क्या आप मेरी माता से मिलना चाहेंगे?"

"पुत्र! इस समय मेरे पास समय का अभाव है। तुम्हारा राजा छलपूर्वक मेरे स्वामी का हरण कर लाया है। मुझे शंका है कि वह उनका अहित न कर दे। अतः तुम मुझे शीघ्र ही अंदर जाने दो जिससे मैं अपने स्वामी की रक्षा कर सकूं।"

"तात! मैं यहां द्वारपाल हूं। मुझे आदेश है कि मैं राजा की आज्ञा के बिना किसी को भी अंदर न जाने दूं। यही मेरा धर्म है, अतः इस विषय में मैं आज्ञा उल्लंघन करने को विवश हूं, क्योंकि मेरी स्वामिभक्ति यही कहती है।"

"तुम्हारी स्वामिभक्ति से मैं प्रसन्न हुआ पुत्र! वास्तव में सेवक को अपने स्वामी की आज्ञा का प्राणपण से पालन करना चाहिए। तुम निश्चय ही मेरे पुत्र हो। अब वह उपाय बताओ जिससे तुम्हारा सेवाधर्म भी सुरक्षित रहे और मैं भी अपने स्वामी की सेवा में समय से पहुंच जाऊं?"

"आप मुझे युद्ध में संतुष्ट करें। मुझे विवश करें कि मैं आपका मार्ग न रोक सकूं।"

"तो सावधान हो जाओ।"

दोनों में परस्पर मल्लयुद्ध छिड़ गया। मकरध्वज भी कम बलवान न था। उसने समूची शक्ति से हनुमान का सामना किया और एक-दो बार भारी पड़ता भी दिखा, पर हनुमान के समक्ष उसका बल अधिक न टिका और हनुमान ने उसे उसकी ही पूंछ से बांधकर डाल दिया।

"तुम धन्य हो पुत्र!" हनुमान गंभीरता से बोले–"यदि आज तुम्हारे स्वामी के गुणों का बल भी तुममें होता तो तुम परास्त न होते। अवगुणों के प्रभाव ने तुम्हें परास्त कर दिया।"

हनुमान उसे वहीं छोड़कर अंदर घुस गए और सूक्ष्म रूप में विचरने लगे। राम-लक्ष्मण बंदीगृह में नहीं थे। अहिरावण भी अपने महल में नहीं था। उन्होंने देखा कि कुछ विचित्र दोपाए जलचर एक दिशा में जा रहे थे। वे उनके पीछे चल पड़े। एक उद्यान में एक मंदिर था और उसमें काली की मूर्ति थी। काली की मूर्ति के सामने अहिरावण द्वारा अपहरण करके लाए गए उनके प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण अचेत पड़े थे। आह! दुष्ट उन त्रिलोकपति की बलि चढ़ाकर काली को प्रसन्न करना चाहता था।

हनुमान ने अपना विराट रूप धारण किया और वहां उपस्थित प्रहरियों पर गदा लेकर टूट पड़े। इस आकस्मिक आक्रमण ने सबको बौखला दिया। भीषण युद्ध छिड़ गया और हनुमान कालरूप हो गए।

अहिरावण इसी बीच वहां आ गया। एक विशालकाय वानर को प्रलय मचाते देखकर अहिरावण ने उन्हें ललकारा।

"दुष्ट अहिरावण! आज तू अपनी मृत्यु को ललकार रहा है।" हनुमान गरजकर बोल।

मूर्ख! इस पाताललोक में मुझे मारने वाला कोई नहीं है।" अहिरावण भी गरज उठा–"देवी ने मुझे वरदान दिया था कि सृष्टि में यदि मेरी मृत्यु होगी तो हनुमान के हाथों होगी और पवनपुत्र हनुमान यहां पाताललोक में कहां से आएगा? हनुमान के अलावा मुझे कोई भी पराजित नहीं कर सकता।"

"तो देख ध्यान से दुष्ट!" हनुमान ने अपना परिचय दिया–"तेरा काल हनुमान तेरे सम्मुख खड़ा है।"

हनुमान का परिचय पाकर अहिरावण के होश उड़ गए। अब उसके लिए युद्ध करते हुए वहां से निकल जाना आवश्यक हो गया था। वह भली-भांति जानता था कि हनुमान को वह पराजित नहीं कर सकता, अत: भागने से ही प्राणरक्षा हो सकती है, लेकिन हनुमान ने उसे वहां से भाग निकलने का कोई अवसर न दिया। एक प्रहर के भीषण युद्ध के पश्चात् अंतत: वीर हनुमान के प्राणघातक प्रहार से अहिरावण के प्राण पखेरू उड़ गए।

अहिरावण की मृत्यु के पश्चात् हनुमान श्रीराम-लक्ष्मण को कंधे पर बैठाकर शीघ्रता से रामदल की ओर चल पड़े।

57

दशरथनंदन-दशानन में प्रथम युद्ध

"दशानन!" राम ने उसे ललकारा—"लज्जा त्यागकर तुम कैसे स्वयं से दृष्टि मिलाते होगे? इन वानर-भालुओं को अपनी वीरता से पीड़ित करके प्रसन्न होते होगे! अभी क्षण-भर पहले हनुमान के समक्ष अचेत हुए पड़े थे और फिर निर्लज्जता से तुम यहां चले आए। सावधान, अपनी धनुर्विद्या का कौशल हमारे सामने दिखाओ।" राम के सारंग धनुष से सर्पों की भांति अनेक बाण छूटे और दशानन के छोड़े गए सभी बाणों को काटकर सूर्य-रश्मियों के लिए धरा तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त किया। आज पहली बार दशरथनंदन-दशानन युद्ध में आमने-सामने आए। इस युद्ध को देखने के लिए देवता भी आकाश में आ विराजे। देवर्षि नारद भी वहीं उपस्थित थे।

दशानन बड़ा प्रसन्नचित्त होकर जागा तो उसकी भृकुटि तन गई। पटरानी मंदोदरी अस्त-व्यस्त दशा में भूमि पर सो रही थी। उसके बाल बिखरे हुए थे और लग रहा था कि वह सारी रात रोती रही थी। उसकी ऐसी दशा का कारण दशानन जानता था। अपने बहुत से पुत्र-पौत्रों की मृत्यु देखकर वह अत्यंत शोकाकुल थी, जो एक माता के लिए स्वाभाविक ही था, परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं था कि इस प्रकार दीन-हीन हुआ जाए।

"मंदोदरे!" दशानन उसके समीप बैठा और उसे झकझोरा तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठी—"यह क्या दशा बना ली है तुमने? तुम लंकाधीश

की पटरानी हो। इस लंकारूपी क्षीरसागर की लक्ष्मी हो। तुम्हें इस प्रकार व्याकुल होना शोभा नहीं देता। युद्ध साम्राज्यों का अभिन्न अंग होते हैं और इन युद्धों में स्वाभिमान की वेदी पर प्राणों की आहुतियां ही दी जाती हैं। योद्धा या तो वैभव भोगता है या वीरगति पाता है। योद्धाओं की यही दो गतियां हैं। युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले को मोक्ष प्राप्त होता है। उनके लिए इस प्रकार शोक व्यक्त करना उनके बलिदान और पराक्रम का अपमान होता है।"

"नाथ, एक माता का हृदय कितना कोमल होता है, आप जानते हैं। अभी कुछ दिन पहले तक मेरे पुत्र-पौत्र मेरे सामने सितारों की भांति जगमगाते थे और अब वे जैसे घटा में छुप गए हैं। उनकी स्मृतियां मुझे कचोटती हैं।"

"मंदोदरे! संसार में तुम पहली माता नहीं हो जिसके पुत्रों की मृत्यु हुई है। मृत्यु के लिए भावनाओं का कोई महत्त्व नहीं होता है। राजा सगर के एक लाख पुत्रों को कपिल मुनि ने क्षण-भर में भस्म कर दिया था तो क्या उनकी माता ने प्राण त्याग दिए थे, भोजन त्याग दिया था। नहीं मंदोदरे, इस संसार में रोज ही मृत्यु ऐसे हृदय-विदारक दृश्य दिखाती है, परंतु धैर्य करना होता है। तुम्हारे पुत्रों ने तो सदैव ही कुल का मान बढ़ाया था और वीरगति भी पाई तो उस योद्धा के विरुद्ध जिसे तुम नारायण का अवतार कह रही हो। जीवन की श्रेष्ठता विजयों में होती है, जो कि हमारे पुत्रों ने सदैव ही सिद्ध की है। मृत्यु की श्रेष्ठता वीरगति में है, उन्होंने इसे भी प्राप्त किया, फिर शोक कैसा?"

"नाथ! आपकी यह साधुता भरी बातें मुझे विस्मय में डालती हैं। आप कितने सुंदर उपदेश देते हैं। जीवन-मृत्यु का आपने कैसा सुंदर विश्लेषण किया है! पर हे नाथ, कभी उस माली की दृष्टि से देखा है, जो एक उपवन तैयार करता है, पौधे रोपता है, उन्हें सींचता है, बड़े करता है, फिर एक दिन सब उसकी आंखों के सामने नष्ट हो जाता है?"

"मूर्ख, माली पौधे रोपता, सींचता और पालता इसलिए है कि वह उपवन अपनी सुंदरता और सुगंध से माली के परिश्रम का यशगान करें, कीर्ति बढ़ाएं। माता-पिता माली हैं और संतान वह उपवन है तो संतान का पराक्रम उनकी सुगंध है, माता-पिता को सुखी करना उनकी सुंदरता है—हमारे पुत्रों ने यही किया।"

"नाथ, आपकी हठ ने कुछ नहीं किया?" मंदोदरी ने पूछा।

"जिसे तुम हठ कहती हो, वह मेरा स्वाभिमान है प्रिये! अपनी-अपनी दृष्टि से देखने पर प्रत्येक स्वभाव भिन्न दिखाई देता है। मुझे जो मिला, मैंने उसका उपभोग किया, जो मैंने अर्जित किया, उसका अब नाश हो रहा है। नाश न हो तो सृजन कैसे होगा? जब तक विध्वंस नहीं होते, तब तक निर्माण नहीं होते। जब

वैभव बरस रहा था तो मंदोदरी इसे अपना भाग्य नहीं सौभाग्य कहती थी, आज देने वाला वापस ले रहा है तो तू ममत्व का जाल बिछा रही है। क्या तेरे विलाप और दीनता से वह होना थम जाएगा, जो नियति ने सोच रखा है। समर्थ होने पर सामर्थ्य न दिखाना कहां का पुरुषार्थ है! भोग में धन, रोग में स्वास्थ्य और युद्ध में बल बरबस खर्च होते हैं, इसलिए अपने हृदय को समझा कि तूने ऐसा कुछ नहीं खोया, जो एक सम्राट की पत्नी से अपेक्षा नहीं की जाती। बलिदान व्यर्थ नहीं जाते, उनका सुफल अवश्य मिलता है।"

मंदोदरी अपने विद्वान पति के उपदेश सुनकर स्तब्ध थी। ऐसे वचन आज तक दशानन ने पहले कभी न कहे थे।

"और रही युद्ध की बात तो आज निर्णय हो गया समझ। वह नर हो या नारायण, आज उसकी पराजय होकर रहेगी। आज स्वयं दशानन अपने दस धनुषों के साथ ऐसा पराक्रम दिखाएगा कि देवता भी भयभीत हो जाएंगे। यह युद्ध दशानन के बल पर ही आश्रित था, अतः दशानन ही इसका परिणाम तय करेगा।"

मंदोदरी पहले ही व्यथित थी, अब आशंकित भी हो उठी कि कहीं आज ही लंका का सूर्य अस्त तो नहीं होने वाला। दशानन युद्ध की तैयारी करने लगा। सेना यद्यपि अधिक न थी, परंतु उसे सेना की आवश्यकता भी क्या थी? अपनी समझ में तो वह युद्ध जीत भी चुका था, क्योंकि अपनी कुटिल योजना से उसने राम-लक्ष्मण को निश्चित मृत्यु के पास पहुंचा दिया था। अपने भव्य रथ पर सवार हुआ वह चमकते सूर्य के समान लग रहा था। अनेक अस्त्र-शस्त्रों के साथ वह रणभूमि की ओर चल पड़ा। उसकी सेना ने 'लंकाधीश दशानन की जय' के नारे लगाए। सेना सहित वह रणभूमि में पहुंच गया। असंख्य वानर-भालू देखकर वह कुटिलता से मुस्कराया। क्या राजा के बिना सेना युद्ध लड़ सकती है?

"कहां है वह राम? कहां है वह लक्ष्मण!" दशानन गरजकर बोला—"युद्ध किसे कहते हैं, उन्हें आज मालूम होगा। वह वानरद्वय हनुमान और अंगद कहां हैं, जो दूत बनकर गए और हमारी दया से जीवित लौट आए! कहां है वह कुलद्रोही विभीषण, जो कुल को कलंक लगाकर कायरों की भांति शत्रु की शरण में चला आया। आज तुम सबका काल आ गया है। मौन क्यों हो? युद्ध का बिगुल बज गया है और तुम सभी ऐसे शांत हो, जैसे कोई अनहोनी हो गई हो। हां, यह अनहोनी ही तो है। दस धनुषों से तुम्हारा संहार करने दशानन स्वयं पधारा है।"

"जय श्रीराम!" रामदल की ओर से जयघोष गूंजा। वानर योद्धा अपने मुंह और हाथों से ही भीषण युद्धस्वर करने लगे।

"अरे निर्लज्ज रावण!" वीर हनुमान उसके सामने आ गए और उसे धिक्कारते हुए बोले–"तू स्वयं को योद्धा कहता है कपटी! योद्धा कहीं रातों में सहायता की याचना करने के लिए आकाश-पाताल जाते हैं। निर्लज्ज अहंकारी! तू अनीति का पालन करता है और फिर भी आत्म-प्रशंसा करता है। कुल का नाश कराने से भी तेरा जी नहीं भरा, जो मित्रों को भी विनष्ट कर देने पर भी उतारू है।"

"अरे शठ जंतु!" दशानन निर्लज्जता से हंसा–"युद्ध में जिस नीति से भी विजय प्राप्त की जा सकती हो, चतुर राजा उसी का अनुसरण करता है। छल भी एक प्रकार से युद्ध ही होता है। अब शठ वानर, यह बता कि जिसके नेतृत्व में तुम अपने प्राण देने पर तुले थे, उसकी अनुपस्थिति में क्या निर्णय करते हो? दशानन तुम्हें अभयदान देकर भागने का अवसर देने में भी अपनी शान समझता है।"

"निर्लज्ज लंकेश! जिस तरह कोई चूहा बिल्ली को साक्षात् जानकर भी आंखें बंद करके यह सोच ले कि वह उसे नहीं देख रही और उसके प्राण बच जाएंगे, यही स्थिति आज तेरी है। वह देख, सारंग धनुष हाथ में धारण किए राक्षसों के अंत के हेतु अवतरित प्रभु श्रीराम तेरे अंत के लिए संहारक के रूप में शोभायमान हैं।"

दशानन ने उस दिशा में चौंककर देखा तो क्षण-भर सन्न रह गया। राम और लक्ष्मण धनुष हाथ में लिये खड़े थे। कैसे? दशानन की समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा कैसे हो गया? अहिरावण उन्हें हरण करके ले गया था। उसने स्वयं देखा था, फिर वे दोनों जीवित कैसे थे?

"दशानन!" राम ने गंभीर स्वर में कहा–"अभी तक हमारे हृदय में जो भी बैर रहा, उसमें तुम्हारी संलिप्तता अधिक रही। हमने युद्धनीति का अनुपालन करते हुए संधि के भी गंभीर प्रयास किए, जो तुम्हें स्वीकार नहीं हुए। अंतिम बार हम तुम्हें स्वयं विनयपूर्वक समझाना चाहेंगे कि युद्ध ने सदैव विनाश किए हैं और यह तुम स्वयं देख भी चुके हो। अब जो शेष है, उसे सहेज लो और अपने नीतिवान होने का परिचय दो। यह धनुष जब भी उठा है, संहार हेतु ही उठा है और संहार भी उनका जो अहंकार, कपट और निर्लज्जता से भरे हैं–जो मुनिजनों को कष्ट देते है। हमारे तूणीर के प्रत्येक बाण को तुम्हारे हठ से भी कहीं अधिक हठ है और वह धनुष से छूटकर बिना प्राण लिये नहीं लौटता।"

"तपस्वी राम! तेरा भाग्य, साहस और सेवक सराहनीय हैं। तीनों की संगति से ही तू आज हमारे समक्ष जीवित खड़ा है, परंतु अब कोई भी तेरी रक्षा नहीं कर सकेगा। राक्षसवीरो! आज अपने शौर्य के अंतिम चरम पर पहुंच जाओ और इन जीव-जंतुओं को चुन-चुनकर खा जाओ। इनके महाराजाधिराज राम को मैं काल को सौंपकर अपना पराक्रम स्थापित करता हूं–आक्रमण!" दशानन गरज उठा।

दोनों सेनाएं अपने-अपने नेतृत्वकर्ता का जयघोष करते हुए परस्पर प्रहार-प्रति प्रहार करने लगीं, जैसे दो समुद्र आपस में समा गए हों। हनुमान अपनी गदा लेकर दशानन पर टूट पड़े जिसके बीस हाथों में बीस गदाएं प्रकट हो गई थीं। जैसे अष्टभुजा काली रणोन्मत्त हो, वैसे ही बीस भुजाओं से युक्त दशानन युद्ध में काल के समान नृत्य कर रहा था। वह हनुमान से भी युद्ध कर रहा था और अन्य वानरों पर भी भीषण प्रहार कर रहा था। हनुमान बड़े पराक्रम से उससे लड़ रहे थे, परंतु वास्तव में उन्हें भी मानना पड़ा कि दशानन भीषण योद्धा था, गदायुद्ध में निपुण था। रक्षा करने में भी दक्ष था और प्रहार करने में भी। अचानक उसका दांव चला और उसने गदा का भीषण प्रहार हनुमान के कंधे पर किया तो वे घुटनों के बल भूमि पर नत हो गए। यह देखकर दशानन अट्टहास कर उठा। हनुमान ने क्रोधित होकर दशानन के शीश पर तीव्र प्रहार किया तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

'महावीर हनुमान की जय' से रणभूमि गुंजायमान हो उठी।

दशानन का सारथी तत्काल उसे वहां से दूर ले गया। राक्षस सेना पीछे हटने लगी। कुछ क्षण बाद दशानन को होश आया तो वह मन में बड़ा लज्जित हुआ और स्वयं को धिक्कारते हुए सारथी को रणभूमि में लौटने की आज्ञा दी। अब उसने दस धनुष उठा लिये और बाणों की ऐसी वर्षा की कि सूर्य भी दिखना बंद हो गया और अनेक वानर-भालू उसके बाणों से मारे गए। अपमान से अहंकार और भी बढ़ता है और दुस्साहस भी! वह वानरों का जैसे काल ही बन गया।

"दशानन!" राम ने उसे ललकारा-"लज्जा त्यागकर तुम कैसे स्वयं से दृष्टि मिलाते होगे? इन वानर-भालुओं को अपनी वीरता से पीड़ित करके प्रसन्न होते होगे! अभी क्षण-भर पहले हनुमान के समक्ष अचेत हुए पड़े थे और फिर निर्लज्जता से तुम यहां चले आए। सावधान, अपनी धनुर्विद्या का कौशल हमारे सामने दिखाओ।"

राम के सारंग धनुष से सर्पों की भांति अनेक बाण छूटे और दशानन के छोड़े गए सभी बाणों को काटकर सूर्य-रश्मियों के लिए धरा तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त किया। आज पहली बार दशरथनंदन-दशानन युद्ध में आमने-सामने आए। इस युद्ध को देखने के लिए देवता भी आकाश में आ विराजे। देवर्षि नारद भी वहीं उपस्थित थे।

"नारायण-नारायण! देवों और जगत का कल्याण करने हेतु प्रभु दशरथनंदन के रूप में आज कैसे भूमि पर खड़े होकर युद्ध कर रहे हैं। यशस्वी दशानन का दिव्य रथ कैसे रण में सूर्य की भांति चमक रहा है और मेरे प्रभु नंगे पांवों युद्धरत हैं।" नारदजी ने उदास स्वर में कहा-"मेरे पास तो यह वीणा है, जो युद्ध में प्रभु के किसी काम नहीं आएगी, अन्यथा मैं अवश्य उन्हें इसे दे देता।"

इंद्र ने हड़बड़ाकर नारदजी की ओर देखा और अपनी भूल को स्वीकार किया।

इस समय तो दशरथनंदन-दशानन का युद्ध चरम पर था। प्रभु के लिए भूमि किसी रथ से कम न थी। युद्ध जीतने के लिए तो जिस रथ की आवश्यकता होती है, वह सदा ही प्रभु के पास होता है। शौर्य और धर्म जिसके दो पहिए हैं, सत्य उसकी ध्वजा और शील उसकी पताका है, बल, विवेक, इंद्रिय निग्रह और परोपकार उसके अश्व हैं और भक्ति-भजन उसका सारथी हैं। वैराग्य उनकी ढाल, संतोष उनकी तलवार, बुद्धि प्रचंड शक्ति और धनुष रण-कौशल है। वैसा दिव्य रथ दशानन के पास कहां था!

दशानन दुस्साहस भरे पराक्रम और अहंकारजनित बल से भीषण योद्धा था। वह दशरथनंदन से युद्ध करते समय किंचित विचलित न था और अपनी धनुर्विद्या से सबको चकित कर रहा था। प्रभु भी अपने परम शत्रु के समूचे कौशल का प्रदर्शन देखने की इच्छा रखते थे। प्रभु ही ऐसे हो सकते हैं, जो शत्रु का यश भी बनाए रखने की कृपा कर सकते हैं, तभी तो दशानन द्वारा छोड़े गए ब्रह्मपाश को उन्होंने अपने हृदय पर सहा और लड़खड़ाकर गिर पड़े। यह देखकर देवता सन्न रह गए।

दशानन के सम्मुख उच्च स्वर में कभी न बोलने वाला विभीषण भी यह देखकर क्रोध में गदा लेकर दशानन की ओर दौड़ पड़ा।

"अरे मूर्ख! तूने प्रभु पर पाश संधान किया। निर्लज्ज, जब भी तुझे भय होता है, तू ऐसे ही कपट प्रयोग करता है। ठहर, मैं तुझे ढेर करता हूं।" विभीषण क्रोधावेश में गरजकर बोले।

"अरे कुलघाती! तुझे तो मैं प्रातः से ही खोज रहा था। तेरी कृतघ्नता का दंड देने के लिए तो मैं व्याकुल था।

दशानन ने क्रोध में भरकर विभीषण पर अचूक बरछी का वार किया, जिसे यदि श्रीराम ने बाण चलाकर न काट दिया होता तो बरछी विभीषण का सीना भेद देती। दशानन के प्रहार से क्षण-भर की मूर्च्छा के बाद भी राम सचेत हो गए थे और उन्होंने विभीषण को आगे बढ़ते देख लिया था। विभीषण का अभी दशानन से सामना उचित न था, अतः अपने भक्त की रक्षा करते हुए राम पुनः युद्ध में आ डटे।

सूर्य की लालिमा मद्धिम पड़ने लगी थी, अतः युद्ध में भी अधिक समय न था। राम ने इस अंतिम क्षणों में दशानन को अपने बल का अनुभव कराने के लिए एक तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाया और डोरी को कानों तक खींचकर छोड़ दिया। बाण ने दशानन के शीश के बाएं हिस्से के कवच को बेधकर उसे रथ से गिरने को विवश किया। इसी के साथ उस दिन का युद्ध समाप्त हो गया।

58

दशानन दशरथनंदन का शरणागत

दशरथनंदन ने एक अग्निबाण छोड़ा जिसका लक्ष्य दशानन की नाभि थी।
"अहा, विभीषण भ्रातृद्रोही!" दशानन पीड़ा से चीख उठा–"तूने कुल को ही नहीं, भ्रातृत्व को भी कलंकित कर दिया।"
दशानन की नाभि का अमृत उस बाण के प्रदाह से शुष्क हो गया, तब राम ने एक साथ तीस बाण लक्ष्य करके छोड़े जिनसे उसके दसों शीश व बीस भुजाएं कट गए।
इस बार काल ने दया नहीं की। दशानन के दसों शीश और बीसों भुजाएं लंका की ओर चले। शीश और हाथों के बिना दशानन का विराट व विकराल शरीर रथ से उतरकर इधर से उधर रणभूमि में दौड़ने लगा। कितने ही वानर उसके पैरों के नीचे दबकर मारे गए और जब वह भूमि पर गिरा तो दशरथनंदन के चरणों में पड़ा था–वह उनका शरणागत हो गया। जीवित रहते अपने अहंकार के कारण दशानन दशरथनंदन का परम शत्रु रहा लेकिन मृत्यु को प्राप्त होते ही उनका दास हो गया।

"प्रभु!" विभीषण कृतज्ञता भरे स्वर में बोले–"आज आपने मेरे प्राणों की रक्षा की। वह अचूक बरछी लंकेश का अमोघास्त्र थी। मैं आपको उसके प्रहार से पीड़ित होते देखकर आवेश में आ गया था

और भूल गया था कि न संसार में भाई जैसा मित्र होता है और न शत्रु! भाई जब शत्रुता पर आ जाता है तो मर्मांतक आघात देता है। आपने मेरी रक्षा कर ली प्रभो!"

"लंकापति विभीषण!" राम ने हंसकर कहा–"इस जगत में यदि हजार दशानन मिलकर आप पर लाखों अमोघास्त्र चलाएं तो भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि परमपिता ब्रह्मा ने आपको त्रेतायुग का चौथा चिरंजीवी नियुक्त किया है। आपको सृष्टिपर्यंत ब्रह्माजी की सृजना की सेवा करनी है।"

"हे प्रभो!" हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा–"शत्रुता अपने स्थान पर होती है, परंतु शत्रु की विशेषता को स्वीकार करना भी वीरता का द्योतक है। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि दशानन का पराक्रम अपरिमित है। आज मुझे स्वयं अपने उस प्रहार पर लज्जा आई, जो मैंने दशानन पर किया और उसके प्राण नहीं निकले। पर्वतों को भी खंड-खंड कर देने वाला वह प्रहार दशानन को केवल क्षणिक मूर्च्छा ही दे सका, यह देखकर मेरा बल मुझे धिक्कार उठा।"

"पवनपुत्र!" राम ने गंभीर स्वर में कहा–"दशानन के पराक्रम पर किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए। तीनों लोकों और स्वयं इंद्र और कुबेर को भी संतुष्ट करने वाले दशानन का पराक्रम अपने अहंकार के कारण जगतविरुद्ध हो गया है। चौदह विद्याओं के ज्ञाता विद्वान दशानन ने अपने अहंकार की संतुष्टि के लिए संसार की शांति भंग कर दी है।"

इसी प्रकार बातें करते-करते शयन का समय हो गया और सब सो गए। रात्रिकाल अपनी गति से चलता रहा। अंतिम प्रहर प्रारंभ हुआ ही था कि एक प्रलयंकारी विस्फोट हुआ जिसकी तीव्रता से सभी हड़बड़ाकर जाग गए। आकाश इस प्रकार प्रकाश से भर गया था, जैसे सूर्य अपने संपूर्ण प्रकाश से जगमगा रहा हो।

"हे तात विभीषण! यह कैसा उल्कापात है?" लक्ष्मण ने पूछा।

"प्रभु!" विभीषण घबराए हुए स्वर में बोले–"दशानन की कपटबुद्धि अत्यंत हिंसक हो गई है, इसलिए वह विजय-यज्ञ कर रहा है। दशानन विज्ञान में अति निपुण है। उसने अनेक रसायन आविष्कृत कर लिए हैं जिनमें से विध्वंसा[1] नाम का यह रसायन है, जो महाविस्फेट करता है। यह संसार के विनाश में सक्षम है।

---

1. **'विध्वंसा'** का प्रयोग आगे चलकर कलियुग में वैज्ञानिक खोज द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं में लोक-कल्याण और लोक-विनाश हेतु किया जाने लगा। उत्तर कोरिया के प्रमुख किम-जोंग-उन के वैज्ञानिकों ने भी 'विध्वंसा' की खोज कर ली थी, किंतु सृष्टि के अमर सप्त रक्षकों अश्वत्थामा, हनुमान, विभीषण आदि ने समय रहते उसे संरक्षित कर लिया था। इस बारे में संपूर्ण विवरण जानना चाहते हैं तो **'अश्वत्थामा का अभिशाप'** अवश्य पढ़ें।

जहां इसका प्रयोग होगा, वहां हजारों मील के क्षेत्र में प्रलय आ जाएगी। नाथ, दशानन संसार के विनाश के पथ पर चल पड़ा है। उसे रोकना होगा प्रभु! उसकी प्रयोगशाला को नष्ट करना होगा, अन्यथा कल के युद्ध में विनाश का ऐसा दृश्य देखने को मिलेगा कि हृदय प्रकंपित हो जाएगा।"

"दशानन का अहंकार अपने चरम पर पहुंच गया है। वर्चस्व की लिप्सा ने उसे मानवता से विमुख कर दिया है।" राम गंभीरता से बोले–"युद्ध में अनपेक्षित बल और रसायनास्त्रों का प्रयोग जीव-जगत को अनंत काल तक त्रास देता है। दशानन संसार का शत्रु है। हे वीरवर हनुमान, अंगद आदि वीरों को अपने साथ ले जाओ और दशानन के इस वैज्ञानिक-यज्ञ का शीघ्रतापूर्वक ध्वंस कर दो।"

"जो आज्ञा प्रभु!" हनुमान ने अपनी गदा उठाई और साथी योद्धाओं को लेकर चल दिए। चलने से पूर्व विभीषण ने हनुमान को प्रयोगशाला की दिशा और स्थिति बताई जिससे उसे खोजने में अधिक समय नष्ट न हो।

जय श्रीराम का उद्घोष करके हनुमान बहुत से वानर योद्धाओं के साथ लंका में प्रवेश कर गए। किसी ने भी बाधा उत्पन्न करने का साहस नहीं दिखाया।

वानर दल हनुमान के नेतृत्व में उस गुप्त प्रयोगशाला तक पहुंच गया तो वहां के प्रहरी सजग मिले। वानर दल उन पर टूट पड़ा। भीषण युद्ध होने लगा। हनुमान, अंगद, नल और नील आदि योद्धा प्रयोगशाला में प्रवेश कर गए और तोड़-फोड़ आरंभ कर दी। राक्षस रक्षक प्रतिरोध कर रहे थे, परंतु वानर सेना का पराक्रम चरम पर था।

हनुमान को दशानन दिखाई दिया, जो एक विशाल वेदी के समक्ष नेत्र बंद करके बैठा मंत्रोच्चारण कर रहा था। हनुमान ने उसके पास रखे अस्त्र-शस्त्रों को उठा-उठाकर अग्नि में भस्म करना शुरू किया। उन्होंने दशानन के केश पकड़कर घसीटना आरंभ किया तो उसका ध्यान भांग हो गया। इसके साथ ही वेदी इस प्रकार फटी जैसे ज्वालामुखी फटा हो। भीषण अग्नि ने विकराल रूप धारण कर लिया और प्रयोगशाला धूं-धूं करके जल उठी। दशानन अत्यंत क्रोध में भरकर हनुमान पर झपटा और दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा।

"शठ वानर! तूने मेरी वर्षों की तपस्या और खोजों को नष्ट कर दिया।" दशानन क्रोध व हताशा से बोला–"मेरे उस साधन को चूर-चूर कर दिया जिससे मैं विष्णु-विजेता बनने वाला था। आज मैं यहीं तेरे प्राण ले लूंगा।"

"अपने प्राणों की चिंता कर अहंकारी, जो प्रभु श्रीराम के बाणों की नोंक पर रखे हैं। अब तेरा स्वप्न टूट ही गया है तो विजय की भी क्या आशा होगी, अतः अब भी यदि प्रभु श्रीराम का शरणागत हो जाए तो अपने प्राण बचा लेगा।"

रावण दांत किटकिटाकर हनुमान की ओर दौड़ा तो हनुमान ने झुकाई देकर स्वयं को बचाते हुए उसे दोनों हाथों से ऊपर उठाकर भूमि पर पटक दिया और अपना पैर उसके विशाल वक्ष पर रखकर जय श्रीराम का घोष किया।

दशानन ने अपना पूरा बल लगा दिया, परंतु अपने वक्ष से हनुमान का पैर हिला न सका। उसके बीसों हाथों की शक्ति भी कम पड़ गई तो उसे बड़ी लज्जा आई।

"दशानन!" हनुमान ने दृढ़ स्वर में कहा–"यदि प्रभु की आज्ञा होती तो मैं यहीं तुझे रसातल में पहुंचा देता। तुझमें अपना कोई बल नहीं है, यह तेरे अहंकार का थोड़ा-सा नासमझ बल है, जो तुझे हवा में उड़ा रहा है।"

दशानन लज्जित होकर रह गया। हनुमान ने पैर उठाया तो वह अपनी आंखों को व्यवस्थित कर सका। हनुमान विजयी मुद्रा में अपने दल के साथ वहां से चले गए, अपने पीछे केवल ध्वंस शेष छोड़ गए।

दशानन सिर पकड़कर बैठ गया। यदि आज वह सफल हो जाता तो तीनों लोक उसके पराक्रम से कांप उठते, तब राम क्या स्वयं ब्रह्मा भी शिव सहित आ जाते तो भी वह अपराजेय होता। यह सब विभीषण का किया-धरा था। उस घर के भेदी ने लंका ढहा दी थी। अब तो प्राणों का मोह छोड़कर अपने संचित पराक्रम से ही शत्रु को कंपित करना होगा। आज का युद्ध निर्णायक होगा। ऐसा निश्चय करके दशानन युद्ध की योजनाएं बनाने लगा। उसने शीघ्र ही अपनी सेना को तैयार कर लिया। सबको प्रचुर मात्रा में मदिरापान कराया जिससे किसी को भी मृत्यु का भय न रहे। प्रात:काल से ही युद्ध का नगाड़ा बज उठा जिसकी ध्वनि पर राक्षस वीर विकृत नृत्य करने लगे। अंतत: दशानन सेना सहित रणभूमि में आ गया। यह क्या? आज तो राम भी रथ पर सवार थे। सारथी मातलि को देखते ही दशानन पहचान गया कि वह इंद्र का रथ था अर्थात् अब उस युद्ध में अप्रत्यक्ष रूप से देवता भी सक्रिय हो गए थे। दोनों ओर की सेनाएं एक-दूसरे से भिड़ने को तैयार थीं। वानर-भालू असंख्य थे और राक्षसों की संख्या कुछ ही हजार थी।

दशानन ने आक्रमण का आदेश देकर स्वयं भी वानर सेना का विध्वंस शुरू कर दिया तो श्रीराम उसके सामने आ गए। वह राम पर ही टूट पड़ा। वह तरह-तरह के बाण चला रहा था जैसे विक्षिप्त हो गया हो। उसे अब प्राणों की चिंता नहीं रह गई थी। ऐसी स्थिति में दशानन जैसे अहंकारी की यही मनोस्थिति हो जाती है। वह राम के साथ बराबरी का पराक्रम दिखा रहा था, परंतु उसकी सेना के योद्धा हनुमान आदि के हाथों निरंतर कम हो रहे थे। दोपहर होने तक रावण के

दस बीस योद्धा रणोन्मत्त दिख रहे थे। ऐसा भी नहीं था कि वानर-भालुओं की हानि नहीं हुई थी। असंख्य रामसेवक भी वीरगति को प्राप्त हुए थे।

दशरथनंदन-दशानन का युद्ध दर्शनीय था। दोनों ही कुशल धनुर्धर थे और एक-दूसरे के प्रहारों का भरपूर उत्तर दे रहे थे। देवता भी उस युद्ध को देखकर चकित थे। कभी दशरथनंदन तो कभी दशानन एक-दूसरे पर भारी पड़ते दिखाई देते थे।

यही वह समय था, जब आधे मुकुटों पर प्रकाश और आधे मुकुटों पर छाया पड़ रही थी। देवताओं ने हर्षित होकर प्रभु श्रीराम पर पुष्पवर्षा की। राम ने यम के संकेत को समझ लिया था और उन्होंने एक ही प्रहार में तीस बाणों का संधान किया जिन्होंने रावण के दस शीश और बीस भुजाओं को उसकी देह से अलग कर दिया। देवता अभी विजय की दुंदुभि बजाना ही चाहते थे कि दशानन के वे अंग पुनः अपने स्थान पर आ गए और उसने पैशाचिक अट्टहास किया। राम ने पुनः पुनः उसके शीश और भुजाओं को काटा, परंतु क्षणिक अंतराल पर वे पुनः आते रहे। यह देखकर देवता भी चिंतित हो गए। इस तरह उस निरंतर पुनर्जीवित होने वाले महाबली दशानन का वध असंभव था।

दशरथनंदन द्वारा यह क्रिया असंख्य बार अपनाई गई। दशानन क्षण-भर शीश और हस्तविहीन होता था और पुनर्जीवित होकर पुनः अपना भीषण पराक्रम दिखाने लगता था।

ऐसे विकट समय में विभीषण दशरथनंदन के रथ के पास पहुंचे।

"प्रभो! दशानन की नाभि में अमृत का अंश है जिसके कारण उसके शीश व अन्य अंग अक्षत हैं।" विभीषण ने बताया—"हे प्रभु, दशानन की अमरता का दूसरा कारण यह है कि वह शिव द्वारा रक्षित है, अतः जब तक शिव की अवहेलना न करेगा, तब तक अवध्य है।"

दशरथनंदन ने इस बात को गंभीरता से लिया।

"दशानन! तुम्हारा बल अतुलनीय है।" दशरथनंदन ने उसे नीतिपूर्वक उत्तेजित करते हुए कहा—"देवाधिदेव शिव तुम्हारे रक्षक हैं। यह तुम्हारा अपना बल नहीं है, वरन् पशुपति की कृपा है, जो तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं। इसके अभाव में तुम शून्य हो।"

"तपस्वी राम!" रावण गरज उठा—"भगवान आशुतोष मेरे अराध्य हैं, रक्षक नहीं। मैंने कभी उनसे रक्षा की याचना नहीं की है। यह तो केवल मेरा बाहुबल है, जो तुमसे संभाले नहीं संभल रहा है। आज राक्षसों की सत्ता पूर्ण स्थापित हो जाएगी दशरथनंदन! तीनों लोकों में दशानन के नाम का डंका बजेगा।"

"दशानन! तुम सभी विधाओं में पारंगत हो। काल की गणना तुमसे अधिक कौन कर सकता है। अपने ग्रह, नक्षत्र और गोचर की गणना करो और देखो कि तुम्हारे पास कितनी सांसें शेष हैं।" राम ने गंभीरता से कहा–"तुम्हारे मुकुट यम की छाया में आ गए हैं। काल तुम्हारे शीश पर मंडरा रहा है। वह देखो, मृत्यु तुम्हें बुला रही है।"

दशरथनंदन ने एक अग्निबाण छोड़ा जिसका लक्ष्य दशानन की नाभि थी।

"अहा, विभीषण भ्रातृद्रोही!" दशानन पीड़ा से चीख उठा–"तूने कुल को ही नहीं, भ्रातृत्व को भी कलंकित कर दिया।"

दशानन की नाभि का अमृत उस बाण के प्रदाह से शुष्क हो गया, तब राम ने एक साथ तीस बाण लक्ष्य करके छोड़े जिनसे उसके दसों शीश व बीस भुजाएं कट गए।

इस बार काल ने दया नहीं की। दशानन के दसों शीश और बीसों भुजाएं लंका की ओर चले। शीश और हाथों के बिना दशानन का विराट व विकराल शरीर रथ से उतरकर इधर से उधर रणभूमि में दौड़ने लगा। कितने ही वानर उसके पैरों के नीचे दबकर मारे गए और जब वह भूमि पर गिरा तो दशरथनंदन के चरणों में पड़ा था–वह उनका शरणागत हो गया। जीवित रहते अपने अहंकार के कारण दशानन दशरथनंदन का परम शत्रु रहा, लेकिन मृत्यु को प्राप्त होते ही उनका दास हो गया।

देवताओं ने पुष्पवर्षा की। वानर-भालू आदि हर्षित होकर विजयनाद कर रहे थे। इस विजय के रंग में भंग तब पड़ गया, जब मंदोदरी सहित दशानन की सब रानियां विलाप करते हुए छाती पीट-पीटकर रुदन करने लगीं।

"हे नाथ!" मंदोदरी करुण विलाप करते हुए दशानन के शव से कह रही थी–"आपने अपने हठ का परिणाम प्राप्त कर लिया। मेरे बार-बार समझाने पर भी आपने राम को नहीं पहचाना। हे स्वामी, आपका बल और विद्या अतुलनीय थे, परंतु अहंकारवश आप विवेक शून्य हो गए थे। जिन रघुराई के सेवक-भर आपके बल को लज्जित कर चुके थे, उनके बाणों की मार से आपको कौन बचा सकता था? नाथ, आपने बल का अनुचित प्रयोग किया।"

59

सीताजी की अग्नि-परीक्षा

"हे देवाधिपति, हे त्रिगुणातीत प्रभु!" प्रज्वलित अग्नि के अंतर से स्वर फूटा—"जनकनंदिनी पवित्रता का सृष्टिपर्यंत उदाहरण हैं। आप इन्हें स्वीकार करके सबके मलिन मुखों पर प्रसन्नता लाएं।" सीताजी अग्नि-परीक्षा देते हुए प्रज्वलित अग्नि के बीच से निर्भय होकर निर्मल स्वरूप में बाहर आ गईं।
राम ने प्रेम से सीता को अपने बाईं ओर बिठाया और वातावरण जय श्रीराम व सीता-राम की जय के नारों से गूंज उठा। देवताओं ने पुष्पवर्षा करके इस अनुपम जोड़ी के पुनर्मिलन पर हर्ष व्यक्त किया। सभी ने उस दिव्य झांकी को नतमस्तक होकर प्रणाम किया। ब्रह्मा सहित सभी देवताओं ने उनकी स्तुति की।

राम ने गंभीर स्वर में कहा—"हे मयनंदिनी! राम को परम विद्वान दशानन के अलावा न कोई समझा है और न समझ सकेगा। यह तुम्हारी भूल है कि दशानन ने बिना विचारे मृत्यु का कुलसहित वरण किया। जो राक्षसों के पूर्वज न कर सके, वह दशानन ने किया। अब शोक का त्याग करो और महाबली परम विद्वान दशानन को विधि-विधान से पंच महाभूतों में विलय होने की आज्ञा दो।"

"हे प्रभु, मुझे मेरे संशय से बाहर करें। मेरे स्वामी के विचार कभी भी मेरे मस्तिष्क में नहीं आए। कभी लगा कि वे अहंकार से ग्रस्त हैं और

कभी लगा कि उनके अहंकार में कोई उद्देश्य छिपा है। हे नाथ! मुझे संशयहीन करें।"

"हे मयकुमारी! इस संसार में बिरले ही होते हैं, जो अपना ही नहीं, वरन् अपने कुल का भी उद्धार कर देते हैं। यह विषय-विशारद दशानन का ही हठ रूपी अहंकार था, जो मुझे स्वयं यहां रण में आना पड़ा।" दशरथनंदन बोले–"जिस परमधाम की इच्छा में ऋषि-महर्षि जन्म-जन्म तक घोर तप करते हैं, दशानन ने उसे अपने द्वार पर बुला लिया। हे मयनंदिनी, संताप रहित होकर उस कुल-उद्धारक को सच्ची श्रद्धांजलि दो। सत्य को स्वीकार करो। दशानन की मृत्यु नहीं हुई है, वे दशरथनंदन के नाम के साथ ही सनातन जीवित रहेंगे।"

दशरथनंदन का मंतव्य जानकर मंदोदरी को बड़ी सांत्वना मिली और उसने प्रभु के सम्मुख शीश झुकाया, तत्पश्चात् प्रभु ने विधि-विधान से दशानन का अंतिम संस्कार कराया।

दशानन के सभी जातक संस्कार विधि-विधान से कराने के पश्चात् दशरथनंदन ने उसके शोकाकुल परिवार को जीवन-मृत्यु का सार्थक संदेश देकर सांत्वना प्रदान की और सबको समझा-बुझाकर नगर में भेज दिया। उसके बाद विभीषण आदि सभी को अपने पास बुलाया।

"मित्रो, मैं आप सबका हृदय से आभारी हूं, क्योंकि आप सभी के सहयोग से हम एक असाध्य को साध्य कर सके हैं।" दशरथनंदन कृतज्ञता भरे स्वर में कहा–"हमें आशा न थी कि दशानन जैसे महापराक्रमी को परास्त करने जैसा कार्य इतनी सहजता से हो जाएगा। मित्रो, आप सभी को जानकर हर्ष होगा कि तिथि और वार की गणना करने के पश्चात् अगले पांच दिवस बाद हमारे वनवास की अवधि समाप्त हो जाएगी और हम अपनी माताओं, गुरुओं, भाइयों और प्रिय प्रजाजनों के दर्शन का सुख प्राप्त कर सकेंगे, परंतु अभी सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य शेष है। अनुज लक्ष्मण! वनवास के नियम के अनुसार मैं अभी नगर में प्रवेश नहीं कर सकता। अतः तुम सभी लोग जाकर पहले विभीषणजी का राज्याभिषेक करो, ताकि लंका के सूने सिंहासन को राजा मिले, फिर तुम सीता के पास जाकर उसे सब कुशल-क्षेम सुनाना और अपने साथ ले आना।"

लक्ष्मण आदि ने हर्षित होकर जयनाद किया और वहां से चलकर नगर में आए। सभी विधि-विधानों से विभीषण का राज्याभिषेक हुआ, फिर हनुमान, लक्ष्मण व लंकापति विभीषण अशोक वाटिका पहुंचे। लक्ष्मण अश्रुपूरित नेत्रों से सीता के चरणों में गिर पड़े। सीता भी द्रवित होकर रोने लगीं।

"माते!" लक्ष्मण ने कहा–"प्रभु श्रीराम ने अहंकारी दशानन को उसकी सेना

सहित नष्ट करके लंका को कुटिल राक्षसों से शून्य कर दिया है। मुनिजन निर्भय हो गए हैं। बंदी देवता मुक्त होकर प्रभु का गुणगान कर रहे हैं। प्रभु श्रीराम ने लंका के सिंहासन पर महाराज विभीषण का राजतिलक कर दिया है। अब सब ओर शांति है और प्रभु श्रीराम ने मुझे आपको लेने हेतु भेजा है।"

"माते!" हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभु श्रीराम ने आपके द्वारा निर्धारित समय सीमा से पूर्व ही दुष्टों का नाश कर दिया।"

"मैं जानती थी कि मेरे प्रभु, मेरे प्राणाधार अपनी इस दासी को पुनर्जीवन देंगे।" सीता विकल होकर बोलीं—"हे हनुमान, मेरे नयन उनकी मनमोहिनी छवि के दर्शन करने को अति व्याकुल हो रहे हैं। हे भैया लक्ष्मण, अब धैर्य नहीं होता।"

सभी सीता को साथ लेकर नगर के बाहर राम के शिविर पर आए। त्रिजटा सहित सभी राक्षसियां दासी भाव से सीता के साथ ही चली आई थीं और प्रभु श्रीराम के दर्शन पाकर भाव-विभोर हो गईं।

सीता अपलक अपने प्रभु प्रियतम को निहारे जा रही थीं। दोनों के नेत्र मिले और परस्पर कोई संकेत हुआ, जो कोई ताड़ न सका।

"हे स्वामी!" सीता आर्द्र स्वर में बोलीं—"आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, जो ऐसे दुस्सह बंधन से मुक्त किया। यह बस मेरी ही कुबुद्धि के कारण हुआ और उसका मैंने परिणाम भोगा। हे नाथ, मुझ मूर्ख को यह जानकर क्षमा कर दें कि स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और हठी होती है। मैंने आपकी अवज्ञा की और स्वर्णमृग की सर्वथा कल्पना को भी सत्य माना। मैंने भैया लक्ष्मण का अपमान किया और इनके द्वारा खींची गई रेखा का उल्लंघन करने की मूर्खता की है। हे करुणानिधान! मुझे इन भूलों और मूर्खताओं का मूल्य चुकाना ही था।"

"सीते!" राम गंभीर स्वर में बोले—"तुम मेरी अर्धांगिनी थीं। मैंने अग्नि को साक्षी मानकर तुम्हारी रक्षा का वचन दिया था, जो मैंने निभाया। आज तुम मुक्त हो गईं और कहीं भी जाने को स्वतंत्र हो। राम तुम्हें अपने साथ रखने में असमर्थ है, क्योंकि कोई भी क्षत्रिय ऐसी स्त्री को पुनः नहीं अपनाना चाहेगा, जो एक लंबे समय तक किसी राजा की कैद में रही हो। इससे वह पुरुष निंदा और उपहास का पात्र बनता है।"

सीता तो जैसे पाषाण शिला ही बन गईं। अन्य उपस्थित जन भी स्तब्ध रह गए। राम का यह निर्णय हृदयविदारक था।

लक्ष्मण के नेत्र छलक उठे।

"हे करुणानिधान श्रीराम!" त्रिजटा ने हाथ जोड़कर कहा—"जब से सीता लंका में आई है, तब से मैंने क्षण-भर भी इसका साथ नहीं छोड़ा। यह मेरे स्वामी

का आदेश था। यह मेरी पुत्री की भांति मेरे साथ सुरक्षित और पवित्र रही है। हे नाथ, इसने हर क्षण केवल आपका नाम जपा है। आप इतने कठोर कैसे हो सकते हैं?"

"त्रिजटे! सीता पर संदेह करना तो इस जगत का सबसे अक्षम्य अपराध होगा। मैं सीता पर संदेह नहीं कर रहा हूं। मैं संसार के उस व्यवहार का पालन कर रहा हूं, जो ऐसी परिस्थितियों में साधारण मनुष्य करते हैं। मैं समाज की उपेक्षित दृष्टि सहन करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हूं।" राम ने कहा–"यह पुरुष-प्रधान समाज हमारे प्रेम को नहीं समझ सकता, हमारे परस्पर विश्वास को मान्यता नहीं देगा। ऐसे समय में उसकी आक्षेप भरी सोच ही प्रबल होती है।"

"हे नाथ!" विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा–"मेरा ज्येष्ठ भाई दशानन अहंकारी था, हठी था, परंतु व्यभिचारी नहीं था। उसे तो बहुत पहले ही नल-कूबर का श्राप था कि यदि उसने स्वयं अपनी पत्नी की भी इच्छा के विरुद्ध उसे स्पर्श किया तो उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे। हे प्रभु! जनकनंदिनी परम पवित्र हैं।"

"हे नाथ!" लक्ष्मण ने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा–"आपका निर्णय अकारण नहीं होता और निश्चय ही इसके पीछे का सामाजिक कारण स्वीकार्य है, परंतु आप तो कृपालु हैं। निरपराध को दंड आप कैसे दे सकते हैं? इसमें माता सीता का तो कोई दोष नहीं होगा, अतः हे नाथ, इस समस्या का निवारण भी आप ही करें।"

"हे लक्ष्मण! सीता को अग्नि-परीक्षा देकर अपनी पवित्रता सिद्ध करनी होगी। सभी देवता, आकाश, वायु व हम सभी उपस्थित जन इसके साक्षी होंगे। सीता पवित्र है तो अग्नि इसके लिए शीतल होगी और ये सुरक्षित रहेंगी।"

"हे भैया लक्ष्मण!" सीता रोते हुए बोलीं–"अब आप ही मेरे संकट को दूर करें और अतिशीघ्र चिता सजाकर मुझ अभागिन को इस दारुण पीड़ा से मुक्ति दिलाएं। मेरा जीवन व्यर्थ है, जब मेरे स्वामी को मेरे कारण संसार में उपेक्षा या उपहास का सामना करना पड़े। इससे अच्छा तो मेरा आत्मदाह ही श्रेष्ठ होगा।"

सीता के आदेश पर लक्ष्मण ने लकड़ियों की चिता तैयार कर दी और रोती-बिलखती सीता उस पर जा बैठीं।

"हे अग्निदेव! सहज प्रज्वलित होकर मुझ अभागिन की इस काया को भस्म करो, यदि मैंने कभी विचार रूप में भी परपुरुष का मनन किया हो। आप सभी प्राणियों में सदा उपस्थित रहते हैं, अतः आपसे अधिक मेरे विषय में कौन जानता है। मुझे इस आरोप से, संदेह से मुक्त करो अग्निदेव!"

सीता के आह्वान पर अग्नि प्रज्वलित हो गई। इस लीला के पीछे जो कारण

था, वह तो राम, सीता और अग्निदेव ही जानते थे। इस अग्नि-परीक्षा के द्वारा ही तो राम वास्तविक सीता को अग्नि से वापस प्राप्त करते जिन्हें पंचवटी पर उन्होंने अग्निदेव को सौंपा था।

"हे देवाधिपति, हे त्रिगुणातीत प्रभु!" प्रज्वलित अग्नि के अंतर से स्वर फूटा—"जनकनंदिनी पवित्रता का सृष्टिपर्यंत उदाहरण हैं। आप इन्हें स्वीकार करके सबके मलिन मुखों पर प्रसन्नता लाएं।"

सीताजी अग्नि-परीक्षा देते हुए प्रज्वलित अग्नि के बीच से निर्भय होकर निर्मल स्वरूप में बाहर आ गईं।

राम ने प्रेम से सीता को अपने बाईं ओर बिठाया और वातावरण जय श्रीराम व सीता-राम की जय के नारों से गूंज उठा। देवताओं ने पुष्पवर्षा करके इस अनुपम जोड़ी के पुनर्मिलन पर हर्ष व्यक्त किया। सभी ने उस दिव्य झांकी को नतमस्तक होकर प्रणाम किया। ब्रह्मा सहित सभी देवताओं ने उनकी स्तुति की।

समस्त संसार सुखी हो गया। लंका से भी विषाद हट गया था। राम के आदेश पर सभी मृत वानर-भालुओं और राक्षसों का विधिवत् सामूहिक दाह संस्कार किया गया। राम के हाथों मुखाग्नि पाकर सभी परम पद को प्राप्त हुए। राम की कृपा से राक्षसकुल का उद्धार हो गया।

राम के आदेश पर लंकापति विभीषण ने अपने नगर की पुनर्स्थापना की। विधवाओं, अनाथों का पुनर्वास किया। इसके साथ ही दशानन की ध्वस्त हो चुकी गुप्त वैज्ञानिक प्रयोगशाला से अति विध्वंसकारी रसायनों को भी सुरक्षित किया गया जिससे भविष्य में वे मानवता के लिए अहितकारी सिद्ध न हो सकें। वहीं उन्हें दशानन के कुछ विशिष्ट शोधों के पत्र मिले, जो अपूर्ण शोध थे। उसकी आंखें भर आईं। जब विभीषण ने राम के समक्ष वे शोधपत्र लाकर रखे तो वे भी गंभीर हो गए।

"विभीषण! दशानन निःसंदेह एक महान विद्वान और वैज्ञानिक था। यदि उसने अपने ज्ञान का उपयोग मानव-कल्याण हेतु किया होता तो अपने अहंकारी पराक्रम के स्थान पर वह सर्वपूज्य होता।" राम बोले—"दशानन की इन खोजों से, जो अपूर्ण रह गई हैं, यह भी सिद्ध होता है कि आज का काम कल पर नहीं टालना चाहिए, क्योंकि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। दशानन ने यही भूल कर दी और कर लूंगा की मनोवृत्ति से ग्रस्त होकर इन्हें पूर्ण न कर सका। यह भविष्य की पीढ़ियों के लिए सीख है कि कार्य को प्रमाद या आलस्यवश टालने से वह कभी संपन्न नहीं होता।"

"आप सत्य कह रहे हैं प्रभु!" विभीषण ने स्वीकार किया।

श्रीराम ने तिथि, मुहूर्त और काल की गणना करके विभीषण से अयोध्या लौटने की आज्ञा मांगी और सभी वानर एवं भालुओं से कृतज्ञतापूर्वक अपने-अपने स्थान पर जाने की विनती की। सभी उनके साथ अयोध्या जाना चाहते थे, परंतु प्रभु का आदेश भी नहीं टाल सकते थे। हनुमान, विभीषण व सुग्रीव की विनती को राम ने स्वीकार कर लिया था। वे तीनों ही प्रसन्नता से अपने भग्य को सराह रहे थे।

निश्चित दिन पुष्पक विमान सजाया गया। उसमें राम, सीता और लक्ष्मण बैठे। लंकावासी भाव-विभोर भी थे और उदास भी। त्रिजटा और अन्य सभी राक्षसियां सीता से गले मिलकर रोईं। त्रिजटा ने तो सीता को पुत्री की भांति विदा करते हुए अनेक उपहार दिए। पुष्पक विमान लंका से उड़ चला।

पहले किष्किंधा आकर सुग्रीव ने राम के आदेश पर अंगद को राज्य का कार्यभार सौंपा और कुछ क्षण वहां विश्राम करके आगे बढ़े, फिर मार्ग में जहां-जहां मुनियों के आश्रम पड़े, वहां थोड़ा-थोड़ा विश्राम किया गया। चित्रकूट पर केवट व निषादराज से भेंट हुई तो वे पैदल ही परिवारों सहित अयोध्या की ओर चल पड़े थे। अत्यंत हर्ष भरा वातावरण था।

"हे हनुमान! तुम जाकर गुरु वशिष्ठ और अनुज भरत को हमारे अयोध्या लौटने का समाचार पहुंचाओ।" राम ने कहा तो हनुमान तुरंत आज्ञा का पालन करने हेतु चल पड़े।

60

लीलाधर की विहंगम लीला

कोलाहल में कुछ और सुनाई ही नहीं दे रहा है—केवल देख पा रहे हैं। भरत अब सहज हो रहे हैं, सब विषाद अश्रुओं में बह गया। वे माता जानकी के चरणों में नत हैं और राम गुरु वशिष्ठ के चरणों में, फिर भरत व लक्ष्मण का भी वैसा ही भावपूर्ण मिलन हुआ।
एकाएक एक चमत्कार हुआ, जो देवताओं के अतिरिक्त कोई न जान सका। लीलाधर ने लीला की। एक-एक प्रजावासी से मिलना कठिन था, अतः जितने प्रजाजन हैं, उतने ही राम हो गए। सब अपने राम को देख पा रहे हैं। जिसके सामने हैं, वह दूसरे को तिर्यक दृष्टि से देख रहा है मानो कह रहा हो कि देखा, प्रभु ने मुझे वरीयता दी है, परंतु दूसरे की दृष्टि में भी वही भाव है, क्योंकि उसके राम तो उसके सामने हैं। यह विहंगम दृश्य है। जो जान गए हैं, वे मुग्ध हो रहे हैं।

नंदीग्राम की कुटिया पर गुरु वशिष्ठ पधारे तो भरत के व्याकुल मन को कुछ शांति का अनुभव हुआ। क्षण-प्रतिक्षण प्रभु-दर्शन की उत्कंठा उन्हें व्यग्र किए रहती थी। इस प्रतीक्षा ने भरत को कृशकाय कर दिया था। पिछले सात दिन तो जैसे भरत ने रोते-बिलखते व्यतीत किए थे।

गुरु वशिष्ठ के आते ही भरत उनके पैरों से लिपटकर बिलख पड़े।

"हे प्रिय भरत! यह संताप का समय नहीं।" वशिष्ठजी बोले–"शुभ शकुन हो रहे हैं। दिशाएं प्रफुल्लित हो उठी हैं। निश्चय ही राम अयोध्या के चौदह वर्षों के महादुख को परम सुख में बदलने आ रहे हैं। तिथि व वार की गणना करने पर उनके वनवास की अवधि समाप्त होने में एक ही दिन शेष है। महोत्सव की तैयारियां करो और मुख की मलिनता दूर करो।"

"गुरुदेव!" भरत आर्द्र स्वर में बोले–"प्रतीक्षा की अंतिम घड़ियां अत्यंत व्याकुल कर रही हैं। जब से प्रभु श्रीराम का लंकायुद्ध में रत होना सुना है, तब से मन बहुत ही व्यथित हो रहा है। मैं अभागा प्रभु के किसी भी काम न आ सका। लक्ष्मण बड़े पुण्यवान् हैं, जिन्हें हर घड़ी उनकी सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। गुरुदेव, क्या प्रभु श्रीराम को मेरा स्मरण रहता होगा?"

"भरत! तुम तो उनके प्रिय अनुज हो, उन कृपासिंधु को तो अपने साधारण प्रजाजन का भी स्मरण और चिंतन रहता है। वह देखो भरत, पश्चिम दिशा में आकाश कितना स्वच्छ हो गया है। चिड़ियों का मधुर कलरव गूंज रहा है।"

"अर्थात्...अर्थात् मेरे प्रभु आ रहे हैं।" भरत की व्यग्रता और भी बढ़ गई–"गुरुदेव, मेरा हृदय अनियंत्रित गति से धड़क रहा है। प्रसन्नता का आवेग मेरे रक्तचाप को वेग दे रहा है। मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से पुलकित हो रहा है।"

"प्रभु श्रीराम की प्रीति में ये तो मन के साधारण व्यवहार हैं भरत, जबकि तुम तो उनके प्राण हो! वह देखो, वह कौन आ रहा है। यह तो कपिश्रेष्ठ वायुपुत्र हनुमान हैं! हे भरत, उनका अभिनंदन करो।" वशिष्ठजी बोले।

सामने से चले आ रहे हनुमान को देखकर भरत व्याकुल होकर उनकी ओर दौड़े और भुजाएं फैलाकर उनसे लिपट गए।

"हे रामप्रिय, हे पवनपुत्र! आपके दर्शन मेरी समस्त पीड़ाओं को हरने वाले और मेरी परम आशा को बल देने वाले हैं। हे कपिराज, आपका आगमन मेरे प्राणों का आगमन है। मुझे वह शुभ समाचार कहिए–ठहरिए, मैं अपने हृदय को दोनों हाथों से थाम लेता हूं, क्योंकि यह अब अनियंत्रित है।"

"हे भरतजी, आपका यह भाव देखकर मैं पुलकित हूं। मैं समझता था कि संसार में प्रभु प्रीति में मुझसे अधिक बौराया कोई नहीं है, परंतु प्रभु श्रीराम सत्य ही कहते हैं कि जैसी प्रीति भरत की मुझमें है, वैसी किसी अन्य की नहीं।" हनुमान भाव-विभोर होकर बोले–"हे रामानुज, प्रभु श्रीराम तीनों लोकों को राक्षसों से निर्भय करके माता जानकी व अनुज लक्ष्मण व अपने सेवकों सहित सकुशल अयोध्या लौट रहे हैं। वे चित्रकूट पर गंगापूजन करने हेतु ठहरे हैं और मुझे आज्ञा दी है कि आपको और गुरु वशिष्ठ को यह समाचार दे दूं।"

"अहा, मेरे कानों में अमृत घुल गया। हे पवनपुत्र, इस प्राणदायी समाचार को देने वाले अपने हितकारी को क्या दूं, क्योंकि संसार में कोई भी पदार्थ मुझे ऐसा नहीं सूझता, जो इस समाचार के तुल्य भी हो! गुरुदेव, आपने सुना! प्रभु आ गए हैं। मेरे प्रभु आ गए हैं–अब अवध का दारुण समय समाप्त हुआ।"

हनुमान ने गुरु वशिष्ठ के चरणों में शीश झुकाया तो उन्होंने भी उन्हें हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

"हे पवनपुत्र, तुम धन्य हो! तुम सदा सबका उपकार करने वाले हो। मेरा आशीर्वाद है कि युगों-युगों तक तुम्हारी कीर्ति अखंड रहेगी। जो भी मनुष्य तुम्हारा स्मरण करेगा, उसके सब कष्ट दूर हो जाएंगे। अब हमें उन सबकी कुशल-क्षेम सुनाओ और लंकाकांड का संक्षिप्त वर्णन करो।"

हनुमान ने वशिष्ठजी की आज्ञा का पालन किया। भरत के नेत्रों से अश्रु बह रहे थे। हनुमान द्वारा प्रभु की सेवा-सहायता ने उन्हें अभिभूत कर दिया था।

"हे पवनपुत्र! आपने हम सबको अपना ऋणी कर दिया! आपके जैसी सेवा कोई और समर्पण किसमें होगा!" भरत उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

"अब मुझे आज्ञा दें कुमार, क्योंकि प्रभु ने मुझे आपको संदेश देने के बाद लौटने को कहा था। आप उनके स्वागत की तैयारी करें, मैं उन्हें शीघ्र ही लेकर लौटता हूं।"

"अवश्य! आप शीघ्र ही उन सुखराशि को लेकर आएं।"

हनुमान लौट चले। भरत का हृदय प्रसन्नता के आवेग से फटा जा रहा था।

"गुरुदेव! मुझे तो कुछ सूझ ही नहीं रहा है कि मैं क्या करूं?" भरत बोले–"इस प्रसन्नता के आवेग ने मेरी बुद्धि संकुचित कर दी है। आप मेरा मार्गदर्शन करें।"

"भरत! तुम्हारी दशा मैं समझ सकता हूं, क्योंकि घायल की गति घायल ही जानता है, परंतु अभी स्वयं को नियंत्रित करने योग्य कार्य करो। इस समाचार को राजभवन और प्रजावासियों तक पहुंचाओ और प्रभु श्रीराम के स्वागत की तैयारी करो।"

भरत ने आज्ञा का पालन किया और कुछ ही देर में वर्षों से सुषुप्त पड़ी अयोध्या जैसे चैतन्य हो गई, जैसे अचानक सोए पड़े पंछी चहचहा उठे हों।

जो जहां जैसी स्थिति में था, समाचार सुनते ही दौड़ पड़ा। राजभवन में जो मौन और शून्यता-सी व्याप्त हो गई थी, वह क्षण-भर में कपूर की भांति उड़ गई। कौशल्या व सुमित्रा के जैसे प्राण लौट आए और वे दौड़ पड़ीं। कैकेयी प्रसन्न और लज्जित थीं। उन्होंने देखा था कि चौदह वर्ष कैसे उस राजभवन में

उदासीनता का साम्राज्य रहा था। सब यंत्रवत् होता था। उनके कारण कैसे उस भव्य महल में भीड़ होते हुए भी सूनापन-सा रहता था। राजभवन का विशाल प्रांगण पुनः जीवंत हो उठा।

शत्रुघ्न की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी, परंतु अभी उसके पास समय भी तो नहीं, जो इस प्रसन्नता को किसी के साथ बांट सके, उसे अनेक काम करने हैं। नगर की उस शोभा को पुनः लौटाना है, जो राम के अभाव में चली गई थी। शत्रुघ्न नगर को सजाने-संवारने में इधर-से-उधर भागे फिर रहे थे। नगरवासी अपने-अपने घरों को सजाने लगे। चौदह वर्षों से औपचारिकता पूरी करते थे। व्यापारियों ने बाजार सजाने आरंभ कर दिए। स्त्रियों ने मंगलगान गाते हुए अयोध्या को स्वर दिए। सब अपनी-अपनी आरती की थालियां सजा रही हैं।

उधर नंदीग्राम आश्रम पर जैसे मेला लग गया। कौल, भील, निषाद आदि पैदल ही भागे चले आए हैं और श्रीराम की अनुपम झांकी का वर्णन कर रहे हैं। विमान चर्चा कौतूहल का विषय बन गया है। जिन्होंने उस उड़ने वाले रथ का देखा है, वे उसके विषय में परिकथा की भांति बता रहे हैं। अनेक ब्राह्मण स्वागत-गान का अभ्यास कर रहे हैं।

भरत की व्यग्रता सबसे अलग है। वे एकटक आकाश की ओर देख रहे हैं। वे चाहते हैं कि विमान और प्रभु श्रीराम दोनों को सबसे पहले वही देखें, फिर वह शुभ घड़ी भी आ गई और कोलाहाल मच गया। वह दिव्य विमान आ रहा है—कौतूहल और प्रसन्नता के आवेग ने कैसा दृश्य उत्पन्न कर दिया है! भरत अपनी देह की सुध भी भूल गए हैं—उनके नेत्र एकटक देखते हुए पथरा-से गए हैं।

पुष्पक विमान उतरा और वह दिव्य झांकी सबको दिखाई दी। राम-सीता और लक्ष्मण कैसे मन मोहने वाले प्रतीत हो रहे हैं! तीनों विमान से उतरे और फिर अन्य सभी उनके पीछे उतरे।

भरत अब धैर्य नहीं रख पाए और विह्वल होकर दौड़ते हुए राम के चरणों पर गिर गए। वे जैसे चैतन्य शून्य हो गए हैं। राम के नेत्रों से जल बह रहा है। उन्होंने भरत को उठाकर अंकपाश में भर लिया। यह दृश्य देखकर कौन जड़-चेतन होगा, जो द्रवित न हो जाए। राम-भरत के मिलन का यह विहंगम दृश्य था। दोनों ही रोए जा रहे हैं। आंसुओं में ही स्नेह की अभिव्यक्ति है।

आकाश से देवता भी इस भ्रातृप्रेम पर भाव-विभोर हो रहे हैं। राम-राम-राम के कोलाहल में कुछ और सुनाई ही नहीं दे रहा है—केवल देख पा रहे हैं। भरत अब सहज हो रहे हैं, सब विषाद अश्रुओं में बह गया। वे माता जानकी

के चरणों में नत हैं और राम गुरु वशिष्ठ के चरणों में, फिर भरत व लक्ष्मण का भी वैसा ही भावपूर्ण मिलन हुआ। राम सभी मुनियों, ब्राह्मणों से आशीर्वाद ले रहे हैं, फिर वे सभासदों से गले मिलकर सबकी कुशल-क्षेम पूछ रहे हैं। नगरवासी उनकी झलक पाने को जैसे एक-दूसरे के कंधे पर चढ़े जा रहे हैं। राम किसी में भेद नहीं करते। उनके लिए भरत और प्रजा में कोई अंतर नहीं, सभी पर समान स्नेह है।

एकाएक एक चमत्कार हुआ, जो देवताओं के अतिरिक्त कोई न जान सका। लीलाधर ने लीला की। एक-एक प्रजावासी से मिलना कठिन था, अतः जितने प्रजाजन हैं, उतने ही राम हो गए। सब अपने राम को देख पा रहे हैं। जिसके सामने हैं, वह दूसरे को तिर्यक दृष्टि से देख रहा है मानो कह रहा हो कि देखा, प्रभु ने मुझे वरीयता दी है, परंतु दूसरे की दृष्टि में भी वही भाव है, क्योंकि उसके राम तो उसके सामने हैं। यह विहंगम दृश्य है, जो जान गए हैं, वे मुग्ध हो रहे हैं।

इसके बाद माताओं और पुत्रों का भावुक मिलन हुआ। कैकेयी सकुचा रही हैं। दृष्टि उठाए नहीं उठती तो राम उनकी दशा समझकर उनके पास आए और उन्हें सुंदर उपदेशों से समझाकर उनकी ग्लानि दूर की। सीता साक्षात् लक्ष्मी की भांति शोभित हैं और अपनी सासुओं के आशीर्वादों से लदी जा रही हैं। कैसा स्नेह बरस रहा है—देवता भी ऐसे स्नेह को तरसते हैं। मानवीय स्नेह विशुद्ध भावनात्मक है, इनकी अनुभूति के लिए मनुष्य जन्म ही चाहिए, तभी तो देवता भी मनुष्य रूप में जन्म लेने को लालायित रहते हैं।

आज अयोध्या की शोभा अवर्णनीय है। अयोध्यावासियों की प्रसन्नता का वर्णन नहीं किया जा सकता। अभी वनवास की अवधि में रात्रि शेष है, अतः आज नंदीग्राम की शोभा स्वर्ग समान हो गई है। करोड़ों दीपक जल उठे हैं। मंगलगान हो रहे हैं। कहीं सुग्रीव तो कहीं विभीषण अयोध्यावसासियों के अतिथि बनकर प्रसन्न हैं और राम की महिमा का गुणगान कर रहे हैं।

रघुकुल का परिवार आज फिर एक साथ शोभायमान है। श्रीराम उन सबको अपने श्रीमुख से सुंदर उपदेश दे रहे हैं। हनुमान इस प्रकार मनोयोग से उनके चरणों में बैठे हैं मानो अपनी सुधि ही भूल गए हैं। कहीं मंगलगान हो रहे हैं और कहीं बालकों के झुंड रामधुन गा रहे हैं।

गुरु वशिष्ठ ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों से विचार-विमर्श करके श्रीराम के राजतिलक का शुभ मुहूर्त निश्चित कर दिया था। भरत ने उत्साह में भरकर सभी मित्र राजाओं, संबंधियों और ऋषि-महर्षियों के पास निमंत्रण भेज दिए थे। राजतिलक

की भव्य तैयारियां शुरू हो गई थीं। स्थान-स्थान पर यज्ञशालाएं स्थापित हो गई थीं। घृत, नैवेद्य और समिधा का भंडारण कर लिया गया था। सुदूर राज्यों से दान-दक्षिणा की आशा में ब्राह्मण और याचक आने लगे थे। अनेक भोजनालय, विश्रामगृह और अतिथिशालाएं अतिथियों की सेवा में जुटे हुए थे। नगरवासी अतिथि सत्कार में निमग्न थे। देवता भी ब्राह्मण वेश धरकर उस आतिथ्य का सुख लेने और उस भव्य समारोह का साक्षी बनने आ गए थे।

61

अयोध्या में रामराज्य

राम और रमापति दशरथनंदन-जनकनंदिनी होकर सांसारिक जनों को साकार भक्ति का पुण्य लाभ दे रहे थे। यही त्रेतायुग की महिमा थी।
राम के प्रभाव से अयोध्या का वैभव अमरावती के वैभव से भी सुंदर था—सिंह और बकरी सरयू के तट पर एक साथ पानी पीते देखे जा सकते थे—यह रामराज्य था। त्रिताप कहीं अज्ञातवास पर चले गए थे। वैद्यों के पास रोगी नहीं आते थे, क्योंकि रोग ने कहीं दूर जाकर वास कर लिया था। संपन्नता का यह हाल था कि लक्ष्मी ने किसी को भी अपनी कृपा से वंचित नहीं रखा था। सब ओर समृद्धि थी। समय पर वर्षा होती थी और भूमि भरपूर बीज को गुणित कर रही थी। रामराज्य में सब ओर सुख था। आश्रम, गुरुकुल, विद्याकेंद्र सब संपन्न थे। वेदमंत्रों से सारी अयोध्या गूंज रही थी। सब प्रकार से आनंद-वर्षा हो रही थी।

निश्चित मुहूर्त से पूर्व गुरु वशिष्ठ आदि महर्षियों के आदेश पर श्रीराम ने स्नानादि किया और भव्य वस्त्राभूषण धारण कर लिये। उनकी शोभा देखते ही बनती थी। सभी हर्षित हो रहे थे। वेदियों में अग्नि प्रज्वलित हो गई और मंत्रोच्चारणों के उच्च स्वर से दिशाएं गुंजायमान होने लगीं। समिधा की सुगंध से वातावरण सुगंधित हो गया था। दानशालाओं

के सामने ब्राह्मण और याचकों की कतारें लगी हुई थीं और जिनको दान मिल गया था, वे उसे उठा भी नहीं पा रहे थे।

राम सिंहासन पर विराज गए थे। सबसे पहले गुरु वशिष्ठ ने मंत्रोच्चारण के साथ उनका तिलक किया। देवताओं ने वाद्ययंत्रों के साथ उस क्षण का स्वागत किया। गुरुदेव ने स्वर्णजड़ित दिव्य राजमुकुट को उठाकर श्रीराम के मस्तक पर रखा, जो इंद्र के मुकुट के समान शोभायमान हो रहा था। आकाश से पुष्पों की अनवरत् वर्षा हो रही थी। महाराजाधिराज रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचंद्रजी अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान हो गए थे। एक लंबी अवधि तक राजा से वंचित रहे उस सिंहासन ने भी जैसे स्वर्गिक सुख की प्राप्ति की।

"रघुकुल शिरोमणि राजा रामचंद्र की...जय!"

इस महाघोष ने दसों दिशाओं को गुंजायमान कर दिया था। श्रीराम के बाईं ओर के सिंहासन पर जानकीजी विराजीं। साक्षात् लक्ष्मी-विष्णु की वह झांकी नेत्रों को सुख देने वाली थी–जो भी देखता, एकटक देखता रह जाता। ऐसी दिव्य झांकी दुर्लभ थी। अयोध्या का पुण्य प्रभाव अद्वितीय है। त्रिलोकीनाथ ने आज उस भूमि पर अपना आसन लगाया था। राम और रमापति दशरथनंदन-जनकनंदिनी होकर सांसारिक जनों को साकार भक्ति का पुण्य लाभ दे रहे थे। यही त्रेतायुग की महिमा थी।

राम के प्रभाव से अयोध्या का वैभव अमरावती के वैभव से भी सुंदर था–सिंह और बकरी सरयू के तट पर एक साथ पानी पीते देखे जा सकते थे–यह रामराज्य था। त्रिताप कहीं अज्ञातवास पर चले गए थे। वैद्यों के पास रोगी नहीं आते थे, क्योंकि रोग ने कहीं दूर जाकर वास कर लिया था। संपन्नता का यह हाल था कि लक्ष्मी ने किसी को भी अपनी कृपा से वंचित नहीं रखा था। सब ओर समृद्धि थी। समय पर वर्षा होती थी और भूमि भरपूर बीज को गुणित कर रही थी। रामराज्य में सब ओर सुख था। आश्रम, गुरुकुल, विद्याकेंद्र सब संपन्न थे। वेदमंत्रों से सारी अयोध्या गूंज रही थी। सब प्रकार से आनंद-वर्षा हो रही थी।

एक दिन विभीषण और सुग्रीव ने प्रभु से विनय की।

"हे नाथ!" विभीषण ने करबद्ध होकर कहा–"इंद्र होने के लिए जाने कितने व्रत और तप करने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर यह स्वर्गिक सुख प्राप्त होता है। हमने तो बिना किसी प्रयास के ही सब स्वर्गिक सुख प्राप्त कर लिये। यह सब आपकी करुणा और कृपा का फल है। हे रघुनाथ! अब बहुत समय हो गया है और मुझे भी अपनी प्रजा का ध्यान रखने का दायित्व आपने दिया है, अत: आप मुझे अपने दायित्व का निर्वहन करने की आज्ञा दें।"

"हे प्रभो! यद्यपि यह जीवन इसी नगरी में छोटे-से-छोटा कार्य करते हुए भी

व्यतीत हो जाए तो भी सार्थक है, परंतु नाथ! दायित्व और कर्तव्य हमने आपसे ही सीखे हैं। अत: हे नाथ! मुझे भी आज्ञा दें।" सुग्रीव ने कहा।

श्रीराम ने वात्सल्यपूर्ण नेत्रों से दोनों की ओर देखा।

"प्रिय विभीषण और सुग्रीव! आप मेरे अतिथि हैं और मेरा आतिथ्य धर्म मुझे आज्ञा नहीं देता कि मैं आपको जाने के लिए कहूं।" राम गंभीरता से बोले–"परंतु दायित्वों के विरुद्ध चलने का परामर्श भी मैं नहीं दे सकता। आप मुझे इस संशय से उबारकर जो भी उचित लगे, वह करें–यही मेरा मत है।"

"नाथ! संसार में मर्यादा स्थापित करने के लिए ही आपने यह नर रूप धारण किया है।" विभीषण ने विनयपूर्वक कहा–"आपके द्वारा स्थापित मर्यादाओं का उल्लंघन करना हमारे वश में नहीं है। आपके चरणों में हमारी प्रीति सदा बनी रहे–ऐसा आशीर्वाद दीजिए।"

राम ने दोनों के सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ रखा। हनुमान एक ओर उदास मन खड़े थे। राम ने उनकी ओर देखा।

"प्रभो! मेरा मन अभी सेवा से नहीं भरा है। हे वानरराज सुग्रीव, यदि आप आज्ञा दें तो मैं कुछ दिन और इस स्वर्गिक आनंद का सुख प्राप्त करूं!"

"प्रिय हनुमान! आप हमारे संकटमोचक हैं। प्रभु की कृपा से सब संकट दूर हो गए हैं, अत: आप जब तक चाहें, तब तक प्रभु की सेवा में रह सकते हैं।"

हनुमान ने आशा भरी दृष्टि से प्रभु श्रीराम की ओर देखा जिन्होंने नेत्रों से ही उन्हें सांत्वना और आज्ञा दे दी। हनुमान की प्रसन्नता का ठिकाना न था। सुग्रीव और विभीषण को श्रीराम ने भावभीनी विदाई दी और उनके साथ शत्रुघ्न को भी भेज दिया कि उन्हें ससम्मान पहुंचाकर आएं।

हनुमान राम की सेवा में रह गए। श्रीराम ने जन-कल्याण के लिए बहुत से यज्ञ कराए। उनके राज्य में सभी लोग अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में रहते हुए वेद-मार्ग पर चलते थे। मर्यादाओं का भली-भांति पालन होता था। न किसी को किसी प्रकार का दंभ है, न भय था और न शोक। अब रामराज्य में दंड केवल संन्यासियों के हाथों की छड़ी रह गया था, क्योंकि कहीं न अपराध था, न अपराधी! 'जीतना' शब्द का राम ने अर्थ ही बदल दिया था, क्योंकि समस्त द्वीप तो उनकी सत्ता में था, अत: जीतना किसे! मन को जीतना था! मूक और मुखर सभी प्राणी परस्पर बैर भाव भूलकर प्रेम से रहते थे। श्रीराम ने बहुत से यज्ञ किए और जीवन-मूल्यों व मर्यादाओं की स्थापना की।

चारों दिशाओं में रघुकुल का प्रभाव था। लक्ष्मण पश्चिमी राज्यों का संचालन करते थे। पूर्व में शत्रुघ्न ने राम का प्रभाव अक्षुण्ण रखा है। दक्षिण दिशा में भरत

ने दायित्व संभाला और उत्तर में तो स्वयं हिमालय रूपी श्रीराम थे। हनुमान अपने प्रभु के सदा संगी रहे—क्षण-भर भी अपने प्रभु से दूर नहीं रहना चाहते।

परम सुंदर सीता-राम की युगल जोड़ी जब सजती, हनुमान उनके चरणों में बैठते और लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न हाथ जोड़े खड़े होते तो इस भव्य झांकी को देखने देवतागण ब्राह्मणवेश में पहुंचते थे। श्रीराम ने जिस प्रकार सभी जीवन-मूल्यों का पालन करते हुए मर्यादाओं की स्थापना की और नर रूप होकर मनुष्य के उत्तम चरित्र के दर्शन दिए, वह उन्हें सभी पौराणिक चरित्रों में श्रेष्ठ सिद्ध करता है।

परम मातृ-पितृभक्त, गुरुभक्त, भ्रातृस्नेही, मित्र प्रेमी और चर-अचर पर समान रूप से स्नेह रखने वाले उन रघुकुल शिरोमणि, दशरथनंदन श्रीराम का नाम प्रत्येक युग और प्रत्येक काल में सहज ही भवबाधा पार कराने और मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है।

62

सीताजी का परित्याग

"माते! प्रभु श्रीराम ने मुझे जो कार्य सौंपा है, वह क्षण-भर में मेरी सौ बार मृत्यु के समान है। हे निरपराधिनी, हे जगज्जननी, यह आप दोनों की ही कोई लीला है अथवा नियति की क्रूरता कि प्रभु श्रीराम ने आपको त्याग दिया है। मुझ अभागे को आपको यहां वनखंड में छोड़ देने का आदेश दिया है अयोध्यापति ने।" लक्ष्मण बिलख पड़े।

"मे...मेरा...मेरा अपराध!" सीता के नेत्र पथरा गए–"श्रीरघुवीर ने मेरा अपराध क्या बताया? मैंने तो जान-बूझकर कोई त्रुटि भी नहीं की।"

"माता, आपका कोई अपराध नहीं। लोक-लाज और सामाजिक व्यवस्था ने प्रभु श्रीराम को ऐसा निर्णय लेने पर विवश कर दिया है। मर्यादाओं की रक्षा का संकल्प लिए प्रभु इतने कठोर हृदय हुए हैं कि उन्होंने आदेश के अतिरिक्त कोई अन्य बात नहीं कही।"

रामराज्य में सर्वत्र सुख और शांति थी। सभी नगरवासी धर्म और कर्म के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे थे। न्यायप्रिय राजा राम अपनी प्रजा को सभी प्रकार से प्रसन्न रखते थे। शुभ समाचार यह था कि सीता गर्भवती थीं और तीनों सास उसका पूरा ध्यान रखती थीं।

समय बड़ा बलवान होता है या यह कहें कि श्रीराम की नरलीला अगले सोपान में चरण रख रही थी।

राम राजकीय नीति के अनुसार कुशल राजा की भांति प्रजा के विचारों को जानने के लिए विश्वासपात्र गुप्तचरों को प्रजा के बीच भेजते रहते थे। एक दिन एक गुप्तचर ने आकर जो बताया, उसने राम को अति गंभीर कर दिया।

"हे महाराज, आज मैंने जो सुना, उसे शब्द देने में मेरी जिह्वा कांपती है।" गुप्तचर हाथ जोड़कर बोला–"एक शूद्र धोबी के मुख से आपके लिए जो अशोभनीय बात निकली तो मेरा रक्त खौल उठा, परंतु आपकी आज्ञा के बिना उसे दंडित न कर सका।"

"गुप्तचर! समाज में स्वतंत्रता होती है–अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। जो राजा अपनी प्रजा के विचारों पर प्रतिबंध लगाए, वह क्रूर होता है। तुम निःसंकोच कहो कि उसने क्या कहा?" राम ने गंभीरता से पूछा।

"महाराज! उस धोबी की स्त्री उसे बिना बताए कुछ दिन के लिए अपनी बहन के घर दूसरे नगर चली गई थी। जब वह लौटी तो धोबी ने उसे अपने घर में रखने से मना कर दिया। उसने कहा कि...कि वह राम नहीं है, जो ऐसी स्त्री को अपने साथ रखे, जो इतने दिन पराए घर रहकर आई हो।"

राम के नेत्र बंद हो गए–हृदय पर आघात-सा हुआ। एक साधारण धोबी के ऐसे विचार का क्या अर्थ था, वे समझ रहे थे। सीता पर सामाजिक आरोप लग रहा था।

पुरुष-प्रधान समाज में नारी की यही दशा थी। अग्नि-परीक्षा देकर भी वे संदेह के घेरे में थीं। राम ने निर्णय ले लिया था–सीता को त्यागना ही श्रेष्ठ है। गुप्तचर को वहां से भेजकर उन्होंने लक्ष्मण को अपने पास बुलाया।

"अनुज लक्ष्मण! यह संसार विचित्र है।" राम गंभीर स्वर में बोले–"हम जिस सामाजिक संरचना में रहते हैं, वह बड़ी जटिल है। यहां सबकी मति भिन्न होती है, परंतु बात जब सामाजिक अवरोध की आती है तो एक स्वर उठने पर वह शनैः-शनैः सामूहिक हो जाता है। राजा होने के कारण भले ही ऐसे स्वर पीठ पीछे उठते हों, परंतु सामाजिकता में इनके साथ जीवित रहना संभव नहीं है।"

"प्रभु ऐसा...ऐसा क्या हो गया? संसार जिनकी न्यायप्रियता, प्रजा-वत्सलता के विषय में संदेहहीन है–जिन्हें देवता भी शीश झुकाते हैं, उन रघुकुल शिरोमणि श्रीराम की गंभीरता मुझे भयभीत कर रही है।"

"अनुज! कुल की कीर्ति और उज्ज्वलता को अक्षुण्ण रखने का दायित्व हम

पर है। किसी भी प्रकार के सच्चे-झूठे आरोप के साथ यदि स्वर्ग का राज्य भी मिले तो भी त्याज्य है। आज राम आरोपित हुआ है, सीता पर लांछन लगाया जा रहा है। हे प्रिय अनुज! यह स्थिति मेरे लिए असहनीय है।" राम के नेत्र छलक उठे—"इसलिए मैंने सीता को त्यागने का निर्णय लिया है और इसे तुम्हें कार्यरूप देना है—यह मेरा आदेश है।"

"नाथ!" लक्ष्मण बिलख उठे—"यह...यह आप क्या कह रहे हैं। आप, जो माता जानकी के पुण्य चरित्र के परम साक्षी हैं, देवता भी जिन लक्ष्मी स्वरूपा की वंदना करते हैं—आप उन पर इतने कठोर कैसे हो सकते हैं प्रभो?"

राम ने सारी बात सुनाई तो लक्ष्मण क्रोध से भर उठे।

"प्रभो, एक असभ्य शूद्र ने माता सीता पर आरोप लगाने की धृष्टता की और उसे मृत्युदंड न देकर आप निर्दोष माता सीता को त्याग रहे हैं। यह कहां का न्याय है प्रभु! अपराध कोई करे और दंड किसी और को?"

"नहीं अनुज लक्ष्मण! सामाजिक आरोप यदि मिथ्या है, तब अधिक पीड़ा देता है। हम राजा हैं, बलपूर्वक इस आरोप को मिथ्या सिद्ध भी कर दें तो भी वह अस्तित्व में रहेगा—वह और भी प्रबल रूप से उभरेगा। तुम आदेश का पालन करो। सीता को तुम वन-भ्रमण के लिए ले जाना और वहीं कोई उचित स्थान देखकर उसे हमारा निर्णय सुना देना, फिर तुम अयोध्या लौट आ आना।"

"हे प्रभु, यह...यह कैसा आदेश है। यदि आप मेरे प्राण मांग लें तो मैं सहर्ष दे दूं, परंतु हे करुणानिधान! यह कैसी परीक्षा है? कृपया इस पर पुनर्विचार करें।"

"लक्ष्मण!" राम कठोर स्वर में बोले—"इसका अर्थ मैं यह लगाऊं कि अब हमारे अनुज को हमारी निर्णय क्षमता पर संदेह होने लगा है, फिर तो कुछ कहना शेष ही नहीं रह जाता—राम का अस्तित्व ही व्यर्थ हो गया।"

"ऐसा न कहें नाथ! लक्ष्मण स्वप्न में भी कभी ऐसा विचार नहीं कर सकता। मैं तो विनती कर रहा था। आपकी अवज्ञा तो कभी हो ही नहीं सकती। लक्ष्मण अपना हृदय वज्र का कर लेगा, परंतु रघुराई के निर्णय पर संदेह नहीं।"

राम मौन हो गए।

लक्ष्मण सिर झुकाए आदेश का पर्वत समान भार लेकर वहां से चले आए। कैसे वे उस कठिन आदेश का पालन कर सकेंगे, यह सोचकर ही उनका हृदय कंपित हो गया था।

व्यथित हृदय की पीड़ा को दबाकर जब लक्ष्मण ने सीता के समक्ष वन-भ्रमण का प्रस्ताव दिया तो जनकनंदिनी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा और वे सहर्ष

तैयार हो गईं। अपने स्वामी द्वारा वन-भ्रमण की अनुमति किसी उपहार जैसी थी। लक्ष्मण उनकी उत्सुकता को देखकर मन-ही-मन रोए जा रहे थे।

प्रात:काल होने पर रथ सज गया था। लक्ष्मण स्वयं सारथी थे। सीता राम की आज्ञा लेकर सासुओं के चरण-स्पर्श करके रथ में आ बैठी थीं। जैसे सौंदर्य की देवी साक्षात् आ बैठी हों।

राम अट्टालिका से देख रहे थे—निर्विकार, गंभीर मुद्रा में। उनके अतिरिक्त लक्ष्मण ही जानते थे कि उन विभूतियों का यह परस्पर अंतिम दर्शन है। लक्ष्मण ने एक बार राम की ओर देखा और आंखों से ही आज्ञा पाकर रथ हांक दिया। सीता कैसी प्रसन्नचित्त थीं। नहीं जानती थीं कि पुरुष-प्रधान समाज ने अपने वर्चस्व का अवैध उपयोग कर उस निर्दोष के समूचे जीवन को ही अस्त-व्यस्त कर दिया था। सामाजिक अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए एक गर्भवती नारी को पदच्युत कर दिया गया था।

रथ अयोध्या से बाहर जा रहा था और इसी कारण उसकी श्री भी अब वनखंडों में अपनी दिव्यता को आलोकित करने जा रही थीं।

सीता उन प्राकृतिक दृश्यों में खोई हुई थीं, जो बहुत समय पश्चात् उन्हें देखने को मिले थे। सरयू का स्वच्छ शीतल जल कल-कल की ध्वनि से बह रहा था। शीतल मंद समीर बह रही थी। आश्रमों की शृंखला आरंभ हो गई थी। वेदमंत्रों के उच्चारण और वेदियों से समिधा की सुगंध वातावरण को वेदमय कर रहे थे।

अयोध्या कहीं बहुत पीछे रह गई थी। तपोस्थली के शांत, सुरमय वनखंड में लक्ष्मण ने रथ रोक दिया। एक स्वच्छ सरोवर पेड़ों की छाया में था। अवश्य किसी मुनि का निवास रहा होगा।

"भैया लखन! बहुत रमणीक स्थान पर पड़ाव लिया है।" सीता हर्षित स्वर में बोलीं—"तनिक देर यही विश्राम करते हैं। सुना है, यहीं कहीं आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का भी आश्रम है। हम उनके दर्शन अवश्य करेंगे, तब तक लौटने का समय भी हो जाएगा।"

लक्ष्मण कुछ बोल न सके, लेकिन उनकी रुलाई फूट पड़ी।

"भैया लखन! यह...यह क्या? इस प्रसन्न यात्रा में ऐसा शोक क्यों? क्या कहीं कुछ ऐसा हो गया है, जिससे सीता अनभिज्ञ है? लखन, मेरा हृदय बैठा जा रहा है। तुम्हें राम की सौगंध, इस रुदन का कारण स्पष्ट करो।"

"माते! प्रभु श्रीराम ने मुझे जो कार्य सौंपा है, वह क्षण-भर में मेरी सौ बार मृत्यु के समान है। हे निरपराधिनी, हे जगज्जननी, यह आप दोनों की ही कोई

लीला है अथवा नियति की क्रूरता कि प्रभु श्रीराम ने आपको त्याग दिया है। मुझ अभागे को आपको यहां वनखंड में छोड़ देने का आदेश दिया है अयोध्यापति ने।" लक्ष्मण बिलख पड़े।

"मे...मेरा...मेरा अपराध!" सीता के नेत्र पथरा गए–"श्रीरघुवीर ने मेरा अपराध क्या बताया? मैंने तो जान-बूझकर कोई त्रुटि भी नहीं की।"

"माता, आपका कोई अपराध नहीं। लोक-लाज और सामाजिक व्यवस्था ने प्रभु श्रीराम को ऐसा निर्णय लेने पर विवश कर दिया है। मर्यादाओं की रक्षा का संकल्प लिए प्रभु इतने कठोर हृदय हुए हैं कि उन्होंने आदेश के अतिरिक्त कोई अन्य बात नहीं कही।"

"लखन! कोई किसी को आरोपित कर दे तो राजा का कर्तव्य है कि उसे आरोप सिद्ध करने को कहे। स्वामी ने यह भी नहीं किया। मेरी अग्नि-परीक्षा का उपहास हो गया। यह कैसा न्याय है? समाज के मिथ्या आरोप को संतुष्ट करने के लिए मेरा बलिदान, पर हे सौमित्र! राम तो राम हैं। उनसे कोई त्रुटि कैसे हो सकती है? तुम विषाद न करो। सीता के दुर्भाग्य में तुम्हारा इतना ही योगदान तो है कि तुमने एक राजा की आज्ञा का पालन-भर किया। तुम जाओ लखन, परंतु जाकर स्वामी को यह अवश्य कहना कि उन्होंने मुझे नहीं त्यागा, क्योंकि मैं कभी उनके हृदय से विलग न हो सकूंगी। वे चाहेंगे तो भी नहीं, क्योंकि सीता ही तो राम के प्राण हैं, परंतु आज सीता ने परित्यक्ता होने के प्रण को हृदयंगम कर लिया है। अब सीता का मुख राम न देख सकेंगे।"

लक्ष्मण का हृदय जैसे किसी ने मुट्ठी में भींच दिया था। वे सीता से आंखें न मिला पा रहे थे और न अपनी व्यथा को संभाल पा रहे थे।

"हां स्वामी! एक बार तो कहा होता कि सीते, हार्दिक विश्वासों से बड़ी समाज की रूढ़ियां होती हैं। कह तो देते कि पुरुष पत्नी को त्याग सकता है, समाज को नहीं। हे राम, तुम्हें राजा नहीं होना चाहिए था, क्योंकि इस राजसुख का मूल्य सदैव ही अपने प्राणों को संकट में डालकर चुकाना पड़ता है। लखन, मेरे पुत्र, मुझे छोड़ दो। शीघ्र ही यह शुभ समाचार उन कृपानिधान को दो, जो एक धोबी के वचनों को अपनी अस्मिता से जोड़ देते हैं। रघुकुल की कीर्ति सदा अक्षुण्ण रहेगी, न रहेगी तो केवल सीता न रहेगी।"

सीता रोते-रोते अचेत हो गईं। लक्ष्मण को इससे अधिक उचित समय नहीं जान पड़ा, क्योंकि वे श्रीराम के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। लक्ष्मण ने अचेत सीता के चरण स्पर्श किए। अपने सभी अपराधों की क्षमा मांगी और पाषाण-सा हृदय लेकर वहां से चल दिए।

सीता चैतन्य हुईं। लक्ष्मण और रथ दोनों ही वहां नहीं थे। अब सब स्पष्ट था। कहीं कोई संदेह न था। वह परित्यक्ता स्त्री थी–निरपराध परित्यक्ता! पहले हृदय में उठते आंसुओं को बहा देना था, जितना हो सके, पहले आंसुओं को संतुष्ट करना था।

सूर्य अस्ताचल की ओर चल दिया था। वह रमणीक वातावरण भी अब व्यथित कर रहा था। अकेली सीता कितना रो सकती थीं। वे रोईं, रोती रहीं, फिर रोईं–आंसू सूख जाते तो अचेत हो जातीं। जाने कब एक अपनत्व भरा हाथ उनके सिर पर आया। महर्षि वाल्मीकि इस सोपान को आगे बढ़ाने आ गए थे।

63

लव-कुश का पराक्रम

"अनुज! भोजन का समय हो गया, माता प्रतीक्षा कर रही होंगी। निर्णायक प्रहार करो।" लव ने कुश से कहा।
लव का आदेश मिलते ही कुश ने अपने धनुष पर सन्निपात अस्त्र का संधान किया। ऐसा ही लव ने किया। दोनों ने बाण छोड़ दिए, जो असंख्य होकर लक्ष्य बेधते गए। उनका प्रभाव भी चकित कर देने वाला था। भरत और हनुमान सहित सारी सेना स्तंभित रह गई, जैसे किसी श्राप से पाषाण में बदल गए हों।
"अब हमें चलना चाहिए अनुज! अश्व हमारा हुआ। इन सबको साथ ले जाने की तो आवश्यकता क्या है? महाबली हुनमान को अवश्य ले चलते हैं। गुरुदेव हमारे पराक्रम को देखकर प्रसन्न हो जाएंगे। माताश्री भी गद्‌गद हो जाएंगी।"

लव और कुश! जनकनंदिनी सीता के पराक्रमी पुत्र प्रातः भ्रमण कर रहे थे, जब उन्हें वह श्वेत अश्व दिखाई दिया, जो स्वर्ण छत्र से सुसज्जित होकर निर्भय घास चर रहा था। दोनों भाई उत्सुकता से उसके समीप पहुंचे तो उसके गले में लटकती एक पत्रिका देखी–चेतावनी-पत्रिका! कुश उसे पढ़ने लगा।

"भैया, यह तो किसी अश्वमेध यज्ञ का अश्व है जिसका स्वामी इसके माध्यम से स्वयं को समस्त पृथ्वी का स्वामी घोषित करना चाहता

है।" कुश ने कहा और नाटकीय स्वर में उस पत्र को पढ़ने लगा–"यह यज्ञ का अश्व संसार के सबसे कीर्तिमान कुल रघुकुल के महान चक्रवर्ती सम्राट महाराजाधिराज श्रीरामचंद्र का है। इसे पकड़ने का विचार करना भी मृत्युदेव को निमंत्रण देना है, क्योंकि इसकी रक्षा में स्वयं महाबली रामभक्त हनुमान और प्रचंड पराक्रम के लिए प्रसिद्ध भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न असंख्य सैन्यवाहिनी के साथ तत्पर हैं। इंद्र को भी भय देने वाले इन योद्धाओं को कोई क्रोधित न करे।"

"अहा! क्या सुंदर स्वगुणगान है!" लव ने कहा–"अनुज, यह पत्र तो मुझे चुनौती जैसा लग रहा है। तुम इस अश्व को बांध दो। आज तनिक इन योद्धाओं का पराक्रम भी परख लिया जाए। बहुत समय से परस्पर अभ्यास करते मन भी ऊब गया है।"

"ठीक कहते हो भैया! आपकी रण-प्रतिभा को परखने का इससे अच्छा अवसर और कब मिलेगा!" कुश ने अश्व को वृक्ष से बांध दिया, तभी एक दिशा से एक बड़े सैन्य दल के साथ रथ पर सवार शत्रुघ्न वहां आ पहुंचे।

"अहा मुनिकुमारो! संपूर्ण पृथ्वी की निर्विघ्न परिक्रमा करके लौटते इस अश्व को किसी भी नरेश ने स्पर्श तक करना उचित नहीं समझा, क्योंकि इसके गले में लटका यश-पत्र ऐसा ही भय देता है।" शत्रुघ्न ने कहा–"फिर भी तुमने ऐसा दुस्साहस किया है तो यह तुम्हारा लड़कपन ही है। इसी कारण मुझे तुम पर क्रोध नहीं आ रहा है। तुम्हारी छवि और आयु देखकर मुझे तुम पर स्नेह आता है। वनखंड में ऐसे साहसी मुनिकुमार भी हो सकते हैं, यह सुखद आश्चर्य है। तुम्हारी माता और पिता तो तुम्हारे इन कौतुकों से बड़े प्रसन्न होंगे, परंतु बालाको! साहस तक ही सीमित रहना चाहिए, यह तुम्हें तुम्हारे माता-पिता और गुरु ने नहीं सिखाया। अब शीघ्र ही इस अश्व को मुक्त करके अपने आश्रम जाओ और अपने परिजनों को सुख दो। मैं तुम्हारी त्रुटि को क्षमा करता हूं।"

"क्षमा क्यों करते हो पराक्रमी! इस दयालुता की आवश्यकता किसे है?" लव ने दृढ़ स्वर में कहा–"यह अश्व अब हमारा है। इसकी रक्षा में जो बड़े-बड़े नाम वाले योद्धा हैं, उनके साथ यदि स्वयं इंद्र भी अपना अमोघ वज्र लेकर आ जाएं तो भी इस अश्व को हमारे स्वामित्व से नहीं छुड़ा सकते। आप संदेशवाहक भेजकर अपने सभी योद्धाओं को इस चुनौती के विषय में बताकर शीघ्र यहां बुला सकते हैं, तब तक हम प्रतीक्षा कर लेंगे। हम भी तो देखें कि इस कठोर धनुष में कितना जोर है, जो चक्रवर्ती हो जाने की असंभव इच्छा लेकर लेकर वनखंडों को रौंदने आ निकला है।"

"सावधान उद्दंड बालको!" शत्रुघ्न क्रोध से कांप उठे–"तुम्हारी छोटी

आयु और कोमल शरीर देखकर मेरे हृदय में दया उत्पन्न होती है और तुम अपनी असभ्य वाणी से मुझे क्रोध दिला रहे हो। तुम्हें अपनी माता पर भी दया नहीं आती?"

"अरे ओ दयालु राजकुमार! क्षत्रिय निर्बल, वृद्ध और असहायों के अतिरिक्त किसी पर दया नहीं करते और हमारी माता न निर्बल हैं और न वृद्ध और असहाय हैं। वे सिंहनी हैं, जो अपने शावकों को निर्विघ्न, निर्भय इस वन में विचरने देती हैं जिससे हम हिंसक पशुओं का शिकार करें और अभिमानी लोगों का दंभ तोड़ सकें।" कुश ने कहा।

शत्रुघ्न को उनके क्षत्रियोचित तेवर लुभा भी रहे थे और क्रोध भी दिला रहे थे।

"नादान बालको! तुम नहीं जानते कि तुम किससे बात कर रहे हो! तुम्हें कठोर दंड तो नहीं देता, परंतु तुम्हारी उद्दंडता को तो रोकना ही होगा।" शत्रुघ्न ने धनुष पर बाण चढ़ाकर कुश को लक्ष्य करके चलाया तो उसने क्षण-भर में उसे काट भी दिया और दूसरे क्षण में ही अपने बाण से शत्रुघ्न को घायल भी कर दिया। शत्रुघ्न के क्रोध की सीमा न रही और अब वे शत्रु को बालक न मानकर युद्ध करने लगे।

लव-कुश की रण-कुशलता देखकर शत्रुघ्न भी अचंभित रह गए, जब उनके सैनिक हताहत होने लगे। उन्होंने घातक प्रहार आरंभ कर दिए, परंतु कुछ ही घात-प्रतिघात के बाद दोनों बालकों ने उन्हें मूर्च्छित करके बांध लिया और हर्ष से वियजघोष किया। वे शत्रुघ्न को लेकर चले ही थे कि पीछे से एक और कठोर स्वर सुनाई दिया।

"ठहरो मुनिकुमारो! तुम्हारी उद्दंड़ता क्रोध दिलाती है, परंतु तुम्हारा पराक्रम अच्छा लगता है। तुम्हारी माता धन्य है जिसने तुम जैसे शूरवीरों को जन्म दिया। लक्ष्मण उस तेजस्विनी माता को प्रणाम करता है, परंतु बालको, तुम्हारा दुस्साहस हमें अच्छा नहीं लगा, फिर भी हम तुम्हें एक अवसर देते हैं। अश्व को छोड़ दो और अनुज शत्रु से क्षमा मांगो, तभी तुम यहां से जीवित अपनी माता की गोद में लौट पाओगे।" लक्ष्मण ने ललकारा।

"अहा, कैसी गर्व भरी वाणी है भैया लव! अब कोई संदेह नहीं रह गया कि ये दोनों एक ही गुरु के शिष्य हैं जिन्होंने इन्हें समान रूप से बातें बनाना सिखाया है। ये नाम भी हमें सुने हुए लगते हैं। अरे हां, गुरुजी ने बताया था कि अयोध्या के महान राजा राम उनके अनुज लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि हैं। यह सुंदर रामकथा तो हमने सुनी है।"

"वह कोई और कथा है अनुज! क्योंकि उस कथा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न ऐसे अहंकारी न थे कि परिणाम देखकर भी गर्वोक्ति करें।" लव ने कहा–"महोदय, इस अश्व की रक्षा में आप दो भाई ही तो इस छोटी-सी सेना के साथ न आए होंगे, इसलिए कोई संकेत आदि भेजकर समूची सेना को बुला लीजिए, क्योंकि बार-बार ऐसे गर्वीले स्वर सुनने से अच्छा है कि एक ही बार में निर्णय हो जाए।"

लक्ष्मण के नेत्र क्रोध से जल उठे और उन्होंने धनुष उठाकर बाण वर्षा आरंभ कर दी, परंतु वे चकित थे कि सब बाण उन सुकुमारों ने काट दिए थे।

दोनों सुकुमार जिस दक्षता से सुरक्षा और आक्रमण कर रहे थे, उसे देखकर लक्ष्मण सहित सारी सेना दंग थी। विश्व-विजय को निकली चतुरंगिणी सेना को पहले ही अवरोध से पार पाना कठिन लगने लगा था। सैनिक हताहत होकर गिर रहे थे और दोनों बालक अविचल युद्धरत थे। लक्ष्मण ने दिव्यास्त्रों का प्रयोग अब तक उचित न समझा था, परंतु अब शत्रु को बालक समझने की भूल करना भी उचित नहीं था। उन्होंने सम्मोहन बाण छोड़ा, जो बड़े वेग से इंद्रधनुषी छटा बिखेरता लव-कुश की ओर गया, परंतु यह क्या, कुश ने अपने बाण से उसकी दिशा ही बदल दी। अब बाण उनकी ही सेना की ओर बढ़ चला और जब तक लक्ष्मण उसका कोई और उपाय करते, तब तक वह अपना प्रभाव दिखा चुका था। लक्ष्मण सेना सहित सम्मोहित हो गए।

दोनों भाई इस विजय पर हर्षित होकर गले मिले।

"हमें अभी प्रतीक्षा करनी चाहिए भैया! अभी और भी कोई शूरवीर आता ही होगा। आश्रम के समीप जाकर तो युद्ध करना उचित न होगा।" लव ने कहा।

"ठीक कहा भैया! अश्व की रक्षा में तीन ओर से सेनाएं व्यवस्थित की जाती हैं। ये दो ही दल थे, पूर्व से भी आ ही जाने दो।"

"लो आ गए लगते हैं। धूल उड़ रही है। यह विशाल सेना प्रतीत होती है भैया! इस बार कुछ अधिक श्रम करना होगा–तैयार हो जाओ।"

दोनों भाई वीर मुद्रा में तैयार हो गए। दोनों ने विपरीत दिशाओं में मुख कर लिया था जिससे आने वाली और उपस्थित सम्मोहित सेनाओं पर दृष्टि रखी जा सके–दोनों भाई युद्धकला में पूर्ण पारंगत थे।

पूर्व दिशा से विशाल सेना आई थी जिसका नेतृत्व भरत और हनुमान कर रहे थे। वहां का दृश्य देखकर वे चकित रह गए थे। भरत ने हनुमान की ओर देखा, जैसे प्रश्न कर रहे हों कि क्या यह वास्तविक दृश्य था।

"हे सुकुमार बालको! यह सब तुमने किया है?" भरत ने पूछा।

"अवधेश कुमार! यह बंधा हुआ अश्व, बंधे हुए शत्रुघ्न और मूर्च्छित पड़े

लक्ष्मण व आपकी सेना क्या कम प्रमाण रह गए हैं, जो ऐसा बचकाना प्रश्न कर रहे हैं। क्या हमारी विजयी मुद्रा और हमारे उठे हुए धनुष आपको नहीं दिख रहे हैं? हम दोनों भाई आप लोगों की ही प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि हमारे भोजन का समय हुआ जा रहा है, अतः हम शीघ्र ही अश्व को लेकर अपने आश्रम जाना चाहते हैं।"

"तुम कौन हो दुस्साहसी बालको?" भरत ने कठोर स्वर में पूछा—"अपना परिचय देकर इस अश्व को छोड़ दो और जाकर भोजन करो।"

"हमारा इस समय का यही परिचय है कि हम इस यज्ञ-अश्व के स्वामी हैं और आपके यज्ञ के बाधक हैं। हमें परास्त किए बिना यह अश्व आपको नहीं मिलेगा और अश्व के बिना वह यज्ञ संपन्न नहीं होगा।"

"हे वीर वनवासियो!" हनुमान ने गंभीर स्वर में कहा—"मैं रामभक्त हनुमान, तुम्हारे माता-पिता और गुरु को हृदय से प्रणाम करता हूं जिन्होंने ऐसे पराक्रमी बालकों के दर्शन का सौभाग्य हमें दिया। इंद्र को भी युद्ध में संतुष्ट करने वाले लक्ष्मणजी और लवणासुर जैसे दुर्दांत राक्षस का अंत करने वाले शत्रुघ्न को तुमने परास्त करके असाधारण वीरता दिखाई है। अब इस बालहठ को छोड़ दो, क्योंकि अश्वमेध यज्ञ का अश्व राजाओं के बल और नीति की परीक्षा के लिए होता है, वनवासियों से इसका कोई संबंध नहीं होता।"

"हमारे गुरु का आश्रम हमारा राजमहल, माता की गोद हमारा सिंहासन और यह वनक्षेत्र हमारा राज्य है, अतः हम भी राजा ही हैं। इस अश्व ने हमारे राज्य की भूमि पर आकर हमारी स्वतंत्रता को ललकारा है। वीरवर हनुमान, हम आपको प्रणाम करते हैं, क्योंकि हमारे गुरुदेव ने हमें आपकी स्वामिभक्ति और पराक्रम के विषय में सुंदर प्रसंग सुनाए हैं, परंतु हे महाबली, हम सुनकर कानों को सुख देने वाले बालक ही नहीं हैं। हमें तो अवसर मिलते ही परख लेने की जिज्ञासा रहती है। अतः आज हमें भी वह बालदर्शन कराएं जिनसे आपकी कीर्ति त्रैलोक्य में व्याप्त है।"

हनुमान ने मन-ही-मन उन दोनों को प्रणाम किया।

"सावधान हठी बालको! तुम्हारी जिह्वा से निकले कठोर उपहास भरे स्वर भी बाण की भांति ही पीड़ा देते हैं। अब तुम्हें इस अभद्रता का दंड अवश्य मिलेगा।"

भरत ने युद्ध का आदेश दे दिया और भीषण युद्ध छिड़ गया। हनुमान अपने पूरे बल से लव से जूझ रहे थे और भरत कुश से। दोनों भाई उनके किसी भी प्रहार को स्पर्श न होने दे रहे थे और साथ ही सेना को भी पीड़ित कर रहे थे। अपराह्न होने को आई थी और दोनों वीर बालक अविचल युद्धरत थे।

"अनुज! भोजन का समय हो गया, माता प्रतीक्षा कर रही होंगी। निर्णायक प्रहार करो।" लव ने कुश से कहा।

लव का आदेश मिलते ही कुश ने अपने धनुष पर सन्निपात अस्त्र का संधान किया। ऐसा ही लव ने किया। दोनों ने बाण छोड़ दिए, जो असंख्य होकर लक्ष्य बेधते गए। उनका प्रभाव भी चकित कर देने वाला था। भरत और हनुमान सहित सारी सेना स्तंभित रह गई जैसे किसी श्राप से पाषाण में बदल गए हों।

"अब हमें चलना चाहिए अनुज! अश्व हमारा हुआ। इन सबको साथ ले जाने की तो आवश्यकता क्या है? महाबली हुनमान को अवश्य ले चलते हैं। गुरुदेव हमारे पराक्रम को देखकर प्रसन्न हो जाएंगे। माताश्री भी गद्‌गद हो जाएंगी।"

दोनों भाइयों ने हनुमान को बांधा। लव उन्हें लेकर चलने लगा तो वे यंत्रवत् से उसके पीछे चल पड़े। कुश ने घोड़ा पकड़ा और दोनों भाई विजयी मुद्रा में से आश्रम की ओर चल पड़े।

64

राम पुनः योद्धा वेश में

अयोध्यापति महाराज श्रीराम ने बहुत समय के पश्चात् अपना धनुष धारण किया, क्योंकि लंका-विजय के पश्चात् उन्हें कभी इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी। ऐसा नहीं था कि युद्ध नहीं हुए थे। मुनिजनों को निर्भय करने और दुष्टों के विनाश हेतु श्रीराम के आदेश पर उनके अनुजों ने समय-समय पर युद्ध लड़े और जीते थे, परंतु परिवर्तन के नियमानुसार विजय-रथ का पहिया विराम पा गया था जिसे स्वयं श्रीराम को ही पुनः गति देनी थी।
कितना अंतर था कुछ क्षण पूर्व के राम और इस क्षण के राम में! पहले वे शांत, सौम्य और गंभीर थे और अब युद्ध के अस्त्र-शस्त्र धारण करके योद्धा की भांति सुशोभित हो रहे थे।

यज्ञ रक्षक सेनापति सुमंत अयोध्या नगरी के मुख्य मार्गों पर सुरक्षा व्यवस्था देख रहे थे। यह यज्ञ की बाह्य सुरक्षा व्यवस्था थी जिससे आसुरी शक्तियां किसी प्रकार का विघ्न न कर पातीं। यज्ञ की वेदियों से उठते धुएं में समिधा की सुगंध से वातावरण सुगंधित हो रहा था, तभी एक अश्वारोही द्रुत गति से वहां आकर रुका और अश्व से उतरकर सेनापति को प्रणाम किया।

"सैनिक, इतने उत्तेजित क्यों हो? क्या समाचार है?" सुमंत ने पूछा।

"सेनापतिजी, यज्ञ का अश्व पकड़ा गया! वे महाबली हनुमानजी को बंदी बना ले गए।" सैनिक ने संपूर्ण घटनाक्रम कह सुनाया।

सेनापति सुमंत के नेत्र फैल गए—अविश्वसनीय, अकल्पनीय!

"सैनिक, यह कैसे हो सकता है। तुमने कहीं कोई स्वप्न तो नहीं देखा? पर्वतों को अपने मुष्ठि-प्रहार से खंड-खंड कर देने वाले महाबली हनुमान, इंद्रादि देवों के लिए भी अपराजेय लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न, विशाल पराक्रमी सेना को दो मुनिकुमारों ने परास्त कर दिया? यह असंभव है—अविश्वसनीय है।"

"यही सत्य है सेनापतिजी!" सैनिक ने कहा।

सुमंत विचारमग्न हो गए। संध्यावंदन का समय था। अयोध्यापति राजा रामचंद्र को यह समाचार अभी पहुंचाना था, अतः सुमंत नगर में प्रवेश कर गए। यज्ञ अखंड और अनवरत् चल रहा था। ऋषि-महर्षि और वेदपाठी लयबद्ध मंत्रोच्चारण कर रहे थे। घृत, नैवेद्य की आहुतियां चल रही थीं।

राम शांत, गंभीर मुद्रा में आहुतियां दे रहे थे। समीप ही सीता की स्वर्ण प्रतिमा बाईं ओर आहुति देने की मुद्रा में स्थापित थी।

सुमंत को वह क्षण समाचार देने के लिए उचित नहीं लग रहा था, परंतु विकलता बढ़ रही थी। सुमंत की यह विकलता गुरु वशिष्ठ ने भांप ली थी, अतः वे स्वयं सुमंत के समीप आए।

"प्रिय सुमंत! आप उद्विग्न लग रहे हैं। क्या कारण है?" वशिष्ठ ने पूछा।

"गुरुदेव, रघुकुल के पराक्रमी अपराजेय कुल के महान सम्राट अयोध्यापति, महाराज श्रीराम के यज्ञ का अश्व वनप्रांत में दो मुनिकुमारों ने पकड़ लिया। इतना ही नहीं, वे दोनों महावीर हनुमान को भी बंदी बनाकर ले गए। गुरुदेव! यह अनहोनी सुनकर मैं चकित हूं। क्या ऐसा संभव हो सकता है?"

"सुमंतजी, प्रभु जो चाहें, वही होता ही है। मनुष्य की बुद्धि उनकी माया के पार नहीं झांक सकती। संसार में प्रभु प्रेरणा से कुछ भी असंभव नहीं है। अविजित और अपराजेय तो केवल एक श्रीहरि ही हैं, अन्यथा ऐसे भी अवसर आए हैं कि देवराज इंद्र भी रणभूमि में परास्त हुए हैं। इस धरा पर क्षत्रियकुल में वीरों की कोई कमी नहीं और यह आज सिद्ध भी हो गया है।"

"गुरुदेव! ऐसे वीर वनवासी कौन हो सकते हैं?"

"जिनकी शिराओं में ऐसे पिता का रक्त होता है, जो स्वयं विजय हों, जिनकी माता के दूध में शौर्य का उबाल होता हो, वैसे ही वे होंगे। साधारण माता-पिता की संतान तो वे होंगे ही नहीं। जिन्होंने काल के लिए भी दुष्कर अयोध्या की सेना और उसके सेनापतियों की ऐसी दशा की है। वे प्रभु के ही कोई कृपापात्र होंगे,

क्योंकि बिना प्रभु की प्रेरणा के तो ऐसा अविश्वसनीय घटनाक्रम घटित नहीं होता। वे रघुकुल के इतिहास में स्मरणीय क्षण होंगे, जब यज्ञशाला से उठकर महाराज श्रीराम को उन बाल-योद्धाओं को संतुष्ट करने जाना होगा। देवताओं के लिए भी यह दुर्लभ दृश्य होगा सुमंत! अपने नेत्रों को एक नयनाभिराम दृश्य देखने के लिए स्वयं को तैयार करो और सेना को भी तैयार करो।"

"रात्रि होने वाली है—क्या सैन्यबल का प्रस्थान उचित होगा?"

"प्रस्थान महाराज श्रीराम की आज्ञा से ही होगा। हम महाराज को अवगत कराते हैं। यज्ञ-नियमों के अनुसार जब ऐसी स्थिति आ पड़ती है तो स्वयं राजा को ही यज्ञ-अश्व मुक्त कराना होता है—आप तैयारी करें।"

सुमंत प्रणाम करके चले गए। गुरु वशिष्ठ अपने स्थान पर आकर बैठ गए और उच्च स्वर में विघ्नमंत्र का उच्चारण किया तो अन्य सभी वेदपाठी चौंककर उनकी ओर देखने लगे। सभी ने मंत्रोच्चारण बंद कर दिया। विघ्नमंत्र का यही प्रयोजन होता था कि यज्ञ-अश्व के बंदी बनाए जाने और अश्व रक्षाकाल के पराजित हो जाने की सूचना राजा को दी जा सके।

राम ने भी नेत्र खोल दिए थे। अनेक यज्ञ सफलतापूर्वक संपन्न हो चुके थे। कभी विघ्नमंत्र के उच्चारण का अवसर ही नहीं आया था।

राम के सौम्य मुख पर गंभीरता सदैव ही स्थायी रहती थी। उन्होंने गुरु वशिष्ठ की ओर देखा।

"महाराज, बहुत से राज्यों में निर्विघ्न विचरण करता हुआ यज्ञ-अश्व अयोध्या की कीर्ति और पराक्रम को अक्षुण्ण रखते हुए वनप्रांत की ओर चला गया था। वहां दो मुनिकुमारों ने उसे खेल-खेल में पकड़ लिया। वे कुमार निश्चय ही असाधारण धनुर्धर और पराक्रमी हैं, क्योंकि जब अश्व को मुक्त कराने के लिए रक्षक सेना वहां पहुंची तो उन्होंने युद्ध स्वीकार किया।" वशिष्ठजी बोले।

"अवश्य वे मुनिवेश में क्षत्रिय-पुत्र होंगे गुरुदेव, क्योंकि क्षत्रिय ही ऐसे अवसर पर दुस्साहस करते हैं। अवश्य ही वे दोनों कुमार किसी श्रेष्ठ माता-पिता की संतान और उत्तमोत्तम आचार्य के शिष्य होंगे, तभी तो उन्होंने जगविदित अपराजेय रक्षकों और सेना से युद्ध स्वीकार किया।"

"उनका परिचय तो अभी तक ज्ञात नहीं हो सका महाराज, परंतु जो समाचार मिला है, उसके अनुसार उन दोनों सुकुमारों ने अविश्वसनीय रूप से हमारे अपराजेय योद्धाओं को परास्त कर दिया है और अश्व को पकड़कर ले गए हैं।"

"धन्य है वह माता जिसने ऐसे पराक्रमी पुत्रों को जन्म दिया। जिनके शौर्य ने अयोध्या की कीर्ति को विराम देने का असंभव कार्य संपन्न किया। निरंतर विजयों

से तो देवता भी अहंकारी हो जाते हैं, हमारे अनुज तो मनुष्य हैं। भगवान शिव अपने भक्तों में अहंकार का भाव देखकर ही मुनिकुमारों के वेश में अवतरित हुए होंगे। विजयों के बीच ऐसे अवरोध आवश्यक हैं, क्योंकि इनसे व्यक्ति को अपने विषय में पुनर्विचार करने का अवसर मिलता है।" राम गंभीर स्वर में बोले–"परंतु महावीर हनुमान को तो कदापि अहंकार नहीं हो सकता।"

"महाराज! एक अविश्वसनीय सत्य यह भी है कि महाबली हनुमान को भी उन कुमारों ने परास्त करके बंदी बना लिया है और अश्व के साथ ही उन्हें भी अपने अज्ञात निवास पर ले गए हैं।" गुरु वशिष्ठ ने बताया।

"अति सुंदर! वीरवर हनुमान का यह पराभव उनके अहंकार के कारण तो नहीं है, क्योंकि अहंकार तो उनमें लेश-मात्र भी नहीं।" राम ने विचारपूर्ण मुद्रा में कहा–"अवश्य ही वे उन कुमारों के शौर्य पर रीझ गए होंगे, जो उनका सहज स्वभाव है। उन्होंने स्वयं को इसलिए बंदी कराया है कि हम भी उन सुकुमारों के शौर्य का दर्शन करके इस सत्य से परिचित हों कि संसार शौर्य से रिक्त नहीं है और न ही इस जगत में किसी की कीर्ति स्थायी होती है। गुरुदेव, हम स्वयं उन कुमारों को युद्ध में संतुष्ट करना चाहेंगे और उनके माता-पिता से मिलकर उनके पुत्रों को प्रशंसित करेंगे।"

गुरु वशिष्ठ ने यज्ञवेत्ताओं को आवश्यक परामर्श दिए–"आहुतियां निरंतर दी जाती रहेंगी, मंत्रोच्चारण महाराज के लौटने पर ही पुनः आरंभ होंगे। वेदियों की अग्निशिखाएं अक्षुण्ण रहेंगी।"

अयोध्यापति महाराज श्रीराम ने बहुत समय के पश्चात् अपना धनुष धारण किया, क्योंकि लंका-विजय के पश्चात् उन्हें कभी इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी। ऐसा नहीं था कि युद्ध नहीं हुए थे। मुनिजनों को निर्भय करने और दुष्टों के विनाश हेतु श्रीराम के आदेश पर उनके अनुजों ने समय-समय पर युद्ध लड़े और जीते थे, परंतु परिवर्तन के नियमानुसार विजय-रथ का पहिया विराम पा गया था जिसे स्वयं श्रीराम को ही पुनः गति देनी थी।

कितना अंतर था कुछ क्षण पूर्व के राम और इस क्षण के राम में! पहले वे शांत, सौम्य और गंभीर थे और अब युद्ध के अस्त्र-शस्त्र धारण करके योद्धा की भांति सुशोभित हो रहे थे।

65

सीता पृथ्वी की गोद में

"प्रभु, ये दोनों वीर बालक किसी और के पुत्र नहीं, अपितु आपके ही पुत्र हैं।" महर्षि ने लव-कुश के सिर पर हाथ रखा–"हे नाथ! ऐसे पराक्रमी पुत्रों को अपने गर्भ में रखने वाली आपकी प्राणप्रिया सीता हैं, जो मेरी धर्मपुत्री बनकर मेरे आश्रम में रह रही थीं। इन लव-कुश के पराक्रम में जनकनंदिनी सीता के अमृतमयी दूध का प्रभाव और आपके रक्त का मिश्रित शौर्य है। हे करुणाकर, आपने मुझ अधम को अपनी कृपा से पापों के अंधकूप से निकाला और पुनः ऐसा अवसर प्रदान किया कि मैं जगत्माता जानकी के धर्मपिता होने के गौरव से परिपूर्ण हुआ।"

"अनुज!" लव ने मार्ग में कहा–"गुरुदेव ने अयोध्या के शौर्य, पराक्रम और योद्धाओं के विषय में जो बताया था, वह सुनने में तो रोमांचित करता था, परंतु आज प्रतीत होता है कि गुरुदेव कथा को अतिरंजित करते थे। जिस प्रकार बालक को कथा सुनाते समय चरित्र की विशेषताओं का अतिरिक्त शृंगार करते हैं।"

"सत्य कह रहे हो भैया!" कुश ने भी निराशा भरे स्वर में कहा–"महाबली हनुमान को देखिए! कैसे आपके पीछे इस प्रकार चल रहे हैं, जैसे मदारी के पीछे जा रहे हों। क्या यही वे पवनपुत्र हैं जिन्होंने सूर्य

को फल समझकर मुख में रख लिया था। लंका का दहन क्या इन्होंने ही किया था। मुझे तो संदेह होता है।"

"इनके बल, पराक्रम की प्रशंसा में तो हमारी माता भी भाव-विभोर हो जाती थीं। ऐसे इनके कौतुकों का वर्णन करती थीं, जैसे स्वयं साक्षी रही हों। आज इन्हें हमारे बंधन में इस प्रकार निष्क्रिय देखकर दंग रह जाएंगी। जब गुरुदेव अन्य मुनिकुमारों के समक्ष इनका गुणगान करते थे तो सभी बालक इनका जयघोष करते थे। आज वे इन्हें इस दशा में देखेंगे तो अचरज करेंगे। इन्हें स्पर्श करके देखेंगे और हमारा गुणगान करेंगे।"

"और गुरुदेव क्या प्रतिक्रिया देंगे? अपनी मनोहर शौर्यगाथा के सहनायक हनुमान को हमारा बंदी देखकर क्रोध में तो नहीं आ जाएंगे? उनकी रामभक्ति भी चरम पर होती है। एक भक्त दूसरे भक्त की ऐसी दशा पर कुपित हो सकता है, परंतु हमने इन्हें छल से तो बंदी नहीं बनाया, अपना बल प्रयोग किया है। क्षत्रियोचित युद्ध लड़ा है। गुरुदेव ने इसलिए तो हमें धनुर्वेद की शिक्षा दी थी।"

"अनुज! कथा और वास्तविकता में अंतर होता है और यह बात गुरुदेव भी जानते हैं। कथा में कल्पना का भी स्थान होता है और हमारे गुरु तो आदिकवि हैं। चलो, आश्रम भी निकट आ गया। तुम अश्व को इसी वृक्ष से बांधकर माताश्री को यह समाचार दो। मैं दूर से उनकी प्रतिक्रिया का आनंद लेता हूं।"

कुश ने अश्व को वृक्ष से बांध दिया और लपकते हुए कुटिया के द्वार पर पहुंचे। सोचा, माता रसोई बनाकर उनकी ही प्रतीक्षा कर रही होंगी।

"माताश्री! माताश्री! हम आ गए।" कुश ने पुकारा।

"बहुत देर से आए। महर्षि आने वाले होंगे। अभ्यास का समय हो चला और तुम दोनों ने अभी तक भोजन भी नहीं किया।" माता सीता कुटिया से बाहर आती हुई बोलीं–"तुम दोनों का प्रातः भ्रमण दोपहर में...अरे, यह क्या? यह अश्व किसका है? यह तो किसी यज्ञ का अश्व है...और वह...वह किसे बांध लाए तुम?"

"आप ही पहचानिए माता, क्योंकि आपने सदैव इनका जैसा रंग-रूप, आकार-प्रकार वर्णित किया है, ये वही वीरवर हनुमान हैं।" कुश ने बताया।

"हनुमान!" सीता के नेत्र विस्मय से फैले–"पवनपुत्र हनुमान! प्रभु श्रीराम के परम प्रिय हनुमान! महाबली तुम्हें कहां मिले और तुमने इनके साथ ऐसा व्यवहार किया?"

"माते! इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। हमने क्षत्रियोचित व्यवहार किया है। यह अश्व हमारे क्षेत्र में था और इसके गले में क्षत्रियता को चुनौती देने वाला

संदेश-पत्र था। हमने चुनौती स्वीकार कर ली और अश्व बांध लिया। महाबली उस रक्षक-दल में थे तो युद्ध में हमने इनको परास्त करके इन्हें बंदी बना लिया।"

"अरे मूर्खो! यह तुमने कैसा अनर्थ किया। जिनके पराक्रम की स्तुति स्वयं प्रभु राम करते हैं, उनके साथ ऐसा व्यवहार? तुम्हें बालक जानकर ही इन सहज दयालु वीरवर के हृदय में कोई रोष उत्पन्न न हुआ होगा, अन्यथा इनके बल के समक्ष तो स्वयं यमराज भी नहीं ठहर पाते। इन्होंने सूर्यपुत्र शनि को भी वश में किया है। इन्हें तत्काल बंधनमुक्त करो और क्षमा मांगो।"

"आदेश का पालन होगा माते! परंतु ये तो संज्ञाशून्य हैं।"

सीता की आंखों में वात्सल्य उमड़ आया था और वे दौड़कर हनुमान के पास आईं। उन्होंने हनुमान के सिर पर हाथ फिराया।

"पुत्र लव! तुमने यह उचित नहीं किया। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे इस दुस्साहस ने किस महाबली के यश को प्रभावित किया है। हे पुत्र हनुमान! चैतन्य हो जाओ और इन उद्दंड बालकों की भूल क्षमा करो।" सीता ने विनय की।

दोनों भाइयों के नेत्र मिले, जैसे आपस में कह रहे हों कि श्रद्धा की भी सीमा होनी चाहिए। प्रशंसा उन दोनों की होनी चाहिए थी और उनकी माता...।

हनुमान ने नेत्र खोल दिए और सीता को सम्मुख देखकर विह्वल हो उठे। नेत्रों में जल भर आया और वे सीता के चरणों में नत हो गए।

"माते! आपके दर्शन पाकर मेरा समस्त संताप मिट गया।" हनुमान बोले–"मेरा हृदय आज तक प्रभु की इस लीला पर व्यथित हो रहा था। हे माते! जगत का संचालन तो वही करते हैं, अतः उनके निर्णय में त्रुटि का विचार करना भी मूर्खता है, परंतु हे जगत्माता, मैं कभी अपने हृदय से माता के स्नेह को विस्मृत न कर सका।"

"हे वीरवर हनुमान! हृदय में उन क्षणों का संताप न करो, जो व्यतीत हो गए। ये मेरे पुत्र लव-कुश हैं। पिता के समीप न रहने से उन गुणों का विकास इनमें नहीं हुआ है, जो होना चाहिए। दुस्साहसी हैं और इन्हें शत्रु-मित्र की पहचान नहीं है। इन्होंने जो किया, उसके लिए इन्हें क्षमा कर दो आंजनेय!"

हनुमान तो उन दोनों बाल-योद्धाओं को एकटक देखते रह गए। वह असमंजस भी समाप्त हो गया, जो युद्ध में उनसे पराजित होने पर हुआ। प्रभु के पुत्र तो काल से भी अपराजेय थे। उनसे पराजय तो प्रभु का प्रसाद था।

"हे माते! मैं जब युद्धरत था तो इनके युद्ध-कौशल व बाण-संधान की विधि देखकर सोच रहा था कि यह सब कहीं मेरा देखा हुआ विधि-कौशल है। अब तो कोई शंका ही नहीं रही कि आपके पुत्रों में यह अस्वाभाविक है। हे माते, आज इनका पराक्रम देखकर जैसी प्रसन्नता हुई, वैसी कभी न हुई। कुमार लक्ष्मण, कुमार

भरत व कुमार शत्रुघ्न सहित इन्होंने हम सबको संतुष्ट कर दिया। इनके शौर्य का वर्णन तो हजारों मुख वाले शेष भी नहीं कर सकते। प्रभु श्रीराम के पुत्रों को जीतने की इच्छा से यदि इंद्र भी अपनी कोटि सेना लेकर आ जाएं तो भी उसे पराजित होना पड़ेगा। हे कुमारो! अपने इस दास का प्रणाम स्वीकार करो।"

लव-कुश स्तब्ध रह गए। वे राम के पुत्र थे। कभी माता या गुरुदेव ने भी उन्हें इस विषय में कुछ नहीं बताया था। उन्होंने माता की ओर देखा।

"हां पुत्र! तुम्हारे पिता वही अयोध्यापति प्रभु श्रीराम हैं जिनकी महिमा सारा संसार जानता है और उनकी स्तुति करता है। मैं तुम्हारी माता ही वह जनकनंदिनी सीता हूं, जो लोक-व्यवहार और मर्यादाओं के बंधन में अपने पति द्वारा त्याग दी गई थी। जिन योद्धाओं को तुमने रण में संतुष्ट किया है, वे तुम्हारे चाचा हैं। पुत्रो, ये वही वीरवर संकटमोचक हनुमान हैं जिन्होंने तुम्हारी माता की सदा रक्षा और सेवा की है। ये तुम्हारे आदरणीय हैं, इन्हें श्रद्धा से प्रणाम करो।"

लव-कुश ने पूरी श्रद्धा और सम्मान से उन्हें प्रणाम किया।

"पुत्रो! हनुमान के साथ अश्व को ले जाकर अपने चाचाओं से जाकर क्षमा मांगो और अपने कुल-यज्ञ को सफलतार्वूक संपन्न होने दो।" सीता ने आदेश दिया।

"इसकी आवश्यकता नहीं पुत्री!" पीछे से महर्षि वाल्मीकि का स्वर उभरा—"हम सब यहीं आ गए हैं। आज मेरा यह आश्रम संसार के सबसे पुण्यवान् व कीर्तिवान् कुल के पुनर्मिलन का केंद्र बनने का सौभाग्य प्राप्त करेगा।"

सीता मुड़ीं तो सामने नेत्रों में जल लिये करबद्ध भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न खड़े थे। सीता की आंखें डबडबा गईं और उनमें वात्सल्य उमड़ आया। तीनों भाई उनके चरणों में गिर पड़े। पुनर्मिलन का यह दृश्य बड़ा मार्मिक था। तीनों भाइयों ने बारी-बारी से अपने भतीजों को दुलारा-पुचकारा।

"महर्षि! रघुकुल सदैव आपका ऋणी रहेगा, जो आपने उनकी अमूल्य धरोहर को स्नेहपूर्वक सहेजकर रखा और उन्हें इस योग्य बनाया कि हमारे कुल की कीर्ति में और भी सूर्य जुड़ गए।" लक्ष्मण ने महर्षि वाल्मीकि का आभार प्रकट करते हुए कहा—"प्रभु श्रीराम का यह यज्ञ अभूतपूर्वक फल देने वाला सिद्ध हुआ।"

"रघुकुलनंदनो, यह क्षण अभूतपूर्व है। भोजन का समय हो गया है और पुत्री सीता ने रसोई भी बना ली है। कृपया भोजन ग्रहण करके इस वनक्षेत्र को राजसी आभा से युक्त करें। पुत्री सीता, कुटिया में चलो।" महर्षि बोले।

"हे महर्षि, यह हमारे पुण्य कर्मों का फल है, जो आज फिर से वर्षों पश्चात् हमें माता सीता के हाथों से बनी रसोई चखने का सौभाग्य प्राप्त होगा।" तीनों भाई गद्गद होकर बोले।

लक्ष्मण ने लव को तो भरत ने कुश को गोद में उठा लिया।

सीता के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहे जा रही थी।

लक्ष्मण सहित तीनों भाइयों और हनुमान के लिए वह स्वर्णिम स्मरणीय रात्रि रही। कभी सीता के प्रश्न, कभी उलझनें और कभी स्नेह भरे वचन! प्रभु श्रीराम की चर्चा होने पर वियोग की वेदना और फिर सभी परिजनों और नगरवासियों की कुशल-क्षेम जानने की उत्सुकता। कब रात्रि व्यतीत हो गई, पता ही न चला। सूर्योदय होते ही एक तुमुलघोष का नाद सबने सुना—सीता चौंक पड़ीं।

"वे...वे आ गए! यह प्रभु श्रीराम के शंख की ध्वनि है।" सीता स्वतः बड़बड़ाईं—"मैं इस शंखनाद के निर्देश को समझ गई। सीता की प्रतिज्ञा को अटल रखने हेतु स्वामी ने यह संदेश भेजा है।"

सीता मौन धारण करके कुटिया में चली गईं। सब उनकी स्थिति समझ रहे थे।

महर्षि सहित सभी श्रीराम के स्वागत हेतु उसी दिशा में चल दिए। अभी थोड़ी ही दूर चले थे कि रथ पर आरूढ़ सूर्य की भांति शोभायमान धनुष धारण किए श्रीराम दिखाई दिए। पीछे विशाल सेना रणोन्मत्त लग रही थी। राम ने अपने अनुजों को महर्षि वाल्मीकि के साथ देखा तो हाथ के संकेत से युद्धभेदी शंखनाद बंद कराया। इसके पश्चात् रथ से उतरकर महर्षि के चरणों में नत होकर आशीर्वाद प्राप्त किया। सभी अनुजों ने लव-कुश सहित उनके चरण स्पर्श कर स्नेहिल आशीर्वाद लिया।

"महर्षि! संभवतः युद्ध की आवश्यकता नहीं, क्योंकि जहां आप हैं, वहां सर्वदा शांति होती है। अवश्य ही दोनों पराक्रमी बालयोद्धा ये ही हैं जिन्होंने अत्यंत प्रतापी रघुकुल के अजेय योद्धाओं को संतुष्ट किया।" राम स्नेह से लव-कुश को देखते हुए बोले—"महर्षि, इनके पराक्रम के विषय में जानकर इनसे और इनके माता-पिता से भेंट करने की इच्छा प्रबल हो गई थी, इसलिए रात्रि के अंतिम प्रहर में प्रस्थान कर दिया था। हे महर्षि! ये दोनों किस कुल के दीपक हैं, जो भविष्य में सूर्य बनकर प्रकाशित होने वाले हैं? इनकी भुजाएं कह रही हैं कि ये ब्राह्मणपुत्र तो नहीं हैं। वह कौन क्षत्रियकुल है, जो ऐसे शूरवीर योद्धा के यश से महिमामंडित होने वाला है? कौन है वह वीर क्षत्राणी जिसने वनखंडों में रहकर सिंह-शावकों को जन्म दिया और कौन है वह पुण्यभागी पिता जिसके रक्त के शौर्य ने नया अध्याय लिख दिया?"

"हे घट-घट के जानने वाले अंतर्यामी प्रभु!" महर्षि ने हाथ जोड़कर कहा—"आपकी अद्‌भुत लीला को मेरा प्रणाम है। देवर्षि नारद की कृपा और आपकी प्रेरणा से मुझ जड़बुद्धि को आपने आदिकवि बना दिया और अपनी

गौरवगाथा को लोक-कल्याण हेतु शब्द व लिपि देने का परम सौभाग्य प्रदान किया, परंतु हे नाथ! मैं भी इस क्षण तक के विषय में ही लिख सका, क्योंकि संभवत: आपकी इच्छा थी कि शेष आपकी कृपा से मुझे प्रत्यक्ष देखने का अनुभव होगा। हे कण-कण में विद्यमान प्रभु, ऐसा कौन प्रश्न है, जो आपसे उत्पन्न नहीं हुआ और ऐसा कौन-सा उत्तर है, जो आपसे प्रेरित न हो, फिर भी हे नाथ, आपकी जिज्ञासा पुरुषोचित है।"

राम केवल मुस्कराए और हनुमान की ओर देखा।

"प्रभु, ये दोनों वीर बालक किसी और के पुत्र नहीं, अपितु आपके ही पुत्र हैं।" महर्षि ने लव-कुश के सिर पर हाथ रखा–"हे नाथ! ऐसे पराक्रमी पुत्रों को अपने गर्भ में रखने वाली आपकी प्राणप्रिया सीता हैं, जो मेरी धर्मपुत्री बनकर मेरे आश्रम में रह रही थीं। इन लव-कुश के पराक्रम में जनकनंदिनी सीता के अमृतमयी दूध का प्रभाव और आपके रक्त का मिश्रित शौर्य है। हे करुणाकर, आपने मुझ अधम को अपनी कृपा से पापों के अंधकूप से निकाला और पुन: ऐसा अवसर प्रदान किया कि मैं जगत्माता जानकी के धर्मपिता होने के गौरव से परिपूर्ण हुआ।"

राम के नेत्र सजल हो गए और उन्होंने भुजाएं फैलाकर अपने पुत्रों को अंकपाश में समेटकर उन्हें दुलारना-पुचकारना आरंभ किया। जन्म से लेकर अब तक अपने पिता के स्नेह से वंचित उन कुमारों की रुलाई फूट पड़ी।

"हे पुत्रो! अपने पिता को क्षमा कर देना, जो अपने पुरुषोचित सिद्धांतों और मर्यादाओं से समझौता नहीं कर सका और तुम्हारी माता को निर्दोष होने पर भी कठोर कष्ट सहने पड़े। तुम्हारी माता से अधिक मुझे कौन समझेगा, फिर भी उस सती नारी से मैं अवश्य क्षमा चाहूंगा। कहां है सीता?" राम द्रवित स्वर में बोले।

लव-कुश ने कुटिया की ओर संकेत कर दिया तो सभी ने कुटिया में से एक उच्च और दीर्घ नि:श्वास का स्वर सुना।

66

दशरथनंदन की लीला का समापन

सूर्यदेव ने लालिमा से धरा को अपने उदय होने का संकेत दे दिया तो चिड़ियां चहचहा उठीं, परंतु उनकी चहचहाहट में नित्य का वह राग नहीं था, जो प्रायः होता था। आज उसमें वेदना थी। राम इस वेदना का विस्तार नहीं करना चाहते थे। अतः उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया जिसे बड़े ही ममत्व से स्त्री रूपी सरयू ने पकड़ा और उन्हें लेकर आगे बढ़ चली। राम इस प्रकार निर्विकार बढ़े चले गए मानो अब संसार में उनकी कोई आसक्ति न रह गई हो। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा और वे सरयू के अथाह जल की तलहटी में पहुंच गए। यहां उन्होंने सरयू को अपने चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन दिए और फिर दशरथनदंन की रामलीला का समापन हो गया।

राम दृढ़ कदमों से कुटिया की ओर बढ़े तो उनके पदचापों का स्वर सीता को अपने हृदय पर वज्र की भांति लगता था।

"वे आ रहे हैं।" सीता स्वतः बड़बड़ाई–"मैं परित्यक्ता कैसे उन्हें अपना अभागा मुख दिखा सकती हूं। मेरे कारण उनके जीवन में संघर्ष रहे हैं। हे माता पृथ्वी, तूने ही मुझे उत्पन्न किया है और अब तू ही मेरे संकल्प की रक्षा कर। हे माता, यदि प्रभु श्रीराम के चरणों में मेरी सदा निश्छल प्रीत रही है और तेरी यह पुत्री तेरी ही भांति अपने धर्म में दृढ़

रही है तो हे माता, मुझे अपनी गोद में स्थान दे। तुझे सौगंध है मातृधर्म की, अपनी पुत्री का व्रत अटूट रख।"

"सीते, प्रिये! मैं तुम्हारा राम, प्रिये! मुझे समापन की इस बेला में क्षमा कर दो। हे जनकदुलारी! तुम्हें ही मृत्युलोक का व्यवहार देखने का शौक हुआ था। यह माया है। यह वह योगमाया है, जो तुमसे ही उत्पन्न होकर तुम्हीं में विलीन हो जाती है। राम तो केवल निमित्त था।"

राम कुटिया में प्रवेश कर गए थे। सीता उनकी ओर पीठ किए हुए खड़ी थी कि तभी तीव्रतम गर्जना हुई और जहां सीता खड़ी थी, वहां की भूमि दो भागों में विभक्त हो गई। सीता 'राम-राम' सुमिरण करती हुई पृथ्वी की गोद में समा गईं। राम विह्वल होकर उनकी ओर झपटे तो उनके हाथ में क्षण-भर के लिए सीता के केश ही आए और वे भी फिसल गए। केवल उनके चिह्न रह गए।

मनुष्य का जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण होता है। पुरुष को पुरुषार्थ ही संघर्षों से निखारता है। ऊंचा कुल, अपार वैभव होने पर प्राय: धारणा बन जाती है कि उस व्यक्ति को जीवन में सर्वसुख है। दशरथनंदन राम ने इस धारणा का खंडन किया। उन्होंने मानवीय संघर्षों का एक उत्तम उदाहरण बनकर दिखाया और भाग्य व पुरुषार्थ की महिमा स्थापित की।

प्रात: राजतिलक होने वाला था कि वनवास हो गया–राम ने सहज स्वीकार किया। पिता के वचनों का मान रखा और माता की इच्छा का भी! मातृ-पितृ भक्ति का ऐसा सुंदर उदाहरण राम के अतिरिक्त कौन दे सकता था? तपस्वी जीवन में सभी वैभवों को त्यागकर राम ने वन्य-जीवन का महत्त्व बढ़ाया। राक्षसों से मुनिजनों को निर्भय करके उन्होंने क्षत्रिय धर्म का पालन किया। भालू-वानरों से स्नेहपूर्ण मित्रता करके उन्हें सम्मानित किया। राम का संपूर्ण जीवन ही संघर्षमय रहा था।

जब सीता अपने संकल्प पर अडिग होकर पृथ्वी में समा गईं तो राम ने करुण विलाप किया और अपनी सब व्यथा का वर्णन किया। महर्षि के समझाने पर उन्होंने सांत्वना पाई और अपने पुत्रों को हृदय से लगाया। महर्षि से आज्ञा लेकर राम अपने पुत्रों सहित अयोध्या लौट आए। अब उनकी गंभीरता समुद्र की भांति हो गई थी। लव-कुश का अयोध्या में आना रघुकुल की नई पीढ़ी का आगमन था। वे उत्तराधिकारी थे। सबके प्रिय थे और पिता की ही भांति प्रजा का सम्मान करते थे। गुरु वशिष्ठ ने उन दोनों को राजकुल की सभी शिक्षाएं दीं। युद्धकला में तो वे पहले ही प्रवीण थे। जब वे तरुण हो गए तो राम ने गुरु वशिष्ठ से विचार-विमर्श करके कुमार लव को युवराज घोषित कर दिया।

राम ने भरत को पश्चिमी राज्यों और शत्रुघ्न को पूर्वी राज्यों का शासन

संचालन दिया, जबकि लक्ष्मण ने सदैव उनकी सेवा में रहने के अपने व्रत के कारण राजपद या राज्य की इच्छा न की। रामराज्य में सर्वत्र सुख और शांति थी। यथा राजा तथा प्रजा की कहावत अयोध्या में चरितार्थ होती थी। राम का जीवन उनकी प्रजा के लिए आदर्श और प्रेरणादायी था। सभी अपने वर्ग और धर्म के अनुसार अपने कर्तव्यों में रत होकर रहते थे। राम चक्रवर्ती सम्राट थे।

अब राम को अपनी लीला का समापन करना था। बहुत समय तक न्याय, नीति और धर्म का पालन करते हुए उन्होंने अयोध्या के यश-वैभव को बढ़ाया और फिर उचित समय आने पर अपनी लीला के समापन की इच्छा से मृत्यु के देवता यम का आह्वान किया। राम अपने विशेष मंत्रणा कक्ष में प्रवेश कर रहे थे। कक्ष के द्वार पर लक्ष्मण सदैव सजग प्रहरी के रूप में विद्यमान थे।

"अनुज लक्ष्मण! हम विशेष वार्ता में व्यस्त होने जा रहे हैं।" राम ने गंभीर स्वर में आदेश दिया–"तुम यहां सजगता से प्रहरी बने रहना और किसी को भी कक्ष में प्रवेश न करने देना, भले ही वह कोई भी हो। अनुज, हमारी इस आज्ञा का किसी भी स्थिति में उल्लंघन नहीं होना चाहिए, अन्यथा इसके परिणाम घातक हो सकते हैं। कक्ष में हमारे साथ विशेष अतिथि हैं और उनके विषय में हम किसी को भनक नहीं लगने देना चाहते। यदि कोई भूल हुई तो हमें विवश होकर तुम्हें प्राणदंड देना होगा।"

लक्ष्मण के द्वारा राम की आज्ञा के उल्लंघन का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। यह राम ही जानते थे और लक्ष्मण भी! फिर भी राम के द्वारा विशेष चेतावनी ने लक्ष्मण को विषय की गंभीरता से अवगत करा दिया। अवश्य ही प्रभु श्रीराम आज कोई विशेष लीला करना चाहते हैं।

"महाराज! आज्ञा का पालन होगा। यदि स्वयं महादेव भी आ जाएं तो भी मैं उन्हें आपकी आज्ञा के बिना कक्ष में प्रवेश न करने दूंगा।" लक्ष्मण ने दृढ़ता से कहा।

राम कक्ष में चले गए और लक्ष्मण प्रवेशद्वार बंद करके उसके सामने सजग प्रहरी के रूप में डट गए। राम के आह्वान पर मृत्युदेव कक्ष में प्रकट हुए और राम को प्रणाम किया। राम ने यथोचित आदर-सत्कार से उन्हें आसन दिया।

"प्रभो! मेरे लिए क्या आदेश है?" मृत्युदेव ने पूछा।

"हे देव! जीव जगत के प्राण हरण करके सृष्टि की निरंतरता को बनाए रखने वाले आप ही हैं। जीवन के अंतिम सत्य को मूर्त रूप आप ही देते हैं। इस सृष्टि में जो जन्मा है, उसे मरना भी है। हमने कारण विशेष से नर रूप में अवतार लिया और जीवन की सभी परिस्थितियों का सर्वांग आनंद लिया।" राम गंभीरता से कह रहे थे–"मनुष्य जीवन के समस्त सुख-दुख, यश-अपयश का भोग भोगा है। अपने

सभी कर्तव्यों और दायित्वों का निर्वहन किया है। अब समय आ गया है कि हम अपने लोक की ओर गमन करें, परंतु सभी कार्य प्रयोजन से होते हैं, अतः उसी प्रयोजन की भूमिका बनाने के लिए हमने आपको कष्ट दिया है।"

"प्रभु! यह समस्त ब्रह्मांड आपसे ही उत्पन्न होकर आपमें ही विलीन हो जाता है, जिस प्रकार समुद्र में उत्पन्न तरंगें समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं। हे सर्वेश्वर, मैं तो आपका निमित्त-भर हूं और आपके द्वारा ही निश्चित नियमों का पालन करता हूं। आप ही सभी जीवों का जन्म-मरण निर्धारित करते हैं।"

राम और मृत्युदेव इस गहन विषय पर चर्चा में व्यस्त थे और बाहर लक्ष्मण सजगता से पहरा दे रहे थे। इधर नियति एक बार फिर अयोध्या के सुखी और शांत जीवन में हलचल करने को उद्यत थी, तभी तो राजमहल में महर्षि दुर्वासा ने प्रवेश किया था।

दुर्वासा तनिक अवज्ञा होने पर क्रोध करने और तत्काल श्राप देने में जगप्रसिद्ध थे। उनकी भृकुटि को शनि और यम की भांति कठोर कहा जाता था। वे जहां भी जाते थे, वहीं भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता था। अयोध्या के राजमहल में भी ऐसा ही सन्नाटा व्याप्त हो गया। दुर्वासा कभी किसी की आज्ञा न लेते थे। न कोई उनके मार्ग में आने का साहस करता था। वन में तो पशु-पक्षी भी उनके सामने आने से डरते थे। वही महाक्रोधी दुर्वासा अचानक लक्ष्मण के सामने जाकर खड़े हो गए। लक्ष्मण ने उन्हें सादर प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

"कुमार, महाराज श्रीराम को हमारे आने की सूचना दो।" दुर्वासा ने कहा—"हमें इसी समय महाराज से एक आवश्यक विषय पर बात करनी है।"

लक्ष्मण असमंसज में पड़ गए। ऐसी परिस्थिति की तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। श्रीराम के द्वारा अतिरिक्त चेतावनी देने का कारण अब उनकी समझ में आ गया था। दुर्वासा के विषय में वे जानते थे कि तनिक-सी अवज्ञा भी उन्हें क्रोधित कर देती थी। इधर श्रीराम का आदेश भी कठोर था।

"क्या सोच रहे हो लक्ष्मण? क्या हमारी बात सुन नहीं पाए या समझ नहीं पाए?"

"मुनिवर!" लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले—"हे मुनिश्रेष्ठ! अन्यथा न लें और क्रोध न करें। अभी प्रभु श्रीराम कक्ष में किसी विशेष व्यक्ति के साथ मंत्रणा में व्यस्त हैं। आप तनिक प्रतीक्षा करें। नाथ! यह दास की विनती है।"

"प्रतीक्षा! दुर्वासा प्रतीक्षा करे? असंभव! स्वयं त्रिदेवों के द्वार पर भी दुर्वासा ने कभी प्रतीक्षा नहीं की और तुम मुझे प्रतीक्षा करने को कह रहे हो। राजमद ने तुम्हें और उस राम को इतना अहंकारी कर दिया कि तुम मुझे प्रतीक्षा कराओ। क्या इसका परिणाम नहीं जानते?"

"मुनिवर!" लक्ष्मण ने उनके पैर पकड़ लिए—"क्रोध न करें—दया करें नाथ!"

"तो शीघ्र आदेश का पालन करो, अन्यथा हमारा क्रोध क्षण-भर में इस राज्य का सर्वनाश कर देगा। हम उस राम को ही ऐसा श्राप देंगे कि वह प्रभुताई धरी रह जाएगी।" दुर्वासा ने क्रोध में अपने कमंडल में हाथ डाला।

लक्ष्मण कंपित हो गए। दुर्वासा के क्रोध से होने वाला महाविनाश उनके प्राणांत से भी अधिक कष्टकारी था। राम यदि प्राणदंड भी देते हैं तो स्वीकार है, परंतु दुर्वासा का श्राप नहीं, जो प्रभु और प्रजा दोनों का अहित कर सकता था।

"मुनिवर, मैं प्रभु से विनय करता हूं। आप क्षण-मात्र प्रतीक्षा करें। लक्ष्मण ने कहा और अपना हृदय कठोर करके कक्ष का द्वार खोलकर प्रवेश कर गए। मृत्यु के देवता की दृष्टि उन पर पड़ गई। यह देखकर राम सन्न रह गए।

"लक्ष्मण, अनुज! यह तुमने क्या किया?" राम विस्मय और वेदना भरे स्वर में बोले—"हमारी चेतावनी के पश्चात् भी अपनी मृत्यु का वरण कर लिया।"

लक्ष्मण नेत्रों में जल लिये मौन खड़े रहे।

"अनुज, अवश्य कोई विशेष कारण हुआ होगा, जो तुमने ऐसा किया।" राम ने कहा—"पर राम क्या करें! क्या भ्रातृमोह में अपने वचन का खंडन करें। हे अनुज, मेरे संकल्प की तुम भी रक्षा करो। मैं तुम्हें प्राणदंड देकर कलंकित नहीं होना चाहता, अतः तुम्हें जीवनपर्यंत अपने नेत्रों से दूर करता हूं।"

"हे नाथ!" लक्ष्मण के नेत्रों से अश्रुधारा बह उठी—"मेरे लिए तो यह भी प्राणदंड ही है, क्योंकि आपके चरणों से बिलख होकर लक्ष्मण का जीवन व्यर्थ है। प्रभु जिसे आपेन त्याग दिया, उसे मृत्यु ही शरण देती है।"

राम ने उन्हें अपने अंकपाश में भर लिया और दोनों भाई करुण विलाप करने लगे। समीप बैठे मृत्युदेव भी द्रवित हो गए, तभी क्रोध में दुर्वासा ऋषि भी वहां आ गए तो मृत्युदेव क्षण-भर में अंतर्ध्यान हो गए। अत्यंत क्रोधी दुर्वासा ने परिस्थिति को भांप लिया। उनका सारा क्रोध शांत हो गया और नेत्रों में अपराध भाव उत्पन्न हो गया।

"हे प्रभो!" दुर्वासा ने हाथ जोड़कर कहा—"मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। मैंने अहंकार में भरकर लक्ष्मणजी की विवशता को न समझा और ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी। हे सर्वेश्वर! आपकी दयालुता और कृपा का अनुचित लाभ उठाते हुए मैंने अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर दिया। इस महापाप से मुझे कभी मुक्ति न मिलेगी। मेरा उद्धार करें प्रभो, मेरा उद्धार करें।"

"हे महर्षि!" राम ने विकल, परंतु गंभीर स्वर में कहा—"इस जगत का संचालन माया के द्वारा होता है और यह माया ही विघ्न की जननी है। इसी विधि

के द्वारा समस्त जीव-जगत का भविष्य निर्धारित होता है। इसी की प्रेरणा से सभी परिस्थितियां—सम या विषम उत्पन्न होती हैं। आज हमारे सामने जो विकट परिस्थिति उत्पन्न हुई, यह उसी का रचा खेल है, अत: आपको व्यथति नहीं होना चाहिए। आप संपूर्ण वेदों के ज्ञाता और त्रिकालदर्शी हैं, अत: आपको संताप नहीं करना चाहिए। आप स्वयं को पीड़ित न करें।"

"हे नाथ! मैं आपकी दुविधा और पीड़ा का कारण बनने पर दुखी हूं। मैं आपका दास होकर भी आपको पीड़ा देने वाला बना और यह अपयश कमाया। हे नाथ! इसका दोष मेरे सिर पर है, अत: दंड भी मुझे मिलना चाहिए। लक्ष्मणजी निर्दोष हैं, अत: क्षमा के पात्र हैं। आप दया करके इन्हें क्षमा करें और मुझे दंड दें।"

"महर्षि! आप तो केवल माध्यम-भर हैं। नियति की लीला को गति देने के निमित्त ही आपका यहां आगमन हुआ है। सब कुछ पूर्व निर्धारित हुआ है, अत: इसमें किसी का दोष नहीं माना जा साकता। अनुज लक्ष्मण, अपने हृदय में किसी प्रकार की ग्लानि या दोष को स्थान न देकर नियति के निर्णय को स्वीकार करो।"

"जो आज्ञा प्रभु! लक्ष्मण आपकी अवज्ञा को भी मृत्यु समान समझता है।"

राम गंभीर हो गए और उन्होंने लक्ष्मण की ओर से मुख फेर लिया। दुर्वासा मुनि बिलख उठे और लक्ष्मण भी बिलखते हुए कक्ष से बाहर चले गए।

करुण विलाप करते हुए लक्ष्मण राजभवन से बाहर की ओर दौड़े चले जा रहे थे। जिसे प्रभु ने त्याग दिया, वह किसी और को मुख दिखाने लायक नहीं रहा—इस विचार से वे मुख छुपाकर राजभवन से बाहर राजपथ पर आ गए। जो भी देखता, वही सन्न रह जाता!

लक्ष्मण की मनोस्थिति कौन समझ सकता था! हृदय अपार वेदना से फटा जा रहा था। जिन प्रभु श्रीराम के चरणों से इतना अनुराग था कि सब वैभव त्यागकर चौदह वर्ष का वनवास आनंदमय लगा था, आज उन करूणा के सागर ने त्याग दिया तो जीवन का अर्थ ही क्या रह गया था!

लक्ष्मण ने प्रभु का आदेश, निर्देश और संकेत समझ लिया था, इसलिए वे दौड़ते हुए पतित पावनी सरयू के किनारे आ गए थे। सर्वप्रथम उन्होंने श्रीराम की वंदना करके हृदय को स्थिर किया और फिर श्रेष्ठ नदी सरयू की स्तुति करके उससे अपनी अथाह जलराशि में स्थान देने की विनय की। सरयू स्वयं स्त्री रूप में प्रकट होकर मातृत्व भाव से शेषावतार लक्ष्मण का हाथ पकड़कर अपनी वात्सल्यमय गोद में ले गईं। लक्ष्मण सरयू के अथाह जल की तलहटी पर जाकर अपने वास्तविक शेष रूप में आ गए और उन्होंने क्षीर सागर की ओर प्रस्थान किया।

उधर लक्ष्मण के राजमहल से रोते हुए निकलने का कारण किसी का ज्ञात नहीं था, अतः लोग परस्पर एक-दूसरे से प्रश्न करते और राजमहल की ओर दौड़ पड़ते।

राजभवन में भी यही स्थिति थी। हर कोई पूछता, परंतु उत्तर किसी के पास न था। असमंजस और पीड़ा ने सबको घेर लिया था।

महर्षि दुर्वासा भी रोते और प्रश्नों पर मूक रहते हुए राजभवन से बाहर चले गए। राजपरिवार स्तब्ध रह गया। तीनों माताएं व्याकुल और शंकित मन लेकर राम के कक्ष की ओर चलीं। उनका हृदय बैठा जा रहा था। राम कक्ष से बाहर सजल नेत्र गंभीर मुद्रा में खड़े थे। माताओं को देखते ही उन्होंने हाथ जोड़ दिए और सिर को इस प्रकार हिलाया, जैसे प्रश्न न करने की याचना कर रहे हों, फिर कौन प्रश्न करता, परंतु इससे हृदय तो संतुष्ट नहीं होता था।

"पूज्य माताओ!" राम ने गंभीर स्वर में मौन तोड़ा–"नियति के निर्णय पर प्रश्न उठाने से कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि वह निर्णय अटल होता है। इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है। जीवन है तो मृत्यु भी है। राग है तो द्वेष भी है। यश है तो अपयश भी है, अतः जो नियति को स्वीकार है, वही हमें भी स्वीकार करना चाहिए। जो होना होता है, वह होकर रहता है।"

सभी ने राम के सदुपदेश को ग्रहण कर लिया। यद्यपि राजभवन में मौन और उदासी व्याप्त हो गई थी। लक्ष्मण के बिना अयोध्या ही सूनी हो गई थी, राम भी शून्य हो गए थे। अब इस लीला का समापन होना था। राम गुरु वशिष्ठ से मिले और अपनी व्यथा कह सुनाई। गुरु वशिष्ठ गंभीरता से सुनते रहे।

"हे जगतनियंता! इस शून्य जगत को विस्तार देकर पुनः शून्य में विलीन होने की प्रेरणा आपसे ही मिलती है। आपने जगत-कल्याण के लिए देह धारण की है और इसके सभी उद्देश्यों को पूर्ण कर दिया है। सर्वत्र सुख और शांति है। हे देव! जब उद्देश्य पूर्ण हो जाते हैं तो समापन भी आवश्यक है, अतः हे नाथ, आप अपने नियत समयचक्र के अनुसार ही व्यवहार करें।"

"गुरुदेव! अब स्वलोक जाने का समय आ गया है।" राम गंभीरता से बोले–"अतः अब हमें राज्य के दायित्व से मुक्त करने की कृपा करें। युवराज लव को शासन भार सौंपकर हम स्वलोक गमन करते हैं।"

"हे प्रभो!" गुरु वशिष्ठ ने विनयी स्वर में कहा–"आपने संसार में अवतार लेकर अपने भक्तों का मान रखा और दुष्टों का विनाश करके धर्म की पुनर्स्थापना की है। अधर्म के भाव से पीड़ित धरा को सुख दिया है। आपके शासन में न्याय, मर्यादा, अहिंसा और सौहार्द में वृद्धि हुई है। यह रामराज्य एक परिकल्पना के रूप

में सृष्टिपर्यंत जगत को प्रेरित करता रहेगा। हे सर्वेश्वर, आपके जन्म के समय समस्त सृष्टि पुलकित हो गई थी। सभी असंतुलन समाप्त हो गए थे। हे नाथ, लेकिन आप जब स्वलोक गमन करेंगे तो इन सबकी पीड़ा का अनुमान भी मुझे कंपित कर रहा है। जो आपको न्यायप्रिय राजा के रूप में सम्मान और स्नेह देते हैं, उनके लिए तो ये अत्यंत पीड़ादायक क्षण होंगे।"

"गुरुदेव, राम इतना निर्दयी नहीं होना चाहेगा कि अपने प्रियजनों को ऐसा दारुण कष्ट दे। मैं जानता हूं कि मेरी प्रजा मुझसे अत्यधिक प्रेम करती है और मेरा वियोग उन्हें पीड़ा देगा। अतः मेरा स्वलोक गमन किसी उत्सव के साथ नहीं होगा। आकस्मिक घटनाओं से पीड़ा अवश्य होती है, परंतु समय के साथ उन्हें सहने की शक्ति आ ही जाती है।" राम गंभीर स्वर में बोले।

राम के प्रस्थान को निकट जानकर सूर्य ने अपना व्यवहार बदल दिया है। वायु कभी शीतल तो कभी उष्ण हो रही है। कहीं बारिश है तो कहीं आवश्यकता होने पर भी मेघ रिक्त हैं। यह राम के स्वलोक गमन की प्रतिक्रिया है।

दूसरी ओर अयोध्या पुनः महोत्सव में लीन हो गई थी। युवराज लव के राजतिलक का भव्य समारोह था। अयोध्या नगरी को सजाया गया था। दूर देशों के राजा-महाराजा और ऋषि-महर्षि पधार रहे थे। अतिथिशालाओं का दृश्य विहंगम था। आतिथ्य का जो भाव अयोध्यावासियों में था, उसका आनंद लेने देवगण भी ऋषि-ब्राह्मणों के रूप में चले आए थे। आतिथ्य-आनंद और राम-दर्शन का दोहरा लाभ जो था। राम सभी अतिथियों से प्रेमपूर्वक मिलते, सबका आदर करते। याचकों की कतारें लग गई थीं और सभी को इच्छा से भी अधिक मिल रहा था।

जब लव का राजतिलक हुआ तो वह दृश्य आनंदित कर देने वाला था। रंग-रूप और छवि में राम की ही भांति युवराज लव शोभायमान थे। कुलगुरु ने तिलक किया और मंत्रोच्चारण किए। स्वयं राम ने राजमुकुट अपने हाथों से लव के मस्तक पर रखा।

देवताओं ने पुष्पवर्षा करके हर्ष व्यक्त किया। राम ने बड़े ही गंभीर स्वर में नए राजा लव को राजनीति का संक्षिप्त संदेश दिया। अब वे स्वयं राजपद और राजकार्य से मुक्त हो गए थे। कुछ ज्ञानी मुनिजन जानते थे कि यह राम के अवतरण का अंतिम चरण था। वह दिन अयोध्या के लिए अत्यंत आनंद भरा रहा।

अर्द्धरात्रि तक उत्सव चलता रहा। राम सभी अतिथियों को शयन कराने के पश्चात् स्वयं अपने कक्ष में आए। वे अब स्थिर चित्त हो गए थे। निद्रा का त्याग तो उन्होंने उसी दिन कर दिया था, जब सीता से विछोह हुआ था। अब तो उन्हें

मायारूपी संसार को त्यागना था। अपने कक्ष में टहलते-टहलते उन्हें रात्रि का अंतिम प्रहर हो गया था। वे कक्ष से बाहर आए।

नगर-भर में उत्सव के उपरांत सामान्य-सा सन्नाटा व्याप्त था। सदा सजग रहने वाले प्रहरी भी श्रीराम की प्रेरणा से निद्रामग्न थे। राम निर्विघ्न राजमहल से बाहर आ गए और अंतिम बार दृष्टि भरकर उस महल को देखा। उन्होंने वहां की भूमि को स्पर्श करके उसकी रज मस्तक पर धारण की और राजपथ पर बढ़ते चले गए। यह राम की ही प्रेरणा थी कि रात्रिचर भी निद्रामग्न थे। सर्वत्र सन्नाटा छाया था।

राम नगर से बाहर निकल आए और सरयू के तट पर आ पहुंचे। यह ब्रह्ममुहूर्त की बेला थी। राम ने परम पावनी सरयू की स्तुति की तो वे स्त्री रूप में हाथ जोड़े उनके सामने प्रकट हो गईं।

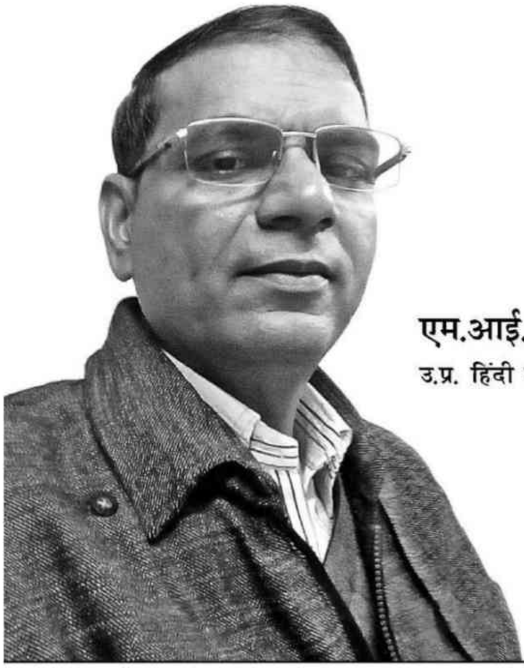
"हे प्रभो, इस पावन बेला में आपका दर्शन हर्षित करने वाला है। आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। नाथ! आपके आगमन से प्रकृति भी प्रफुल्ल हो गई है। शीतल समीर मेरी तरंगों का स्पर्श करके मुझे आनंद दे रही है।"

"हे माते! आप जल रूप में जीव-जगत का पालन करने वाली हैं।" राम विनयपूर्वक बोले-"आपका अमृत समान जल इस धरा को सिंचित कर संसार को सुख देता है। आज राम भी आपकी गोद में स्थान पाने की इच्छा लेकर आया है। कृपया मुझे स्वलोक जाने का मार्ग प्रदान करें।"

"हे नाथ! आपकी इस विशेष कृपा के प्रति मैं कैसे आभार व्यक्त करूं? जिनके स्पर्श-मात्र से ही पतितों का उद्धार हो जाता है, उन सर्वेश्वर को अपनी गोद में कुछ क्षण रखकर ममत्व के आनंद में डूबकर मैं तो धन्य हो जाऊंगी।"

सूर्यदेव ने लालिमा से धरा को अपने उदय होने का संकेत दे दिया तो चिड़ियां चहचहा उठीं, परंतु उनकी चहचहाहट में नित्य का वह राग नहीं था, जो प्राय: होता था। आज उसमें वेदना थी। राम इस वेदना का विस्तार नहीं करना चाहते थे। अत: उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया जिसे बड़े ही ममत्व से स्त्री रूपी सरयू ने पकड़ा और उन्हें लेकर आगे बढ़ चली।

राम इस प्रकार निर्विकार बढ़े चले गए मानो अब संसार में उनकी कोई आसक्ति न रह गई हो। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा और वे सरयू के अथाह जल की तलहटी में पहुंच गए। यहां उन्होंने सरयू को अपने चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन दिए और फिर दशरथनदंन की रामलीला का समापन हो गया।



एम.आई. राजस्वी
उ.प्र. हिंदी संस्थान से सम्मानित लेखक

लेखक के बारे में

2 जून, 1967 को उत्तर प्रदेश के ग्राम लांक, वर्तमान जिला शामली (तत्कालीन मुज़फ्फ़र नगर) में जन्मे एम.आई. राजस्वी ने विद्यालयी जीवन से ही लेखन कार्य आरंभ कर दिया था। इनकी सर्वप्रथम लिखी गई कहानी 'प्रतिशोध की ज्वाला' बाद में **'आग का दरिया'** शीर्षक से 'गृहनंदिनी' और 'हरियाणा हैरिटेज' में प्रकाशित हुई।

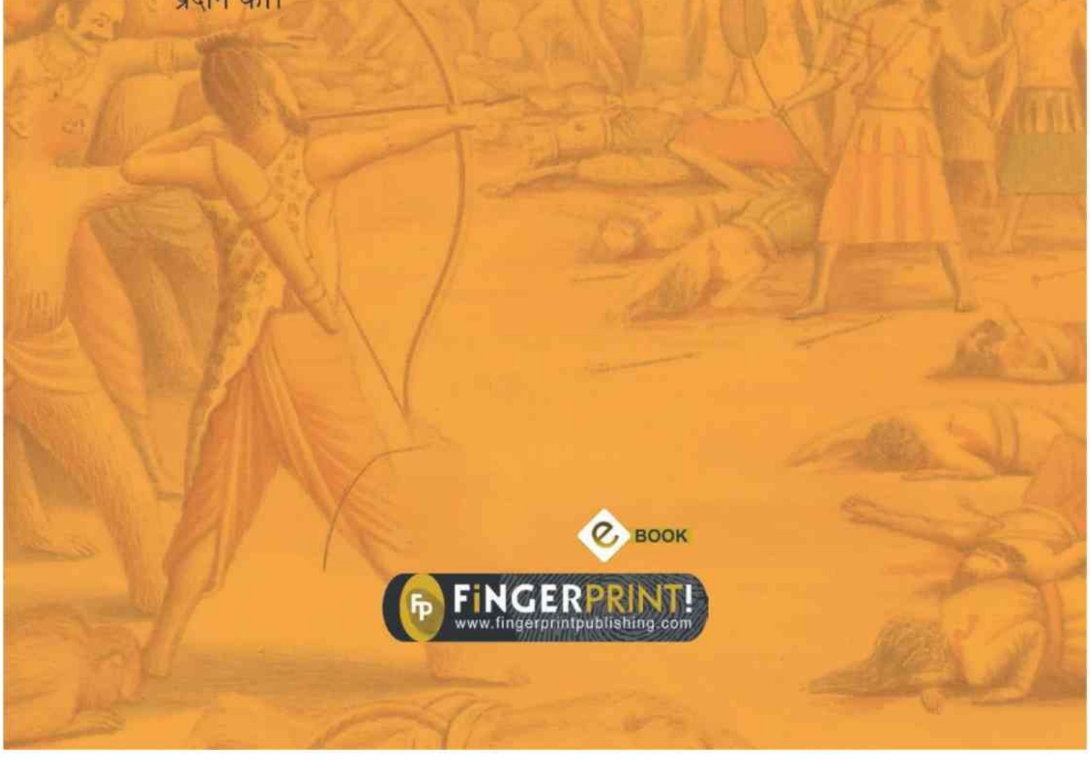
इतिहास में एम.ए. एम.आई. राजस्वी की भारत के स्वर्णिम अतीत, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत में गहन रुचि है। यही कारण है कि इनकी 100 से अधिक लिखी गई पुस्तकों में से लगभग 70 पुस्तकें ऐतिहासिक-पौराणिक पृष्ठभूमि, चरित्रों एवं घटनाओं पर आधारित हैं। गंभीर प्रकृति के पत्रकार होने के कारण इनकी पत्रकारिता के साथ ही इनके लेखन एवं संपादन में तथ्यपरक विश्लेषण, गहन विचारशीलता और तर्कसंगत आकलन के दर्शन होते हैं।

दिल्ली प्रेस की पत्रिका **'गृहशोभा'** के अलावा **'शुभ इंडिया'**, **'हरियाणा हैरिटेज' 'गृहनंदिनी'** और देश के कई प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थानों में राजस्वी ने संपादन एवं लेखन कार्य किया है। इन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा वर्ष 2017 के पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

परम ज्ञानी होते हुए भी अमरता का अहंकार करने वाले लंकाधीश दशानन के अन्याय, अधर्म एवं अत्याचार को समाप्त करने और दशानन सहित उसके संपूर्ण राक्षसकुल को मुक्ति प्रदान करने वाले दशरथनंदन के रूप में महाप्रभु श्रीहरि की पुण्यगाथा!

लंकाधीश दशानन ने अपने बल-बुद्धि और अध्यात्म-ज्ञान से देव-दानव और गंधर्वों को भी परास्त करके त्रिलोक में विजय-पताका फहरा दी थी। इससे दशानन विजय-मद में चूर होकर अनर्थकारी कार्यों की ओर प्रवृत्त हो गया। अंततः उसके अहंकार जनित अत्याचार से जब त्रिलोक में त्राहि-त्राहि मच गई तो क्षीर-सागर में शेष शैया पर विराजमान श्रीहरि ने दशरथनंदन के रूप में पृथ्वी पर अवतार लिया।

दशरथनंदन ने अपनी लीला का विस्तार करते हुए त्रिलोक को त्राण देने वाले लंकाधीश दशानन को नीति, युक्ति, संयम और साहसपूर्वक मुक्ति प्रदान की।



e BOOK
FINGERPRINT!
www.fingerprintpublishing.com